चिकित्सापद्धति

प्रथम भाग

कृष्णदयाल
वैद्य शास्त्री

* श्री धन्वन्तरये नमः *

चिकित्सा पद्धति

[प्रथम भाग]

लेखक —

राजवैद्य श्री कृष्णदयाल वैद्य शास्त्री

प्रकाशक —

प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी लिमिटिड

अमृतसर ।

प्रथमवार २०००] दिसम्बर १९३९ [मूल्य ३)

प्रकाशक—
प्रताप आयुर्वैदिक फार्मेसी लिमिटिड
२७-२८ अकाली मार्केट,
अमृतसर।

मुद्रक—
ज्ञानी पिण्डीदास
आर्य्य प्रेस हाल बाजार,
अमृतसर।

चिकित्सा पद्धति

[दूसरा भाग]

पाठक यह जानकर प्रसन्न होंगे कि चिकित्सा पद्धति दूसरा भाग भी प्रेस में दे दिया गया है, इसमें शेष रोगों के अतिरिक्त हिस्टीरिया, अपैण्डे-साइटिस, हाई ब्लड प्रैशर, गर्दन तोड़ बुखारादि नवीन रोगों का विस्तृत विवरण और अनुभूत चिकित्सा भी दे दी गई है। दूसरे भाग की विशेष खूबी यह है कि इस में मल, मूत्र, रक्त, शुक्र, थूक, तथा नाड़ी परीक्षण का आधुनिक वैज्ञानिक और प्राचीन ढंग का खोज-पूर्ण वर्णन किया गया है।

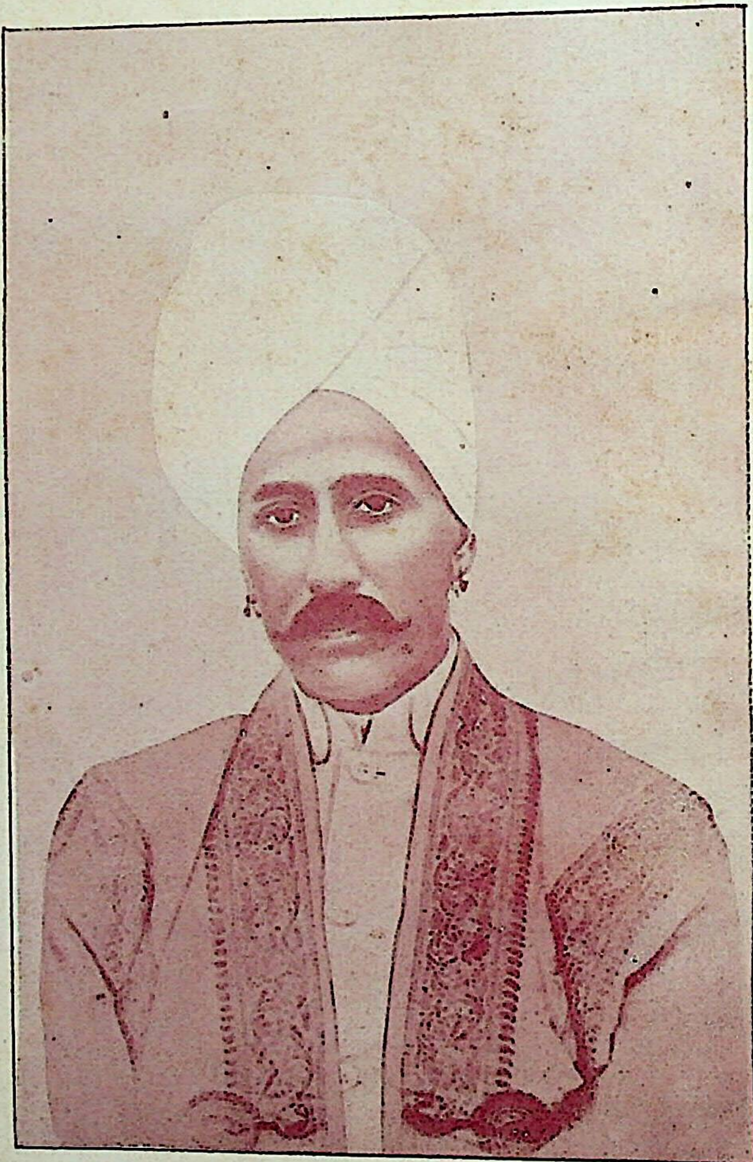
पुस्तक के अन्त में प्रथम तथा द्वितीय भाग में प्रत्येक रोग पर दिये गये रसों में पड़ने वाली समस्त भस्मों के बनाने की सरल विधियां भी मौजूद हैं। इसका आकार भी पहले भाग जितना ही होगा। मूल्य सुन्दर सुनहरी जिल्द ३) रु०

मिलने का पता—

प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी लिमिटिड,

अमृतसर।

हिज़हाईनेस महाराजा योगेन्द्रसिंह बहादुर



(नालागढ़ नरेश)

भारती प्रिंटिंग प्रेस, लाहौर

समर्पण

मैं इस वैद्यक चिकित्सा पद्धति रूपी पुष्पाञ्जलि

❀ को ❀

प्राचीन आर्य्य धर्म्म, आर्य्य संस्कृति एवं

आर्य्य चिकित्सा प्रणाली के

अनन्य भक्त

जिन्होंने जन्मकाल से ७० वर्ष की आयु पर्य्यन्त भयङ्कर से भयङ्कर रोग ग्रस्त होने पर भी विदेशी चिकित्सा प्रणाली तथा विदेशी औषधी का आश्रय नहीं लिया,

उन राजपूत कुल कमल दिवाकर

अटल प्रतापी नालागढ़ नरेश

श्रीमान् महाराजा **योगेन्द्रसिंह** महोदय के पवित्र कर कमलों में सादर समर्पण करता हूं।

कृष्णदयाल

प्राक्कथन

आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति रूपी जटिल समस्या की पूर्ति का साहस चांद को छूने के समान है। सुदूर अतीत काल में लिखे गये निदान मिश्रित हमारे चिकित्सा ग्रन्थों में एक ही रोग पर क्वाथ, चूर्ण, गुटिका, अवलेह, आसव, तैल, घृत, तथा रस रसायनादि अनेक प्रयोगों को देख कर एक चिकित्सक भूल भुलय्यां में पड़ जाता है। वह इस बात का निर्णय करने में असमर्थ होता है, कि मुझे अपने रोगी के लिये इन में से कौन सा प्रयोग व्यवहार कराना चाहिये। रोग तथा रोगी की किस अवस्थामें क्वाथ, चूर्ण तथा रस रसायन व्यवहार किया जाना चाहिये और गुटिका, अवलेह तथा घृत तैल किस दशा में। उस के आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रहती जब वह ग्रन्थकार की लेखनी से एक प्रयोग की गुणावली को पढ़ता है, जिस में कि एक औषधि का गुण वर्णन करते हुए ग्रन्थकार महोदय अथवा प्रयोग निर्माता महात्मा ने वर्तमान काल के बड़े से बड़े विज्ञापन बाजों को भी मात कर दिया है। उदाहरण के तौर पर ज्वराधिकारोक्त सुदर्शन चूर्ण, और प्रमेहाधिकारोक्त चन्द्रप्रभा को ही देखिये। सुदर्शन की गुणावली में समस्त ज्वरों के अतिरिक्त राजयक्ष्मा तक हरने वाला वर्णन किया गया है, और चन्द्रप्रभा को तो सर्व रोग नाशक सिद्ध कर दिया है, हालांकि अनुभव इस के बिल्कुल विपरीत सिद्ध हो रहा है। विषम ज्वर तथा कफपित्त ज्वर के अतिरिक्त सन्निपात अथवा यक्ष्माश्रित ज्वरमें सुदर्शनचूर्ण व्यवहार किया हुआ लाभ के स्थान में हानि करता देखा गया है, अथवा कोई लाभ नहीं करता, और चन्द्रप्रभा को कफज प्रमेहों के सिवाय यदि भूल से अथवा इस फलस्तुति पर मुग्ध होकर, किसी अन्य रोग अथवा पित्त प्रमेह पर जब कभी व्यवहार किया गया, सफलता कोसों दूर भाग गई। पाठक ! वास्तव में यह गुरु-गम्य विषय है। इस के अतिरिक्त एक चिकित्सक के सामने बड़ी भारी कठिनाई उस समय उपस्थित होती है, जब वह रस चिकित्सा में प्रवृत्त होता है। वह नहीं जानता कि ज्वरोक्त रसों में किस विधि से बनी हुई लोहादि भस्में प्रयुक्त होनी चाहियें और अतिसार, ग्रहणी, यक्ष्मा, कास, तथा प्रमेहादि रोगों में किस प्रकार की। मुझे भारत भर की बड़ी से बड़ी फार्मेसियों का अनुभव है, कि वह समस्त रसों में हिंगुल तथा त्रिफला योग से बनी हुई लोह भस्म व्यवहार करते हैं और मैंने इस कठिनाई को

भारत के बड़े से बड़े विद्वान वैद्यों के सामने रखा जिसका उत्तर मुझे मौन के सिवाय कुछ नहीं मिला।

पाठक प्रश्न कर सकते हैं कि क्या आयुर्वेद की वर्तमान चिकित्सा पद्धति दूषित अथवा अशुद्ध है। इसका उत्तर यह है कि जिस काल में हमारे चिकित्सा ग्रन्थों की रचना हुई थी, उस समय की पाठ्य प्रणाली और वर्तमान काल की पाठ्य विधि में आकाश पाताल का अन्तर है। प्राचीन काल में सर्व प्रथम आयुर्वेद पढ़ने वाले विद्यार्थी के शरीर, मन, विद्या, बुद्धि, ज्ञान और समस्त अंग प्रत्यंगोंकी परीक्षा करनेके पश्चात् एक गुरु उसे आयुर्वेद पढ़ने का अधिकारी समझ अपने आश्रम में स्थान देता था, देखो चरक इस विषय में क्या कहता है—

आयुर्वेद का विद्यार्थी कैसा हो?

अध्यापने कृतबुद्धिराचार्यः शिष्यमेवादितः परीक्षेत। तद्यथा प्रशान्तमार्यं प्रकृतिमक्षुद्र कर्माणमृजु चक्षुर्मुख नासावंश तनुरक्त विशद जिह्वमविकृत दन्तौष्ठममिण्मिणं धृतिमन्तमनहंकृतं मेधाविनं वितर्क स्मृति सम्पन्नमुदार सत्वं तद्विद्य कुलजमथवाताद्विद्यवृत्तं तत्वाभि निवेशिनमव्यङ्गमव्यापन्नेन्द्रिय निभृतमनुद्धतवेशमव्यसनिनमर्थ तत्त्व भावकमकोपनं शील शौचाचारानुराग दाक्ष्य प्रादाक्षिण्योपपन्न मध्ययनाभि काममर्थ विज्ञाने कर्म दर्शने चानन्य कार्यमलुब्धमनलसं सर्व भूत हितैषिणमाचार्य सर्वानुशिष्टि प्रतिपत्ति करमनुरक्तमेव गुण समुदितमध्याप्यमेवाहुः।

चरक विमान अ० ८ श्लो० ६

अर्थात् आचार्य आयुर्वेद अध्यापनारम्भ करने से पूर्व शिष्य की परीक्षा करे और निम्न लिखित गुणों से युक्त शिष्य को ही आयुर्वेद पढ़ावे। शान्त श्रेष्ट स्वभाव, नीच कर्मों से दूर भागने वाले, जिस की आंखें मुख और नासावंश सीधे हों, जिस की जिह्वा पतली और लाल तथा मल आदि के आवरण और पिच्छलता से रहित हो, जिसके दांतों में कोई विकार न हो, होंठ मोटे न हों और नाक से मिन्मिन बोलने वाला न हो, धैर्य शील, अहंकार रहित, मेधावी और तर्क शक्ति तथा स्मरण शक्ति से युक्त, उदार चित्त, जो

वैद्यक शास्त्र के जानने वाले कुल में उत्पन्न हुआ हो, अर्थात् आयुर्वेदज्ञों के कुल में पैदा हुआ हो अथवा जिसका आचार स्वभाव आयुर्वेदज्ञों जैसा हो, तत्व ज्ञान में तत्पर जिसके सब अङ्ग ठीक हों (कोई अङ्ग भङ्ग न हो) सब इन्द्रियां स्वस्थ हों, विनयशील और जिसका उद्धत वेश न हो, अर्थात् चपल, चंचल और दुराचारी मनुष्यों का सा वेश न हो, किन्तु सभ्य पुरुषों जैसा पहरान रखने वाला हो, जो वस्तु तत्व को गम्भीरता से सोचने विचारने का स्वभाव रखता हो, क्रोध रहित, जूआ पर स्त्री गमन मद्यपानादि व्यसनों से दूर हो, सच्चरित्र वाह्य एवं आभ्यन्तर शुद्धि आचार अनुराग चातुर्य तथा सर्व अनुकूलता इन गुणों से युक्त हो, आयुर्वेद शास्त्र पढ़ने की हृदय से इच्छा रखता हो, शास्त्र के अर्थ को जानने और कर्म दर्शनमें एकाग्र चित्त हो, लोभी और आलसी न हो, सम्पूर्ण प्राणियों के हित को चाहने वाले, आचार्यके सब उपदेशों वा आज्ञाओं का पालन करने वाले तथा गुरु भक्त शिष्य को आयुर्वेद पढ़ाना चाहिये।

इस प्रकार सामुद्रिक शास्त्र तथा मनोविज्ञान वेत्ता (Psychologist) गुरु जहां सर्व प्रकारसे परीक्षा करके एक विद्यार्थी को वर्षों की कठिन तपस्याके पश्चात् चिकित्सा कर्म का अधिकारी जान इस महान् उत्तर दायित्व पूर्ण कार्य में प्रवृत्त होने की आज्ञा दिया करते थे और शिष्य भी जहां वर्षों गुरु महाराज की आज्ञानुसार तपस्वी जीवन व्यतीत करता हुआ पठन पाठन के साथ२ आयुर्वेद का क्रियात्मिक ज्ञान औषधि निर्माण तथा प्रयोगादि में निपुण होकर फिर कहीं चिकित्सा जैसे महान् उत्तर दायित्व पूर्ण कार्य में गुरु महाराज की आज्ञा ले कर प्रवृत्त होता था, वहां आज उस से बिल्कुल भिन्न अवस्था है। प्रथम तो आपको बहुत थोड़े ऐसे वैद्य मिलेंगे जिन्होंने गुरुमुख से सम्पूर्ण आयुर्वेद पढ़ा हो, हालांकि शास्त्र स्पष्ट कह रहा है।

गुरोराधीताऽखिल वैद्य विद्या पीयूषपाणिः

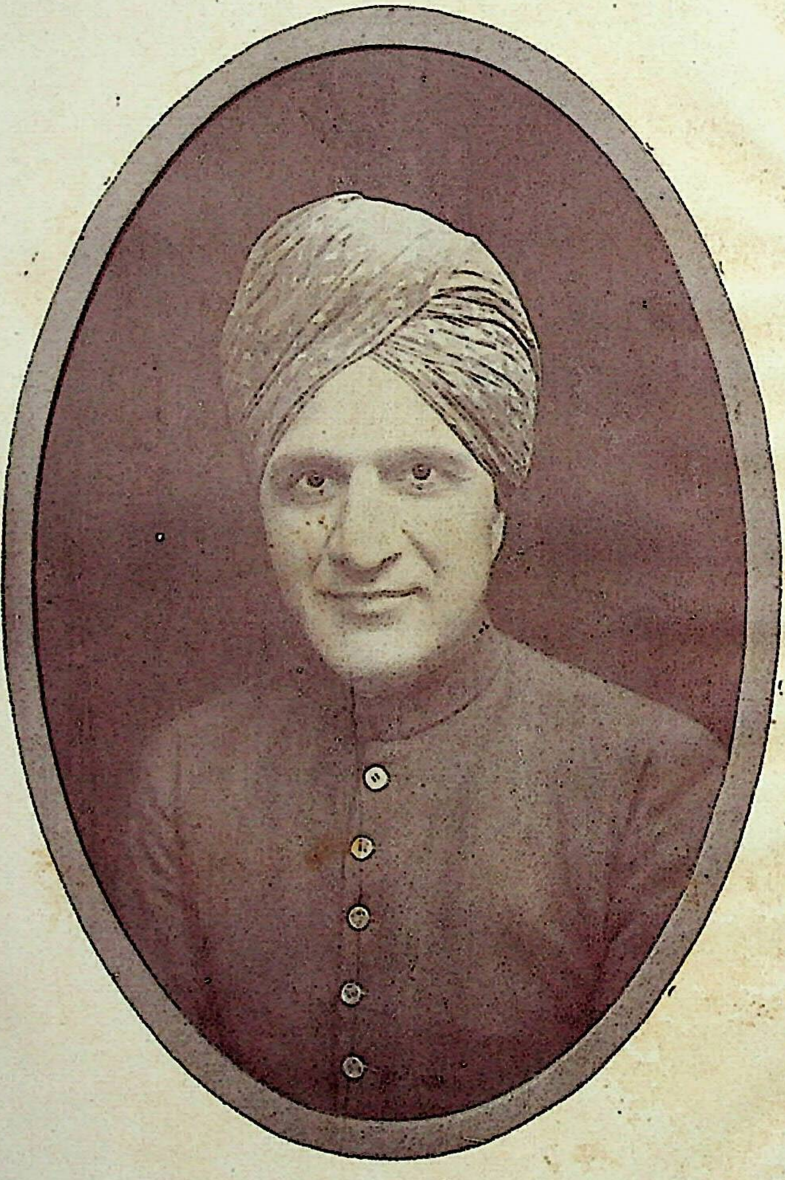
अर्थात्, सम्पूर्ण आयुर्वेदिक विद्या जिसने गुरुमुख से पढ़ी हो, पीयूष पाणि हो, समस्त आयुर्वेद सम्बन्धि क्रियाओं में कुशल हो, गतस्पृहा (लालची न हो) धैर्य्यशील और समस्त रोगियों पर अपने बन्धुवत कृपा दृष्टि रखने वाला ही वैद्य बनने अथवा कहलाने के योग्य है। परन्तु इसके विपरीत वर्तमान काल में क्या अवस्था है, जिसको कहीं से चार टोटके मिल गये अथवा एक आध ग्रन्थ पढ़ लिया वही वैद्यराज, आयुर्वेदाचार्य, वैद्यशास्त्री बन बैठता है। जहां कहीं विद्यालयों अथवा कालिजों में क्रम पूर्वक आयुर्वेद के

पठन पाठन का प्रबन्ध भी है, वहां चरक के उपरोक्त वाक्य को भूल कर विना परीक्षा विद्यार्थियोंको भरती कर लिया जाता है, न वह प्राचीन काल जैसे गुरु हैं,न ही शिष्य। शिष्योंकी सर्वदा यह धारणा रहती है कि कब चार वर्ष पूरे हों और कब हम वैद्यराज बन कर संसार को ठगने का कार्य्यारम्भ करें, शिष्य इसलिए आयुर्वेद का पठन पाठन नहीं करता कि मैं ज्ञान उपलब्ध कर संसार की सेवा करूंगा, बल्कि वह तो पोथियों का रटन इसलिए करता है कि मैं परीक्षोत्तीर्ण होनेसे न रह जाऊं। वर्तमान कालके विद्यार्थीका ज्ञान परीक्षा काल तक ही सीमित है। वह नहीं समझता कि मुझे इस ज्ञान से आयु भर संसार का कल्याण करना है। वह दो चार वर्ष के पठन पाठन को परीक्षा पत्रों पर वमन कर अपने आप को कृतकृत्य समझता है। दूसरी ओर वर्तमान कॉलिजों के गुरु (प्रोफ़ैसर) महोदयों का क्या हाल है, वह प्रायः केवल अक्षरों के धनी होते हैं, परन्तु क्रियात्मिक ज्ञान से शून्य। वह प्रायः आयुर्वेद के मर्म से नितान्त अनभिज्ञ होते हैं। ऐसी अवस्था में प्राचीन चिकित्सा पद्धति पूर्ण होते हुए भी हमारे लिए अपूर्ण है और इन ही जटिल समस्याओं को अनुभव करते हुए मैंने इस ग्रन्थ के प्रकाशनका प्रयत्न किया है।

मैं अपने प्रयत्न में कहां तक सफल हुआ हूं, इस बात की साक्षी पुस्तक के पन्ने स्वयं देंगे। मैंने अपनी ओर से प्रयत्न किया है कि पुस्तक वैद्य समाज तथा सर्व साधारणके लिये एकसी ही उपयोगी हो, इस पुस्तक में प्रायःशास्त्रीय योग ही दिये गये हैं, परन्तु हां मैंने उनको बाग के माली की भांति प्राचीन चिकित्सा पद्धति रूपी उद्यान में से उत्तम २ प्रयोग रूपी पुष्पों को चयन कर गुलदस्ते के रूप में प्रस्तुत करने का यत्न किया है। रोगकी विशेष२ अवस्थानुसार पूर्व, मध्य, अन्त तथा मुक्त दशा में किन योगों को किस प्रकार प्रयोग करना चाहिये इसका यथोचित उल्लेख कर दिया है। चूर्ण, रस,भस्म, क्वाथ, गुटिका,आसवावलेह तथा घृत तैलादि रोगकी किन हालतोंमें प्रयोग करने चाहियें इस ओर विशेष ध्यान दिया गया है। रसोंमें पड़ने वाली भस्में किन२ विधियों से बनी हुई होनी चाहियें इस पर भी विशेष प्रकाश डाला गया है। फिर भी मानवी काम त्रुटियों से रहित नहीं हो सकता, अतः इस में जो त्रुटियां रह गई हों सज्जनों की सूचना पर अगले संस्करण में दूर करने का यत्न करूंगा।

आयुर्वेद और वैद्य समाज का तुच्छ सेवक—

कृष्णदयाल



Raj Vaidya, Krishan Dayal,
VAID SHASTRI.

ओ३म्

श्री धन्वन्तरये नमः

चिकित्सा पद्धति

प्रणम्य सच्चिदानन्दं, प्राणिनां दुःखनाशकम् ।
ज्ञानप्रदं गुरुं देवं प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः ॥
बोधहेतुं तुं छात्राणां, बुधानां मोदहेतवे ।
आर्षरीत्यनुसारेण, नाना तन्त्राण्युद्वीक्ष्य च ॥
मया कृष्णदयालेन, चिकित्सा तत्व-पद्धति ।
तथामृतसरस्थेन, लिख्यते शास्त्र तत्वतः ॥

वैद्य के लक्षण

तत्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा-स्वयंकृतिः ।
लघुहस्तः शुचि शूरः सर्वोपस्कृत भेषजः ॥
प्रत्युत्पन्नमतिर्धीमान् व्यवसायी प्रियंवदः ।
सत्यधर्मपरो यश्च स भिषक्पदमश्नुते ॥
न जन्तु कश्चिदमरः पृथिव्यां जायते क्वचित् ।
अतो मृत्युरवार्यः स्यात्किन्तु रोगान्निवारयेत् ॥

जो महानुभाव सदाचारी, धर्मपरायण, सत्यप्रिय, प्रिय वचन बोलने वाले और बुद्धिमान् हों; जिन्होंने आयुर्वेदमर्मज्ञ और शास्त्रज्ञ गुरुओं की सेवा में रह कर उन के अमृत रूपी उपदेशों द्वारा आयुर्वेद शास्त्र का मर्म अर्थात् निदान, चिकित्सा और औषधि निर्माण (औषधियां बनाने की रीति) आदि अच्छी तरह सीख लिये हों और जो अपने आप भी चिकित्सा में

प्रत्युत्पन्नमति (अवस्थानुसार औषधि का प्रयोग करने वाले), लघुहस्त (नाड़ी परीक्षा आदि में चतुर और सिद्धहस्त) हों तथा जिन्होंने चिकित्सा सम्बन्धि सामान का अपने पास संग्रह किया हो; उन को ही असली वैद्य कहना चाहिये।

संसार में कोई जीव अमर नहीं है, मृत्यु अनिवार्य है, जो पैदा हुआ है उसने ज़रूर मरना है। मृत्यु को कोई नहीं रोक सकता, वैद्य का केवल यही काम है कि रोग का ठीक तरह निर्णय करके चिकित्सापद्धति के अनुसार उसकी चिकित्सा करे और रोग को दूर करने का यत्न करे। कहा है—

व्याधेस्तत्व परिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः।
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यो प्रभुरायुषः॥

(अर्थात्) व्याधि के तत्वको भली भान्ति समझ कर रोग ग्रस्त मनुष्यको होने वाली वेदना की शान्ति का उपाय करना अथवा कष्ट तथा पीड़ादि दूर करना यही वैद्य का वैद्यत्व (वैद्यपना) है, वैद्य आयु का स्वामी नहीं, अर्थात् वैद्य आयु को बढ़ा घटा नहीं सकता।

रोग और आरोग्यावस्था

रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमारोग्यता।

दोषों की विषमता (न्यूनाधिकता) होने का नाम रोग और समता अर्थात् दोषों के समान होने का नाम आरोग्यता (तन्दुरुस्ती) है।

पीड़ा भेद से रोग के दो भेद

निजागन्तु विभागेन तत्र रोगाः द्विधास्मृताः॥

रोग दो प्रकार के हैं:—

१. निज अर्थात् दोषज जिस में शरीरस्थ दोष (वात, कफ, पित्त) कुपित हो कर व्यथा उत्पन्न करते हैं।

२. आगन्तुक वह रोग हैं जिन में प्रथम किन्हीं बाह्य कारणों (अभिघात, चोट आदि) से शरीर में पीड़ा पैदा होती है और उसके बाद शरीरस्थ दोष वात, पित्त और कफ कुपित हो जाते हैं।

विकृतिभेद से रोग के दो भेद

विकृति भेद से रोग के दो भेद हैं:—

१. कायिकः—कायिक वह रोग हैं जो मिथ्याहार विहार आदि कारणों से शरीर के वात, पित्त आदि दोषों में न्यूनाधिकता होने से पैदा होते हैं।

२. मानसिकः—मानसिक उन रोगों का नाम है जिन में पहिले मन में किसी तरह का विकार पैदा होता और उस के कारण दोष कुपित होकर शरीर और मन में रोग पैदा कर देते हैं।

शरीरस्थ दोषों के भेद

. वायुपित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः।

मनुष्य के शरीर में वात, पित्त और कफ यह तीनों दोष व्याप्त हैं इन पर ही मानव शरीर का आधार है।

मनस्थ दोष के दो भेद

रजस्तमश्च मनसो द्वौ च दोषा वुदाहृतौ।

रजोगुण और तमोगुण की न्यूनाधिकता के कारण मन में विकृति होने के उपरान्त वातादि दोष कुपित होकर रोग उत्पन्न करते हैं।

शरीरस्थ वातादि दोषों के तीन नाम

शास्त्रों में शरीर में विद्यमान वात, पित्त, कफ की तीन संज्ञा मानी हैं—
१. धातु, २. दोष, ३. मल।

वायुः पित्तं कफो दोषाः धातवश्च मलास्तथा।
तत्रापि पञ्चधा ख्याताः प्रत्येकं देहधारणात्॥
रसासृङ् मांस मेदोऽस्थि मज्जा शुक्राणि सप्त धातवः।
सप्त दूष्यो मलाः मूत्र—शकृत्स्वेदादयोऽपि च॥

शरीरस्थ वात, पित्त, कफ स्वाभाविक मात्रा में रह कर रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र इन सातों धातुओं का पोषण करते और शरीर को भी पुष्ट करते हैं, इसलिए इनका नाम धातु है। इसी प्रकार यह तीनों दोष विकृत होकर रसादि धातुओं को दूषित करते हैं, इसलिए वात, पित्त, कफ को दोष कहा जाता है। विष्ठा, मूत्र और पसीने आदि के रूप में ही क्योंकि दोष (वात, पित्त, कफ) शरीर से निकलते हैं इसलिए इन को मल भी कहते हैं।

क्रिया भेद से वात, पित्त, कफ इन तीनों के पांच भेद हैं। इन की

अधिक व्याख्या अन्य बड़े ग्रन्थों में मिल सकती है । विस्तार भय से यहां आवश्यकता नहीं समझी गई ।

दोषों के लक्षण

तत्र रूक्षो लघुः शीतः खरः सूक्ष्मश्चलोऽनिलः ।
पित्तं सस्नेह तीक्ष्णोष्णं लघु विस्रं सरं द्रवम् ।
स्निग्धः शीतो गुरुर्मन्दः श्लक्ष्णो मृदुस्थिरो कफः ॥

१. वायु के गुण—रूक्ष, लघु, शीतल, खर (तीक्ष्ण) तथा सूक्ष्म ।
२. पित्त के गुण—स्नेह, तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, विस्र (दुर्गन्ध वाला) द्रव, सर ।
३. कफ के गुण—चिकना, शीतल, भारी, मन्द, मृदु और स्थिर ।

दोषों के प्रधान स्थान

ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधो मूर्द्धोर्ध्वसंश्रयाः ।

यद्यपि यह तीनों दोष सारे शरीर में व्यापक हैं तथापि नाभि से नीचे उदर में वायु, नाभि से हृदय तक पित्त और इससे ऊपर कफ का विशेष स्थान माना जाता है ।

विशेष अवस्था में दोषों की प्रबलता

वयोऽहो रात्रि भुक्तानां तेऽन्तमध्यादिगा क्रमात् ॥

यद्यपि वातादि दोष हर समय और सब अवस्थाओं में अपना कार्य करते ही रहते हैं परन्तु आयु, दिन, रात्रि और भोजन की पाकावस्था में क्रम से प्रारम्भ, मध्य और अन्त में अपना कार्य्य विशेष वेग से करते हैं । देखो निम्न चक्र :—

कफ	पित्त	वात
बालावस्था	तरुणावस्था	वृद्धावस्था
प्रातः	मध्याह्न	सायं
भोजन खाने पर	भोजन पचते समय	भोजन पचजाने पर

यह सृष्टि नियम के अनुकूल है, प्रातः काल जो अवस्था संसार में समष्टि रूप से होती है, वही अवस्था व्यष्टि रूप से मनुष्य शरीर में बालकपन में होती है। बच्चे में इस नियम के अनुसार कफ प्रधान रहता है और तरुणावस्था में दोपहर की भांति पित्त प्रधान रहता है और वृद्धावस्था में सायंकाल की तरह वायु प्रधान रहता है। इस प्रकार भोजन खाने पर कफ, पाक समय पित्त और पाक होने पर वायु प्रधान होता है। वैदिक मुनियों ने मानव देह में वातादि दोषों को इसी सृष्टि नियमानुसार निश्चय किया है।

दोषों की वृद्धि और ह्रास का कारण

वृद्धि समानैर्सर्वेषां विपरीतैर्विपर्ययः।

वातादि दोषोंके गुणोंके समान गुण वाले द्रव्योंका उपयोग करने से दोषों की वृद्धि और विपरीत गुणों वाले द्रव्यों का प्रयोग करने से वातादि दोषों की कमी होती है।

दोषज रोगों के भेद

संसर्गः संन्निपातश्च तद्द्वाद्धित्त्रय कोपतः॥

वातादि दोषों की वृद्धि और कमी के कारण सात प्रकार के रोग पैदा होते हैं—

१. वातज	४. वात पित्त जनित
२. पित्तज	५. वातकफ जनित
३. कफज	६. पित्तकफ जनित

७. सान्निपातज

वातज वह रोग हैं जो केवल शरीरस्थ वायु की न्यूनाधिकता से उत्पन्न होते हैं, इसी तरह पित्तज और कफज रोग भी समझने चाहियें।

वातपित्तज उन रोगों का नाम है जो वात और पित्त के संसर्ग से होते हैं। इसी प्रकार वात-कफ, पित्त-कफ से भिन्न २ रोग होते हैं। सान्निपातज में तीनों ही दोष विषम होकर रोग उत्पन्न करते हैं।

प्रकृति के लक्षण

शुक्रासृग्गर्भिणी भोज्य चेष्टागर्भाशयान्तरे।
यः स्याद्दोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिः सप्तधोदिता॥

मैथुन द्वारा गर्भाशय में स्त्री के रज और पुरुष के वीर्य के संयोग से गर्भ होता है। गर्भावस्था में स्त्री के भोजन, आहार विहार और चेष्टा आदि का गर्भ में स्थित बालक पर बहुत प्रभाव होता है और उसी के अनुसार प्राणियों की प्रकृति होती है। यह प्रकृति सात प्रकार की है।

१. वात प्रकृति
२. पित्त प्रकृति
३. कफ प्रकृति
४. वात पित्त प्रकृति
५. वात कफ प्रकृति
६. पित्त कफ प्रकृति
७. सन्निपातज प्रकृति

वातादि दोषों की न्यूनाधिक मात्रा के कारण ही प्रकृति में यह भेद हो जाते हैं।

वात प्रकृति के लक्षण

अल्पकेशः कृशो रूक्षः वाचालश्चलमानसः।
आकाशचारी स्वप्नेषु वात प्रकृतिको नरः॥

वातप्रकृति वाले मनुष्य के बाल थोड़े, शरीर कृश और रूखा, चित्त चञ्चल होता और वह बातें बहुत करता है। सोते समय स्वप्न में वह आकाश में उड़ता है।

पित्त प्रकृति वाले के लक्षण

अकाले पलितैर्व्याप्तो धीमान् स्वेदी च रोषणः।
स्वप्नेषु ज्योतिषां द्रष्टा पित्तप्रकृतिको नरः॥

पित्त प्रकृति वाले पुरुषके बाल बिना समय ही पक जाते, पसीना अधिक आता, क्रोधी और बुद्धिमान् होता है। वह स्वप्न में नक्षत्रों या अग्नि को देखता है।

कफ प्रकृति वाले के लक्षण

गम्भीर बुद्धि स्थूलांगः स्निग्ध केशो महाबलः।
स्वप्ने जलाशया लोकी श्लेष्मप्रकृतिको नरः॥

कफ प्रकृति वाले मनुष्य की बुद्धि गम्भीर, शरीर मोटा, बाल घने

और चिकने तथा पराक्रम अधिक होता है। वह प्रायः स्वप्न में जलाशयों का दर्शन करता है।

वातादि दोष पाकविधि

वातिकः सप्तरात्रेण दश रात्रेण पैत्तिकः।
श्लैष्मिको द्वादशरात्रेण ज्वरः पाकमुपैति हि॥

वात ज्वर ७ दिन में, पित्त ज्वर १० दिन में और कफ ज्वर १२ दिन में स्वयं ही पच जाता है।

देश भेद

जांगलं वातभूयिष्ठमनूपं तु कफोल्वणम्।
साधारणं समबलं त्रिधा भूदेशमाचरेत्॥

जांगल, आनूप और साधारण तीन प्रकार के देश होते हैं। जिस देश की पृथिवी ऊंची हो, वृक्षादि बहुत हों और जहां जल बहुत कम हो, उस देश का नाम जांगल देश है। यह प्रायः वातप्रधान होता है और इस में उत्पन्न जीवों और द्रव्यों की प्रकृति वातप्रधान होती है।

जिस देश की पृथिवी अधिक तर, नीची और घने वृक्षों वाली हो, जहां पानी जगह २ पर हो उस देश का नाम आनूप है। इस में उत्पन्न प्राणियों और द्रव्यों की प्रकृति प्रायः कफप्रधान होती है।

जिस देश में जांगल और आनूप दोनों के लक्षण मिलते हों उसका नाम साधारण देश है। इस में गर्मी, शीत, वर्षा आदि समान होते हैं और दोष भी समान होते हैं, किसी दोष का प्राधान्य नहीं होता।

द्रव्यों के गुण

गुरुर्लघुः स्निग्धरूक्षौ तीक्ष्णः श्लक्ष्णः स्थिरः सरः।
पिच्छिलो विशदः शीत उष्णश्च मृदुकर्कशौ॥
स्थूलः सूक्ष्मो द्रवः शुष्कः आशुर्मन्दः स्मृताः गुणाः॥

द्रव्यों में २० प्रकार के गुण होते हैं जिन के नाम निम्न लिखित हैं—

गुरु	उष्ण	सान्द्र	सर
लघु	स्निग्ध	द्रव	सूक्ष्म

मंद	रूक्ष	मृदु	स्थूल
तीक्ष्ण	श्लक्ष्ण	कठिन	विशद
हिम	खर	स्थिर	पिच्छिल

वैद्य को उचित है कि द्रव्य के गुणों को भली प्रकार जाने।

रस संख्या

रसाः स्वाद्वम्ललवणा तिक्तोष्णकषायकाः ।
षड् द्रव्यमाश्रितास्ते तु यथा पूर्वं बलावहाः ॥

द्रव्यों में छः प्रकार के रस होते हैं जो निम्न हैं:—

मधुर	लवण	कषाय
अम्ल	तिक्त	कटु

इन में से क्रमशः एक से एक बलवान है अर्थात् मधुर रस सब से अधिक बलवान और शरीर का पोषक है और शेष रस क्रम से उससे कमज़ोर हैं।

रसोत्पत्ति क्रम

धराम्बुक्ष्मानलजलज्वलनाकाशमारुतैः ।
वाय्वाग्नि क्ष्मानिलैभूतद्वयैः रसंभवः क्रमात् ॥

रसों की उत्पत्ति में क्रम से भूत निम्न प्रकार से कारण होते हैं— पृथिवी और जल से मधुर रस, आकाश और वायु से तीक्ष्ण (कटु) पृथिवी और अग्नि से अम्ल (खट्टा) वायु और अग्नि से तिक्त, जल और अग्नि से क्षार, पृथिवी और वायु से कषाय।

इस प्रकार इन छः रसों की उत्पत्ति समझनी चाहिये।

वीर्य भेद से द्रव्यों के भेद

वीर्य्य भेद से द्रव्यों के दो भेद हैं—

१. उष्ण वीर्य   २. शीत वीर्य।

कार्य भेद से द्रव्यों के तीन भेद

शमनं कोपनं स्वस्थहितं द्रव्यमिति त्रिधा ॥

कार्य भेद से द्रव्य तीन प्रकार के माने जाते हैं—

१. जिन द्रव्यों के प्रयोग से शरीरस्थ धातु कुपित न हों और न दोष कुपित हों बल्कि कुपित दोष सामान्यावस्था में आकर रोग को शमन करें उनको 'शमनद्रव्य' कहा जाता है।

२. जो द्रव्य अपने प्रभाव से शरीरस्थ दोषों को कुपित करके रोग उत्पन्न करते हैं उनका नाम 'कोपनद्रव्य' है।

३. जो द्रव्य अपने प्रभाव से न तो दोषों को कुपित करते और न उनकी विकृति को नष्ट करते हैं, अपितु शरीरस्थ धातुओं को समान अवस्था में रखते हैं उन को 'स्वस्थहित द्रव्य' कहा जाता है।

विपाक के भेद

त्रिधा विपाको द्रव्यस्य स्वादम्लकटुकात्मकः।

द्रव्यों का शरीर में तीन प्रकार का विपाक होता है—

१. मधुर २. अम्ल ३. कटु

जाठराग्नि के चार भेद

तैर्भवेद्विषमस्तीक्ष्णो मन्दश्चाग्निः समैः समः॥

दोषों की न्यूनाधिकता से मनुष्यों की जाठराग्नि ४ प्रकार की होती है। वात की अधिकता से विषम, पित्त से तीक्ष्ण, कफ से मन्द और तीनों दोषों की सम अवस्था में समाग्नि होती है।

कोष्ठ के भेद

कोष्ठो क्रूरो मृदुर्मध्यः

वातादि दोषों के क्रम से कोष्ठ ३ प्रकार के समझने चाहियें—

१ क्रूरकोष्ठ—वातप्रकृति का कोठा प्रायः क्रूर होता है, ऐसे मनुष्य को तीव्र गुण वाली औषधि देने से विरेचन होता है इसलिये इन को तीव्र गुण औषधि दें।

२. मृदुकोष्ठ—पित्त प्रकृति वाले आदमी का कोठा मृदुकोष्ठ कहा जाता है, इनको साधारण विरेचक औषधियों से ही दस्त हो जाते हैं।

३. मध्य कोष्ठ—कफ प्रकृति से मध्यकोष्ठ होता है। इन मनुष्यों को न तो बहुत तीक्ष्ण औषधि देनी चाहिये और न बहुत ही साधारण औषधि से विरेचन देना चाहिये। इन के लिये मध्यवीर्य विरेचन की प्रायः आवश्यकता होती है।

कोष्ठ का निश्चय कर के ही शोधनादि औषधियां देने से शीघ्र लाभ होता है इसलिये प्रथम कोष्ठ का निर्णय आवश्यक है।

वात, पित्त तथा कफनाशक मुख्य प्रयोग

शरीरजानां दोषाणां क्रमेण परमौषधम्।
वस्तिर्विरेको वमनं तथा तैलं घृतं मधु ॥

शरीर में उत्पन्न होने वाले दोषों का प्रधान उपचार वस्ति, विरेचन, वमन तथा तैल, घृत और मधु हैं। वातरोग में वस्तिकर्म, पित्त में विरेचन और कफरोगों में वमन (क़ै) का प्रयोग करना चाहिये; इसी प्रकार वातरोगों में तैल, पित्तरोग में घृत और कफ रोगों में मधु देना चाहिये।

मनोदोष की औषधि

धी धैर्य्यात्मादि विज्ञानं मनोदोषौषधं परम्।

कहा जा चुका है कि रजोगुण और तमोगुण के कारण मानसिक व्याधियां पैदा होती हैं, उन के दूर करने के लिए ऐसे प्रयोग करने चाहियें जिन से मन की शुद्धि हो। विचार, धैर्य धारण और आत्मज्ञान प्राप्त करने पर तमोगुण का प्रभाव नष्ट होता तथा मानसिक व्याधियां शान्त होती हैं।

योज्य द्रव्य विज्ञान

शुष्कं नवीनं यद्द्रव्यं योज्यं सकल कर्मसु।
आर्द्रं च द्विगुणं युंज्यादेष सर्वत्र निश्चयः ॥

औषधियों में प्रयोग के लिए द्रव्य ताज़े, सूखे हुए और मान के अनुसार होने चाहियें, किन्तु यदि किसी योग में गीली औषधि लेनी हो तो वहां शास्त्र में जितनी औषधि कही गई हो उस से दोगुनी ही डालनी चाहिये। ऐसा ही सब जगह नियम है।

जीर्णाजीर्ण द्रव्य विज्ञान

नवान्येव हि योज्यानि द्रव्याण्यखिलकर्म्मसु ।
विना विडंगकृष्णाभ्यां गुड़धान्याज्यमाक्षिकैः ॥

सब औशधियों में नवीन द्रव्यों का ही प्रयोग करना चाहिये, परन्तु जहां वायविडंग, पीपल, गजपीपल, गुड़, अन्न, घृत और मधु औषधि में डलने हों वहां यह चीज़ें पुरानी ही लेनी चाहियें। ध्यान रहे पुरानी औषधि का यह अभिप्राय नहीं है कि वह गली सड़ी या किसी अन्य दोष के कारण गुणहीन हो गई हो। यह औपधियां एक साल तक पुरानी हों तो इन का प्रयोग करना चाहिये, बहुत अधिक पुरानी डालनी आवश्यक नहीं।

आर्द्र द्रव्य प्रयोग

गुडूची कुटजो वासा कूष्माण्डं च शतावरी ।
अश्वगन्धा सहचरी शतपुष्पा प्रसारणी ॥
प्रयोक्तव्याः सदैवार्द्रा द्विगुणाः नैव कारयेत् ।

गिलोय, कुटज (कुड़ा), बांसा, पेठा, शतावर, अश्वगन्धा (असगन्ध) पियाबांसा और सौंफ यह द्रव्य सदा गीले लेने चाहियें परन्तु उपरोक्त सिद्धान्त के अनुसार इन को दोगुना न प्रयोग करें।

पुनरुक्त द्रव्य का मान

एकमप्यौषधं योगे यस्मिन् यत्पुनरुच्यते ।
मानतो द्विगुणं प्रोक्तं तद्द्रव्यं तत्वदर्शिभिः ॥

शास्त्र में यदि एक प्रयोग में ही किसी औषधि को दोवार लिखा गया हो तो उस का परिमाण प्रत्येक द्रव्य से दोगुना लेना चाहिये।

द्रव्य निषेध

गुणहीनं भवेद्वर्षादूर्ध्वं तद्रूपमौषधम् ।
मासद्वयात्तथा चूर्णं हीनवीर्यत्वमाप्नुयात् ॥

हीनत्वं गुटिकालेहौ लभेते वत्सरात्परम् ।
हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकास्तथा ॥
औषधयो लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्या वत्सरात्परम् ।
पुराणाः स्युर्गुणैर्युक्ता आसवा धातवो रसाः ॥

वन से एकत्र की हुई वनस्पतियां पड़ी रहने से एक वर्ष के बाद तेज और गुणहीन हो जाती हैं, चूर्ण दो महीने के बाद हीनवीर्य हो जाते हैं, एक वर्ष के बाद गुटिका और अवलेह तेजहीन हो जाते हैं और घृत तथा तैल यदि चार मास से अधिक पड़े रहें तो गुणहीन होते हैं । इसलिये इन हीनगुण तथा तेजहीन औषधियों का प्रयोग करना वर्जित है । जिन औषधियों का लघुपाक किया गया हो वह एक वर्ष बाद निर्वीर्य हो जाती हैं ।

आसव, अरिष्ट, धातु, भस्में और रस पुराने होने से हीनगुण नहीं होते । जिस प्रकार अन्य औषधियां पुरानी होने से हीन वीर्य हो जाती हैं, उस प्रकार यह चीजें पुरानी होने से तेजहीन नहीं होतीं अतः इनका निस्सन्देह प्रयोग किया जा सकता है ।

उक्तानुक्त द्रव्य

व्याधेरयुक्तं यद्द्रव्यं गणोक्तमपि तत्त्यजेत् ।
अनुक्तमपि युक्तं यत् युज्यते तत्र तद्बुधैः ॥

शास्त्र में प्रायः अनेक प्रकरणों में रोगों के लिए अनेक गण लिख दिए गये हैं, जैसे—किराताादि गण, ऋषभकादि गण आदि ।

रोग में चूर्ण, कषाय आदि की योजना करते हुए चिकित्सक को जो द्रव्य व्याधि के अनुकूल प्रतीत न हो उसको प्रयोग से निकाल दे और जो द्रव्य प्रयोग में डालना उचित समझे वह शास्त्रीय गण में न लिखा होने पर भी प्रयोग में सम्मिलित कर सकता है ।

द्रव्यों के अंग ग्रहण विधिः

अतिस्थूलजटा याः स्युस्तासां ग्राह्यस्त्वचो बुधैः ।
गृह्णीयात्सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् ।
न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः सारं स्याद्बीजकादितः ॥

तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात् त्रिफलादितः ।
धातक्यादेश्च पुष्पाणि स्नुह्यादेः क्षीरमाहरेत् ॥

जहां प्रयोग में बड़, पीपल आदि अति मोटे वृक्षों की जड़ लेने को लिखा गया हो, वहां जड़ की छाल लेनी चाहिये । जिन वनस्पतियों की जड़ सूक्ष्म हो उन की सम्पूर्ण जड़ डालें, कई लोगों का मत है कि उन सूक्ष्म औषधियों का पञ्चाङ्ग ही प्रयोग कर सकते हैं। बरगद आदि की छाल लेनी चाहिये और विजयसार, बबूल तथा खैर आदि का भीतरी भाग लें । तालीस आदि के पत्ते ग्रहण करें और आमला, हरड़ आदि के फलों का प्रयोग करें । इसी प्रकार धातकी आदि के फूल और थोहर आदि का दूध ही औषधियों में प्रयोग करना चाहिये ।

औषधि ग्रहण काल

शरद्यखिल कार्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम् ।
विरेक वमनार्थं च वसन्तान्ते समाहरेत् ॥

शरद् ऋतु में सम्पूर्ण औषधियां रस से पूर्ण होती हैं, इसलिये सम्पूर्ण कार्यों के लिये शरद् ऋतु में ही औषधियों का संग्रह करना चाहिये, विरेचन तथा वमन के लिये वसन्त ऋतु के अन्त में अर्थात् वैशाख मास में औषधि एकत्र करनी चाहियें ।

इन दोनों समयों में औषधियां रस से पूर्ण होती हैं इसलिए चिकित्सा में इन के प्रयोग से शीघ्र लाभ होता है ।

औषधि ग्रहण विधि

गृह्णीयात्तानि सुमनाः शुचिः प्रातः सुवासरे ।
आदित्यसंमुखो मौनी नमस्कृत्य शिवं हृदि ॥
साधारणं धराद्रव्यं ग्रह्णीयादुत्तराश्रितम् ।

शुभ दिन, पुष्यादि शुभ नक्षत्रमें, प्रातःकाल स्नानादि करके शुद्ध तथा दृढ मनसे, मौन धारण करके, पूर्व दिशाकी ओर मुख कर, आदित्य (सूर्य भगवान्) को सम्मुख रख कर और कल्याणकारी शिव परमात्मा को हृदय में धारण कर के उत्तर दिशा में उत्पन्न हुई औषधि को ग्रहण करना चाहिये । आयुर्वेद

शास्त्र की औषधि ग्रहण विधि को देख कर आज एक नव-शिक्षित मनुष्य चाहे हास्य ही करें परन्तु एक बुद्धिमान् विज्ञानवेत्ता के लिए यह विधि अक्षरशः वैज्ञानिक तथा साइँटीफिक प्रतीत होगी। औषधि ग्रहण करने वाले के लिए शास्त्र ने शुद्ध तथा दृढ़ मन हो कर, शुभ दिन अथवा पुष्यादि शुभ नक्षत्र में सूर्य भगवान् को सम्मुख रख कर, परमात्मा का ध्यान कर के उत्तर दिशा में उत्पन्न हुई औषधि को ग्रहण करने की ओर विशेष आदेश किया है। इस में भी एक विशेष रहस्य है, प्रातः काल जब कि संसार में शान्ति का राज्य स्थापित होता है और पुरुष की मनोवृत्तियां स्वतः एकाग्र होती हैं, उस समय मौन धारण कर के मनुष्य जिस भी काम को करता है उस में सफलता अनिवार्य है और फिर जो कार्य्य प्रकाश के पुञ्ज सूर्य्य भगवान् को सम्मुख रख कर दृढ़ मन से किया जाये उस में तो असफलता अथवा अकृतकार्यता असम्भव ही है। प्रश्न हो सकता है कि और दिशाओं की अपेक्षा उत्तर दिशा में क्या विशेषता है ? जिस के लिये शास्त्र ने विशेष आदेश किया है। इस का उत्तर यह है कि एक तो औषधि ग्रहण करने वाले मनुष्य का औषधि के गुणकारी तथा रोग नाशक होने के विषय में उत्तर दिशा के स्वामी ध्रुव भगवान् की तरह दृढ़ तथा ध्रुव निश्चय है, दूसरे उत्तर दिशा में उत्पन्न होने वाली औषधियें सूर्य्य भगवान् की पवित्र तथा विशुद्ध किरणों से प्रातः काल के सुहावने समय उचित मात्रा में ऊष्मा ग्रहण कर परिपक्व हुई होती हैं और अन्य दिशाओं की औषधियें दिन भर सूर्य्य की तीव्र किरणों के उत्ताप के कारण बल, वीर्य्य तथा गुण-हीन हो जाती हैं। इसी लिए विज्ञानवेत्ता महर्षियों ने उत्तर दिशा में उत्पन्न होने वाली औषधियों को पुष्यादि शुभ नक्षत्रों में ग्रहण करने की आज्ञा की है। पाठक यदि ऋषियों के इस वाक्य की आज़माइश करना चाहें तो सहदेवी बूटी जिस के प्रभाव के विषय में लिखा है कि—

ज्वरं हन्ति शिरो वद्धा सहदेवी जटा यथा।

एक ज्वर रोगी के मस्तक पर पुष्य नक्षत्र में उखाड़ी हुई सहदेवी की जड़ बांध कर अनुभव कर देखें और एक रोगी के मस्तक पर किसी अन्य नक्षत्र में उखाड़ी हुई बांध दें। जहां पुष्य नक्षत्र में उखाड़ी हुई अपने प्रभाव से तत्काल ज्वर को शान्त कर देगी वहां अन्य नक्षत्र वाली का किंचित् भी प्रभाव न होगा।

पूर्व काल में प्रत्येक सद्वैद्य औषधि ग्रहण समय इन नियमों का पालन करता था, इसी लिए उस समय चिकित्सकों की साधारण वनस्पतियों द्वारा बनी हुई चूर्ण, क्वाथादि औषधियें भी जटिल और भयंकर व्याधियों को निर्मूल करने में समर्थ होती थीं।

निषद्धौषधि

वल्मीककुत्सितानूप शमशानोषरमार्गजा ।
जंतुवन्हीहिमव्याप्ता नौषधि कार्यसाधिका ॥

सांपादि विषैले जन्तुओं के रहने के स्थान में उत्पन्न हुई तथा मल-मूत्र युक्त गन्दे स्थान वा शमशान भूमि, कबरस्तान आदिमें उत्पन्न हुई तथा ऊसर भूमि (बंजर ज़मीन) में उत्पन्न हुई तथा मार्ग में पैदा हुई अथवा हिम (बर्फ) और अग्नि से जली हुई वा कीड़ों की खाई हुई, गली सड़ी औषधि कभी भी ग्रहण नहीं करनी चाहिये, क्योंकि ऐसी औषधि प्रयोग में डाली हुई लाभ के बदले हानि करती है।

औषधि भक्षण के पांच समय

ज्ञेयः पञ्चविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् ।
किंचित्सूर्योदये जाते तथा दिवसभोजने ॥
सायन्तने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशि ॥

आयुर्वेदज्ञ ऋषियों ने रोगी को औषधि देने के लिये पांच समय नियत किये हैं—इसलिए इन समयों पर देने से औषधि गुण करती है।

१. कुछ सूर्योदय होने पर ।
२. दिन के भोजन के साथ ।
३. शाम के भोजन के साथ ।
४. रात्रि के समय ।
५. आवश्यकता होने पर दिन रात में कई बार ।

प्रथम काल

प्रायः पित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः ।

लेखनार्थे च भैषज्यं प्रभातेऽनन्तमाहरेत् ॥
एवं स्यात् प्रथमः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् ॥

पित्त और कफ के कुपित होने पर प्रायः पित्त शोधन के लिए विरेचन और कफशोधन के लिए वमन दी जाती है। वामक, विरेचक और लेखन औषधियों का प्रातः काल निराहार सेवन कराना ही उचित है।

द्वितीय काल

भैषज्यं विगुणेऽपाने भोजनाग्रे प्रशस्यते ।
अरुचौ चित्रभोज्यैश्च मिश्रं रुचिरमाहरेत् ॥
समानवाते विगुणे मन्देऽग्नावग्निदीपनम् ।
दद्यात् भोजनमध्ये च भैषज्यं कुशलो भिषक् ॥
व्यानकोपे च भैषज्यं भोजनान्ते समाहरेत् ।
हिक्काक्षेपककम्पेषु पूर्वमन्ते च भोजनात् ॥
एवं द्वितीयकालश्च प्रोक्तो भैषज्यकर्मणि ।

अपान वायु के कुपित होने पर भोजन से कुछ देर पहिले औषधि देनी चाहिये। अरुचि होने पर तरह २ के भोजनों के साथ औषधि दें।

समान वायु के विकृत होने पर तथा अग्निमन्द होने की अवस्था में दीपन औषधियों का भोजन के मध्य में प्रयोग करना चाहिये। यदि शरीरस्थ व्यान वायु कुपित हो तो उस हालत में भोजन के अन्त में औषधि दें।

हिचकी, आक्षेपक और कम्प वायु आदि रोगों में भोजन के आदि और अन्त में दोनों समय औषधि लाभप्रद होती है।

तृतीय काल

उदाने कुपिते वाते स्वरभंगादिकारिणी ।
ग्रासे ग्रासान्तरे देयं भैषज्यं सांध्यभोजने ॥
प्राणे प्रदुष्टे सांध्यस्य भक्ष्यस्यान्ते च दीयते ।
औषधं प्रायशो धीरैः कालोऽयं स्यात्तृतीयकः ॥

उदान वायु के कुपित होने पर स्वरभंग आदि रोग हो जाते हैं, इस अवस्था में औषधि प्रत्येक ग्रास के साथ या दो २ ग्रास के अन्तर से देनी चाहिये। प्राणवायु के प्रकोप में सायंकाल के भोजन के अन्त में औषधि देने से प्रायः अधिक लाभप्रद सिद्ध होती है।

चतुर्थ काल

मुहुर्मुहुश्च तृट्छर्दिहिक्काश्वासगरेषु च।
सान्नं च भेषजं दद्यादिति कालश्चतुर्थकः॥

तृषा, वमन, हिचकी, श्वास और विषरोगों में औषधि आवश्यकता के अनुसार वार २ प्रयोग करनी चाहिये; औषधि का अन्न के साथ भी प्रयोग किया जा सकता है। यह चतुर्थ काल है।

पंचम काल

ऊर्ध्वजत्रु विकारेषु लेखने बृंहणे तथा।
पाचनं शमनं देयमनन्नं भेषजं निशि॥
इति पंचमकालः स्यात्प्रोक्तो भैषज्य कर्मणि॥

जत्रु (हसली) से ऊपर के भाग नाक, कान और आंख आदि में रोग होने की हालत में, लेखन और बृंहण गुण के लिए पाचक और शामक औषधियों का प्रयोग रात्रि के समय अन्न के बिना ही करना चाहिये। यह पंचम काल है।

मान-विज्ञान

मात्रा सम्बन्धी आवश्यक नियम

१—वैद्यों को उचित है कि औषधि तोलने के लिए एक सीधा, उत्तम और सच्चा कांटा काम में लावें। इस कांटे का एक पलड़ा पृथक् हो जाने वाला और कांच या शीशे का बना होना चाहिये।

२—मान परीक्षा करते समय ध्यान पूर्वक परीक्षा करें।

३—तीव्र तीक्ष्ण और अम्ल रस वाले द्रव्यों को सदा कांच के पात्र में रख कर तोलना चाहिये।

४—अवलेह आदि औषधियों को किसी काग़ज़ या पत्ते आदि पर रख कर ही तोलना चाहिये।

५—किसी द्रव्य को बिना तोले अनुमान से ही किसी प्रयोग में डाल देना उचित नहीं है।

६—तरल पदार्थों को भी तोल कर ही डालना चाहियें। यदि द्रव द्रव्य तीव्र शक्ति वाले शंखद्रावादि हों तो उनको कांच के मानयन्त्र द्वारा तोल कर डालें।

७—यदि किसी तीव्र वीर्य द्रव्य की कुछ बूंदें ही प्रयोग में डालनी हों तो पहिले उसकी कुछ बूंदें पृथिवी अथवा शीशी में टपका कर देखें जब यह निश्चय हो जावे कि मात्रानुसार बूंदें टपका सकते हैं तब ही प्रयोग में बूंदों का प्रयोग करें।

८—उड़ जाने वाले मृगनाभि, कर्पूरादि द्रव्यों को सदैव शीशी में डाट लगा कर रखना चाहिये।

९—शीशी में डाट लगाने से पूर्व यह निश्चय कर लें कि उस में डाट ठीक लग सकता है। यदि डाट ठीक लग जाता हो तो उसमें औषधि डाल कर रखें।

१०—यदि किसी तीव्र वीर्य पदार्थ की अत्यन्त थोड़ी मात्रा अर्थात् एक चावल या रत्ती को अनेक भागों में बांटना हो तो उसे खाण्ड आदि में मिला कर यथोचित मात्राएं बना लें।

मान परिभाषा

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित् ।
अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया ॥

क्योंकि मान (परिमाण) के विना द्रव्यों का प्रयोग ठीक तरह नहीं जाना जा सकता, इसलिए प्रयोग निर्माण के लिए मान परिभाषा लिखी जाती है।

त्रसरेणु का परिमाण

त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तस्त्रिंशद्भिः परमाणुभिः ।
त्रसरेणुस्तु पर्याय नाम्ना वंशी निगद्यते ॥

तीस परमाणु का एक त्रसरेणु होता है जिसको वंशी भी कहा जाता है।

परमाणु के लक्षण

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ॥
तस्य त्रिंशत्तमो भागो परमाणुः स उच्यते ॥

जाली या किसी रोशनदान में से सूर्य की किरण के प्रवेश करने पर जो उस में से रज के सूक्ष्म कण वायु में उड़ते हुए दिखाई देते हैं, उस एक कण के तीसवें भाग को परमाणु कहा जाता है।

मरीचि आदि का परिमाण

षड् वंशीभिर्मरीचिः स्यात्ताभिः षड्भिस्तु राजिका ।
तिसृभी राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः ॥
यवोऽष्ट सर्षपैः प्रोक्तोगुञ्जास्यात्तच्चतुष्टयम् ॥

६ वंशी=१ मरीचि
६ मरीचि=१ राई
३ राई=१ श्वेत सरसों
८ सरसों=१ यव
४ जौ=१ गुञ्जा या १ रत्ती

माषे का परिमाण

षड्भिस्तु राजिकाभिः स्यान्माषको हेमधान्यकौ ।

६ रत्तीका एक माषा होता है। हेम, धान्यक भी इसी माषे के नाम हैं।

शाण और कोल का परिमाण

माषैश्चतुर्भिर्शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते ।
टंकः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते ॥
क्षुद्रभो वटकश्चैव द्रंक्षणः स निगद्यते ।

चार माषे का एक शाण होता है, जिसको धरण और टंक भी कहा जाता है । २ शाण का एक कोल होता है उसको क्षुद्रभ, वटक और द्रंक्षण भी कहते हैं । कोल बेर का भी नाम है, उस के बराबर होने से संभवतः कोल नाम रखा गया है ।

कर्ष का परिमाण

कोलद्वयं च कर्षः स्यात्स प्रोक्तः पाणिमानिका ।
अक्षः पिचुः पाणितलं किंञ्चित्पाणिश्च तिन्दुकम् ॥
विडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता ।
करमध्यं हंसपदं सुवर्णकवलग्रहम् ॥
उदुम्बरं च पर्यायैः कर्ष एव निगद्यते ।

दो कोल का एक कर्ष होता है । पाणिमानिका, अक्ष, पिचु, पाणितल, किञ्चित्पाणि, तिन्दुक, विडालपद, षोडशिका, करमध्य, हंसपद, सुवर्ण कवल-ग्रह और उदुम्बर यह १३ नाम कर्ष के पर्यायवाची समझने चाहियें ।

अर्ध पल और पल का परिमाण

स्यात्कर्षाभ्यामर्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ।
शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका ॥
प्रकुञ्चः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ।

दो कर्ष का एक अर्धपल होता है, जिसको शुक्ति और अष्टमिका भी कहा जाता है । दो शुक्ति का पल होता है जो मुष्टि, आम्र, प्रकुञ्च, चतुर्थिका षोडशी और बिल्व भी कहाता है ।

प्रसृति से मानिका तक संज्ञा

पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते ।
प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात्कुडवोऽर्धशरावकः ॥
अष्टमानं च स ज्ञेयं कुडवाभ्यां च मानिका ।
शरवोऽष्टपलं तद्वत् ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥

दो पल के बराबर एक प्रसृति होती है जिस को प्रसृत भी कहा जाता है। दो प्रसृति की एक अञ्जलि होती है जिसे (पाव सेर) अर्धशरावक और अष्टमान भी कहा जाता है। दो कुड़व के समान एक मानिका मानी गई है जिसको शराव और अष्टपल भी कहते हैं।

प्रस्थ और आढक का परिमाण

शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुष्प्रस्थस्तथाढकम् ।
भाजनं कंसपात्रं च चतुः षष्टि पलं च तत् ॥

दो शराव का एक प्रस्थ होता है और चार प्रस्थ का एक आढक माना जाता है। कंसपात्र और भाजन यह दोनों भी प्रस्थ के नाम ही हैं।

द्रोण से खारी तक परिमाण

चतुर्भिराढकैः द्रोणः कलशो नल्वणोन्मनौ ।
उन्मानश्च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञकाः ॥
द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतुः षष्टि शरावकाः ।
शूर्पाभ्यां च भवेत् द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता ॥

चार आढक का एक द्रोण होता है जिसे कलश, नल्वण, उन्मान, घट और राशि भी कहते हैं। दो द्रोण का एक शूर्प होता है उस को कुम्भ भी कहते हैं। ६४ शराव के बराबर एक शूर्प होता है और दो शूर्प की एक द्रोणी है जिसको वाह और गोणी भी कहा जाता है।

द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्म बुद्धिभिः ।
चतुः सहस्र पलिका षण्णवत्योऽधिका हि सा ॥

चार द्रोणी या ४०९६ पल के बराबर एक खारी होती है।

भार और तुला का परिमाण

पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्तितः ।
तुला पलशतं ज्ञेया सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥

दो हज़ार पल का एक भार और १०० पल की एक तुला होती है ऐसा ही सर्वत्र माना जाता है ।

माषे से खारी तक चार गुना मान

माषटंकाक्षबिल्वानि कुड़वप्रस्थमाढकम् ।
राशिर्गोणी खारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणाः ॥

माषे से प्रारम्भ करके खारी पर्यन्त एक तोल दूसरे से चार गुना होता है अर्थात् माष, टंक, अक्ष, बिल्व, कुड़व, प्रस्थ, आढ़क, राशि, गोणी और खारी तक प्रत्येक तोल अपने पहिले तोल से चार गुना अधिक समझना चाहिये ।

कुड़व पात्र बनाने की रीति

मृदस्तु वेणुलोहादेर्भाण्डं यच्चतुरङ्गुलम् ।
विस्तीर्णं च तथोच्चं च तन्मात्रं कुड़वं वदेत् ॥

चार अंगुल लम्बा, चार अंगुल चौड़ा और चार अंगुल गहरा पात्र कुड़व पात्र कहाता है । यह पात्र मिट्टी, बांस अथवा लोहे आदि धातु का बनाना चाहिये ।

द्रव पदार्थों का तोल

गुञ्जादिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुड़वस्थितिः ।
द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥
प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद् द्रवार्द्रयोः ।
मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचिन्मतम् ॥

जब किसी प्रयोग में गीले द्रव्य या द्रव पदार्थ का प्रयोग करना हो तो

एक रत्ती से कुड़व तक की किसी मात्रा में होने पर सूखे द्रव्यों के बराबर ही उन को प्रयोग में लाना चाहिये। यदि प्रस्थ से तुला तक किसी भी परिमाण में गीली ओषधि या द्रव पदार्थ डालने हों तो सदा सूखी औषधि की अपेक्षा दोगुने ही डालने चाहिये। तुला से द्रोणी तक यदि प्रयोग करना हो तो प्रयोगोक्त मात्रा में ही उन गीले द्रव्यों का व्यवहार करना चाहिये, इन परिमाणों में दोगुना वज़न लेने का विधान नहीं है।

कालिङ्ग परिभाषा

स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः कालमग्निं वयो बलम्।
प्रकृतिं दोषदेशौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रयोजयेत्॥

काल, अग्नि, आयु, बल, प्रकृति, दोष, देश और स्वभाव के विचार किये बिना किसी मनुष्य के लिए औषधि की मात्रा का निर्णय करना कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव है इसलिये बुद्धिमान् वैद्य को उचित है कि स्थिति को देख कर ही विचार पूर्वक औषधि की मात्रा निर्णय करे।

यतो मन्दाग्नयो ह्रस्वाः हीनसत्वा नराः कलौ॥
अतस्तु मात्रा तद्योग्या प्रोच्यते विज्ञसम्मता॥

वर्तमान काल में मनुष्य प्रायः मन्दाग्नि, छोटे शरीर वाले और सतयुग की अपेक्षा बहुत निर्बल होते हैं, इसलिये उनके अनुकूल और वैद्य लोगों के लिए उपयोगी तोल लिखा जाता है।

कालिंग परिभाषा के तोल

यवो द्वादशभिर्गौरसर्षपैः प्रोच्यते बुधैः॥
यवद्वयेन गुञ्जा स्यात् त्रिगुञ्जो वल्ल उच्यते॥
माषो गुञ्जाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवेत्क्वचित्॥
स्याच्चतुर्माषकैः शाणः स निष्कष्टङ्क एव च॥
गद्याणो माषकैः षड्भिः कर्षः स्याद्दशमाषकः॥
चतुष्कर्षैः पलं प्रोक्तं दश शाणमितं बुधैः॥
चतुः पलैश्च कुड़वं प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः॥

१२ श्वेत सरसों के दाने=१ यव (जौ)
२ यव (जौ)=१ गुञ्जा (रत्ती)
३ रत्ती = १ वल्ल (कहीं २ वल्ल दो रत्ती का भी मानते हैं)
८ रत्ती = १ माषा (कहीं ७ रत्ती का भी माषा माना जाता है)
४ माषा = १ शाण (शाण को निष्क और टंक भी कहते हैं)
६ माषे = १ गद्याण
१० माषे = १ कर्ष
४ कर्ष = १ पल (पल १० शाण का होता है)
४ पल = १ कुडव

शेष प्रस्थादि तोल पहिले कहे गये मागध परिमाण के समान ही समझने चाहियें।

मात्रा विज्ञान

किसी द्रव्य की मात्रा से अभिप्राय उस द्रव्य के उस अधिक से अधिक मान से होता है जो कि युवावस्था में एक मनुष्य को निस्सन्देह दिया जा सके और उसके देने से मनुष्य के शरीर में यथावत् शास्त्रोक्त प्रभाव हों। चिकित्सक का कर्तव्य है कि निम्न लिखित बातों पर ध्यान रखते हुए किसी व्यक्ति के लिए भली प्रकार मात्रा का निर्णय करे ताकि औषधि का प्रभाव इच्छित मात्रा में शरीर पर हो सके।

बालस्य प्रथमे मासि देया भेषजरक्तिका ॥
अवलेही कृतैकैव क्षीर क्षौद्र सिता घृतैः ॥
वर्धयेत्तावदेकैकां यावद्भवति वत्सरः ॥
मासैर्वृद्धिस्तदूर्ध्वं स्याद्यावत्षोडश वत्सरः ॥
ततः स्थिरा भवेत्तावद्यावत् वर्षाणि सप्ततिः ॥
ततो बालकवन्मात्रां ह्रासनीया शनैः शनैः।
मात्रेयं कल्कचूर्णानां कषायाणां चतुर्गुणा ॥

नवजात शिशु को प्रथम महीने में वचादि चूर्णों को दूध, घी या शहद में से जिस में उपयुक्त हो—१ रत्ती की मात्रा में मिला कर चटाना चाहिये। औषधि का दूध, घी या शहद में मिलाने से एक अवलेह सा बन जाता है और चाटने में भी आसानी होती है। दूसरे मास में दो रत्ती, तीसरे मास में ३ रत्ती और इसी प्रकार एक २ रत्ती बढ़ा कर एक वर्ष तक १२ रत्ती तक मात्रा ले जावें।

एक वर्ष की आयु के बाद १६ वर्ष की आयु तक पूर्व लिखे क्रम से ही एक २ माषा औषधि बढ़ाते जावें अर्थात् १६ वर्ष की आयु में रोगी को चूर्ण आदि की मात्रा १६ माषे तक देनी चाहिये। १६ वर्ष से ७० वर्ष की आयु के बाद मात्रा धीरे २ घटा देनी चाहिये क्यों कि बालक और वृद्ध की चिकित्सा प्रायः समान ही की जाती है।

वृद्ध के लिए कल्क, कषाय आदि की मात्रा बालक की अपेक्षा चार-गुणी होनी चाहिये।

नोट—उपरोक्त पूर्ण मात्रा है, देश, काल, बलादि के अनुसार वैद्य इन मात्राओं को घटा बढ़ा सकता है।

स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः कालमग्निं वयोबलम्।
प्रकृतिं दोषदेशौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रयोजयेत्॥
यतो मन्दाग्नयो ह्रस्वाः हीनसत्वाः नराः कलौ॥

कहा जा चुका है कि कलियुग में मनुष्य मन्दाग्नि, छोटे शरीर वाले और हीनसत्व होते हैं; इसलिए मात्रा आजकल कम ही प्रयोग करनी चाहिये। जो मात्रा स्वस्थ व्यक्ति के लिए कही गई है वह भी सब मनुष्यों के लिए एक जैसी नहीं है, बल्कि मात्रा के निर्णय करने में नीचे लिखी बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिये—

१. स्त्री प्रायः पुरुषों की अपेक्षा अत्यन्त मृदु स्वभाव वाली होती है, इसलिए वह उस मात्रा में औषधि सहन नहीं कर सकती जिस मात्रा में एक युवा और बलवान व्यक्ति को औषधि दी जाती है। स्त्रियों को हमेशा पुरुषों की अपेक्षा कम मात्रा में औषधि देनी चाहिये।

स्मरण रहे कि स्त्री की चिकित्सा करते हुए गर्भ तथा मासिक धर्म आदि का अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

२. किसी औषधि की जो मात्रा स्थूल, बलवान् और क्रूर कोष्ठ व्यक्तियों के लिए आवश्यक होती है; वह मात्रा निर्बल, कृश और मृदु या मध्य कोष्ठ वाले व्यक्ति को नहीं दी जा सकती।

३. प्रकृति का विचार करके मात्रा का प्रयोग करना चाहिये क्योंकि वात तथा पित्त प्रकृति वाले मनुष्यों की अपेक्षा कफ प्रकृति वाले मनुष्यों में औषधि सहन करने की शक्ति अधिक होती है।

४. किसी २ व्यक्ति में स्वाभाविक तौर पर किन्हीं द्रव्यों को सहन करने की शक्ति न्यून या अधिक होती हैं। जैसे, कई मनुष्य पारद अधिक मात्रा में सहन कर सकते हैं, किन्हीं मनुष्यों को बहुत थोड़ी मात्रा में पारद खाने से मुख आ जाता है।

यदि कोई द्रव्य कुछ काल तक निरन्तर सेवन किया जावे तो रुग्णावस्था में भी उसकी सहन शक्ति अधिक हो जाती है, जैसे—यदि कोई आदमी अफ़ीम खाता हो तो रुग्णावस्था में उसे थोड़ी अहिफेन देने से लाभ नहीं होता, बल्कि उसको बहुत अधिक मात्रा में अहिफेन देने की आवश्यकता होती है।

५. कभी २ रोगी की विचार शक्ति या श्रद्धा के प्रभाव से भी औषधि की मात्रा में न्यूनाधिकता की जा सकती है, जैसे—यदि किसी रोगी को बहुत थोड़ी मात्रा में निद्रा जनक औषधि दी जावे और विश्वास दिला दिया जावे कि इस औषधि से अवश्य नींद आ जावेगी तो पर्याप्त न्यून मात्रा में औषधि देने से भी नींद आ जाती है।

६. किन्हीं रोगों में रोग के प्रभाव से भी औषधि सहन करने की शक्ति में भेद हो सकता है; जैसे फिरंग रोग में पारे के लिए सहन शक्ति काफ़ी बढ़ जाती है और वृक्कशूल रोग में पारे के लिए सहन शक्ति बहुत कम हो जाती है। वृक्कशूल गुर्दे की दर्द को कहा जाता है।

७. ऋतु का भी मात्रा पर विशेष प्रभाव होता है; जैसे हेमन्त ऋतु में ग्रीष्म की अपेक्षा मद्य अधिक पी जा सकती है अथवा बसन्त ऋतु में वर्षा काल की अपेक्षा मधु अधिक खाया जा सकता है।

८. मात्रा पर आयु का विशेष प्रभाव होता है; जैसे बालक को उसकी आयु के अनुपात से भी अहिफेन देने से हानि होने की संभावना रहती है और अपनी आयु के अनुपात से वह युवाओं की अपेक्षा पारद अधिक ले सकता है।

प्राकृत और वैकृतादि ज्वर के लक्षण।

वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात् ॥

वर्षा ऋतु में वातज्वर; शरद् ऋतु में पित्तज्वर और वसन्त ऋतु में कफज्वर हो तो 'प्राकृतिक ज्वर' समझना चाहिये। यदि इनके विपरीत हो अर्थात् वर्षा ऋतु में पित्तज्वर या श्लेष्म ज्वर हो जावे तो इनको 'वैकृतज्वर' कहना चाहिये। प्राकृत ज्वर सुख साध्य और वैकृतज्वर कष्टसाध्य है।

आम के लक्षण ।

आममन्नरसे केचित्केचित्तु मलसंचयम् ।
प्रथमं दोषदुष्टिं वा केचिदामं प्रचक्षते ॥
अविपक्वमसंसक्तं दुर्गन्धं बहुपिच्छिलम् ।
सादनं सर्वगात्राणामाम इत्यामशब्दतः ॥
तेनामेन समायुक्ता दोषाः दूष्याश्च तादृशाः ।
तदुद्भवा आमयाश्च सामा इति बुधैस्मृताः ॥

कोई लोग अन्न के अपक्व रस को, कोई मल के संचय होने और कई दोषों की आदि अवस्था को आम कहते हैं। आम संज्ञक रस अपक्व होता है और पक्वरस से पृथक् रहता है, दुर्गन्धियुक्त होता और प्रायः अधिकतर चिकना होता है; यह आमरस सारे शरीर को पीड़ा पहुंचाने वाला और अनेक रोगों का कारण होता है।

इस आम से संयुक्त हुए दोष वात, पित्त, कफ और दूष्य अर्थात् सातों धातु रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र विकृत होकर रोग उत्पन्न करते हैं । इस कारण आम संज्ञक दोषों से उत्पन्न हुए रोगों को भी सामरोग कहा जाता है ।

आहारस्य रसः सारो यो न पक्वोऽग्नि लाघवात् ।
आम संज्ञां च लभते बहु व्याधि समाश्रितः ॥

किये हुए आहार का रस जो अग्नि की न्यूनता से न पका हो उसकी आम संज्ञा है, अर्थात् कच्चे रस को ही आम कहते हैं और यह आम शरीरस्थ वातादि दोषों को कुपित कर के नाना प्रकार के रोगों का कारण बनता है ।

साम वायु के लक्षण ।

वायुः सामो विबन्धाग्निसादतद्रान्त्रकूजनैः ।
वेदना शोथनिस्तोदैः क्रमशोऽङ्गानि पीड़येत् ॥

विचरेद्युगपच्चापि गृह्णाति कुपितो भृशम् ।
स्नेहाद्यैर्वृद्धिमाप्नोति मेघे सूर्योदये निशि ॥

साम वायु मलरोधक, अग्नि मन्द करने वाला, तन्द्रा, आलस्य, आंतों में गुड़ २ शब्द करने वाला और क्रम से शरीर में पीड़ा करने वाला होता है। साम वायु शरीर के नाना अंगों में विचरता हुआ शोथ आदि रोगों को उत्पन्न करता है। साम वायु वर्षा ऋतु में तथा घृत, तैल, आदि के प्रयोग से वृद्धि को प्राप्त होता और प्रायः रात्रि तथा प्रातः काल के समय विशेष कुपित होता है।

निराम वायु के लक्षण।

निरामो विशदो रूक्षो निर्गन्धोऽत्यल्पवेदनः।
विपरीत गुणैः शान्तिं स्निग्धैर्याति विशेषतः ॥

निराम वायु विशद, रूक्ष, दुर्गन्धि रहित और मन्द वेदना कारक होता है; यह अपने गुणों वाले द्रव्यों तथा घी, तैल आदि वातनाशक पदार्थों के प्रयोग से शान्त हो जाता है।

साम पित्त के लक्षण।

पित्तमामं भवेदम्लं दुगन्धं हरितं गुरु।
अम्लिका कण्ठहृद्दाहकरं श्यावं तथा स्थिरम् ॥

साम पित्त अम्ल (खट्टा), दुर्गन्धित, हरे रंग वाला, गुरु, अम्ल द्रव्यों के समान कण्ठ तथा हृदय में दाह करने वाला, श्यावतायुक्त और स्थिर होता है।

निराम पित्त के लक्षण।

निरामं पित्तमाताम्रमत्युष्णं कटुकं सरम्।
दुर्गन्धि रुचिकृद्वान्हिबलवर्धनमीरितम् ॥

निराम-पित्त—लाल रंग का, अत्यन्त उष्ण, कटु, सर, रुचिकारक,

जठराग्नि और बल को बढ़ाने वाला तथा दुर्गन्धि रहित होता है।

साम कफ के लक्षण।

अविलस्तन्तुलस्त्यानः कण्ठदेशे च तिष्ठति।
सामो वलासो दुर्गन्धिस्तृट् क्षुधोरुपघातकः॥

साम कफ—आविल (मैला), तन्तुयुक्त, गाढ़ा, कण्ठ को जकड़ने वाला; दुर्गन्धित, तृषा और क्षुधा को नाश करने वाला होता है।

निराम कफ के लक्षण।

श्लेष्मा निरामो निर्गन्धः फेनवाञ्छेदवानपि।
भवेत्संपीडितः पाण्डुरास्यवैरस्यनाशकृत्॥

निराम कफ—दुर्गन्धि रहित; झागदार; फटा हुआ या गांठदार; पाण्डु वर्ण वाला और मुख की विरसता को नष्ट करने वाला होता है।

वात, पित्त तथा कफ के मिश्रित लक्षणों द्वारा साम और निराम, द्वन्द्वज और सन्निपातज में भी इसी प्रकार समझना चाहिये।

आम ज्वर के लक्षण।

लालाप्रसेकहृल्लासहृदयाशुध्यरोचकः।
निद्रालस्यविपाकश्च वैरस्यं गुरु गात्रता॥
क्षुन्नाशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवान् ज्वरः।
आमज्वरस्य लिंगानि एष सर्वत्र निश्चयः॥

आमज्वर और निराम ज्वर के विषय में हमारे अनेक वैद्य भाइयों को यह भ्रम होगा कि संसार में समस्त फल और व्यञ्जन आदि तो कच्चे या पक्के सुने या देखे जाते हैं परन्तु ज्वर जो रोगों का राजा है और एक बार हो जाने पर अपनी ही उष्णता से सारे शरीर को गरम कर देता है वह किस तरह पचता है और उसके कच्चे या पक्क होने से क्या अभिप्राय है?

पाठकगण! जब मिथ्याहार विहार द्वारा शरीरस्थ धातुरूप तीनों दोष वात, पित्त, कफ में न्यूनाधिकता होकर शरीर में अनेक रासायनिक

परिवर्तन होने पर जो आम संज्ञक ज्वरोत्पादक एक प्रकार का विषैला नवीन पदार्थ उत्पन्न होकर ज्वर उत्पन्न करता है उसको आम कहा जाता है। यह आम दोष ज्वरावस्था में जब तक शरीर में प्राकृतिक संग्राम द्वारा पराजित होकर, मल रूप में परिवर्तित होकर शरीर से बाहिर निकलने योग्य नहीं हो जाता तब तक दोषों की आम संज्ञा रहती है और यही आम दोष ज्वर का कारण होते हैं इसलिए दोष पचने के समय तक ज्वर भी आम ज्वर ही कहा जाता है। जब दोष प्रकृति द्वारा पराजित होकर और पचकर मलरूप दोषों की आकृति में परिवर्तित होने से स्वेद, मूत्र आदि द्वारा शरीर से निकलने योग्य हो जाते हैं तब वही आम दोष निराम कहे जाते हैं। जब वही आम दोष भली प्रकार तो नहीं पक पाते बल्कि थोडे ही पच कर शरीर से निकलने लगते हैं तब उन दोषों को पच्यमान दोष कहा जाता है।

आमज्वर में आमाशय प्रायः अपना ठीक२ कार्य करने में असमर्थ होता है, इस कारण वह पाचक रस के ठीक २ न निकलने के कारण अपना कार्य भली प्रकार ठीक समय पर नहीं कर सकता और रोगी की पाचनशक्ति मन्द हो जाती है। जिस से मुख से लार गिरना, उबकाई आना, हृदय में ग्लानि, अरुचि होना, निद्रा न आना, आलस्य, अन्न का न पचना, मुख विरस होना, क्षुधा न होना, शरीर में भारीपन होना, मूत्र का अधिक आना, शरीर में जड़ता होना और ज्वर का वेग तीव्र होना आदि अनेक लक्षण हो जाते हैं।

पच्यमान ज्वर के लक्षण।

ज्वरवेगोऽधिका तृष्णा प्रलापश्वसनं भ्रमः।
मलप्रवृत्तिरुत्क्लेशः पच्यमानस्य लक्षणम्॥

जब दोष कुछ २ पच गये हों और शीघ्र ही भली प्रकार पच जाने वाले हों तो ऐसी दशा में ज्वर का वेग अधिक हो जाता, प्यास, प्रलाप, श्वास, भ्रम, उबकाई आना और मल मूत्रादि की अधिक प्रवृत्ति होना आदि लक्षण होने लगते हैं।

निराम दोष तथा निराम ज्वर के लक्षण।

दोष प्रकृतिवैकृत्यादेतेषां पक्वलक्षणम्।

क्षुत्क्षामता लघुत्वं च गात्राणां ज्वरमार्दवम् ॥
दोषप्रवृत्तिरुत्साहो निरामज्वर लक्षणम् ॥

जब तीनों दोष वात, पित्त, कफ की प्रकृति विपरीत होकर लौट जावें और वह दोष संज्ञा को छोडकर मलसंज्ञा को प्राप्त हो जावें अर्थात् उन में देहस्थ धातुओं को दूषित करने की ताकत न रहे किन्तु सामान्य मलों की तरह शरीर से बाहिर निकलने लगे तब उनको पक्क दोष कहा जाता है।

दोषों के पच जाने पर भूख लगना, शरीर में हल्कापन होना, ज्वर का हल्का हो जाना, दोषों का मलरूप में शरीर से निकलना और उत्साह होना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। यह निरामज्वर के लक्षण हैं।

निरामज्वर या मलपाक ज्वर का एक ही अभिप्राय है।

वातादि दोष पाकावधि।

वातिकः सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिकः ॥
श्लैष्मिको द्वादशरात्रेण ज्वरः पाकमुपैतिहि ॥

वातज्वर सात दिन में, पित्त ज्वर दस दिन में और कफ ज्वर बारह दिन में स्वयं ही पच जाता है; यही ज्वर की सन्धि है। यदि ज्वर सन्निपातज या संसर्गी हो तो सन्धि भी दोषों की न्यूनाधिकता के अनुसार घट सकती या बढ़ सकती है।

आयुर्वेदज्ञों का अनुभव है कि यदि ज्वर वातोल्वण सान्निपात हो तो वह सात दिन में ही पच जाता है, इसी प्रकार पित्तोल्वण और कफोल्वण ज्वर को भी समझना चाहिये, परन्तु यदि दोषों की प्रबलता के कारण ज्वर इतने दिनों में नहीं पचता तो नीचे लिखे सिद्धान्त के अनुसार दोगुने दिनों में पच जाता है।

सप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशेऽपि वा।
पुनर्घोरतरोभूत्वा प्रशमं याति हन्ति वा ॥
सप्तमी द्विगुणा चैव नवम्येकादशी तथा।
एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च ॥

सान्निपातज ज्वर ७ दिन; १० दिन या १२ दिन में पच जाता और शान्त हो जाता है; परन्तु जब दोषों की उत्वणता के कारण नहीं पचता तो प्रायः यह भयंकर रूप धारण कर लेता है। सन्निपात ज्वरों की सामान्य मर्यादा यह है कि ७ दिन, १० दिन और १२ दिन में पचते हैं और यदि इस सन्धि में नहीं पचते तो ९ दिन या ११ दिन में पचते हैं अन्यथा इन के दोगुने दिन अर्थात् १४ दिन, २० दिन, २४ दिन, १८ दिन अथवा २२ दिन में सान्निपात ज्वर पचता है।

यहां सामान्य सन्धि ही लिखी गई है, दोषों की प्रबलता के अनुसार सान्निपात ज्वर की सन्धि भिन्न २ शास्त्रकारों ने भिन्न २ लिखी है। सान्निपात ज्वर की अन्तिम सन्धि ३ मास तक हो सकती है; इसलिए चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि सन्धि का भली प्रकार विचार करके चिकित्सा करे।

धातु पाक ज्वर के लक्षण।

निद्रानाशो हृदिस्तम्भो विष्टम्भो गौरवारुचिः।
अरतिर्बलहानिश्च धातूनां पाकलक्षणम् ॥
नाभेरूर्ध्वं हृदोऽधस्तात्पीड़िते चेद् व्यथा भवेत्।
धातोः पाकं विजानीयादन्यथा तु मलस्य च ॥

नींद न आना, हृदय का जकड़ा रहना, मल का अविरुद्ध होना, शरीर का भारीपन, अरुचि; शरीर में विकलता और बल का नाश होना, यह सब लक्षण धातुपाक के समझने चाहियें। धातुपाक की परीक्षा करते समय वैद्य रोगी को सीधा लिटा कर नाभि के ऊपर वाले स्थान अर्थात् यकृत्, आमाशय और छोटी आन्तों वाले स्थान पर धीरे २ दबाकर देखे कि किसी जगह कठिनता, शूल आदि लक्षण हैं या नहीं। यदि किसी जगह यह लक्षण हों तो समझना चाहिये कि रोगी को धातुपाक ज्वर है, यदि किसी जगह शूल न हो तो मलपाक ज्वर समझना चाहिये।

अन्तर्वेग ज्वर के लक्षण।

अन्तर्दाहोऽधिकस्तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः ॥
सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदो दोषवर्चोविनिग्रहः ॥

अन्तर्वेगस्य लिङ्गानि ज्वरस्यैतानि लक्षयेत् ॥

शरीर के भीतर अत्यन्त दाह होना, प्यास, प्रलाप, श्वास, भ्रम, सन्धिशूल, अस्थिशूल, पसीना न आना और दोषों तथा विष्टा का रुक जाना यह सब अन्तर्वेग ज्वर के लक्षण समझने चाहिये ।

बहिर्वेग ज्वर के लक्षण ।

सन्तापो ह्यधिको बाह्यस्तृष्णादीनां च मार्दवम् ।
बहिर्वेगस्य लिङ्गानि सुखसाध्यत्वमुच्यते ॥

शरीर के बाहिरी भाग अर्थात् त्वचा में बहुत उष्णता हो परन्तु प्यास आदि लक्षण कम हों अर्थात् बाहिरी भाग का उष्णता के सिवाय अन्तर्वेग ज्वर में कहे गये प्यास आदि लक्षण कम हों तो वह बहिर्वेग ज्वर के लक्षण समझने चाहियें । जिस ज्वर में शरीर के अन्दर दाह कम हो परन्तु बाहिर गर्मी अधिक हो वह ज्वर सुखसाध्य समझना चाहिये ।

रसगत ज्वर के लक्षण ।

गुरुता हृदयोत्क्लेशः सदनं छर्द्यरोचकौ ।
रसस्थे तु ज्वरे लिंगं दैन्यं चास्योपजायते ॥

हृदय तथा शरीर में भारीपन, जी मचलाना, ग्लानि, वमन, अरुचि, और दीनता, यह सब लक्षण रसगत ज्वर के ही समझने चाहियें ।

रसगत ज्वर उस ज्वर का नाम है जिसमें दोष केवल रस को ही दूषित करे और शेष रक्त, मांस आदि धातुओं में कोई विकार न हो ।

रक्तगत ज्वर के लक्षण ।

रक्तनिष्ठीवनं दाहो मोहश्छर्दनविभ्रमौ
प्रलापः पिड़िका तृष्णा रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥

रस तथा रुधिर के दूषित होने से जब ज्वर होता है उस में थूक के साथ खून आता, दाह होता, बेहोशी होती, वमन, भ्रम, प्रलाप और पिडिका अर्थात् शरीर में फुन्सी निकलना आदि लक्षण होते हैं; इन लक्षणों के

सिवाय तृषा भी बहुत होती है अर्थात् प्यास बहुत लगती है।

मांस गत ज्वर के लक्षण

पिण्डकोद्वेष्टनं तृष्णा सृष्टमूत्रपुरीषता।
ऊष्मान्तर्दाहविक्षेपौ ग्लानिः स्यान्मांसगे ज्वरे॥

जब ज्वर मांसगत होता है तो पिण्डलियों में ऐंठन होती, प्यास अधिक लगती, मल-मूत्र अधिक आते, शरीर के भीतर अत्यन्त दाह होता, ग्लानि होती और रोगी हाथ पैर इधर उधर पटकता है।

मेदोगत ज्वर के लक्षण।

भृशं स्वेदस्तृषा मूर्छा प्रलापश्छर्दिरेव च।
दौर्गन्ध्यारोचकौ ग्लानिर्मेदस्थे चासहिष्णुता॥

मेदोगत ज्वर में अत्यन्त पसीना आना, अधिक प्यास लगना, मूर्छा, प्रलाप, वमन, देह में दुर्गन्ध आना, अन्न में अरुचि, ग्लानि और सहन-शक्ति का अभाव होना आदि लक्षण होते हैं।

अस्थिगत ज्वर के लक्षण।

भेदोऽस्थ्नां कूजनं श्वासो विरेकश्छर्दिरेव च।
विक्षेपणं च गात्राणां विद्यादस्थिगते ज्वरे॥

हड्डियों में तोड़ने के समान पीड़ा होना, कण्ठ में दाह होना, हाथ पैरों का इधर उधर पटकना, श्वास, वमन और दस्त आना अस्थिगत ज्वर के लक्षण समझने चाहियें।

मज्जागत ज्वर के लक्षण।

तमः प्रवेशनं हिक्का कासः शैत्यं वमिस्तथा।
अन्तर्दाहो महाश्वासो मर्मच्छेदश्च मज्जगे॥

नेत्रों के सामने अन्धेरा होना, हिचकी, खांसी, बार २ शीत लगना, शरीर के भीतर अत्यन्त दाह होना, वमन होना, लम्बे २ श्वास आना और

देह के मर्मस्थानों में छेदने के समान पीड़ा होना यह सब लक्षण मज्जागत ज्वर के हैं।

शुक्रगत ज्वर के लक्षण।

मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते ज्वरे।
शेफसः स्तब्धता मोक्षः शुक्रस्य विशेषतः॥

जब रस से वीर्य तक सातों धातु दूषित होकर ज्वर होता है तो ज्वर-रोगी को बार २ लिंगोत्थान होकर वीर्यस्राव हो जाता है। इस ज्वर के कारण प्रायः रोगी की मृत्यु हो जाती है। शुक्रगत ज्वर को असाध्य समझना चाहिये।

तरुण और जीर्ण ज्वर की अवधि।

आसप्तरात्रात्तरुणं ज्वरमाहुः मनीषिणः।
मध्यं चतुर्दशाहन्तुं पुराणमत उत्तरम्॥
सप्तत्रयदिनादूर्ध्वं तनुतां प्राप्य तिष्ठति।
प्लीहाग्निमान्द्यं तनुते सःजीर्ण ज्वर उच्यते॥

कई लोगों का विचार है कि ७ दिन तक ज्वर तरुण रहता है, चौदह तक मध्यमावस्था और इक्कीस दिन के बाद ज्वर पुराना हो जाता है। जीर्णज्वर में ज्वर का वेग मन्द हो जाता और यकृत् (जिगर) तथा प्लीहा (तिल्ली) आकार में बढ़ जाते हैं।

ज्वर का मन्द (बारीक) होना और तिल्ली आदि का बढ़ जाना जीर्ण ज्वर के लक्षण समझने चाहियें। ऐसे सान्निपातिक ज्वर जो अति तीव्र वेग से तीन मास तक भी रह सकते हैं उनको जीर्णज्वर नहीं कह सकते।

ज्वर मुक्ति के लक्षण

स्वेदो लघुत्वं शिरसः कण्डू पाको मुखस्य च।
क्षवथुश्चान्नलिप्सा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम्॥

पसीना आना, शरीर और शिर का हलका हो जाना, शरीर में खुजली

होना, मुख पक जाना (होठों के समीप फुन्सी हो जाना), छींक आना, और अन्न में रुचि होना, यह सब ज्वर मुक्ति के लक्षण समझने चाहियें।

ज्वर के उपद्रव

श्वासो मूर्छारुचिश्छर्दिस्तृष्णातीसार विड्ग्रहाः।
हिक्काकासाङ्गभेदाश्च ज्वरस्योपद्रवाः दश ॥
सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः ।
शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥
ज्वरस्य पूर्वं ज्वरमध्यतो वा ज्वरान्ततो वा श्रुतिमूलशोथः।
क्रमादसाध्यः खलु कष्टसाध्यः सुखेन साध्यो मुनिभिर्प्रदिष्टः ॥

श्वास, मूर्छा, अरुचि, वमन, तृषा, अतिसार, मलावरोध, हिचकी, खांसी और सम्पूर्ण अंगों का दुखना। शास्त्र में ज्वर के यह दश उपद्रव लिखे गये हैं। सन्निपात ज्वर में कर्णमूल शोथ एक विशेष उपद्रव है। कर्णमूल शोथ (कनवर) एक प्रकार की सूजन है जो प्रायः सन्निपात ज्वर में कान की जड़ में हो जाती है- जिस के अन्दर गांठें सी अनुभव होती हैं। यह एक भयंकर शोथ है जो प्रायः सन्निपात ज्वरों के अन्त में निकल आती है।

कर्णमूल शोथ (कनवर) यदि ज्वर के प्रारम्भ में होवे तो असाध्य, मध्य में कष्ट साध्य और अन्त में होने पर सुख साध्य समझना चाहिये।

साध्य ज्वर का रूप

बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः ॥

यदि ज्वर रोगी बलवान हो और दोषों का बहुत प्रकोप न होवे तथा पहिले कहे गये उपद्रवों में से कोई उपद्रव भी न हो तो ज्वर को सुख साध्य समझना चाहिये।

असाध्य ज्वर का रूप

हेतुभिर्बहुभिर्जातो बलिभिर्बहुलक्षणः ॥
ज्वरः प्राणान्तकृद्यश्च शीघ्रमिन्द्रियनाशनः ॥

जो ज्वर अनेक कारणों से उत्पन्न हुआ हो, जिसमें अनेक उपद्रव-युक्त लक्षण हो जावें और जो शरीरस्थ इन्द्रियों की शक्ति का नाश करने वाला हो वह ज्वर प्राणों का नाश करने वाला और असाध्य समझना चाहिये।

साध्यासाध्य ज्वर की परीक्षा।

रसरक्ताश्रितः साध्यो मांसमेदोगतश्च यः॥
अस्थिमज्जगतः कृच्छ्रः शुक्रस्थो नैव सिध्यते॥

रसगत, रक्तगत, मांसगत और मेदोगत ज्वर साध्य समझने चाहियें; अस्थिगत तथा मज्जागत ज्वर कष्टसाध्य होते और शुक्रगत ज्वर असाध्य समझना चाहिये। जिस ज्वर में रस से शुक्र तक सातों धातु दूषित हो जावें उसको असाध्य समझा जाता है।

असाध्य गम्भीर ज्वर के लक्षण।

गम्भीरस्तु ज्वरो ज्ञेयो ह्यन्तर्दाहेन तृष्णया।
आनद्धत्वेन चात्यर्थं श्वासकासोद्गमने च॥
हतप्रभेन्द्रियं क्षामरोचकनिपीडितम्।
गम्भीरतीक्ष्णवेगार्तं ज्वरितं परिवर्जयेत्॥

जिस ज्वर से रोगी को शरीर में अति दाह प्रतीत हो, तृषा बहुत लगती हो, मल और दोष अवरुद्ध हों, खांसी और श्वास बहुत हों, रोगी की कान्ति नष्ट हो गई हो, क्षामता हो, मूर्छा आदि उपद्रव हों, ज्वर का वेग अत्यन्त तीव्र हो; उस ज्वर को गम्भीर समझ कर चिकित्सा न करें क्योंकि ऐसा रोगी असाध्य है।

असाध्य ज्वर के लक्षण।

विसंज्ञस्ताम्यते यस्तु शेते निपतितोऽपि वा।
शीतार्दितोऽन्तरुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः॥

जिस ज्वर-रोगी की संज्ञा नष्ट हो गई हो; बेहोश ही पड़ा रहता हो; जिस को अपने शरीर की सुध न हो; जिसका शरीर बाहिर से शीतल और

अन्दर से अत्यन्त गर्मी वाला प्रतीत होता हो। ऐसे रोगी का ज्वर असाध्य है।

यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि संघातशूलवान्।
वक्त्रेण चैवोच्छ्वसिति तं ज्वरो हन्ति मानवम्॥

जिस ज्वर से रोगी को रोमांच हो जाता हो; नेत्र लाल हों; हृदय में शूल होवे और मुख से श्वास लेवे उसे असाध्य समझें। ऐसा रोगी मर जाता है।

असाध्य ज्वर।

हिक्काश्वासतृषायुक्तं मूढं विभ्रान्तलोचनम्॥
सन्ततोऽच्छ्वासिनं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः॥

जिस रोगी को हिचकी आती हो; श्वास अधिक हो; तृषा हो, संज्ञा नष्ट हो जावे; नेत्रों से ताड़ २ कर चारों ओर देखता हो; मुख से निरन्तर लम्बे २ श्वास लेता हो और रोगी निर्बल हो गया हो, उस रोगी को असाध्य समझना चाहिये।

जल की आवश्यकता ।

जीविनां जीवनं जीवो जगत्सर्वं तु तन्मयम् ॥
अतोऽत्यन्तनिषेधेन न कचित्वारि वारयेत् ॥
तृष्णा गरीयसी घोरा सद्यः प्राणविनाशिनी ॥
तस्माद्देयं तृषार्ताय पानीयं प्राणधारणम् ॥
तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान् विमुञ्चति ॥
अतः सर्वास्ववस्थासु न क्वचिद् वारि वर्जयेत् ॥

सृष्टि की उत्पत्ति पंचभूतों से मानी गई है और पंचभूतों में जल की भी गणना होने से सम्पूर्ण जगत् जलमय है, इसलिए जल पर ही सम्पूर्ण प्राणियों का आधार है। जब किसी मनुष्य को घोर तृषा लगी हो और उसे जल न मिले तो वह मोह को प्राप्त हो जाता है और उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है; इसलिए किसी अवस्था में और किसी भी दशा में जल का निषेध करना उचित नहीं है। देश, काल और रोगी की अवस्थानुसार जल की मात्रा में न्यूनाधिकता कर सकते हैं।

जल-पाकावधि ।

आमं जलं पाकमुपैति यामात्पक्वं पुनः शीतलमर्धयामात् ।
पक्वं कदुष्णं च ततोऽर्धकालादेवं तु पीतस्य जलस्य पाकौ ॥

मनुष्य के शरीर में आमजल (बिना गरम किया पानी) एक याम (३ घण्टे या पहर) में पच जाता है, पका कर ठण्डा किया हुआ जल आधे याम (१॥ घण्टे) में पचता है और पकाने के बाद हल्का २ गरम (नीम गरम) पानी पीने के बाद २ घड़ी में हज़म हो जाता है। इसलिए सदा मनुष्यों को अग्नि, बल, देश, काल और अवस्था के अनुसार शीतल अथवा उष्ण जल का उपयोग करना चाहिये।

पीने योग्य शीतल जल ।

जीवनं तर्पणं हृद्यं ह्लादि बुद्धिप्रबोधनम् ।

तन्वव्यक्तं रसं मिष्टं शीतं लघ्वमृतोपम् ॥

जल में जीवन के लिये हानिकर पदार्थ मिले हुए न हों, तृप्तिकारक हो, आनन्द का देने वाला, बुद्धिवर्धक, स्वच्छ, निर्मल हो (शुद्ध जल में किसी प्रकार का स्वाद नहीं होना चाहिये) जल स्वादु, मीठा, चित्त को प्रसन्न करने वाला और अमृत (आबे हयात) के समान हो। जिस शीतल जल में उपरोक्त गुण हों उसका ही सदा प्रयोग करना चाहिये।

ऋतु भेदेन जल ग्रहणम्।

हेमन्ते शिशिरे चाम्बु सारसं वा तड़ागजम्।
वसन्तग्रीष्मयोः कौप्यं वाप्यं वा निर्झरं हितम् ॥
नादेयं वारि नादेयं वसन्तग्रीष्मयोर्बुधैः।
विषवत्पत्रपुष्पादिदुष्टनिर्झरयोगतः ॥
औद्भिदं चान्तरिक्षं वा कौप्यं वा प्रावृषि स्मृतम्।
शस्तं शरदि नादेयं नीरमंशूदकं परम् ॥
दिवा रविकरैर्जुष्टं निशि शीतकरांशुभिः।
ज्ञेयमंशूदकं नाम स्निग्धं दोषत्रयापहम् ॥
अनभिष्यन्दि निर्दोषञ्चान्तरिक्षजलोपम् ॥
बल्यं रसायनं मेध्यं शीतं लघु सुधारसम्।
शरद्यगस्त्यस्योदयादखिलं सलिलं हितम् ॥

हेमन्त और शिशिर ऋतु में सरोवर अथवा तालाब का जल लेना चाहिये; वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में कूएं, बावड़ी या झरने का पानी हितकर है; इन ऋतुओं में नदी का पानी लेना ठीक नहीं है क्योंकि उसमें विषैले पत्ते, फूल और दुष्ट झरनों का पानी मिला हुआ होता है। वर्षा ऋतु में औद्भिद जल (अर्थात् ज़मीन को फाड़कर निकलने वाला पानी), मेघ-जल (बादलों से गिरने वाला जल) अथवा कूएं का पानी हितकारी होता है। शरद् ऋतु में नदी का जल या अंशूदक अच्छा होता है; अंशूदक उस पानी का नाम है जिसमें दिन में सूर्य की किरणें पड़ती हैं और रात्रि में चन्द्रमा की किरणों का प्रकाश पड़ता हो। अंशूदक नाम का यह पानी

स्निग्ध, त्रिदोष नाशक, अनभिष्यन्दि, निर्दोष, आकाश के जल के समान बलकारक, रसायन, मेधाजनक, शीतल, लघु और अमृत के समान गुणकारी है।

शरद्ऋतु में अगस्त सितारे के उदय होने पर प्रायः सब ही जल शुद्ध और प्राकृतिक हो जाते हैं।

शीतल जल किन रोगों में पीना चाहिये।

मूर्छापित्तोष्णदाहेषु विषे रक्ते मदात्यये।
भ्रमश्रमपरीतेषु तमके श्वयथौ तथा॥
धूमोद्गारे विदग्धेऽन्ने शोषे च मुखकण्ठयोः।
ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च शीतलाम्बु प्रशस्यते॥

मूर्छा, पित्त की अधिकता, अत्यन्त गर्मी, दाह, विषविकार, रुधिर-रोग, मदात्यय रोग, भ्रम, श्रम, तमक श्वास, मुख और गले के सूखने तथा श्वयथु रोग में शीतल पानी का प्रयोग करना चाहिये। यदि मुख तथा नाक आदि से खून जाता हो, भोजन अच्छी तरह हज़म न होकर विदग्ध हो जाता हो तथा रक्तपित्त हो तो इन हालतों में भी शीतल जल का प्रयोग सदा हितकारी होता है।

शीतल जल निषेध।

नवज्वरे प्रतिश्याये पार्श्वशूले गलग्रहे।
सद्यः शुद्धौ तथाध्माने व्याधौ वातकफोद्भवे॥
अरुचिग्रहणीगुल्म श्वासकासेषु विद्रधौ।
हिक्कायां स्नेहपाने च शीतं वारि विवर्जयेत्।
सेव्यमानेन शीतेन ज्वरस्तोयेन वर्धते॥

नवीन ज्वर, प्रतिश्याय, पार्श्वशूल, गले का जकड़ना, तत्काल वमन और विरेचन होने के बाद, आध्मानरोग, वात या कफजन्य रोग, अरुचि, संग्रहणी, गुल्म, खांसी, श्वास, विद्रधि तथा हिचकी में शीतल जल का प्रयोग न करना चाहिये। जिन पुरुषों ने स्नेहपान किया हो उनके लिए भी ठण्डा पानी हितकर नहीं है।

किन रोगों में जल न्यून पीना चाहिये ।

ज्वरे नेत्रामये कुष्ठे मन्देऽग्नावुदरे तथा ।
अरोचके प्रतिश्याये प्रसेके श्वयथौ क्षये ॥
व्रणे च मधुमेहे च पानीयं मन्दमाचरेत् ॥

ज्वर, नेत्ररोग, कुष्ठ, मन्दाग्नि, उदररोग, अरुचि, प्रतिश्याय, प्रसेक, (मुख में पानी आना) शोथरोग; क्षयरोग; व्रण और मधुमेह अर्थात् डायाबिटीज़ रोग में जल का अधिक प्रयोग करना हानिकर है;इसलिए इन रोगों में रोगी को जल बहुत कम और थोड़ा २ करके अनेक बार पीना चाहिये ।

जल पकाने की विधि ।

अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेन द्विकेन वा ।
अथवा क्वथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं वदेत् ॥
क्वाथ्यमानं तु निर्वेगं निष्फेनं निर्मलं च यत् ।
दोषघ्नं तु विजानीयात् प्रायशो पाचनं लघु ॥
पादशेषं तु यत्तोयमारोग्याम्बु तदुच्यते ॥

आयुर्वेद में जल पकाने के विषय में चार नियम लिखे हैं:—

१. जल को पकाते २ अष्टमांश शेष रखना । १ सेर जल का आध पाव रक्खें ।

२. चतुर्थांश रखना अर्थात् एक सेर का एक पाव शेष रखना ।

३. अर्धावशेष रखना । सेर जल का आध सेर रखना ।

४. जल को केवल एक या दो जोश दे कर रख लेना । इस प्रकार उबाल कर रखे हुए पानी को 'आरोग्याम्बु' कहते हैं ।

इन चारों नियमों के अनुसार जब किसी भी नियम से जल पकाना हो तो उचित है कि धीरे २ हलकी अग्नि पर जल को इस प्रकार औटावें कि जल स्वयं निष्फेन (झागरहित) हो कर निर्मल हो जावे; इस प्रकार औटाए हुए जल को क्वथित जल कहते हैं । वह क्वथित जल त्रिदोषनाशक, पाचन और लघु है ।

चिकित्सक को उचित है कि दोषों के बलाबल को विचार कर उपरोक्त जलों में से विचार कर क्वथित जल का प्रयोग करे ।

ऋतु भेद से जल पाक विधि ।

निदाघे त्वर्धपादोनं पादहीनं तु शारदम् ।
हिमेऽर्धशेषं शिशिरे तथा वर्षावसन्तयोः ॥

शिशिरे च वसन्ते च हिमे चार्धावशेषितम् ।
अष्टमांशावशेषं तु वारि वर्षासु शस्यते ॥

तत्पादहीनं पित्तघ्नमर्धहीनं तु वातनुत् ।
त्रिपादहीनं श्लेष्मघ्नं संग्राह्यग्निप्रदीपनम् ॥

ग्रीष्म ऋतु में अर्धावशेष, शरद् ऋतु में चतुर्थांश, हेमन्त में अर्धावशेष और वर्षा में अष्टमांश शेष जल पकाना उचित है ।

जो जल सेर में से तीन पाव रहा हो वह पित्त नाशक, जो आध सेर रहा हो वह वातहर और जो सेर का पाव भर रहा हो वह कफ नाशक समझा जाता है, इसी प्रकार अष्टमांश शेष जल त्रिदोषहर समझना चाहिये ।

क्वथित जल को शीतल करने की विधि

शृताम्बु तत् त्रिदोषघ्नं यदन्तर्वाष्पशीतलम् ।

जल को पका कर ऐसे पात्र में ठण्डा करें जो ढका हुआ हो, जिस में से पानी की भाप न निकल सके । इस प्रकार शीतल किया हुआ जल त्रिदोषहर समझा जाता है ।

शृत शीतल जल के गुण

अरूक्षमनभिष्यन्दि क्रिमितृड्ज्वरहृल्लघु ।
त्रिदोषघ्नं तु विज्ञेयं शृतशीतं विशेषतः ॥

पका कर विधिपूर्वक शीतल किया हुआ जल विशेष कर त्रिदोष नाशक होता है । रूक्षता रहित होता, अनभिष्यन्दी, क्रिमि, प्यास तथा ज्वर-नाशक और हलका होता है ।

वायु आदि द्वारा शीतल किये जल के गुण

धारापातेन विष्टम्भि दुर्जरं पवनाहतम् ।

धार बांध कर ऊपर से गिराया हुआ और इस तरह से शीतल किया हुआ जल विष्टम्भकारक होता है; जिस गरम पानी को पंखे की हवा से ठण्डा किया हो वह जल भी बहुत देर में कठिनता से हज़म होता है ।

दिन और रात्रि में पक्व जल सेवन विधि

दिवा श्रृतं पयो रात्रौ गुरुतामधिगच्छति ।
रात्रौ श्रृतं दिवा पीतं गुरुत्वमधिगच्छति ॥
तत्तु पर्युषितं वन्हि गुणोत्सृष्टं त्रिदोषकृत् ।
गुर्वम्लपाकं विष्टम्भि सर्वरोगेषु निन्दितम् ॥
श्रृतं शीतं पुनस्तप्तं तोयं विषसमं भवेत् ।
निर्यूहोऽपि तथा शीतः पुनस्तप्तो विषोपमः ॥

दिन का पकाया हुआ जल यदि रात्रि को रखा जावे तो वह भारी हो जाता है, इसी प्रकार रात में गरम किया पानी सवेरे तक पड़ा रहने से गुरु हो जाता है । रात्रि का पकाया हुआ दिन में और दिन का पकाया हुआ बासी पानी रात को पीने से त्रिदोष कारक, भारी, अम्लपाकी, विष्टम्भकारक और सब रोगों में निन्दित समझा जाता है; अतः रोगी को दिन का पकाया हुआ जल दिन में और रात्रि का पकाया हुआ रात्रि में पिलाना चाहिये, भूल कर भी दिन का जल रात्रि को और रात्रि का दिन को नहीं पिलाना चाहिये, जो जल औटा कर ठण्डा किया गया हो उसको यदि दूसरी बार गरम किया जावे तो विष के समान हो जाता है, इसी प्रकार एक बार शीतल होने पर दूसरी बार गरम किया हुआ क्वाथ विष की तरह हानि करता है ।

रात्रि में गरम जल पीने का लाभ

अजीर्णं जरयत्याशु पीतमुष्णोदकं निशि ।

पका हुआ उष्ण जल रात्रि में पीने से कफ को नष्ट करता, वायु के प्रकोप को शान्त करता और अजीर्णहर होता है ।

शृत शीतल जल किन रोगों में लाभकर है

दाहातिसारपित्तास्रमूर्च्छामद्यविषार्तिषु ।
मूत्रकृच्छ्रे पाण्डुरोगे तृष्णाछर्दि श्रमेषु च ॥
मद्यपानसमुद्भूते रोगे पित्तोत्थिते तथा ।
सन्निपातसमुत्थेषु शृतं शीतं प्रशस्यते ॥

दाह, अतिसार, पित्तप्रकोप, रुधिर विकार, मूर्छा, मद्य का नशा, पीड़ा, विषजन्यरोग, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डुरोग, तृष्णा, वमन, श्रम, मद्य से उत्पन्न रोग और सन्निपातज रोगों में सदा पका कर ठण्डा किया हुआ जल हितकारी समझा जाता है।

उष्ण जल के विशेष गुण

उष्णं तदग्निजननं लध्वन्नं वस्तिशोधनम् ।
पार्श्वरुक्पीनसाध्मानं हिक्कानिलकफायहम् ॥
शस्तं तृषाश्वासशूलेषु सद्यः शुद्धौ नवज्वरे ।
ज्वरकासकफश्वासपित्तवातामभेदसाम् ॥
दीपनं पाचनं चैव पथ्यमुष्णोदकं सदा ।
आनाहपाण्डुशूलाशर्गुल्मशोथोदरापहम् ॥

उष्ण जल अग्निवर्धक; लघु; अन्न को पचाने वाला और वास्ति-शोधक है। यह पार्श्वशूल, अध्मान, हिचकी, वात, कफ, तृषा, श्वास, शूल, ज्वर, कास, पित्त, आम, मेदा; आनाह; पाण्डुरोग; अर्श तथा गुल्म नाशक है। उष्ण जल दीपन; पाचन; अग्निवर्धक और पथ्यकर है।

रोगविशेषे जलसंस्कार विधि ।

शृतं शीतं जलं दद्यात् तृड्दाहज्वरशान्तये ।
पित्तमद्यविषार्तेषु तिक्तकैः शृत शीतलम् ॥
मुस्तापर्पटकोदीच्यच्छत्राख्योशीरचन्दनैः ॥

चिकित्सक को उचित है कि तृषा; दाह; ज्वर, पित्तजनित रोग; मद्य

और पित्तजनित रोगों में तिक्तरस बहुल पदार्थ नागरमोथा; पित्तपापड़ा; सुगन्धबाला; धनियां; खस और श्वेत चन्दन आदि द्वारा जल को पका कर उसका प्रयोग करें। इस प्रकार के जल से तृषा; दाह और ज्वर शान्त होते तथा चित्त प्रसन्न होता है; इसी प्रकार भिन्न २ रोगों में अपनी बुद्धि के अनुसार भिन्न २ औषधियों से पकाया हुआ जल प्रयोग करें।

आतुरालय

सामान्यतो ज्वरी पूर्वं निर्वाते निलये वसेत् ॥
निर्वातमायुषो वृद्धिमारोग्यं कुरुते यतः ॥

सामान्यतः ज्वर रोगी को सदा निर्मल; स्वच्छ; पवित्र और निर्वात स्थान में रखना चाहिये। ज्वर रोगी का कमरा ऐसा नहीं होना चाहिये जिसमें वायु बहुत वेग से आता हो और न ऐसा बन्द कमरा हो जिस में ताज़ी हवा बिलकुल न आती हो, बल्कि रोगी का कमरा ऐसा होना चाहिये जिसमें नयी और ताज़ी हवा आती हो। इस प्रकार के स्थान में रखने से रोगी की आयु बढ़ती है और ज्वर उपद्रवरहित होकर शीघ्र पच जाता है। यदि मकान ऐसा खुला हो जिसमें हवा बहुत वेग से आकर रोगी को स्पर्श करे तो इस वायु के स्पर्श से शरीरस्थ वातादि दोष कुपित होने; ज्वर बढ़ने और अन्य उपद्रव होने का भय रहता है।

यद्यपि इस प्रकार के पवित्र, निर्मल और शुद्ध मकान की प्रत्येक रोगी के लिए आवश्यकता है तथापि रोगी की अवस्था; दोषों की न्यूनाधिकता और ऋतु को देखकर योग्य मकान का प्रबन्ध करें।

हर्म्ये शुभ्राभ्रसंकाशे शशांककरशीतले ।
मलयोदकसंसिक्ते सुप्यात् पित्तज्वरी नरः ॥

पित्तज्वर के रोगी को शरद् ऋतु के बादलों के समान श्वेत मकान में रखे अर्थात् जिस में सफ़ेदी हुई हो, निर्मल हो और जिस मकान में खिड़कियों द्वारा चन्द्रमा की किरणें अन्दर आती हों और जिनसे मकान शीतल रहता हो; जिस मकान में चन्दन जल का छिड़काव किया गया हो और निर्मल हो ऐसे मकान को पित्तज्वर वाले रोगी के लिए प्रयुक्त करें। इसके विपरीत शिशिर और हेमन्त ऋतु में किसी रोगी को पित्तज्वर होने पर उसे इस प्रकार

शीतल मकान में रखना उचित नहीं है। शीतकाल में मकान में कोयले सुलगा कर उसे गरम रखना चाहिये।

शयन विधि।

ज्वरे प्रमोहो भवति स्वल्पैरपि विचेष्टितैः।
निषण्णं भोजयेत्तस्मान्मूत्रोच्चारौ च कारयेत्॥

ज्वर वाले रोगी को सदा एकान्त में चुपचाप लेटे रहना चाहिये क्योंकि ज्वर की हालत में ज़रा भी परिश्रम आदि करने से रोगी को मोह होकर मूर्छा हो जाती है; इसलिए रोगी को किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करनी चाहिये। मल मूत्र आदि के त्याग के लिए भी किसी दूसरे आदमी की सहायता लें ताकि रोगी किसी प्रकार थकावट अनुभव न करे। मल मूत्रादि सदा विट् पातादि पात्र (कमोड) में ही त्याग करने चाहियें।

दिन में सोने का निषेध।

दिवास्वापं न कुर्वीत यतोऽसौ स्यात्कफावहः।
ग्रीष्मवर्ज्येषु कालेषु दिवास्वापो निषिध्यते॥
उचितो हि दिवास्वापो नित्यं येषां शरीरिणाम्॥
वातादयः प्रकुप्यन्ति तेषामस्वपतां दिवा॥

मनुष्यों को और विशेष कर रोगियों को दिन में कभी नहीं सोना चाहिये क्योंकि दिन में सोने से कफ की वृद्धि होती है। ग्रीष्म ऋतु के सिवाय किसी ऋतु में भी नहीं सोना चाहिये। जिन लोगों को दिन में सोनें का अभ्यास हो वह यदि दिन में न सोवें तो उनके वात आदि दोष कुपित हो जाते हैं; इसलिए उन के लिए दिन में सोने का निषेध नहीं है।

दिन में सोने वाले व्यक्ति।

व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतक्लान्तानतीसारिणः॥
शूलश्वासवमितृषापरिगतान्हिक्कामरुत्पीड़ितान्॥
क्षीणान्क्षीणकफान् शिशून्मदहतान्वृद्धाँस्तथाजीर्णिनो।
रात्रौ जागरितान्नरान्निरशनान्कामं दिवास्वापयेत्॥

व्यायाम (कसरत), अधिक परिश्रम, स्त्रीप्रसंग, अधिक मार्ग चलने और अधिक हाथी घोड़े आदि पर चढ़ने से जो मनुष्य थक गये हों तथा अतिसार रोगी, शूल रोगी, श्वास रोगी, वमन वाले, तृषा रोगी, हिक्का रोगी, वातपीड़ित, क्षीण, बालक, वृद्ध, अजीर्ण रोगी, रात्रि में जागने वाले और मदिरा पीने वालों को दिन में इच्छानुसार सोना चाहिये । उपवास अर्थात् जिन्होंने लंघन किया हो ऐसे मनुष्यों के लिए भी सोना हितकर है ।

लंघन से अभिप्राय

शरीरलाघवकरं यद्द्रव्यं कर्म वा पुनः ।
तल्लंघनमिति ज्ञेयं बृंहणं तु पृथग्विधम् ॥

प्रायः लौकिक भाषा में लंघन उपवास को कहा जाता है परन्तु आयुर्वेद शास्त्र में लंघन का यह अभिप्राय है कि जो द्रव्य शरीर में पहुंच कर हल्कापन करे अथवा वह कर्म जिस के करने से शरीर की विकृति नष्ट हो कर शरीर हल्का हो जावे उस को लंघन कहते हैं और इस के विपरीत जिन द्रव्यों के उपयोग से शरीर का बल और मांस बढ़ जावे अथवा जिस कर्म के करने से शरीर का बल बढ़े उस को बृंहण कहते हैं ।

लंघन क्यों करना चाहिये

आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान् पिधापयेत् ।
विदधाति ज्वरं दोषः तस्माल्लङ्घनमाचरेत् ॥
लङ्घनेन क्षयं नीते दोषे सन्धुक्षितेऽनले ।
विज्वरत्वं लघुत्वं च क्षुच्चैवास्योपजायते ॥

वातादि दोष आमाशय में आमरस के साथ मिल कर जठराग्नि को निर्बल और स्रोतों को अवरुद्ध करके ज्वर को उत्पन्न करते हैं; ऐसी दशा में लंघन का उपयोग करने से वातादि दोष क्षय हो कर जाठराग्नि प्रदीप्त होती और ज्वर दूर होकर शरीर हल्का हो जाता है, इसलिए ज्वर की प्रथम अवस्था में ज्वर रोगी को लंघन कराना वैद्य का सब से मुख्य और प्रथम कर्तव्य है ।

लंघन के योग्य और अयोग्य प्राणी

ज्वरे लंघनमेवादौ उपदिष्टमृतेज्वरात् ।
क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवम् ॥
तत्तु मारुतक्षुत्तृष्णामुखशोषभ्रमान्विते ।
कार्यं न बाले वृद्धे वा न गर्भिण्यां न दुर्बले ॥

नवीन ज्वर में सदा लंघन कराना उचित है परन्तु क्षय, वात, भय, क्रोध, काम, शोक, परिश्रम आदि से उत्पन्न ज्वर में लंघन कराना उचित नहीं है। प्रलेपकज्वरी, जीर्णज्वरी, वातप्रधान रोगी, क्षुधातुर, तृषारोगी, मुखशोषरोगी, भ्रमरोगी तथा बालक, वृद्ध और गर्भिणी को लंघन कराना उचित नहीं है।

लंघन विधि

बलाविरोधिनाथैनं लङ्घनेनोपपादयेत् ।
बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः ॥
ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा भोजयेल्लघुभोजनम् ।
ये गुणाः लंघने प्रोक्तास्ते गुणा लघुभोजने ॥

चिकित्सक का कर्तव्य है कि ज्वर रोगी को लंघन इस प्रकार करावे कि उस का बल क्षीण न हो क्योंकि रोगी के शरीर का बल नष्ट हो जाने से अनेक बाधाएं हो सकती हैं और रोगी का जीवन ही ख़तरे में पड़ सकता है और इस बल के लिए सारी चिकित्सा करनी होती है इसलिए बल का सदा ध्यान रखे। यदि ज्वर का वेग न हटा हो और रोगी के शरीर में ज्वर का अंश विद्यमान हो उस समय भी उसे अति हलका भोजन कराना चाहिये क्योंकि जो गुण उपवास में कहे गये हैं वही गुण लघु पदार्थों के भोजन में भी विद्यमान हैं।

हीन लंघन के लक्षण।

कफोत्क्लेशः सहृल्लासः ष्ठीवनं च मुहुर्मुहुः ॥
कण्ठस्य हृदयाशुद्धिस्तन्द्रा स्याद्धीनलंघने ॥

वमन द्वारा कफ बार २ निकलता हो, जंभाई आती हों, रोगी बार २ थूकता हो, कफ से रोगी का कण्ठ जकड़ जाता हो, हृदय भारी हो और तन्द्रा होवे तो समझें कि रोगी को लंघन भली प्रकार नहीं हुआ है।

अति लंघन के लक्षण।

पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्च कासः शोषो मुखस्य च।
क्षुत्प्रणाशोऽरुचिस्तृष्णा दौर्बल्यं श्रोत्रनेत्रयोः॥
मनसः सम्भ्रमोऽभीक्ष्णमूर्ध्ववातस्तमो हृदि।
देहाग्निबलहानिश्च लंघनेऽतिकृते भवेत्॥

शरीर की सन्धियों में पीड़ा होना, शरीर में हड़फूटन होना, खांसी, मुखशोष, क्षुधा का नाश, अरुचि, तृष्णा, भ्रम होना, नेत्रों और कानों में निर्बलता होना, वायु का प्रतिलोम होकर मस्तिष्क की ओर आना, हृदय में ग्लानि और जठराग्नि का निर्बल होना, यह सब लक्षण अत्यन्त लंघन के समझने चाहियें।

ठीक हुए लंघन के लक्षण।

वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गे गात्रलाघवे।
हृदयोद्गारकण्ठास्यशुद्धौ तन्द्राक्लमे गते॥
स्वेदे जाते रुचौ चैव क्षुत्पिपासा सहोदये।
कृतं लंघनमादेश्यं निर्व्यथे चान्तरात्मनि॥

अपानवायु, मूत्र तथा मलों का शरीर से नियमानुसार निकलना, शरीर हलका होना, हृदय-मुख और कण्ठ का शुद्ध होना, तन्द्रा और ग्लानि का नष्ट होना, पसीना आना, रुचि का होना, भूख प्यास का एक साथ लगना और शरीर में किसी प्रकार की पीड़ा न होना यह सब लक्षण उत्तम लंघन के समझने चाहियें।

अत्यन्त लंघन होने पर वैद्य का कर्त्तव्य।

अत्यन्तलंघितं दृष्ट्वा तस्य संतर्पणं हितम्॥
द्राक्षादाड़िमखर्जूरप्रियालैः सपरूषकैः॥
तर्पणार्हस्य कर्तव्यं तर्पणं ज्वरशान्तये॥

जो रोगी अति लंघन के कारण निर्बल हो गया हो उसको द्राक्षा (मुनक्का), अंगूर, अनार, खजूर, और फालसे आदि से सन्तर्पण द्वारा बलवान बनाना हितकारी है।

ज्वर रोग में पथ्यापथ्य।

सज्वरो ज्वरमुक्तो वा विदाहीनि गुरूणि च।
असात्म्यान्नानि पानानि विरुद्धाध्यशनानि च॥
व्यायाममतिचेष्टां वाभ्यंगं स्नानं च वर्जयेत्।
तेन ज्वरः शमं याति शान्तश्च न पुनर्भवेत्॥

रोगी ज्वरमुक्त हो गया हो अथवा ज्वरयुक्त हो तब भी दाहकारक, भारी प्रकृतिके प्रतिकूल अन्न और प्रतिकूल आहार-विहारको छोड़ दे। विरुद्ध भोजन (संयोग विरुद्ध जैसे दूध और मछली), अधिक भोजन या भोजन के ऊपर दूसरी बार भोजन कर लेना, दण्ड, कसरत, अधिक घूमना-फिरना, अधिक श्रम करना, तैल; आदि की मालिश करना, और स्नान करना आदि अपथ्यों का त्याग कर दें। इसके विपरीत प्रकृति के अनुकूल लघु भोजन आदि पथ्यों की शरण ले; इस प्रकार पथ्य करने और अपथ्य को त्याग देने से ज्वर शान्त हो जाता और उसका फिर शीघ्र वेग नहीं होता।

व्यायामादि अपथ्य त्याग की अवधि।

व्यायामं च व्यवायं च स्नानं चंक्रमणानि च।
ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्न बलवान् भवेत्॥

व्यायाम (कसरत) व्यवाय (मैथुन), स्नान और अधिक भ्रमण आदि कर्म ज्वर से मुक्त रोगी जब तक बलवान न हो जावे तब तक न करे।

यह पथ्यापथ्य सब ज्वरों में ही करना उचित है, विशेष पथ्यापथ्य प्रत्येक ज्वर की चिकित्सा के साथ लिखा जावेगा।

ज्वर रोगी का अन्नकाल निर्णय।

क्षुत्संभवति पक्वेषु रसदोषमलेषु च।
काले वा यदिवाकाले सोऽन्नकाल उदाहृतः॥

आमे पाकं गते नृणां यदा भोजनलालसा ।
भवेत्काले ह्यकाले वा सोऽन्नकाल उदाहृतः ॥

ज्वररोगी के आमरस तथा दोष पच जाने पर जब उसे अन्न की इच्छा होती है उसको उसी क्षण अन्न दे देना चाहिये; यही रोगी का अन्नकाल समझना चाहिये ।

ज्वर चिकित्सा का आदेश ।

ज्वरे तुल्यर्तुदोषत्वं चिकित्सा कारयेत्सुधी ।
ऊष्मा पित्तादृतेनास्ति ज्वरो नास्त्यूष्मणा विना ॥
तस्मात्पित्तविरुद्धानि त्यजेत्पित्ताधिकेऽधिकम् ॥

यद्यपि ज्वर की चिकित्सा दोषों के बलाबल के अनुसार करनी चाहिये अर्थात् जो दोष समयानुसार प्रबल प्रतीत हो उसको प्रधान मान कर ही चिकित्सा करे तथापि ध्यान रहे कि शरीर में पित्त के बिना किसी प्रकार की गर्मी नहीं हो सकती और गर्मी के बिना ज्वर नहीं हो सकता इसलिये चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि वात, पित्त, कफ में से जो दोष प्रधान हो उस को प्रबल मान कर चिकित्सा करे और साथ ही पित्त के नाश करने वाली चिकित्सा का भी प्रयोग करता रहे ।

ज्वर रोग में चिकित्सा का क्रम ।

ज्वरादौ लंघनं कुर्यात् ज्वरमध्ये तु पाचनम् ।
ज्वरान्ते भेषजं दद्यात् ज्वरमुक्ते विरेचनम् ॥
त्रिविधं त्रिविधे दोषे तत्समीक्ष्य प्रयोजयेत् ।
दोषेऽल्पे लंघनं पथ्यं मध्ये लंघनपाचनम् ॥
प्रभूते शोधनं तच्च मूलादुन्मूलयेन्मलान् ।
अंशांशं यत्र दोषाणां विवक्तुं नैव शक्नुयात् ॥
साधारणीं क्रियां तत्र विदध्यात्तु चिकित्सकः ॥

सदैव ज्वर के तत्काल होने पर उपरोक्त विधि से रोगी को लंघन करावें, उसके बाद दोषों को भली प्रकार पचाने के लिए पाचन द्रव्यों का

प्रयोग करें। जब यह जान लें कि दोष भली भांति पच गये और शरीर से निकलने के लिए तय्यार हैं तो उस समय ज्वर की अन्तिम अवस्था में विरेचन द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये। यह ज्वर की शास्त्रोक्त साधारण और अटल चिकित्सा लिखी गई है इसके विपरीत चिकित्सा करना सदा हानिकर है। इस सिद्धान्त के अनुसार चिकित्सा करते हुए तीनों दोष वात; पित्त; कफ की तीनों अवस्था—अल्पावस्था; मध्यमावस्था तथा प्रभूतावस्था—का भली प्रकार विचार करें। यदि दोष अल्प हों तो लंघन से लाभ होता है; यदि दोष मध्यम मात्रा में बढ़े हों तो उस हालत में लंघन के साथ २ पाचन द्रव्यों का भी प्रयोग करना चाहिये जिससे दोष शीघ्र पच जावें; जब दोष अत्यन्त बढ़े हुए हों उस दशा में समयानुसार शोधन द्रव्यों का प्रयोग कर के दोषों को शान्त करने का यत्न करें। जब रोगी को देख कर वैद्य अंशांश कल्पना द्वारा दोषों की प्रधानता या अप्रधानता का निर्णय न कर सके उस समय साधारण चिकित्सा करें। साधारण क्रिया से यह अभिप्राय है कि ऐसी संशमन औषधि का प्रयोग करें जो दोषों का शमन करने में समर्थ हो परन्तु वमन-विरेचन आदि का बिना सोचे समझे प्रयोग कर देना रोगी के लिए हानिकर होने के सिवाय वैद्य को भी अपयश दिलाने वाला और निन्दित कर्म है।

ज्वर चिकित्सा

नवीन ज्वर चिकित्सा

तरुणं तु ज्वरं पूर्वं लंघनेन क्षयं नयेत् ।
निर्वातसेवनात्स्वेदाल्लंघनादुष्णवारिणा ॥
पानादामज्वरे क्षीणे पश्चादौषधमाचरेत् ।
आमदोषमलिंगाद्वा लंघयेत्तं यथाविधैः ।
लंघनं लंघनीयस्तु कुर्याद्दोषानुरूपतः ।
त्रिरात्रमेकरात्रं वाहोरात्रमथवा ज्वरे ॥

वात पित्त तथा कफ आदि से उत्पन्न हुए सब प्रकार के नवीन ज्वरों में वैद्य को उचित है कि उपरोक्त नियमानुसार रोगी को निर्वात स्थान में रखे तथा उष्ण जल, स्वेद कर्म और लंघन के उपयोग से दोषों को पचाने का प्रयत्न करे । दोषों की साम तथा निराम अवस्था को विचार कर लंघन का प्रयोग करना चाहिये; प्रथम दिन रोगी को २४ घण्टे लंघन करावे अथवा तीन दिन रात्रि पर्यन्त लंघन करावें, यदि इस काल में ज्वर न पचे तो फिर दोषों की पाकविधि के अनुसार लंघन करें या जब तक दोष साम विदित हों तब तक लंघन कराते रहें ।

सद्यो भुक्तस्य वा जाते ज्वरे सन्तर्पणोत्थिते ।
वमनं वमनार्हस्य शस्तमित्याह वाग्भटः ॥
अनवस्थितदोषाणां वमनं तरुणज्वरे ।
हृद्रोगश्वासमानाहं मोहं च कुरुते भृशम् ॥
वमितं लंघयेत्प्राज्ञो लंघितं न तु वामयेत् ।
वमनं क्लेशबाहुल्याद्धन्याल्लंघन कर्षितम् ॥
न कार्यं गर्भिणीबालवृद्धदुर्बलभीरुभिः ।

जब रोगी को अधिक भोजन के कारण ज्वर चढ़ा हो और आमाशय अन्न से भरा होने के कारण उत्क्लेश आदि लक्षण प्रतीत हों, उस समय उचित है कि रोगी को तत्काल वमन करा दें; परन्तु जब आमाशय ख़ाली हो और वमन द्वारा दोषों के निकलने की आशा न हो तो ऐसी दशा में कदापि लंघन नहीं कराना चाहिये, वमन करा देने से प्रायः हृद्रोग, श्वास, आनाह और मोह आदि उपद्रव हो जाते हैं। यह भी ध्यान रहे कि जिन रोगियों को अति संतर्पण के कारण वमन कराई गई हो और वमन से दोष न पचें तो दोषों के पचाने के लिए लंघन भी करा सकते हैं परन्तु लंघन से कृश हुए रोगियों को किसी दशा में भी वमन कराना उचित नहीं है।

लंघन के समय औषधि का प्रयोग

दोषशेषस्य पाकार्थमग्निसंधुक्षणाय च।
लंघितश्चाप्यदोषश्चेद् यवागूपानमाचरेत् ॥

यथा विधि लंघन कराने पर भी यदि दोष भली प्रकार न पचे हों तो ऐसी दशा में दोषों के पाचनार्थ लंघन के साथ ही पाचन गुणयुक्त यूष का प्रयोग करने से बड़ा लाभ होता है।

पाचन और शमन औषधि देने का समय

आमज्वरस्य लिंगानि न दद्यात् तत्र भेषजम्।
भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो जनयति ज्वरम् ॥
पाययेद्दोषहरणं मोहादामज्वरे तु यः।
स सुप्तं कृष्णसर्पन्तु कराग्रेण परामृशेत् ॥
पाययेदातुरं सामं पाचनं सप्तमे दिने।
शमनेनाथवा दृष्ट्वा निरामं तमुपाचरेत् ॥
कृशं चैवाल्पदोषञ्च शमनीयैरुपाचरेत्।

आमज्वर में रोगी को वमन तथा विरेचन की औषधि नहीं देनी क्योंकि दोष पच कर जब तक शरीर से निकलने के लिए स्वयं तय्यार नहीं

होते उस अवस्था में उनको वमन, विरेचन आदि द्वारा निकालने का यत्न करने पर और प्रकृति विरुद्ध वमन आदि कर्म कराने से ज्वर की वृद्धि हो जाती है। इसलिये शास्त्रकारोंने लिखा है कि जो वैद्य अपने अज्ञान के कारण आमदोषों को शरीर से शीघ्र निकालने का यत्न करते हैं और वमन-विरेचन आदि द्रव्यों का प्रयोग करते हैं वह मानो सोते हुए काले सांप को अपने हाथ से जगाते हैं। चिकित्सक को उचित है कि आमज्वर में सदा लंघन और पाचन द्रव्य यूष आदि द्वारा दोषों को पचाने का प्रयत्न करें। यदि रोगी अति कृश हो और दोष भी अल्प हों तो शमन गुणप्रधान पाचन द्रव्यों का प्रयोग करे, वमन-विरेचन आदि ऐसे रोगियों के लिए हानिकर है।

वातज्वर चिकित्साविधि

वातिके सप्तरात्रेण ज्वरे युञ्जीत भेषजम्।
ज्वरितं षडहेऽतीते लघ्वन्नं प्रति भोजनम्॥
पाचनं शमनीयं च कषायं पाययेद्भिषक्।

प्राकृतिक नियमों के अनुसार वात सात दिन में पच जाता है, इस पाचन के बाद आवश्यकतानुसार रोगी को प्रथम लघु भोजन करावें। ६ दिन व्यतीत हो जाने पर सातवें दिन ज्वर पच जाने पर रोगी को तत्काल पथ्यरूपी लघु और पाचन शमनादि द्रव्यों का देना उचित है। ऊपर लिखा जा चुका है कि आमदोष के पच जाने पर अन्न न देने से धातुक्षय का भय रहता है।

वातज्वर में अत्यन्त लंघन का निषेध

कफपित्ते द्रवे धातू सहेते लंघनं बहु।
आमक्षयादूर्ध्वमपि वायु न सहते क्षणम्॥

कफ और पित्त दोनों धातु द्रव हैं इसलिए यह अधिक लंघन को भी सह सकते हैं परन्तु आमदोष के नाश होने पर वायु एक क्षण भी लंघन को सहन नहीं कर सकता।

औषधि दान का अभिप्राय

सप्ताहात्परतोऽदुष्टे सामे स्यात्पाचनं ज्वरे।
निरामे शमनं स्तब्धे सामे नौषधमाचरेत्॥

आमज्वर उपद्रव सहित हो तो कभी औषधि नहीं देनी चाहिये और यदि उपद्रवों से रहित हो तो पाचन देना चाहिये। आमज्वर में औषधि न देने का अभिप्राय यही है कि विरेचन आदि की औषधि न दे। पाचन औषधियों का किसी दशा में भी निषेध नहीं है। आमज्वर में सदा मन्दवीर्य पाचन द्रव्य देने चाहियें जो अपने तीव्र प्रभाव से दोषों को पचाने में शीघ्रता न करें, कहावत है—"कि सहज पके सो मीठा होय" इस लिए दोषों को धीरे २ पचाना ही उचित है।

वातज्वर में स्वेद

वातश्लेष्मज्वरे स्वेदं जंघापार्श्वास्थिशूलिनि।
पीनसश्वासवाधिर्ये कारयेत्तद्विधानवित् ॥
स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा पावकमाशयम्।
हत्वा वातकफस्तम्भं स्वेदो ज्वरमपोहति ॥

यदि वात तथा कफज्वर में पसली और हड्डियों में शूल हो, पीनस (जुकाम), श्वास तथा बधिरता हो तो वैद्य को उचित है कि विधि पूर्वक रोगी को स्वेदकर्म करावे, पसीना होने से शरीरस्थ सम्पूर्ण नाड़ियां मृदु होकर अग्नि कोष्ट में पहुंच जाती और विबन्ध आदि नष्ट हो कर ज्वर हलका हो जाता है और धीरे २ बिल्कुल ही उतर जाता है।

वातज्वर में कषाय

वातज्वर की पूर्व अवस्था में निम्नलिखित क्वाथ प्रयोग कराने चाहियें इन से जहां दोष शीघ्र पच जाते हैं, वहां प्रायः ज्वर भी शान्त हो जाता है।

१. गुडूच्यादि क्वाथ

गिलोय, पीपलामूल, सोंठ प्रत्येक ७ माषे कूट कर इस में ३२ तोले जल डाल कर पकावें, चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर रोगी को पिलावें। यह काढ़ा शैत्यांश वाले वायु के प्रकोप में अत्यन्त लाभ करता है, इस के देने से वात दोष शीघ्र पच कर ज्वर शान्त हो जाता है।

२. शालपर्ण्यादि कषाय

शालपर्णी ५ माशे   रास्ना ५ माशे   अनन्तमूल ५ माशे
खरैंटी ५ माशे   गिलोय ५ माशे

उपरोक्त विधि से क्वाथ बना कर रोगी को सेवन करावें । इन द्रव्यों का काढ़ा कुछ २ गरम पीने से वातज्वर और विशेष कर रक्तगत वातज्वर नष्ट होता है । यह इन ज्वरों की एक प्रसिद्ध औषधि है और मलशोधक भी है।

३. दशमूलादि काढ़ा

बिल्व, गम्भारी, अरणी, पाढल, अरलू, गोखरू, छोटी कटैरी, बड़ी कटैरी, पृष्टपर्णी, शालपर्णी, रास्ना, पिप्पली, पीपलामूल, कूठ, सोंठ, चिरायता, गिलोय, नागरमोथा, खरैंटी, सुगन्धवाला, मुनक्का (द्राचा), जवासा और शतावर इन औषधियों को दो २ माशे या रोगी के बलाबल के अनुसार न्यूनाधिक मात्रा में ले कर यथाविधि इन का काढ़ा बना कर रोगी को पिलावें इस के पीने से वायु अनुलोम होता, कम्प, आनाह आदि सब उपद्रव दूर हो कर ज्वर शान्त हो जाता है; वातज्वर के लिए यह उत्तम और श्रेष्ट औषधि है ।

४· कलिङ्गादि काथ

इन्द्रजौ, गिलोय, सोंठ इन तीनों द्रव्यों का काढ़ा वातज्वरहर है । यह वायु के विकृत होने की अवस्था में अधिक उत्तम है ।

५. बृहत्पंचमूलादि काथ ।

बेल, श्योनाक, गम्भारी, पाटला, अरणी, खरैंटी, रास्ना, कुलथी और पोहकरमूल प्रत्येक ३ माशे ३२ तोले पानी में पकावें और चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर किञ्चित् उष्ण ही रोगी को पिलावें । इन सब द्रव्यों का काढ़ा वातज्वर में होने वाली जोड़ों की दर्द, कटिशूल आदि में लाभकारी है । अतः यदि वातज्वरी को कटि और सन्धियों में शूल हो तो बृहत्पंचमूल क्वाथ सेवन कराना चाहिये, इस से रोगी को पूर्ण लाभ होता है ।

६. पिप्पल्यादि कषाय ।

पीपल छोटी, अनन्तमूल, मुनक्का, सौंफ़, सम्भालु के बीज, इन सब द्रव्यों का उपरोक्त विधि अनुसार क्वाथ बनावें । यह काढ़ा वातज्वर नाशक है । यह काढ़ा विशेष कर आनाह और वायु के प्रतिलोम होने की दशा में बहुत लाभकारी है ।

७. शतावर्यादि स्वरस।

शतावर और गिलोय का स्वरस या इनका क्वाथ बनाकर शीतल किया हुआ ही मिश्री डाल कर पिलाने से वातज्वर दूर होता है। यह प्रयोग रूक्षांश बहुल वातदोष की शान्ति के लिए विशेष लाभकारी है।

८. निम्बादि चूर्ण।

नीम के पत्ते १० भाग, आंवला १ भाग, सैन्धा नमक १ भाग, हरड़ १ भाग, त्रिकुटु ३ भाग, सौंचर नमक १ भाग, बहेड़ा १ भाग, अजवायन ४ भाग, जवाखार २ भाग, इन सब औषधियों को पीस कर चूर्ण बना लें। इसे जीर्णज्वर की ऐसी अवस्था में प्रयोग करें जब ज्वर के साथ रोगी को अजीर्ण हो अथवा दस्त भी आते हों।

९. आमलक्यादि चूर्ण।

आंवले, चीते की छाल, जंगी हरड़, पीपल, सैन्धानमक, यह पांचों चीज़ें समान २ लेकर चूर्ण बना लें। आमलक्यादि चूर्ण, दीपन, पाचन, सर, वातानुलोमक तथा वात और कफ नाशक है, यथोचित् अनुपान के साथ अथवा उष्णोदक के साथ ३ माशे से ६ माशे तक सेवन करावें। यह चूर्ण विशेष कर बद्ध कोष्टावस्था में विशेष लाभ करता है।

१०. श्रीपुष्पादि चूर्ण।

लौंग, लाल चन्दन, अकरकरा, सोंठ, काली मिरच, पीपल, बड़ी इलायची के दाने, पीपलामूल, दालचीनी, प्रत्येक सम भाग। इन द्रव्यों का चूर्ण बना लें। यह दीपन, पाचन, ग्राही और वातज्वर नाशक है, आनाह की हालत में इस चूर्ण को यथोचित् काढ़े या गरम पानी के साथ देने से वातज्वर में लाभ होता है। मात्रा ४ रत्ती से २ माशा तक।

वातज्वर की रसों द्वारा चिकित्सा।

——0:0:0——

वर्तमान काल में प्रत्येक मनुष्य अपने पेट भरने के धन्धे में ऐसा फंसा हुआ है कि वह क्वाथ, चूर्ण आदि को तय्यार करने की तकलीफ़ पसन्द नहीं करता और ऐसी औषधि खाना चाहता है जो न कूटनी पड़े, न उबालनी पड़े और न कोई और झन्झट करना पड़े बल्कि बनी बनाई तय्यार (ready made) हो तथा थोड़ी मात्रा में खानी पड़े, इसलिए यहां वातज्वर के कुछ ऐसे योग लिखे जाते हैं जो वातज्वर की प्रत्येक अवस्था में दिये जा सकें और सद्यः फलप्रद हों।

१. कल्पतरु रस।

शुद्ध पारा, शुद्ध आंवलासार गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, सुवर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध सुहागा प्रत्येक १ तोला, सोंठ-पीपल प्रत्येक २ तोला, काली मिरच १० तोला। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली करें और शेष द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर दो पहर तक निरन्तर खरल करते रहें; इसको कल्पतरु रस कहा जाता है। इसकी मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक है। यह रस वातज्वर में शैत्य अधिक होने पर अदरक के रस के साथ प्रयोग करने से कांस, श्वास तथा शीत को नष्ट करता है तथा वायु का अनुलोमक है। यदि वातज्वर-रोगी को सिरदर्द हो तो इसकी नस्य (नास) लेने से छींकें आकर लाभ हो जाता है, तन्द्रा तथा प्रलाप में भी इसे सूंघने से लाभ होता है। कस्तूरी आदि वात हर औषधियों के साथ प्रयोग करने से यथोचित लाभ करता है। यह रस आमाशय को बल देने वाला, दीपन, पाचन और विसूचिका नाशक है। इस रस में स्वर्ण माक्षिक भस्म, लवण, गन्धक और एरण्ड तैल के द्वारा तय्यार की हुई डालनी चाहिये।

२ चन्द्रशेखर रस।

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, काली मिरच १ तोला, शुद्ध सुहागा १ तोला। पारे-गन्धक की कज्जली करने के बाद शेष द्रव्यों का चूर्ण मिला दें और खरल करके उस में ४ तोले कूज़े की मिश्री डाल कर ३ दिन तक रोहु मछली के पित्त में निरन्तर खरल करें; यह रस चन्द्रशेखर

रस कहाता है। यह रस वातज्वर तथा अन्य नवीन ज्वरों के लिए अति लाभकर है, यह रस स्रोतवाही, स्वेदजनक और पाचनगुण बहुल है। मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक अद्रक के रस और मधु के साथ मिला कर दें।

इस के देने से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है और फिनैसेटीन, ऐन्टीफैब्रिन आदि एलोपैथिक औषधियों की तरह हृदय (दिल) पर कोई बुरा प्रभाव नहीं होता। इस से शरीर निर्बल भी नहीं होता।

३. त्रिपुरभैरव रस।

शुद्ध मीठा तेलिया १ भाग, सोंठ २ भाग, पीपल बड़ी ३ भाग, काली मिरच ४ भाग, ताम्र भस्म ५ भाग, शिङ्गरफ शुद्ध ६ भाग।

इन सब द्रव्यों को तीन दिन तक अदरक के रस से रगड़ कर माष (उड़द) के बराबर गोली बना लें। यह रस तीव्र उष्णवीर्य है। इस के प्रयोग से हाथ-पैर की हड़फूटन, कफ-कास, अग्नि की मन्दता तथा ज्वर नष्ट होता है, यह शीत नाशक और रूक्ष है। इस के प्रयोग से रूक्षता अधिक बढ़ जाती है। गिलोय के रस या कषाय के साथ उपयोग करने से शीघ्र लाभ होता है।

४. नवज्वरांकुश रस।

शिंगरफ से निकाला हुआ शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध शिंगरफ ३ तोला, जमालघोटा शुद्ध ४ तोला।

पारे-गन्धक की कज्जली करके उस में शिंगरफ और जमालघोटा डाल कर भली प्रकार खरल करें, इस में दन्तीमूल (जमालघोटे की जड़) के काढ़े की भावना देकर १ रत्ती की गोली बना लें। इस को नवज्वरांकुश रस कहते हैं। यह तीव्र भेदक और रोचक है; वातज्वर की ऐसी अवस्था में जब दोषों के अति प्रकोप के कारण आन्तों में मल भरा हो इस का प्रयोग कर सकते हैं परन्तु ध्यान रहे कि ज्वर के मन्द वेग में ही इस रस का प्रयोग करना चाहिये। कोसे पानी में मिश्री मिला कर औषधि के साथ देने से कोष्ठ की शुद्धि भली प्रकार हो जाती है।

ज्वर धूमकेतु रस।

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शिंगरफ़ और समुद्रफेन इन सब पदार्थों को

समान २ भाग लेकर एकत्र अदरक के रस में एक पहर तक खरल कर के ३ रत्ती की गोली बना लें, इस का नाम ज्वर धूमकेतु रस है।

यह रस दीपन, पाचन, मूत्र शोधक, अग्निवर्धक और वातज्वर नाशक है। यथोचित अनुपान से इस का प्रयोग करना चाहिये।

ज्वर में उपद्रव शान्ति के उपाय

वातज्वर में निम्न उपद्रव हो जाया करते हैं उन की चिकित्सा के लिए भी अनुभूत—उपाय लिखे जाते हैं—

१. अंगभेद या हड़फूटन
२ निद्रा नाश
३. उदरशूल
४. अफारा
५. कर्णनाद
६. शुष्क कास

हड़फूटन और शूल नाशक विधि

यदि वातज्वर में रोगी को किसी विशेष स्थान पसली आदि में शूल हो तो ईंट को गरम करके कांजी में बुझा कर शूल वाले स्थान पर सेंक देने से दर्द हट जाती है। यदि रोगी के सारे शरीर में शूल हो या हड़फूटन हो तो ईंट अथवा रेत की पोटली गरम कर के कांजी में भिगो लें और उस से शूलस्थान तथा पृष्ठवंश को सेक दें, इस से सारे शरीर का हड़फूटन, पैर सो जाना, अंगों का जकड़ना तथा रोमांच आदि लक्षण शान्त हो जाते हैं।

निद्रानाश की चिकित्सा

१. कभी २ वातज्वर में नस्य, लंघन, चिन्ता, परिश्रम, शोक, भय और क्रोध आदि द्वारा वायु के रूक्षांश के अधिक बढ़ जाने से रोगी के मस्तिष्क में रूक्षता हो कर नींद नहीं आती। ऐसी दशा में कद्दू या काहू का तैल लगाने या सिर पर मावा (खोया) बांधने से बहुधा लाभ होता है; रोगी के कानों में स्त्री या गधी का दूध डालने से भी रूक्षता नष्ट हो कर रोगी को नींद आ जाती है।

२. पीपलामूल पीस कर १ माशे से ३ माशे तक कुछ गरम दूध के साथ देने से भी निद्रा आ जाती है।

३. दो से ४ रत्ती तक भुनी हुई भांग का चूर्ण शहद के साथ प्रयोग करने से भी रोगी को नींद आ जाती है क्योंकि भांग का प्रभाव मादक और निद्राकर है।

४. हलका कोसा घी पैरों के तलों और शंखदेश (कनपटी) पर मलने से भी रोगी को निद्रा आ जाती है।

आध्मान नाशक योग।

यदि वातज्वर में उदावर्त होने के कारण आध्मान हो तो २ रत्ती लाल हींग भून कर गरम जल के साथ प्रयोग करने से अफ़ारा नष्ट होता है।

वच, कूठ, देवदारु, शतावर, हींग और सैन्धानमक, इनको समान भाग लेकर निम्बू के रस में पीस कर नाभि के चारों ओर गरम लेप करने से आध्मान शान्त हो जाता है।

साम्भर लवण को दर्दरा पीस कर नाभिं के चारों ओर धीरे २ मलने से भी आध्मान नष्ट हो जाता है।

कर्णनाद चिकित्सा।

अत्यन्त रूक्षता हो जाने से निद्रानाश के समान ही कर्णनाद रोग हो जाता है अर्थात् कानों में आवाज़ होने लगती है; इस रोग के लिए निम्न योग हैं—

१. कानों में गुलरोग़न डालने से लाभ होता है।

२. पीपल, हींग, वचा और लशुन द्वारा विधि पूर्वक कड़वा तेल सिद्ध करके कान में डालने से कर्णनाद नष्ट हो जाता है।

३. बादाम का तेल कान में डालने से कर्णनाद शान्त हो जाता है।

शुष्क कास चिकित्सा

कभी २ वात के कारण रूक्षता अधिक होकर सूखी खांसी होने लगती है, ऐसी अवस्था में पीपल, एक तोला, वच, अजवायन पान की जड़ और मुलहटी प्रत्येक १ तोला कूजे की मिश्री ४ तोला सब को बारीक पीस कर पान के रस में चने के बराबर गोली बना लें। यह गोली मुख में रख कर

चूसने से सूखी खांसी नष्ट होती है।

मिश्री और मुलहठी मुख में रख कर चूसने से सूखी खांसी दूर हो जाती है।

आनाह और बद्धकोष्ठ के शमनोपाय।

१. यदि वातज्वर में आनाह तथा मल के शुष्क होने के लक्षण हों तो रोगी को चार तोले एरण्डी का तेल दूध के साथ पिला दें। इस से शुष्क मल पेट से निकल जावेगा और ज्वर शान्त हो जावेगा।

२. बुनफ़शा, कद्दू के बीज की गिरी, गुलाब के फूल और सौंफ प्रत्येक ६ माशे, पिपल छोटी १ माशा सबको भांग के समान घोट कर और इस में तीन तोले मिश्री डाल कर कुछ गर्म २ पिला दें, इस से आनाह दूर होकर ज्वर भी शान्त हो जाता है।

३. यदि श्रमजनित वातज्वर हो तो डेढ़ पाव गोदुग्ध को गरम कर के उस में ४ तोले घी डाल कर पिलावें और मोटा कपड़ा दे कर सुला दें इस से भी ज्वर शान्त हो जाता है।

वातज्वर में पथ्यापथ्य।

श्रम, क्षुधा या अतिमैथुन से वातज्वर होने पर सदा मांस का रस (यख़नी) और उस में चावल पका कर रोगी को खिलाना उचित है। जो लोग मांस रस न खा सकते हों उनको मूंग के यूष में या चने के रसे में बादाम रोग़न मिला कर देने से भी लाभ होता है। वातज्वर में मल अवरुद्ध होने की हालत में मूंग का यूष उत्तम है।

वातज्वरी को यदि हिचकी आती हो तो पंचमूल के क्वाथ से सिद्ध की हुई पेयर हितकारी है। वातज्वर रोगी को मूत्राशय और वस्ति में पीड़ा होने की दशा में गोखरू और कण्टकारी के क्वाथ में पकाये हुए चावल हितकर हैं।

वातवर्धक द्रव्य सदा हानिकर समझने चाहियें।

वातज्वर में जलप्रयोग।

प्रायः वातज्वर रोगी को प्यास बहुत कम लगती है फिर भी यदि रोगी को जल की आवश्यकता हो तो एक सेर पानी को पका कर तीन पाव शेष रख कर या आध सेर शेष रख कर कुछ उष्ण ही पीने को दें।

पित्तज्वर चिकित्सा विधि ।

—:o:—

पैत्तिके दशरात्रेण ज्वरो पचति मानवम् ।
अतः ज्वर विनाशाय दशरात्रेण लंघयेत् ॥
पित्तप्राये विरेकस्तु कार्यो प्रशिथिलाशये ॥

पहिले लिखा जा चुका है कि पित्तज्वर १० दिन में पचता है इसलिए पित्तज्वर की शान्ति के लिए १० दिन लंघन करना उचित है। पित्त के प्रकोप में यदि पित्त दस्तों द्वारा अपने आप न निकलने लगे तो प्रकृति को सहायता देने के लिए विरेचन द्वारा पित्त को निकालना चाहिये ।

नीलोत्पलादि हिम ।

नीलोफर के फूल, कमल के फूल, खस, लाल चन्दन, धनियां, मुनक्का, महुए के फूल, मुलट्ठी, सुगन्धबाला, पद्माक, फालसे की छाल आदिका यथा विधि हिम बना कर उपयोग करने से पित्तज्वर शान्त होता है । यह हिम वमन, तृषा और दाह का नाशक है, आवश्यकतानुसार दिन रात में ३-४ वार दिया जा सकता है ।

तिक्तादि क्वाथ ।

कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, पाठा और कायफल प्रत्येक ४ माशा जौ कूट कर के ३२ तोले पानी में पकावें और चतुर्थांश शेष रहने पर पिलावें इन द्रव्यों का क्वाथ पित्तज्वर नाशक है, यह क्वाथ ज्वर की पच्यमानावस्था में अत्यन्त लाभप्रद है ।

द्राक्षादि क्वाथ ।

मुनक्का, हरड़, नागरमोथा, कुटकी, अमलतास और पित्तपापड़ा प्रत्येक ४ माशा, इनको ३२ तोला पानी में पकावें और चतुर्थांश शेष रहने पर पिलावें । इन का क्वाथ पित्तज्वर नाशक है । पित्तज्वर की पच्यमानावस्था और निराम अवस्था में विरेचन के लिए इस का प्रयोग करना अति लाभप्रद

है। ध्यान रहे अमलतास को सदा अलग पानी में मल कर क्वाथ में डालना चाहिये।

पटोलादि क्वाथ।

पटोलपत्र, इन्द्रजौ, धनियां और महुए के फूल प्रत्येक ६ मा. इन्हें ३२ तोला पानी में पकावें चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर पिलावें।

इन द्रव्यों का क्वाथ पित्तज्वर नाशक है, इस का प्रयोग ज्वर की सामावस्था में करना चाहिये, यह एक श्रेष्ठ पाचन है।

गुडूच्यादि क्वाथ।

गिलोय, आमले, पित्तपापड़ा, धनियां, मुनक्का, पटोलपत्र, हरड़ प्रत्येक ४ माशे इनको ३२तो. पानी में पकावें और चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर रोगी को पिलावें।

यह क्वाथ पित्तज्वर को शान्त करने के लिए अति लाभकर है। ज्वर की साम और निराम दोनों अवस्था में इस का प्रयोग लाभकर है।

मधूकादि फाण्ट।

महुए के फूल, मुलहठी, लाल चन्दन, फालसे की छाल, कमल फूल, लोध्र, गम्भारी, नागकेसर, त्रिफला, अनन्तमूल, धान की खील प्रत्येक ६ माशे। इन सब द्रव्यों का यथा विधि फाण्ट बना, शीतल कर के और मिश्री मिला कर पीने से सोपद्रव पित्तज्वर शान्त होता है। पित्तज्वर में जब रोगी को दस्त अधिक होने लगें, दाह और तृषा अधिक हो तथा हृदय घबराता हो तो इस के प्रयोग से तत्काल लाभ होता है और ज्वर शान्त हो जाता है।

दाह नाशक लेप।

ढाक, बेरी या नीम के कोमल पत्तों को नीम्बू के रस में पीस कर शरीर में लेप करने से शरीरदाह नष्ट होता है।

दाह नाशक उपाय

१. पित्तज्वर रोगी को चित्त सीधा लिटा कर उस की नाभि पर तांबे

अथवा कांसी का पात्र रख कर उस में शीतल जल की धारा छोड़ने से दाह नष्ट होता है ।

२. काञ्जी अथवा गोतक्र में कपड़ा भिगो कर निचोड़ लें और उस से शरीर को ढक दें, इस से अत्यन्त प्रबल दाह और ज्वर तत्काल मन्द हो जाता है ।

यह दोनों प्रयोग शीतकाल में बढ़े हुए अप्राकृतिक पित्तज्वर में कदापि प्रयोग करना उचित नहीं । वैद्य का कर्त्तव्य है कि समयानुसार उचित औषधि का प्रयोग करे ।

रक्तपित्त नाशक अवलेह ।

३ माशे हरड़ चूर्ण को १ तोला घी या शहद के साथ अथवा हरड़ चूर्ण ३ माशा और बांसे के पत्तों का रस १ तोले को २॥ तोला शहद में मिला कर चाटने से पित्तज्वर, रक्तपित्त, वमन तथा दाह नष्ट होते हैं । जब पित्तज्वर रोगी को मुख द्वारा रक्त आता हो; वमन, तृषा और खांसी हो उस दशा में इस अवलेह का प्रयोग लाभकर है ।

तृषानाशक कवल ।

आंवले अथवा अनार के बीज या धनियें का कल्क बना कर मुख में धारण करने से तृषा आदि उपद्रव नष्ट होते हैं ।

हमारा अनुभव ।

१. सूखा धनियां ४ तोले कुछ कूट कर मिट्टी के बर्तन में ३ पाव पानी में भिगो कर थोड़ा २ पिलाने से पित्तज्वर और पित्तज्वर के उपद्रव शान्त होते हैं ।

२. गिलोय आदि का हिम अथवा नीलोफर का शर्बत आदि पिलाना भी श्रेष्ठ है ।

३. चन्दन का शर्बत भी दाहनाशक द्रव्य है ।

शुक्तिभस्म भी पित्तज्वर की मुख्य औषधि है:—

शुक्तिभस्म की विधि ।

२० तोले सच्चे मोती की सीप के छोटे २ टुकड़े कर के कांजा या

सिरके में एक पहर तक पकावें, फिर टुकड़ों को धोकर और दोगुना घी-क्वार का गूदा मिला कर गजपुट में फूंक दें। गजपुट से निकाल कर अनार के रस और नीम के पत्तों के रस से तीन दिन घोट कर छोटी २ टिकियां बना कर गजपुट में फूंक दें जिससे सुन्दर सीप की भस्म बन जावेगी। यह भस्म २ रत्ती, सत गिलोय ४ रत्ती, वंशलोचन २ रत्ती और छोटी इलायची के बीज १ रत्ती तथा कूजे की मिश्री ३ माशे मिला कर गोजिह्वाद्रव और नीलोत्पलद्रव के साथ देने से उपद्रव सहित पित्तज्वर नष्ट होता है। ऐसी तीन चार मात्रा दिन में दे सकते हैं।

आनन्द चूर्ण।

सत गिलोय १० तोले, वंशलोचन २ तोले, छोटी इलायची के दाने १ तोला, श्वेताभ्रक भस्म २ तोले, शुद्ध शुक्तिभस्म २ तोले, शंखभस्म २ तोले, मिश्री २० तोले। इन सब द्रव्यों को एकत्र करके खरल कर लें। इस चूर्ण को १ माशे से २ माशे तक मिश्री के शर्बत के साथ दिन में तीन चार बार प्रयोग करने से एक दो दिन में ही पित्तज्वर शान्त हो जाता है।

पित्तज्वर में श्वेताभ्रक भस्म।

शुद्ध श्वेताभ्रक का धान्याभ्रक बनावें और ३ दिन तक सिर्के में भिगो दें, सिर्के में से निकाल कर उसे धो डालें और १० तोले श्वेताभ्रक में ५ तोले कलमी शोरा तथा ५ तोले पुराना गुड़ मिला जल से टिकिया बना कर गजपुट में फूंक दें। इस प्रकार एक बार में ही अभ्रक की उत्तम श्वेत भस्म हो जाती है। इस भस्म को पानी से इतना धोवें कि इस का शोरा निकल जावे। फिर गिलोय और पित्तपापड़े के रस तथा चिरायते के क्वाथ में तीन दिन खरल कर के गजपुट दें; अन्त में ३ दिन केले के रस में खरल कर टिकियां बना यथा विधि आंच देने से अभ्रक की अत्युत्तम भस्म हो जाती है।

यह श्वेताभ्रकभस्म उचित अनुपान से २ रत्ती से ४ रत्ती तक देने से पित्तज्वर शान्त होता है। पित्तज्वर की सब अवस्थाओं में इस का प्रयोग कर सकते हैं, जैसे साम पित्तज्वर में पित्तपापड़े और धनिये के क्वाथ से या गिलोय के हिम फाण्ट के साथ; निराम पितज्वर में त्रिफला के क्वाथ या

मुनक्का तथा गुलाब के फूलों के क्वाथ के साथ दे सकते हैं। अर्क गुलाब के साथ देने से अति लाभ करती और श्वेत चन्दन या सेवती के गुलकन्द के साथ खाने से हृदय रोग को लाभ होता है। यह भस्म मुख पाक की एक उत्तम औषधि है।

ऊपर लिखा गया 'आनन्द चूर्ण' हमारा सहस्रों वार का अनुभूत है, धनियें के फाण्ट के साथ देने से पाचन और हृद्य है। बहुधा पित्तज्वर में अधिक गर्मी के कारण रोगी को नींद नहीं आती। उस दशा में मक्खन, काहू का तेल, कद्दू का तेल आदि सिर पर मलने से नींद आ जाती है। यदि गर्मी के कारण किसी प्रकार भी नींद न आती हो तो अर्क गुलाव ४ तोले सिर्का २ तोले, चमेली का तेल ६ माशे, गुल रोगन ६ माशे, काफूर ६ माशे सब को रगड़ कर उस में कपड़ा तर कर के सिर पर रखें। रोगी के बाल कटवा दें।

यदि पित्तज्वर में निरन्तर वमन और दस्त होते हों और किसी प्रकार न रुकें तो निम्न प्रयोग लाभकर है:—

हृद्यपाषाण (जहरमोहरा खताई) और दरियाई नारियल इन दोनों को अर्क बेदमुश्क में घिस कर चूर्ण बना कर रख लें। आवश्यकता होने पर हृद्यपाषाणादि चूर्ण १ माशा, कमल गट्टे की गिरी ३ माशे, छोटी एला के बीज १ माशा, धान की खील ६ माशे, इन सब द्रव्यों को एकत्र पीस कर अनार के शर्बत में मिला कर चटाने से तत्काल लाभ होता है। इसके अतिरिक्त यह चूर्ण दिल धड़कने की उतम दवाई है, तृषा नाशक है। जल में पका कर ठण्डा होने पर थोड़ा २ रोगी को देने से वमन और दस्त रुक जाते हैं।

ज्वरहरी (खूबकलां) प्रयोग।

ज्वरहरी बीज (खूबकलां) २० तोले ले कर पहिले उसे धो डालें फिर गेहूं की रोटी बेल कर उस पर खूबकलां बिछा ऊपर से दूसरी रोटी मिला दें और रोटी पका लें, रोटी पक जाने पर भीतर से खूबकलां निकाल लें। इस प्रकार पकी हुई खूबकलां को एक श्वेत वस्त्र में बांध कर बकरी के दूध में पकावें, दूध पकते पकते जब गाढ़ा हो जावे और खोया बनने लगे तो पोटली निकाल कर खूबकलां को धो लें और छाया में सुखा लें। इस की मात्रा ६ रत्ती से

एक माशा तक है । इस प्रकार सिद्ध खूबकलां को तीन चार वार दिन में शर्बत अनार के साथ देने से एक दिन में ही पित्तज्वर शान्त हो जाता है ।

पाठक अवश्य प्रयोग करें ।

पथ्यापथ्य ।

धान की खील पीस कर उस में खाण्ड या मिश्री मिला कर दें, मूंग के यूष में भीगा हुआ भात खाने को दें यही पित्तज्वर में पथ्य है । इन के विपरीत तीक्ष्णोष्ण द्रव्यों का सेवन करना हानिकर है ।

कफज्वर चिकित्सा

श्लैष्मिके द्वादशाहेन ज्वरे युञ्जीत भेषजम् ।
सोत्क्लेदे बलिने देयं वमनं श्लैष्मिके ज्वरे ॥
कफाभिपन्ने शिरसि कार्यमूर्ध्वविरेचनम् ।

कहा जा चुका है कि कफज्वर की सन्धि १२ दिन की होती है, इस लिए १२ दिन लंघन के पीछे औषधि का प्रयोग करना चाहिये । रोगी बलवान् हो और कफ अधिक होने के कारण उसे वमन होती हो तो रोगी को वामक औषधि देनी चाहिये, जब कफ से सिर भारी हो तो शिरोविरेचन आदि कार्यों से लाभ होता है ।

वासादि क्वाथ

बांसा, कटेली और गिलोय प्रत्येक ८ माशे यथाविधि क्वाथ बना कर शहद डाल कर पीने से कफज्वर नष्ट होता है । यह क्वाथ ज्वर की जीर्ण अवस्था में देना चाहिये, कफज्वर की ऐसी दशा में जब कफ सूखी न हो इस के देने से लाभ होता है ।

यवान्यादि क्वाथ

देसी अजवायन, पीपल, अडूसा और पोस्त का डोडा प्रत्येक ४ माशे इन का क्वाथ बना कर पीने से खांसी तथा श्वास सहित कफज्वर नष्ट हो जाता है । यह क्वाथ उस दशा में प्रयोग करना चाहिये जब खांसी द्वारा कफ अधिक निकलता हो और पेट में आनाहादि किसी प्रकार की पीड़ा न हो ।

निम्बादि क्वाथ

नीम की छाल, सोंठ, गिलोय, देवदारु, कचूर, चिरायता, पोहकरमूल, कटैली की जड़, पीपल, प्रत्येक ३ माशे का विधिवत् क्वाथ तय्यार करें । क्वाथ में शहद मिला कर पीने से कफज्वर नष्ट हो जाता है । यह क्वाथ

उस समय प्रयोग किया जाता है जब रोगी का कफ बहुत गिर रहा हो तथा हड़फूटन होने की शिकायत हो। यह दीपन, पाचन, और सर है; यह रुधिरगत तथा मांसगत श्लेष्म ज्वर के लिए लाभकर है।

मरिचादि क्वाथ।

काली मिरच, पीपलामूल, सोंठ, कलौंजी, पीपल छोटी, कटैरी, अजवायन देसी, चीता, कायफल, कूठ, वच और बड़ी हरड़ का छिलका प्रत्येक २ माशा विधिवत् क्वाथ बनाकर सेवन करावें। इन द्रव्यों का क्वाथ कफज्वर-हर है। यह क्वाथ दीपन, पाचन, मलशोधक, कफनिस्सारक और वात तथा कफ ज्वरहर है; यह कफज्वरके समस्त उपद्रवों को नष्ट करता है, ६ दिन बाद इस का प्रयोग करने से यह बहुत लाभ करता है।

त्रिफलादि कषाय।

बड़ी हरड़ का छिलका, बहेड़े का छिलका, आंवला, निशोथ, सोंठ, पीपल, काली मिरच, इन्द्रजौ कड़वे, पटोलपत्र, अमलतास का गूदा, कुटकी, चीता प्रत्येक ३ माशे यथा विधि क्वाथ बना कर सेवन करावें। इन द्रव्यों का काढ़ा कफज्वर नाशक है। परन्तु मलपाक हो जाने की अवस्था में इस का प्रयोग किया जाता है, यह मलशोधक और कफज्वर नाशक है।

चातुर्भद्रावलेह।

पीपल, हरड़छाल, बहेड़ा छाल, आंवला इन सब को समभाग ले कर चूर्ण बना लें और शहद से चटावें, इस से श्वास, कास और कफज्वर नष्ट होता है।

अष्टांगावलेह।

अजवायन, पोहकरमूल, कायफल, काकड़ासिंगी, कलौंजी, सोंठ, मरिच, पीपल, यह द्रव्य समान भाग ले कर चूर्ण बना लें, चूर्ण को शहद या अदरक के रस के साथ १ माशे से ३ माशे तक प्रयोग करने से कफज्वर नष्ट हो जाता है। यह चूर्ण दीपन, पाचन, रोचक कास-श्वासहर, स्रोतवाही तथा वातकफ नाशक है; यह वातानुलोमक और हिक्का नाशक है। इस चूर्ण को ज्वर की साम और निराम दोनों अवस्थाओं में सेवन करा सकते हैं।

श्वासकुठार रस ।

पारा शुद्ध, गन्धक शुद्ध १ तोला, मीठा तेलिया शुद्ध १ तोला, सुहागेकी खील १ तोला, मनःशिला शुद्ध (अद्रक द्वारा) १ तोला, काली मिर्च ८ तोले, त्रिकुटु ६ तोले पारे-गन्धक की कज्जली कर के शेष औषधियां मिला कर १२ घंटे निरन्तर खरल करें, इसे श्वासकुठार रस कहते हैं। इस रस की मात्रा ४ रत्ती की है । जब कफ़ अति गाढ़ा होने के कारण कठिनता से निकलता हो, खांसी और श्वास हो तो बादाम और मिश्री के अवलेह के साथ चटाने से विशेष लाभ करता है। यदि कफ पतला हो और उसे सुखाना हो तो शहद के साथ प्रयोग करना चाहिये । यह रस दीपन, पाचन, कफ-निस्सारक, अग्निवर्धक तथा वातनाशक है; मधु और अदरक के रस के साथ प्रयोग करने से हिक्कारोग नष्ट होता है ।

शङ्ख भस्म ।

शुद्ध शंख २० तोले ले कर अर्कदुग्ध में भिगो कर विधि अनुसार ४ बार गजपुट में फूंक लें। यह भस्म दीपन, पाचन, कफनाशक, स्रोतवाही, वातानुलोमन, कफ निस्सारक, हिक्का-श्वास-कास तथा कफज्वर नाशक है । यह हमारा सहस्रों वार का अनुभूत हैं। वैद्य इस से लाभ उठावें। यह एक से दो रत्ती की मात्रा में मुनक्का या शहद के साथ लाभ करता है । दिन में दो तीन मात्रा दे सकते हैं ।

शृङ्ग भस्म ।

बारहसिंगे की सींग को भस्म करने की अनेक विधियां हैं परन्तु यहां उसी विधि का वर्णन किया जावेगा, जिस के द्वारा बनी हुई भस्म कफज्वर में लाभ करती है ।

पहिले सींग के छोटे २ टुकड़े कर के अर्कदुग्ध में भिगो दें और विधि-पूर्वक गजपुट में भस्म कर लें, यदि एक बार में श्वेत भस्म न हो तो दूसरी वार आक के दूध में टिकियां बना कर सम्पुट में फूंक दें । यह अति स्रोत-वाही, शोथहर, कफ नाशक, पार्श्वशूल तथा हृदयशूलहर और कास-श्वास को लाभ करता है । मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक ।

हृदयशूल की अवस्था में घी के साथ चटा कर दूध पिलाना चाहिये ।

पार्श्वशूल में जब कफ न निकलता हो तथा शूल अधिक हो तो नवसार या यवक्षार के साथ मिला कर देने से बहुत लाभ होता है। यदि कफ निकल रहा हो तो शहद के साथ देना हितकर है।

कफकेतु रस।

पारा शुद्ध, गन्धक शुद्ध, मीठा तेलिया शुद्ध, अकरकरा, समुद्रफल, मरिच, इन द्रव्यों को समान मात्रा में यथाविधि खरल करने से कफकेतु रस बनता है। मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक। यह ज्वर, कास, श्वास तथा कफज्वर के लिए उत्तम औषधि है; जब मुखस्थ लालग्रन्थियों से लार न निकलती हो उस समय अदरक रस के साथ प्रयोग करना चाहिये। जब कफ गाढ़ा हो गया हो और न निकलता हो उस अवस्था में इस के प्रयोग से कफ निकल जाता है। यह कास, श्वास रोग में भी लाभकर है।

आनन्द भैरव रस।

शुद्ध शिंगरफ, शुद्ध मीठा तेलिया, मिर्च काली, सुहागे की खील, पीपल छोटी, प्रत्येक औषधि २ तोले लेकर अदरक के रस में तीन दिन खरल करें और १ रत्ती की गोली बना लें। इस को आनन्दभैरव रस कहते हैं। यह दीपन, पाचन, ग्राही, कफहर, वातानुलोमक है। कफज्वर की आदि, मध्य, अन्तिम तीनों हालतों में दे सकते हैं।

विस्तारभय से अधिक रस नहीं लिखे जाते, वातज्वरोक्त 'कल्पतरु रस' आदि भी योग्य अनुपान से प्रयोग कर सकते हैं।

कफज्वर वाले रोगी के मुख का स्वाद प्रायः ख़राब रहता है और मुख भीतर से कफ से लिसा हुआ सा रहता है, रुचि बिल्कुल नहीं होती, ऐसी दशा में निम्न प्रयोग काम में लाना चाहियेः—

मुखशोधक शुण्ठ्यादि योग।

सोंठ, सांभर नमक, काली मरिच, पीपल, राई, इन सब का चूर्ण अदरक के रस में मिला कर मुख में रखने से अथवा बार २ चाटने से मुखस्थ स्रोत शुद्ध हो कर रुचि होती है।

जीरकादि अवलेह।

काले जीरे को थोड़ा भून कर उस में खाण्ड, लवण और खट्टे

अनार का स्वरस मिला कर उपयोग करने से मुख शुद्ध हो कर रुचि उत्पन्न होती है।

कफज्वर में पथ्य।

कफज्वर वाले रोगी को पंचकोल आदि द्वारा मूंग का यूष सिद्ध कर के पिलाना लाभदायक है।

पंचकोल।

पिप्पली, पीपलामूल, चव्य, चित्रक छाल, सोंठ इन पांचों द्रव्यों की पञ्चकोल संज्ञा है। प्रत्येक द्रव्य ५ माशे लेना चाहिये। इन का यथा विधि क्वाथ बना कर मूंग के यूष में मिला कर सेवन करें।

कफज्वरी के लिए पानी।

यद्यपि कफज्वर में रोगीको प्यास नहीं लगती, फिर भी यदि किसी समय पानी की इच्छा हो तो चतुर्थांशावशेष अथवा अष्टमांशावशेष जल पिलाना चाहिये अर्थात् पकने पर सेर का पाव भर अथवा सेर का आध पाव रहा हुआ जल ही कफज्वरी को देना चाहिये।

वातपित्त ज्वर चिकित्सा।

वातपित्तज्वरे देयमौषधं पंचमे दिने।
आमदोषानुसारेण ज्वरे क्रियामुपाचरेत् ॥

वातपित्त ज्वर में चिकित्सक को उचित है कि उपरोक्त आमज्वर आदि दोषों का भली प्रकार विचार कर के चिकित्सा करे। वातपित्तज्वर में पांचवें दिन औषधि का प्रयोग करना चाहिये।

किरातादि क्वाथ।

चिरायता, गिलोय, मुनक्का, आमला, कचूर, प्रत्येक ४ माशे ले कर यथा विधि क्वाथ बना कर मिश्री डाल कर पिलावें; इस से वातपित्तज्वर शान्त हो जाता है। पित्त की प्रधानता होने पर यह प्रयोग अति श्रेष्ठ है।

पंचभद्रादि क्वाथ।

गिलोय, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, चिरायता, सोंठ प्रत्येक ४ माशा, इन द्रव्यों का यथाविधि काढ़ा बना कर पिलाने से वातपित्तज्वर शान्त हो जाता है। यह काढ़ा प्रायः ऐसी दशा में जब कि शरीरस्थ समान वायु विकृत हो और शरीर में अति हड़फूटन हो देने से विशेष लाभ करता है।

त्रायमाणादि क्वाथ।

त्रायमाण (त्रायमाण न मिले तो गुल बुनफशा), मुनक्का, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, कटैली छोटी, प्रत्येक ४ माशे का क्वाथ बना लें। जब अधिक वात और मध्य पित्त हो उस दशा में यह विशेष लाभकर है, इस से बार २ दस्तों का आना और दस्तों की गर्मी दूर होती है।

शतपुष्पादि क्वाथ।

सौंफ, वच, मीठा कूठ, देवदारु, सम्भालु के बीज; धनियां, नागरमोथा, कटैली की जड़, प्रत्येक ६ माशा ले इन का क्वाथ बना लें; यह दीपन पाचन, वातनाशक है। अधिक वात और हीन पित्त होने की हालत में इस का प्रयोग करें।

मधुकादि हिम।

मुलहठी, अनन्तमूल (उशबा), मुनक्का, महुए के फूल, त्रिफला, नीलोफर के फूल, लाल चन्दन, गम्भारी, लोध, कमलनाल, प्रत्येक ६ माशे; इन का हिम बना कर पीने से अति लाभ होता है। जब वात और पित्त दोष रस तथा रुधिरगत हों और पित्त प्रबल होने के साथ वमन आदि लक्षण हों उस समय यह हिम लाभकर है। वात के कारण रूक्षता होने की हालत में भी यह काढ़े के रूप में प्रयुक्त होता है। इस में समयानुसार मिश्री आदि भी डाल लेने चाहियें। यह हिम, सर, हृद्य और वातपित्त नाशक है।

त्रिफलादि क्वाथ।

बड़ी हरड़ का छिलका, बहेड़े के छिलके, आमले, सिमल की छाल, रास्ना, अमलतास का गूदा, बांसे के पत्ते, प्रत्येक ४ माशा का क्वाथ बना लें। यह क्वाथ वातपित्तज्वर नाशक है; जब कोष्ठ में मल सूख गया हो या पच्यमानावस्था में पित्त को निकालना हो उस हालत में यह प्रयोग उत्तम है।

श्वेताभ्रक भस्म।

श्वेत अभ्रक को धान्याभ्रक बना कर देसी असगन्ध के रस में तीन दिन तक भिगो रखें, फिर ३ दिन तक उपरोक्त बूटी के रस में ही खरल कर टिकियां बना कर गजपुट में फूंक दें; एक ही आग में उत्तम श्वेत भस्म हो जावेगी। मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक।

योग्य अनुपान के साथ यह भस्म वातपित्तज्वर को शीघ्र नष्ट करती है; जब रोगी को ज्वर अधिक हो और दाह का प्रकोप हो उस समय सत गिलोय, वंशलोचन, छोटी इलायची के दाने के साथ मिलाकर शर्बत बुनफ़शा या शर्बत अनार के साथ दिन में तीन, चार बार सेवन करने से लाभ होता है। यदि ज्वर में कास भी हो तो यह भस्म शर्बत लसूड़े या शर्बत शहतूत के साथ चटाने से अति लाभप्रद है। ज्वर की प्रत्येक अवस्था में इस का प्रयोग किया जा सकता है; यदि ज्वर उतर गया हो तो इस के देने से फिर नहीं आता।

गोदन्ती हरताल भस्म ।

गुलाब के फूलों के रस में गोदन्ती हरताल को ७ दिन खरल कर के गजपुट में फूंक दें । यह भस्म १-२ रत्ती की मात्रा में वातपित्तज्वर में ज्वर के मन्दवेग होने पर मुनक्के में भर कर देने से ज्वर नहीं बढ़ता और ज्वर उतर भी जाता है।

इन प्रयोगों के अतिरिक्त पहिले लिखे गये नवज्वरांकुश, ज्वरधूमकेतु, पंचवक्ररस आदि भी योग्य अनुपान से वातपित्तज्वर को लाभ करते हैं । नवज्वरांकुश रस वातपित्तज्वर की उस हालत में लाभ करता है जब पित्त अति प्रबल हो और रोगी को खुरकी न हो, इस समय औषधि मिश्री के शर्बत के साथ देनी चाहिये । ज्वरधूमकेतुरस रोगी को दूध के साथ वातपित्तज्वर में दिया जा सकता है।

पंचवक्ररस भी गोदुग्ध या अवस्थानुसार किसी हिम या फाण्ट के साथ देने से वातपित्तज्वर में लाभप्रद हैं ।

वातपित्तज्वरे पथ्य ।

आंवलों तथा मूंगका यूष, करेला तथा अनाररस आदि पथ्य हैं । फलों में अनार, अंगूर आदि देने से लाभ होता है ।

रूक्ष तथा उष्णवीर्य पदार्थों का त्याग करना चाहिये । वातपित्त ज्वरी को अर्धावशेष अर्थात पकने पर सेर का आध सेर रहा पानी देना चाहिये ।

वात कफज्वर चिकित्सा

वातश्लेष्मज्वरे देयमौषधं नवमे दिने ॥
आमदोषानुसारेण ज्वरे क्रियामुपाचरेत् ॥

आयुर्वेद शास्त्र का विधान है कि वातकफज्वर में नौ दिन के बाद औषधि देनी चाहिये। दोषों का ध्यान रखते हुए बड़ी सावधानी से चिकित्सा करें। विशेषतः आम दोष का निर्णय करके चिकित्सा करनी उचित है।

दशमूली क्वाथ

दश मूल की दशों चीजें दो २ तो. ले कर ३२ तो. पानी में यथाविधि पका कर इस क्वाथ में पीपल का चूर्ण डाल कर प्रयोग करने से कफवातज्वर नष्ट होता है। जब कफ अत्यन्त बढ़ा हुआ हो, पसलियों में पीड़ा होती हो और श्वास का वेग हो उस स्थिति में इस क्वाथ का प्रयोग करने से लाभ होता है। यदि कफ गाढ़ा हो और सूखा हो तो पीपलकी जगह जवारवार मिला कर प्रयोग करना चाहिये।

आरग्वधादि क्वाथ

अमलतास का गूदा, पीपला मूल, नागरमोथा, कुटकी, बड़ी हरड़ की छाल प्रत्येक ४ माशा, इनका यथाविधि क्वाथ बनावें। इन द्रव्योंका क्वाथ वातकफनाशक है। जब उदर में मल भरा हो तो इसका प्रयोग लाभकर है। इसमें बादाम का तैल मिलाकर पिलाने से शीघ्र लाभ होता है; द्रव्यों की मात्रा अवस्था के अनुसार चिकित्सक स्वयं भी कल्पना कर सकता है। यह क्वाथ भेदन, सर तथा वातकफ ज्वरहर है।

पिप्पली क्वाथ।

केवल १ तोला पीपल का काढ़ा पीने से वातकफज्वर समूल नष्ट हो जाता है। शैत्यांश वृद्धि में इस का प्रयोग करना चाहिये; यह दीपन, पाचन अनाभिष्यन्दि तथा प्लीहानाशक है।

इन क्वाथों के अतिरिक्त वातज्वर में कहे गये किरातादि क्वाथ, बृहत् पिप्पल्यादि क्वाथ, कट्फलादि क्वाथ भी लाभदायक हैं; अवस्था विचार कर इन का प्रयोग करना चाहिये।

ज्वरभैरव चूर्ण।

सोंठ, त्रायमाण, नीम की छाल, जवासा, बड़ी हरड़ का छिलका, वच, नागरमोथा, देवदारु, कटैरी छोटी, काकड़ासिंगी, शतावर, पित्तपापड़ा, पीपलामूल, इन्द्रायण की जड़, कूठ कड़वी, मरोड़फली, कचूर, पीपल, हल्दी, दारहल्दी, लोध, चन्दन लाल, सुगन्धबाला, इन्द्रजौ, मुलहठी, चीते की छाल, सुहाञ्जने की छाल, अतीस, खरैंटी, कुटकी, पद्माख, अजवायन, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, गिलोय सूखी, बेल की छाल, तेजपात, दालचीनी; आमला, पटोलपात, पारा शुद्ध; गन्धक शुद्ध; लोहभस्म; मनःशिला शुद्ध; कृष्णाभ्रकभस्म। पारे-गन्धक की कज्जली कर के शेष द्रव्यों का चूर्ण मिला दें। इस को ज्वरभैरवचूर्ण कहा जाता है; यह दीपन; पाचन, शोथहर; कफ-वातहर, वातानुलोमक, सर, भेदक और ज्वरनाशक है। जब धातुपाक के समय प्लीहा और यकृत् में शोथ हो या रोगी को आमवात के कारण जोड़ों में दर्द हो तो इस चूर्ण से लाभ होता है। यह चूर्ण विषमज्वर के लिए प्रयोग करना चाहिये। इस प्रयोग में शार्ङ्गधरोक्त हिंगुल और घीक्वार योग द्वारा की हुई लोहभस्म और अर्कदुग्ध अथवा अर्क पत्र तथा वट जटा क्वाथ द्वारा की हुई अभ्रकभस्म डालनी चाहिये और अदरक रस द्वारा शुद्ध की हुई मनःशिला का प्रयोग करना चाहिये, अन्यथा यह प्रयोग यथोचित लाभ नहीं करता।

सूर्यशेखर रस।

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुहागे की खील, सेन्धा नमक, काली मरिच, इमलीखार, मिश्री प्रत्येक १ तोला, शुद्ध जमालघोटा २ तोला, इन सब को विधि अनुसार एक दिन निरन्तर निम्बु के रस में खरल करें; यह सूर्यशेखर रस है। मात्रा २ रत्ती।

इसे दोषों की प्रभूतावस्था में अथवा निरामावस्था में गर्म जल के साथ प्रयोग करने से वातकफज्वर नष्ट होता है।

स्वेदनाशकोद्धूलन ।

प्रायः वातकफज्वर में अधिक पसीना होना रोगी की मृत्यु का कारण होता है क्योंकि कफ जब गाढ़ा हो कर कठिनता से निकलता हो तो इस से निर्बलता हो जाती है। यदि इस निर्बल हालत में रोगी को पसीना आवे तो द्रवांश के शरीर से अधिक निकलने के कारण कफ और गाढ़ा हो कर गले और छाती में रुक जाता है, पसीने के साथ शरीर की ऊष्मा निकल जाने से प्रायः रोगी की मृत्यु का भय रहता है। इस अवस्था में चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि रोगी का पसीना रोकने का यत्न करे जिस के लिए निम्न उपाय लिखे जाते हैं;—

१. भूनी हुई कुलथी का बारीक कपड़-छान किया हुआ चूर्ण शरीर पर मलने से तत्काल पसीना रुक जाता है।

२. गाय का पुराना गोबर और लवण रखने का पुराना मिट्टी का पात्र पीस कर शरीर पर मलने से पसीना रुक जाता है।

३. काली मरिच, पीपल, सोंठ, हरड़, लोध, पोहकरमूल, चिरायता, कुटकी, कुष्ट, कचूर, शिवलिंगी बीज और कपूरकचरी इन सब द्रव्यों को समान भाग ले कर चूर्ण कर के शरीर पर मलने से पसीने का प्रवाह रुक जाता है।

४. चिरायता, कुटकी, काली जीरी, वच, गिलोय और कायफल इन का बारीक चूर्ण कर के शरीर पर मलने से पसीना रुक जाता और शरीर की गर्मी बनी रहती है।

मुखशोधक कवल ।

सेन्धा नमक, काली मरिच और बिजौरे नींबू का केसर इन तीनों द्रव्यों को पीस कर मुख में रखने से वातकफ से पैदा हुए मुखशोष, अरुचि और जड़ता नष्ट होती है।

वातकफ़ज्वर में पथ्य ।

वातकफज्वर में बृहत् पंचमूल के द्वारा सिद्ध किया हुआ अन्न का रस देना चाहिये।

उपरोक्त औषधियों के अतिरिक्त 'रसेन्द्रसारसंग्रह' में कही गई वज्राभ्रक की शतपुटी या सहस्रपुटी भस्म भी वात तथा कफ रोगों में उचित अनुपान से लाभ करती है।

पानी।

वातकफज्वर रोगी को सेर का एक पाव रहा हुआ जल पीने को देना चाहिये। ठण्डा और कच्चा जल कभी न दें।

पित्तकफज्वर चिकित्सा ।

पित्तश्लेष्मज्वरे देयमौषधं दशमेऽहनि ॥
कफपित्तज्वर में रोगी को दसवें दिन औषधि देनी चाहिये ।

गुडूच्यादि क्वाथ ।

गिलोय, नीम की छाल, धनियां, लाल चन्दन, कुटकी प्रत्येक ४ माशा । इन द्रव्यों का यथाविधि बना क्वाथ पीने से पित्तकफज्वर नष्ट होता है । यह क्वाथ पित्त की अधिकता और कफ की हीनता होने पर उपयोग करना चाहिये; पित्त की अधिकता में पित्त को निकालने के लिए प्रयोग करना लाभकर है । दोषों की पच्यमानावस्था में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है ।

अमृताष्टक ।

गिलोय, कुटकी, इन्द्रजौ, नीमछाल, पटोलपत्र, नागरमोथा, लाल चन्दन और सोंठ प्रत्येक ३ माशा ले कर विधि अनुसार क्वाथ बना लें । यह क्वाथ पित्तकफज्वर को शान्त करता है और ज्वर की प्रत्येक अवस्था में दिया जा सकता है ।

नागरादि क्वाथ ।

सोंठ, खस, बेलगिरी, नागरमोथा, धनियां, लाल चन्दन, मोचरस, नेत्रबाला प्रत्येक ३ माशा, यथाविधि क्वाथ बना कर पिलावें । यह पित्तकफ-ज्वर नाशक है । जब रोगी को ज्वर में आम सहित दस्त होते हों उस समय इस का प्रयोग लाभकर है ।

कण्टकार्यादि क्वाथ ।

कटैरी छोटी, गिलोय, सोंठ, पोहकरमूल, चिरायता प्रत्येक ४ माशा यथाविधि क्वाथ बना कर पिलावें । इन द्रव्यों का क्वाथ पित्तकफज्वर की उस अवस्था में प्रयोग करना चाहिये, जब कफ अधिक और पित्त न्यून हो; यह काढ़ा खांसी और श्वास के लिए भी लाभकर है ।

बांसारस ।

पत्ते और फूलों सहित बांसे का रस शहद और मिश्री डाल कर पीने से अम्लपित्त, कामला और पित्तज्वर नष्ट होता है ।

शङ्खभस्म ।

पहिले लिखी विधि से शंख के टुकड़ों को शुद्ध कर के सिरके में भिगोने के बाद घोक्वार, अदरक और पित्तपापड़ा के रस में रगड़ कर ३ बार फूक दें, इस से उत्तम शंख का भस्म बन जाती है।

यह भस्म पित्त कफ ज्वर को नाश करने के लिए अत्युत्तम है। मात्रा २ रत्ती। शहद के साथ देने से कफ प्रधान पित्त कफ ज्वर को शीघ्र नष्ट करती है।

श्री मृत्युञ्जय रस

शिंगरफ २ भाग, शुद्ध मीठा तेलिया, काली मरिच, पीपल छोटी, जीरा, शुद्ध गन्धक, सुहागे की खील प्रत्येक १ भाग इन सब द्रव्यों को अदरक के रस में तीन दिन खरल करके मूंग के बराबर गोली बनालें। इस का नाम श्री मृत्युञ्जय रस है। कफ अधिक होने की अवस्था में शहद के साथ तथा पित्त अधिक होने पर मधु तथा मिश्री के साथ एक गोली से चार गोली तक रोगी को अवस्थानुसार तीन २ घण्टे बाद देने से प्रायः तीन चार मात्रा देने पर ही ज्वर उतर जाता है। कफ अधिक होने पर अदरक के रस से देने से शीघ्र लाभ होता है। सहस्रों बार का अनुभूत है। इस से पसीना भी आ जाता है और रोगी को दुर्बलता नहीं होने पाती यह रस साम और निराम सब ही अवस्थाओं में प्रयुक्त हो सकता है। दीपन, पाचन, तथा आम शामक है।

गोदन्ती हरताल भस्म

गिलोय और कटैली के रस में तीन २ दिन तक भावना देकर यथाविधि भस्म की हुई गोदन्तीहरतालभस्म पित्त ज्वर को लाभ करती है। मात्रा २ रत्ती से ४ रत्ती मधु अथवा मिश्री के साथ दिन में तीन चार बार देवें।

श्वास और खांसी होने की हालत में कण्टकारी आदि क्वाथ के साथ शहद में मिला कर प्रयोग करने से अति लाभ होता है। यह हमारा सहस्रों बार का अनुभूत है।

ज्वर केसरी

पारद शुद्ध, गन्धक शुद्ध, मीठा तेलिया शुद्ध, बड़ी हरड़ की छाल, बहेड़े की बकली, निर्बीज आंवले, जमालघोटा शुद्ध प्रत्येक एक तोला, सब द्रव्यों को

जल भांगरे के रस में तीन दिन पर्यन्त खरल करके एक २ रत्ती की गोली बनालें। यह ज्वर केसरी रस हैं। जब पित्तकफ ज्वर में पित्त प्रबल हो और रोगी को आनाह हो तो मिश्री के शर्बत के साथ प्रयोग करने से दो तीन दस्त आकर कोष्ट साफ हो जाता है और ज्वर शान्त हो जाता है तथा रोगी का मन स्वच्छ हो जाता है। यदि एक गोली देने से ही कोष्ट साफ न हो तो दूसरे दिन औषधि देने से अवश्य लाभ हो जाता हैं।

सुदर्शन चूर्ण

हरड़ की छाल, बहेड़े का छिलका, आंवला, हल्दी, दारहल्दी, कटैरी, कचूर, बड़ी कटैली, सोंठ, काली मरिच, पीपल छोटी, पीपलामूल, मरोड़फली गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, त्रायमाण, नेत्रबाला, नीमछाल, पोहकरमूल, मुलहठी, कुड़ा की छाल, अजवायन देसी, इन्द्रजौ मीठे, भारंगी, सुहाञ्जने की छाल, वच, लाल फटकरी की खील, दालचीनी, पद्माक, चन्दन श्वेत, अतीस, खरैंटी, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, वायविडंग, अगर, छाल चीता, देवदारु, चव्य, पीपलामूल, पटोलपत्र, जीवक, ऋषभक, (न मिले तो विदारीकन्द डालें), लौंग; वंशलोचन, कमल के फूल, काकोली, तेजपात, जावित्री, पटोलपत्र प्रत्येक समान २ भाग लें और सब से आधा चिरायता ले सब द्रव्यों को कूट छान कर चूर्ण बना लें; इसको 'सुदर्शनचूर्ण' कहा जाता है। यह त्रिदोषहर और सर्वज्वर नाशक है; यह चूर्ण दोषज अथवा आगन्तुज; धातुगत, सन्निपातज, विषम, मानसिक ज्वर आदि सब ज्वरों को नष्ट करने वाला है। शीतविकार, दाह, मोह, भ्रम, तृषा, श्वास, कास, पाण्डु, हृदयरोग, कामला, कटिशूल और पार्श्वशूल आदि रोगों को योग्य अनुपान से सेवन काराया हुआ शीघ्र ही नष्ट करता है। यह शास्त्र का एक अत्युत्तम चूर्ण है।

पथ्य।

पित्तकफज्वर में रोगी को धनियें आदि से सिद्ध किया हुआ मूंग का यूष या चने का रसा पिलाना चाहिये।

पानी।

पित्तकफज्वरी को अर्धावशेष जल पीने को देना चाहिये ठण्डा और कच्चा जल भूल कर भी न दें।

सन्निपात चिकित्सा

वर्धते वापि हीनस्य ह्रियते ह्युच्छ्रुतस्य च ।
कफस्थानानुपूर्व्या वा सन्निपातज्वरक्रिया ॥
ततः समत्वं दोषाणामस्थानं कफस्य तु ।
तत्रस्थानां क्रियां तद्वदिति ज्वरविनिर्णयः ॥
श्लेष्मनिग्रहमेवादौ कुर्यात् व्याधौ त्रिदोषजे ।
निरस्ते श्लेष्मणि ह्यस्य तृषा चैवोपशाम्यति ॥
यथा दोषोच्छ्रयश्चैव ज्वरान्छेषानुपाचरेत् ।
निर्हरेत्पित्तमेवादौ ज्वरेषु समवायिषु ॥
संसर्गे यो गरीयान्स्यादुपक्रम्यः स वै भवेत् ।

सन्निपातज्वर में चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि निश्चय करे कि रोगी में कौन २ दोष कितनी मात्रा में बढ़े हुए हैं, कौन दोष प्रधान है और कौन दोष न्यून है; इस प्रकार सब निर्णय कर के चिकित्सा में निम्न नियमों का ध्यान रखेः—

१. चिकित्सक सब से पहिले यह निश्चय करे कि कफ साम या निराम अथवा प्रबल या हीन है। यदि कफ साम और प्रबल हो तो उसे पाकावधि से पहिले ही नष्ट करने का यत्न करना चाहिये; यदि कफ निराम अथवा पंच्यमान तथा प्रबल हो तो औषधि द्वारा उसे शरीर से निकालने का यत्न करें। यदि कफ साम अथवा निराम हो अर्थात् किसी भी दशा में हो परन्तु हीन हो तो उस के शमन करने का यत्न करें; कफ किसी भी दशा में बढ़ाने का यत्न नहीं करना चाहिये । कफ के शरीर से निकल जाने पर शरीरस्थ स्रोत शुद्ध हो कर शरीर हल्का हो जाता और क्षुधा लगती है तथा तृषा आदि उपद्रव शान्त होते हैं ।

२. यदि पित्तोल्वण सन्निपात हो तो कफ की न्यूनाधिकता का ध्यान

रखते हुए प्रधान दोष पित्त को शरीर से निकालने के लिए पित्तशामक या पित्तनिस्सारक क्रिया करनी चाहिये किन्तु ध्यान रहे कि अति शीतक्रिया पित्त की शामक होती है परन्तु वात तथा कफ की वृद्धि करती है इसलिये ऐसी क्रिया न करें। कफ वायु मिश्रित चिकित्सा द्वारा पित्त को नष्ट करने का अवश्य यत्न करें क्योंकि अति प्रबल पित्त भी रोगी की मृत्यु का कारण होता है।

सन्निपात में इन नियमों का पालन करते हुए बढ़े हुए दोषों को घटा कर और घटे हुए दोषों को बढ़ा कर चिकित्सा करें। जहां चिकित्सक दोषों की न्यूनता या अधिकता का निर्णय न कर सकें वहां पर पहिले लिखी गई साधारण चिकित्सा ही करें।

सन्निपात ज्वर में प्रथम कर्त्तव्य

सन्निपातज्वरे पूर्वं सम्यङ् लंघनमाचरेत्।
शृतं शीतं पिबेदम्भः समये भेषजं भजेत्॥
सन्निपातेन तृष्यन्तं पार्श्वरुक्तालुशोषिणम्।
यः पाययेज्जलं शीतं स मृत्युर्नरविग्रहः॥

पहिले लिख चुके हैं कि उत्तम आतुरालय किस प्रकार का होना चाहिये, सन्निपात रोगी के लिए उस का विशेष ध्यान रखना चाहिये। रोगी को उत्तम आतुरालय में लिटा कर यथाविधि लंघन करावें। वैद्य का कर्तव्य है कि दोष तथा ऋतु का ध्यान रखते हुए विधि अनुसार पका कर ठण्डा किया हुआ शीतल जल रोगी को पिलावें; इस के पश्चात् समयानुसार औषधि का प्रयोग करें।

सन्निपात में रोगी को प्यास हो, पार्श्वशूल हो और प्यास के कारण गला सूखता हो तथा सन्निपात की प्रत्येक हालत में औटा कर ठण्डा किया हुआ ही जल प्रयोग करना चाहिये। सन्निपात रोगी के लिए ठण्डा जल विष के समान है, इसलिए जो वैद्य सन्निपात में ठण्डे जल का प्रयोग करते हैं उन को साक्षात् यमराज समझना चाहिये।

सन्निपात में आवश्यक ६ कर्म

सन्निपात में आदि अवस्था से ज्वर शमन काल तक प्रत्येक दशा में निम्न लिखित ६ कर्म सर्वदा लाभकारी हैं —

लंघनं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा।
अवलेहोऽञ्जनं चैव प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे॥

१. दोषों के पाक के लिये रोगी को उष्ण जल देना, लंघन का प्रयोग तथा यथोचित गृह में रोगी को रखना।

२. हड़फूटन तथा शूल आदि पीड़ा को शान्त करने के लिए बालुकास्वेद देना।

३. मस्तिष्क की शुद्धि के लिए नस्य कर्म कराना।

४. मुख विरस रहता और जिह्वा फटती हो तो मुख की शुद्धि करने के लिए मुख में औषधि धारण करना।

५ हिक्का, कास और श्वास आदि उपद्रव होने पर कोई अवलेह चटाना।

६. प्रलाप, तन्द्रा और मोह आदि में मस्तिष्क को शुद्ध करने के लिए नेत्रों में अञ्जन करना।

सांकर्य क्रिया निषेध

क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिः क्रियासांकर्यमिष्यते॥
भिन्नरूपतया तास्तु न हि कुर्वन्ति दूषणम्॥
क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत्॥
पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रियासंकरो हितः॥

यह स्मरण रखना चाहिए कि सन्निपात ज्वर में किसी दशा में भी क्रियासंकर कदापि उचित नहीं है। यदि एक क्रिया से कदाचित लाभ न होवे तो चिकित्सक का कर्तव्य है कि एक क्रिया का वेग शान्त हो जाने पर दूसरी क्रिया करावे। एक समय में दो या दो से अधिक समान गुण वाली क्रियाओं के करनेका नाम क्रियासंकर है; जैसे अञ्जनके ऊपर कोई दूसरा अंजन अथवा एक बार वस्तिकर्म करने के बाद तत्काल दूसरी बार वस्तिकर्म करना।

सन्निपात में लंघनविधि

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि वा॥
लंघनं सन्निपातेषु कुर्यादारोग्यदर्शनात्॥

सप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशेऽपि वा ॥
पुनर्घोरतरो भूत्वा प्रशमं याति हन्ति वा ॥
त्रिदोषजे धातुमलपाकात् ॥

पहिले लिख चुके हैं कि दोषों की सन्धि क्रम से ७ दिन, दस दिन और बारह दिन है। आयुर्वेदज्ञ वैद्यों का अनुभव है कि यदि इन सन्धि के दिनों में दोष नहीं पचते तो धातुपाक प्रारम्भ हो जाता है अर्थात् धातु पचने लगते हैं जिनसे नाना उपद्रव होकर प्रायः रोगी की मृत्यु भी हो जाती है।

सन्निपात में रोगी को लंघन कराने की सामान्य विधि और अवधि ३ दिन, ५ दिन और दस दिन की कही गई है, अतः चिकित्सक का कर्तव्य है कि दोषों की अवस्था के अनुसार ३ दिन, ५ दिन या १० दिन तक रोगी को विधिपूर्वक लंघन करावें। यदि इन दिनों में दोष न पचे तो फिर दोषों के बलानुसार तब तक लंघन करावें जब तक कि रोगी आरोग्य न हो जावे। ठीक प्रकार दोषों के पाक तक रोगी के शरीर में बल की रक्षा के लिए त्रिदोषनाशक द्रव्यों द्वारा सिद्ध किए हुए पेया आदि हलके पदार्थ रोगी को देने चाहियें अन्यथा लंघन से रोगी निर्बल हो जावेगा और चिकित्सा में सदा रोगी के बल की रक्षा करनी चाहिये।

सन्निपात में त्याज्य द्रव्य

सन्निपात में रोगी को निम्न पदार्थों का रोग के आरम्भ से अन्त तक त्याग कर देना चाहियेः—

१. मांस का रस, चावल
२. बिना पका हुआ शीतल जल
३. घी

स्निग्ध स्वेद का निषेध

स्निग्धः स्वेदो निषिद्धोऽत्र विना केवलवातजात् ॥

जो रोग केवल वायु से उत्पन्न हुए हों उनमें ही स्निग्ध स्वेद का विधान है तथा जहां सन्निपात में तीनों दोषों का प्रकोप हो उस हालत में स्निग्ध स्वेद का निषेध है; इस दशा में स्वेद देना उचित नहीं है।

सन्निपात ज्वर में स्निग्ध स्वेद के अतिरिक्त वातज्वर में बताये हुए

बालुका स्वेद तथा निष्ठीवन आदि का प्रयोग करना चाहिए ।

बालुका स्वेद की विधि

किसी मिट्टी या लोहे के बर्तन में बालु भर कर उसे तीव्र गरम करें, जब वह लाल हो जावे उस समय रोगी को नग्न कर दें और केवल एक कम्बल ऊपर दे दें । कम्बल सहित रोगी को बेंत की बुनी हुई किसी चौकी पर इस प्रकार लिटावें कि उसके नेत्रों को किसी प्रकार वाष्प न लगने पावे; अब चौकी के नीचे गरम की हुई रेत रख कर ऊपर सिरका छिड़क दें, जिसके वाष्पों से रोगी को स्वेद होगा । ध्यान रहे कि कम्बल इतना लम्बा चौड़ा होना चाहिये कि रोगी के सम्पूर्ण शरीर को ढककर पृथिवी से मिल जावे । इस प्रकार स्वेद देने से शूल आदि पीड़ा शान्त होकर रोगी का ज्वर उतर जाता है ।

सैन्धवादिनस्य

सैन्धा नमक, सुहाञ्जने के बीज, कूठ, सरसों, इन सब द्रव्यों को बकरे के मूत्र में खरल कर के नस्य देने से तन्द्रा नष्ट होती है ।

मधूकसारादि नस्य ।

महुए का सार, सैन्धा नमक, काली मिरच, पीपल इन सब द्रव्यों को समान भाग ले कर नस्य देने से तन्द्रा नष्ट होती है ।

आर्द्रक रसादि नस्य ।

अदरक के रस अथवा बिजौरे नीम्बू के रस को कुछ गर्म कर के उस में सौंचर नमक, सैन्धा नमक और कांच नमक मिला कर नस्य देने से तन्द्रा नष्ट होती है ।

इन के अतिरिक्त अन्य अनुभूत तीव्र नस्यों का भी प्रयोग कर सकते हैं । नस्य के प्रयोग से कफ पतला हो कर मुख तथा नासिका द्वारा निकल जाने से कण्ठ, मुख, हृदय, मस्तिष्क और पसलियों की पीड़ा शान्त हो जाती तथा मोह और तन्द्रा का नाश होता है ।

निष्ठीवन ।

जब अत्यन्त दाह और शुष्कता के कारण जीभ, तालु और क्लोम में

शोष हो तथा रोगी की जिह्वा लाल, काली और गोजिह्वा के समान खर स्पर्श हो गई हो और प्यास अधिक हो, रोगी की जीभ फट जावे और अत्यन्त विकलता हो उस समय मुनक्का को शहद और घी में मिला कर जीभ पर मलने से बहुत लाभ होता है। सहस्रों वार का अनुभूत है।

अदरक के रस में सेन्धा नमक, सोंठ, मिरच और पीपल को मिला कर मुख में भर कर बार २ कुल्ली (गरारे) करने से मुख, तालु, ग्रीवा, पसली तथा कोष्ठ आदि में रुका हुआ कफ खिंच कर निकल जाता और श्वास आदि सब पीड़ा शान्त हो जाती है। रोगी के बलाबल का विचार करते हुए इस को अनेक बार प्रयोग कर सकते हैं।

शहद का निषेध।

सम्पूर्ण सन्निपात ज्वरों में रूक्षता, तृषा तथा अधिक दाह होने की दशा में उष्ण और कर्षण होने के कारण अकेले शहद का प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि उष्णता और शरीर में कृशता होने पर शीतल उपचार की आवश्यकता होती है और सन्निपात में शीतल उपचार का सर्वदा निषेध किया गया है।

अवलेह का निषेध।

कण्ठ से ऊपर वाले रोग, हिक्का, श्वास, कास आदि में प्रातःकाल के समय अथवा दिन के समय अवलेह का प्रयोग निषिद्ध है। इन रोगों में अवलेह का सदा सायंकाल के समय ही प्रयोग करना चाहिये।

अष्टांगावलेह।

कायफल, पोहकरमूल, काकड़ासिंगी, सोंठ, मरिच, पीपल, जवासा, कलौंजी, इन आठ द्रव्यों को समान भाग ले कर चूर्ण कर के अदरक के रस में मिला कर चाटने से कास, श्वास, हिचकी तथा कण्ठ के रोग नष्ट हो जाते हैं।

चतुरंगावलेह।

भीगे हुए आंवलों को पीस कर उस में दाख और सोंठ का चूर्ण मिला कर शहद के साथ चाटने से श्वास, खांसी, अरुचि और मूर्छा नष्ट होती है।

अञ्जन ।

शिरस के बीज, पीपल, काली मरिच, सेन्धा नमक, लहसुन, मैनसिल और वच समान भाग ले कर इन को एकत्र गोमूत्र में पीस कर अंजन करने से चेतनता आती है और मोह तथा तन्द्रा दूर होते हैं ।

लोहचूर्णाञ्जन ।

लोहे का चूर्ण, सफेद लोध, काली मरिच, इन को गोमूत्र में पीस कर अञ्जन करने से तन्द्रा नष्ट होती है ।

दण्डपाण्यञ्जन ।

शहद, सेन्धानमक, मनःशिला, काली मरिच इन सब को एकत्र पीस कर नेत्रों में अञ्जन करने से बेहोशी नष्ट होती है ।

दशमूलादि क्वाथ ।

दशमूल की दशों वस्तुयें २ तो. का यथाविधि क्वाथ बना कर और इस काढ़े में पिप्पली का ४ रत्ती से १ माशा चूर्ण मिला कर रोगी को पिलाने से अत्यन्त वातकफोल्वण सन्निपात, विकलता, पार्श्वशूल, मूर्छा, तन्द्रा आदि नष्ट होते हैं ।

द्वादशांग क्वाथ ।

दशमूल की दशों औषधियां २ तोले पिप्पली और पीपलामूल प्रत्येक ३ माशे इन १२ द्रव्यों का क्वाथ अति कफ होने की दशा में लाभप्रद है । श्वास तथा कास को तत्काल नष्ट करता और वात तथा कफ का पाचक है ।

चतुर्दशाङ्ग क्वाथ ।

दशमूल की दशों चीजें २ तोले, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय, सोंठ प्रत्येक ३ माशे इन द्रव्यों का क्वाथ वातकफोल्वण सन्निपात को अत्यन्त लाभकर है । यह क्वाथ धातुपाक में हितकर और पित्तनाशक है ।

त्रिफलादि क्वाथ ।

त्रिफला, कायफल, देवदार, लाल चन्दन, काली मरिच, पद्माख, खस, फालसे की छाल, पीपल, सोंठ प्रत्येक ३ माशे यथाविधि क्वाथ बनावें

इन द्रव्यों का क्वाथ पित्तकफोल्वण सन्निपात में लाभ करता है। यह पित्त को शीघ्र निकालने वाला, कफनाशक और मूत्रल है। इस के प्रयोग से बढा हुआ पित्त तत्काल शान्त होता है। यह विरेचक, कफहर, पित्तनाशक और दीपन है।

तिक्तादि क्वाथ।

कुटकी, पित्तपापड़ा, पोहकरमूल, गिलोय, त्रायमाण, कटैली छोटी; जवासा, रास्ना, चिरायता, कचूर, सोंठ, बड़ी हरड़ की छाल, भारंगी प्रत्येक ३ माशे यथाविधि क्वाथ बनावें इन द्रव्यों का क्वाथ पित्त कफोल्वण सन्निपात में हितकर है। मूर्छा, विकलता, तन्द्रा, श्वास आदि होने पर यह अति श्रेष्ठ है, यह भेदन, वातानुलोमन, मस्तिष्क शोधक, पित्तहर और विकलता-नाशक है।

चूर्ण।

पहिले कहे सुदर्शन चूर्ण, ज्वरभैरव चूर्ण, आनन्दचूर्ण आदि सन्निपात ज्वर में योग्य अनुपान के साथ समयानुसार प्रयोग करने से लाभ होता है।

मृतसंजीवनी वटिका।

शुद्ध मीठा तेलिया, सोंठ, मरिच, पीपल, गन्धक, सुहागे की खील, धतूरे के बीज, ताम्रभस्म, शिंगरफ शुद्ध सब द्रव्यों को सम भाग लेकर ३ दिन भांगरे के रसमें खरल करके चने के बराबर गोली बना लें। इसका नाम मृतसंजीवनी वटी है। यह वटी आक की जड़ के क्वाथ के साथ देने से सब प्रकार के सन्निपात ज्वरों को नष्ट करती है। वायु तथा कफ की प्रबलता में यह विशेषतया लाभकर है। इस रस में वांसा के पत्तों के रस तथा पारद और गंधक के योग से की हुई ताम्रभस्म डालनी चाहिये।

भस्मेश्वर रस।

अरने उपलों की भस्म ३६ माशे, काली मरिच १ माशा, मीठा तेलिया १ माशा, इन सब द्रव्यों को एकत्र खरल करने से भस्मेश्वर रस बनता है।

यह रस सन्निपातज्वर को नाश करने के लिए एक श्रेष्ठ औषधि है। भिन्न २ दशाओं में समयानुसार योग्य अनुपान के साथ लाभ करता है।

यह रस कफ वातहर तथा समवीर्य है, जब रोग में दोषों का निर्णय भली प्रकार न हो सके उस समय किसी क्वाथ के साथ इस का प्रयोग कर सकते हैं।

संजीवनी वटी।

वायविडङ्ग, सोंठ, पीपल छोटी, हरड़ छाल, बहेड़ा छाल, आमला, वच, गिलोय, शुद्ध भिलावां, शुद्ध मीठा तेलिया प्रत्येक समान भाग ले कर बारीक चूर्ण बना लें पश्चात ३ से ७ दिन तक काले वर्ण की गाय के मूत्र में खूब खरल करें; और एक २ रत्ती की गोलियां बना लें; सान्निपात ज्वरी को १ से ४ गोली तक उष्णोदक अथवा अदरक के रस के साथ तीन २ घंटे पश्चात सेवन कराने से पूर्ण लाभ होता है। यह प्रत्येक सन्निपात ज्वर की निराम तथा सामावस्था में बेखटके दे सकते हैं; यह सन्निपात की अव्यर्थ औषधि है, इस अकेली को बना कर रखने वाला चिकित्सक सन्निपात की चिकित्सा में कभी हताश नहीं हो सकता।

हमारी सम्मति है कि सन्निपातज्वर की साधारण दशा में सदा इस का ही प्रयोग करना चाहिये; उपद्रव होने पर किसी दूसरी औषधि का प्रयोग करना चाहिये।

यहां सन्निपातज्वर की साधारण औषधियों का निर्णय किया गया है। आगे पृथक् २ सन्निपात ज्वरों की चिकित्सा में समयानुसार विशेष योग लिखेंगे।

सन्धिगत सन्निपात चिकित्सा।

सान्धिगत सन्निपात में आम वायु जोड़ों में एकत्र हो कर शोथ हो जाती और अति शूल होता है। ऐसे रोगियों के मूत्र में प्रायः आम (यूरिक एसिड) अधिक होता है इस ज्वर में वात और कफ प्रधान होते हैं; इन ज्वरों में सदा वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये।

इस ज्वर में केवल तीन दिन ही लंघन कराना चाहिये और पीड़ा की शान्ति के लिए रोगी को बालुकास्वेद दें और आतुरालय में निम्न द्रव्यों की धूप देते रहें।

धूप या धूनी।

गूगल, राई, नीम के पत्ते, राल समान भाग ले कर चूर्ण कर लें और प्रातः सायं दहकते कोयलों पर डाल कर धूप दें। इस से रोगी को बहुत लाभ होता है।

मुस्तकादि क्वाथ।

नागरमोथा, एरण्ड की जड़, बड़ी हरड़ की छाल, बांसे के पत्ते, देवदारु, गिलोय, रास्ना, शतावर, कचूर, कुटकी, सोंठ, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, गोखरू, अरनी की छाल, बेल की छाल प्रत्येक ३ माशा यथाविधि क्वाथ बना कर रोगी को दिनमें दो तीन बार पिलावें इन का क्वाथ सान्धिगत सन्निपात को नष्ट करने के लिए एक अनुभूत और प्रसिद्ध योग है। इस के उपयोग से दोष धीरे २ पच जाते हैं और शोथ आदि शान्त होते हैं। यह वायु का अनुलोमक है।

गुडूच्यादि क्वाथ।

गिलोय, एरण्ड की जड़ की छाल, सोंठ, देवदारु, रास्ना, बड़ी हरड़ की छाल प्रत्येक ४ माशे यथाविधि क्वाथ बना कर रोगी को सेवन करावें, इस क्वाथ को यथाविधि पीने से मुस्तकादि क्वाथ के समान ही लाभ होता है।

हमारा अनुभव है कि सन्धिगत सन्निपात में उपरोक्त 'श्री मृत्युञ्जय रस' भी अत्यन्त लाभ करता है। रोगी को ३ या ४ घण्टे बाद औषधि को मुनक्का में भर कर खिला दें; एक दिन में १ से ४ गोली की मात्रा तक दे सकते हैं इस से रोगी को पसीना आकर जोड़ों का दर्द शान्त होता और शूल नष्ट होती है, इससे रोगी को निर्बलता नहीं होती। यह हमारा सहस्त्रों वार का अनुभूत योग है, वैद्य महोदय इस औषधि को अवश्य बना कर अपने चिकित्सालय में रखें और चिकित्सा में सफलता प्राप्त कर यश के भागी हों।

सन्धिग सन्निपात में सन्धियों में शूल होने और रूक्षता के कारण मस्तिष्क में खुश्की होने से रोगी को नींद नहीं आती और विकलता अधिक होती है ऐसी दशा में निम्न किसी प्रयोग से रोगी को नींद आ जाती है—

१. कांसी के पात्र में ६ माशे एरण्डा का तैल ले कर दूसरी कांसी की कटोरी से इतना घिसें कि तैल काला हो जावे, इस के अञ्जन से रोगी को तत्काल नींद आ जाती है।

२. स्वर्ण माक्षिक की एरण्डी के तेल के योग से की हुई भस्म २ रत्ती से ४ रत्ती तक मात्रा में खिलाने से भी अवश्य नींद आ जाती है।

३. भांग ४ रत्ती घी में भून कर मुनक्का में मिला कर खिलाने से रोगी को नींद आ जाती है।

४. बादाम तथा कद्दू का तेल मिला कर सिर में मलने या कपड़ा भिगो कर सिर पर रखने से नींद आती है।

५. कुछ खोया गर्म कर के रोगी के सिर पर बांधने से रोगी को नींद आती है।

६. कुछ घी हलका गरम कर के तालु पर रखने से नींद आती है।

रुग्दाह सन्निपातज्वर चिकित्सा

यह ज्वर पित्तप्रधान होता है इसलिये उपरोक्त पित्तज्वरनाशक चिकित्सा की विधि से पित्त को शान्त करने का यत्न करना चाहिये। इस ज्वर में रोगी को ५ दिन लंघन करना उचित है और आतुरालय भी उत्तम होना चाहिये।

पीने के लिए ख़स, लाल चन्दन, मुनक्का, आंवले और पित्तपापड़े से सिद्ध किया हुआ जल रोगी को देना चाहिये।

दाह नाशक हिम

धनिये के २ से ४ तोला चावलों का हिम बना कर पिलाने से अति प्रबल अन्तर्दाह और पित्तज्वर शान्त होता है।

हरीतक्यादि क्वाथ

बड़ी हरड़ का छिलका, पित्तपापड़ा, कुटकी, देवदारु, अमलतास का गूदा, मुनक्का, नागरमोथा प्रत्येक ४ माशा यथा विधि क्वाथ बना कर रोगी को दो तीन बार दिन में पिलावें, इन द्रव्यों का क्वाथ रुग्दाह सन्निपात में देने से अति लाभ होता है। यह क्वाथ ऐसी दशा में दिया जाता है जब आनाह हो या पित्त को विरेचन द्वारा निकालना उचित हो।

दाह नाशक अवलेह

हरड़ के चूर्ण को शहद, तैल या घी के साथ चाटने से दाह नष्ट होता है।

दाहनाशक लेप

बेरी के पत्ते दही में पीस कर रोगी के शरीर पर मलने से या कपूर, चन्दन श्वेत तथा नीम के पत्तों को एकत्र कर घिस कर लगाने से दाह शान्त होता है।

अवगाहन

शीतल जल से १०० बार धोए हुए नौनी घी को शरीर पर मल कर, कमल के फूलों की माला पहिन कर शीतल जल में स्नान करने से तत्काल दाह शान्त होता है।

जल धारा

विधि अनुसार जल की धारा का नाभि पर प्रयोग करने से दाह शान्त होता है।

अवगुण्ठन

पूर्वोक्त विधि से अवगुण्ठन करने से दाह तत्काल नष्ट होता है।

धूप या धूनी

ख़स, चन्दन श्वेत, राल, कपूर सब द्रव्यों को समान ले कर यथा विधि धूप या धूनी देने से आतुरालय शुद्ध होता तथा रुग्दाह सन्निपात जनित पीड़ा शान्त होती है।

चित्तभ्रम चिकित्सा

सन्निपात में विचार शक्ति के अच्युत नामक केन्द्र के विकृत होने से तथा सरस्वती केन्द्र की क्रिया तीव्र हो जाने से मनुष्य के मन में नाना प्रकार के हंसने, गाने और नाचने आदि के विचार पैदा हो कर रोगी कभी नाचता, कभी हंसता, कभी गाता और कभी तिरछी निगाह से देखता है। अन्त में मस्तिष्क के स्रोतों में दूषित वायु भर जाने से रोगी बेहोश हो कर मोह को प्राप्त हो जाता है; यह सन्निपात में वायु के प्रतिलोम होने के लक्षण हैं; इसलिए इस में वातानुलोमन चिकित्सा तथा स्रोतों की शोधक चिकित्सा लाभकारी है।

सारस्वतादि क्वाथ

ब्राह्मी, पाढल, पटोलपत्र, सुगन्धबाला, बड़ी हरड़ की छाल, पित्त-पापड़ा, कुटकी, अमलतास का गूदा, शंखाहुली प्रत्येक ३ माशा यथाविधि क्वाथ बना कर रोगी को पिलावें, इन सब द्रव्यों का क्वाथ पिलाने से चित्त-भ्रम सन्निपात नष्ट होता है। यह प्रयोग वायु के अनुलोमन करने, मास्तिष्क के स्रोतों को शुद्ध करने, चित्त की वृत्तियों को ठीक करने और पेट के साफ़ करने के लिए अत्यन्त लाभकारी है। यह मृदुरेचन है।

पटोलादि क्वाथ

पटोलपात, बड़ी हरड़ की छाल, कुटकी, दार हल्दी, ब्रह्मी, नागर-मोथा, चिरायता प्रत्येक ४ माशा यथा विधि क्वाथ बना कर पिलावें यह क्वाथ भी चित्तभ्रमनाशक है। यह प्रायः रक्तगत दोषों को भी शुद्ध करता है।

तन्द्रानाशक अंजन

१. पीपल, वच, काली मरिच, सेंधा नमक, करञ्जुए की गिरी, हल्दी, सूखे आंवले, बड़ी हरड़ की छाल, बहेड़े का छिलका, सरसों, हींग; सोंठ यह सब द्रव्य समान भाग ले कर बकरे के मूत्र में घोट कर वटि बना लें। आवश्यकता होने पर जल में घिस कर नेत्रों में अञ्जन करने से तत्काल लाभ होता है।

२. मैनसिल, वच, बहेड़े की छाल, पीपल, काली मरिच सब द्रव्यों को समान भाग लें पीस कर घोड़े की लार में घिस कर आंख में अञ्जन करने से मूर्छा नष्ट होती है। यह प्रयोग हमारा सहस्रों वार का अनुभूत है।

नस्य

१. गुड़ पुराना, पीपल और सोंठ को अगस्त के पत्तों के रस में पीस कर नासिका में डाल कर सूंघने से तन्द्रा तथा मूर्छा नष्ट होती है।

२. पारा शुद्ध, गन्धक शुद्ध, मीठा तेलिया शुद्ध, प्रत्येक १ तोला, त्रिकुठा ८ तोले, मैनसिल १ तोला, पीपल ४ तोले सब द्रव्यों को कूट पीस कर नस्य बना लें; इस के सूंघने से तत्काल मूर्छा नष्ट होती और रोगी को होश आ जाता है।

यह नस्य अति तीव्र विष है, इसलिए इस को अति सावधानी से प्रयोग में लावें। मात्रा ½ रत्ती से ४ चावल।

इस ज्वर में पूर्वोक्त सञ्जीवनी वटी भी विशेष लाभ करती है।

शीताङ्ग सन्निपात चिकित्सा

इस रोग में प्रायः हृदय की क्रिया अति मन्द हो जाती है, इस से हृदय पूर्ण मात्रा में रुधिर नहीं फेंक सकता जिससे नाड़ी की गति भी मन्द हो जाती है। इस कारण इस रोग में सब से पहिले हृदय की क्रिया की ओर ध्यान देना चाहिये, इस रोग में प्रायः हृदयोत्तेजक, उष्णवीर्य, वात-कफ नाशक द्रव्यों का यथोचित अनुपान के साथ उपयोग करने से अत्यन्त लाभ होता है।

अर्कमूलादि क्वाथ

आक की जड़ की छाल, काला जीरा, काली मरिच, पीपल, भारंगी, कटैली छोटी, कटैली बड़ी, सोंठ, पोहकरमूल प्रत्येक ३ माशा यथा विधि क्वाथ बना कर रोगी को पिलावें, इन द्रव्यों का क्वाथ पिलाने से शीतांग सन्निपात वाले रोगी को लाभ होता है। यह वातानुलोमन, स्रोतवाही, हृदयोत्तेजक, कफनाशक, दीपन और पित्तजनक है।

शीतांग सन्निपात में रोगी के रोम कूपों द्वारा गर्मी शरीर से निकलती है, इस कारण गर्मी को शरीर में रोकने और शरीर को गर्म रखने के लिए के लिए उद्धूलन करना अत्यन्त आवश्यक है।

उद्धूलन

१. ककौड़े की जड़, कुलथी, पीपल, वच, कायफल, जीरा काला, चिरायता, चीते की छाल, बड़ी हरड़ का छिलका यह द्रव्य महीन पीस कर कायफल के क्वाथ में मिला कर शरीर पर मलने से शरीर गर्म हो जाता है।

२. कड़वी तोरी के बीज, कुलथी, चीते की छाल, चिरायता, वच, बड़ी हरड़ की छाल, पीपल, कायफल, जीरा काला, पित्तपापड़ा इन को महीन पीस कर किसी कपड़े की पोटली में बांध कर शरीर पर मलने से रोम कूप अवरुद्ध हो कर शरीर गरम हो जाता है ।

३. शुद्ध पारा, शुद्ध मीठा तेलिया प्रत्येक १ तोला, काली मरिच ४ तोले, धतूरे के फलों की राख ८ तोले सब को महीन पीस कर रोगी के शरीर पर मलने से रोगी का शरीर तत्काल गरम हो जाता है । यह प्रयोग अनेक बार का अनुभूत है ।

कस्तूरी भैरव रस

शुद्ध शिंगरफ, शुद्ध मीठा तेलिया, सुहागे की खील, जावित्री, जायफल, काली मरिच, पीपल, कस्तूरी सब द्रव्यों को समान भाग ले कर पान के रस में एक दिन निरन्तर खरल करके रख लें, इस रस का नाम कस्तूरी भैरव है । मात्रा—१ रत्ती से ४ रत्ती तक दिन में तीन चार मात्रा अद्रक अथवा पान के रस के साथ दे सकते हैं ।

कस्तूरी भैरव की २ रत्ती की गोली बनानी चाहिये । यह रस वातानुलोमन, कफनाशक, हृद्य, हृदय की गति तीव्र करने वाला, अग्निवर्धक, दीपन, पाचन, शीतांग हर तथा शरीर को गरम करने के लिए उत्तम है ।

इन के अतिरिक्त चन्द्रोदय रस, रससिन्दूर, वसन्त कुसुमाकर, बृहत् कस्तूरीभैरव रस आदि भी समयानुसार यथोचित मात्रा में प्रयोग कर सकते हैं ।

कण्ठकुब्ज सन्निपात ज्वर चिकित्सा

इस रोग में कण्ठ में कांटे से उत्पन्न हो जाने के कारण रोग को कण्ठ-कुब्ज सन्निपात ज्वर कहा जाता है । यह वातकफोल्वण सन्निपात ज्वर है ।

त्रिफलादि क्वाथ

हरड़ की छाल, बहेड़े का छिलका, आमला, सोंठ, मरिच, पीपल,

नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजौ, अड़ूसा और हल्दी प्रत्येक ३ माशा यथाविधि क्वाथ बनाकर प्रयोग करने से कण्ठकुब्ज सन्निपात ज्वर शीघ्र नष्ट हो जाता है। यह काढ़ा पच्यमानावस्था में विशेष लाभ करता है।

किरातादि क्वाथ

चिरायता, कुटकी, इन्द्रजौ, पीपल, कचूर, कटैली छोटी, बहेड़े की छाल, हरड़ का छिलका, देवदारू, काली मरिच, कायफल, नागरमोथा, अतीस, आंवला, पोहकरमूल चीते की छाल, काकड़ासिंगी, बांसे के पत्ते, सोंठ प्रत्येक ३ माशा यथाविधि क्वाथ बनाकर सेवन कराने से कण्ठकुब्ज रोग नष्ट होता है।

कण्ठकुब्ज नाशक नस्य

पीपल का चूर्ण करके भटकटैया के रस में मिलाकर नस्य लेने से कण्ठकुब्ज रोग नष्ट होता है।

कर्णक सन्निपात ज्वर चिकित्सा

जिस ज्वर में कर्णमूल शोथ होता है उसे कर्णक ज्वर कहा जाता है। कर्णमूल निकलने पर रोगी को अधिक पीड़ा होती और अनेक उपद्रव हो जाते हैं, अतः चिकित्सक को विशेषतया कर्णमूलशोथ की चिकित्सा की ओर ध्यान देना चाहिये।

भारंगी आदि काढ़ा

भारंगी, अरनी की छाल, पोहकर मूल, कटैली छोटी, सोंठ, काली मरिच, पीपल, वच, नागरमोथा, गिलोय, काकड़ासिंगी, कुटकी, रास्ना प्रत्येक ३ माशे सब द्रव्यों को विधि पूर्वक काढ़ा बना कर पीने से कर्णक सन्निपातज्वर नष्ट होता है। यह काढ़ा उदर को शुद्ध करके कर्णमूल शोथ को हटाता है। यह क्वाथ वातानुलोमन; शोथनाशक, कफनाशक, दीपन, सर और ज्वर नाशक है।

दशमूलादि क्वाथ

दशमूल की दशों वस्तुएं १ तोला, कुटकी, पीपलामूल, बहेड़े की छाल, हरड़ का छिलका, आमला, सोंठ, चिरायता, काली मरिच प्रत्येक ३ माशा यथा विधि काढ़ा बनावें और प्रयोग करें इससे वेदना सहित कर्णक सन्निपात नष्ट होता है। यह काढ़ा त्रिदोष नाशक, सर, भेदन, शोथनाशक ज्वरनाशक और लेखन है। यह कर्णक सन्निपात ज्वर की एक उत्तम औषधि है और हमारा सहस्रों वार का अनुभूत है।

कर्णमूल चिकित्सा

१. हल्दी, इन्द्रायण, कूठ कड़वा, सांभर नमक, देवदारु, हींग, सब द्रव्यों को आक (मदार) के दूध में खरल करके लेप करने से सूजन सहित कर्णमूल नष्ट हो जाता है। यह लेप शोथ के नाश में अद्भुत प्रभाव करता है।

२. कुलथी, कायफल, सोंठ, जीरा स्याह सबको समान भाग ले कर गोमूत्र में खरल कर के हलका गरम ही शोथ पर लेप करने से शोथ शान्त हो जाती है।

३. सुहाञ्जने की छाल और राई दोनों द्रव्यों को समान भाग ले कर गोमूत्र में खरल करके हलका गरम ही लेप करने से शोथ शान्त हो जाती है। यह लेप शोथ नाशक और दाहनाशक है।

विजौरे नींबू का छिलका गौ मूत्र में पीस कर लेप करने से शोथ हट जाती है।

५. गेरू, सोंठ, वच और कायफल इन द्रव्यों को महीन पीस कर गोमूत्र से हलका गरम ही लेप करने से पीड़ा शान्त हो जाती है।

कर्णमूलशोथ होने पर उपरोक्त किसी लेप या सेंक द्वारा पहिले शोथ को नष्ट करने का यत्न करें, यदि शोथ नष्ट न हो और पीड़ा अधिक हो तो जोंकें लगा कर शोथ नष्ट करने का यत्न करें। जोंकें लगाने के बाद

प्रचलित रीति के अनुसार पहिले नीम और बकायन के पत्तों का गरम भुरता बांधें और ३ दिन भुरता बांध कर निम्न लेप करें—

६. पाकशाला का धूंआं, हल्दी, सोंठ, सरसों, सांभर और वच इन सब द्रव्यों को समान भाग ले गोमूत्र में खरल कर के जोंक लगाने के स्थान पर लेप करने से शोथ बहुत शीघ नष्ट होती है।

यदि लेप अथवा जोंक आदि द्वारा भी शोथ शान्त न हो और उसके पकने की आशंका हो तो किसी सुयोग्य शल्य चिकित्सक की सम्मति से उस पर पहिले गेहूँ के आटे या अलसी की पुल्टिस बांधें और शोथ पक जाने पर उसमें चीरा लगादें और व्रणवत् चिकित्सा करें।

मरहम

राल ५ तोले, कत्था श्वेत ५ तोले, नीला थोथा ६ माशे, फटकड़ी श्वेत ६ माशे, शुद्ध जल ५ तोले, तेल मीठा ५ तोला। पहिले पानी और तेल को अंगुली से इतना मथें कि दोनों मिलकर मक्खन की तरह हो जावें, फिर शेष द्रव्य बहुत बारीक पीस कर इसमें मिलादें। यह मरहम व्रणशोधन और व्रणरोपण है।

भुग्न नेत्र सन्निपात ज्वर चिकित्सा

इस रोग में वायु प्रतिलोम होने से मस्तिष्क के अन्य केन्द्रों की अपेक्षा सूर्य केन्द्र और वायु केन्द्र में विशेष विकृति हो जाती है जिससे नेत्र और कान अपना २ कर्म ठीक प्रकार नहीं कर सकते। इस सन्निपात ज्वर में चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि वायु को अनुलोम करने का यत्न करे।

इस रोग में शिरोविरेचन अतिलाभप्रद है।

दारु हरिद्रादि कषाय

दारु हल्दी, पटोलपत्र, नागरमोथा, कटैली छोटी, कुटकी, हल्दी, त्रिफला प्रत्येक ४ माशा, इन द्रव्यों का यथाविधि क्वाथ बनाकर पीने से भुग्ननेत्र सन्निपात ज्वर शान्त होता है। यह क्वाथ वातानुलोमक, मस्तिष्क शोधक, सर, रेचक, त्रिदोषहर और ज्वर नाशक है।

पिप्पल्यादि कषाय

पीपल, पटोलपात, वच, नागरमोथा, कूठ कड़वा, कुटकी, देवदारु,

नीम छाल, प्रत्येक ३ माशा इन द्रव्यों का क्वाथ भी भुग्ननेत्र सन्निपात को शान्त करता है ।

नस्य

असगन्ध नागौरी, सेंधा नमक, वच, महुआ, काली मरिच, पीपल, सोंठ, लहसन इन सब औषधियों को समान भाग ले कर बकरे के मूत्र में पीस कर रोगी को नस्य देने से मस्तिष्क शुद्ध हो भुग्ननेत्र सन्निपात नष्ट होता है।

किरातादि लेह

चिरायता, पित्तपापड़ा, वच, पीपल छोटी, काली मिर्च, राई और लहसुन इन द्रव्यों को समान भाग लेकर महीन पीस कर चार गुना शहद मिलाकर लेह बनालें । इस किरातादि लेह के चाटने से रोगी को लाभ होता है ।

नेत्राञ्जन

सांभर नमक और पीपल को पीस कर नेत्रों में लगाने से नेत्रों की विकृति नष्ट हो जाती है ।

—:०:—

रक्तष्ठीवी सन्निपात चिकित्सा

यह प्रायः पित्तोल्वण सन्निपात माना जाता है, जिसमें दोष रक्त को दूषित करते हैं, इस कारण रक्त का वेग अधिक हो जाता और व्यान वायु के विकृत होने से त्वचा पर लाल या कृष्ण वर्ण के मण्डल हो जाते हैं। इसी वायु के विकार से रक्त मुखस्थ हिता नाम नाड़ियों या आमाशय में निकल कर मुख द्वारा वमन के साथ बाहिर निकला करता है ।

इस रोग में चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि रक्तशोधन, दाहनाशक और वातहर तथा वातानुलोमन द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करे ।

उशीरादि क्वाथ

खस, धमासा, बांसे के पत्ते, पित्तपापड़ा, प्रियंगुफूल, कुटकी, प्रत्येक ४ माशे यथाविधि क्वाथ बनाकर मिश्री मिलाकर प्रयोग करने से इस रोग में लाभ होता है । यह काढ़ा रक्त शोधक, वातपित्तहर, भेदक, रक्तावरोधक, वातानुलोमक तथा ज्वरनाशक

है। यह रोग की किसी भी अवस्था में प्रयोग किया जा सकता है।

पद्माकादि क्वाथ

पद्माख, लाल चन्दन, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, चमेली के पत्ते, नेत्रबाला, श्वेत चन्दन, मुलहठी, नीम की छाल प्रत्येक ३ माशे यथाविधि क्वाथ बना मिश्री मिलाकर रोगी को देने से अति लाभ होता है। यह कषाय रक्तशोधक, ज्वरनाशक तथा रक्तशोधक है परन्तु आनाह तथा आध्मान होने पर इसका प्रयोग न करें।

नस्य

१. दूब घास की नस्य लेने से मुख तथा नासिका से आता हुआ रुधिर रुक जाता है।

२. शीतलचीनी को बकरी के दूध में पीस कर नस्य लेने से रुधिर का जाना रुक जाता है।

३. त्रिफला के क्वाथ में दूर्वा का रस मिलाकर नस्य लेने से रुधिर रुकता है।

प्रलापक सन्निपात चिकित्सा

चित्तभ्रम सन्निपात के समान प्रलापक सन्निपात में भी वायु के प्रतिलोम होने के कारण मस्तिष्क के ब्रह्म आदि ज्ञानकेन्द्रों में विकार हो जाता है जिससे रोगी बिना सोचे समझे कुछ का कुछ बोलने लगता है तथा उसको अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं रहता। इस रोग में चित्तभ्रमसन्निपात के समान क्वाथ, नस्य तथा अञ्जन आदि का प्रयोग करना चाहिए।

मुस्तादि क्वाथ

नागर मोथा, नेत्रबाला, पित्तपापड़ा, लाल चन्दन, और वच प्रत्येक ९ माशे इन द्रव्यों का बना काढ़ा यथाविधि सेवन करने से प्रलापक ज्वर शान्त होता तथा बुद्धि ठीक होती है।

अगर्वादि क्वाथ

अगरु, पित्तपापड़ा, अमलतास का गूदा, नागरमोथा, कुटकी, खस

असगन्ध, मुनक्का, लाल चन्दन, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, गोखरु, गम्भारी, पाढल, दोनों कण्टकारी, बेल की छाल, अरनी की छाल, अरलू की छाल, संखाहुली प्रत्येक तीन माशे इनका कषाय प्रलापक ज्वर को नष्ट करता है। इसके प्रयोग से वायु अनुलोम होती, ब्रह्मादि केन्द्र शुद्ध हो बुद्धि ठीक होती तथा प्रलाप नष्ट होता है; यह अति उत्तम क्वाथ है।

इस रोग में प्रयुक्त होने वाले अञ्जन आदि चित्तभ्रम सन्निपात के समान ही हैं, इस लिए वहां से देख कर ही प्रयोग करें।

जिह्वक सन्निपात ज्वर चिकित्सा

इसमें कफ तथा वायु प्रबल होने के कारण रोगी की जिह्वा कण्टकावृत्त हो जाती और कानों से बहिरा हो जाता है, इस लिए चिकित्सक को जिह्वा को शुद्ध तथा हलका करने और रूक्षता दूर करने की ओर ध्यान देना चाहिये।

कवल

चिरायता, अकरकरा, कुलिञ्जन (पान की जड़) कचूर, पीपल, सब समान भाग, इन द्रव्यों को पीस कर सरसों के तेल और बिजौरे निम्बू के रस में मिलाकर मुख में धारण करने से जिह्वा की स्थिरता और कांटे तत्काल नष्ट हो जाते हैं।

शालूरपर्यादि लेह

ब्राह्मी, बेल की छाल, कूठ, शंखपुष्पी सब समान भाग यह द्रव्य पीस कर शहद में मिला कर चाटने से वाणी शुद्ध होती, जीभ की स्थिरता नष्ट होती तथा जीभ हल्की हो जाती है।

कण्टकार्यादि क्वाथ

कटैली छोटी, सोंठ, पोहकरमूल, गिलोय, ब्राह्मी, तुलसी के पत्ते, सुगन्धवाला, भारंगी, जवासा और वच प्रत्येक ३ माशे इन द्रव्यों का क्वाथ विधिपूर्वक बनाकर पीने से जिह्वक सन्निपात शान्त होता है। यह कषाय बुद्धिवर्धक, कफहर, कासनाशक, श्वासहर, वातनाशक, अग्निवर्धक, वातानुमोलक, दीपन तथा पाचन है। सन्निपात में ज्वर का वेग कम होने

पर जब ज्वर को रोकना भी हो उस समय इसका प्रयोग करना चाहिये; श्वास तथा कास में यह विशेष लाभकर है।

वचादि क्वाथ

वच, छोटी कटैली, जवासा, रास्ना, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ, कुटकी, काकड़ासिंगी, ब्रह्मी, भारंगी, चिरायता, बांसे के पत्ते, कचूर प्रत्येक २ माशे इन द्रव्यों का विधिवत् बनाया क्वाथ सेवन करने से जिह्वक सन्निपात शान्त होता है। यह कषाय उदर तथा मस्तिष्क को शुद्ध करने वाला, मुखशोधक तथा रक्तशोधक है; यह कषाय रोग की सब दशाओं में प्रयोग किया जा सकता है।

अभिन्याससन्निपातज्वर चिकित्सा।

अभिन्यास सन्निपात ज्वर अति भयंकर रोग है, इस में दोष अधिक वेग से कुपित होते हैं, इस में सन्निपात के सब लक्षण मिलते हैं विशेषतः रोगी इस रोग में गूंगा हो जाता है। सावधानी और बुद्धिमानी से इस रोग की चिकित्सा करनी चाहिये।

शृंग्यादि क्वाथ।

काकड़ासिंगी, भारंगी, हरड़, जीरा, पिप्पली; चिरायता, पित्तपापड़ा, वच, देवदारु, कूठ, जवासा, कायफल, सोंठ, नागरमोथा, धनियां, कुटकी इन्द्रजौ, पाढल, रेणुका, गजपीपल, चिरचिटा, पीपलामूल, चीता, इन्द्रायण, अमलतास, नीम, कचूर, बावची, वायविडंग, हल्दी, दारहल्दी, अजमोदा और अजवायन प्रत्येक २ माशे इन सब द्रव्यों का यथाविधि काढ़ा बना कर पीने से अभिन्यास में लाभ होता है। यह कषाय ज्वर, तन्द्रा, मोह, कर्ण पीड़ा तथा समस्त सन्निपात ज्वरों के लिए अति लाभकर है। इस काढ़े में प्रयोग से पूर्व ६ माशे से १ तोला अदरक का रस और २ रत्ती से ४ रत्ती तक हींग मिला लेनी चाहिये।

कण्टकारी आदि क्वाथ।

कटैली छोटी, धमासा, पोहकरमूल, भारंगी, कचूर, काकड़ासिंगी

प्रत्येक ४ माशे सब द्रव्यों का कषाय बना कर पीने से अभिन्यास ज्वर शान्त होता है; यह काढ़ा त्रिदोषनाशक है तथा अति प्रबल श्वास में देने से लाभ करता है।

त्रैलोक्यसुन्दर रस।

पारा शुद्ध और गन्धक शुद्ध ले कर यथाविधि कज्जली करें फिर कुड़े की छाल, श्वेत मूसली का रस, धतूरे के पत्तों का रस, ककरोंदे का रस, जीवन्ती स्वरस तथा ब्राह्मी रस प्रत्येक से एक २ भावना दे कर खरल कर के एक रत्ती की गोली बना लें। एक एक गोली दो दो घण्टे पीछे मधु के साथ देवें। यह रस सन्निपातज्वर की समस्त दशाओं में प्रयुक्त हो सकता है परन्तु रक्तष्ठीवी और रुग्दाह सान्निपात में इस का प्रयोग नहीं करना चाहिये। शेष अवस्थाओं में भी दोषों के अनुसार अनुपान निर्णय कर लेना चाहिये।

प्राणेश्वर रस

पारा शुद्ध ४ तोले, शुद्ध गन्धक ४ तोले और शुद्ध मीठा तेलिया २ तोले तीनों द्रव्यों को बारीक खरल करलें और कपरौटी की हुई आतशी शीशी में भर कर बालुका यंत्र द्वारा २४ घण्टे की आग दें; शीतल होने पर औषधि निकाल लें तथा इस पक्व औषधि में जीरा काला, जीरा श्वेत, हींग, सज्जी, सुहागा, गूगल, जवाखार, अजवायन, पांचों नमक, काली मरिच, पीपल प्रत्येक २ तोले लेकर कुछ कूट कर सोलह गुने पानी में पकावें और शेष चौथाई रहने पर उपरोक्त दवाई में मिला दें और दो रत्ती की गोली बनालें। दो दो घण्टे पीछे एक २ गोली दें। यह रस रक्तष्ठीवी तथा रुग्दाह सन्निपात के सिवाय सब सान्निपात ज्वरों में प्रयुक्त हो सकता है, रोगी की दशा के अनुसार अनुपान की कल्पना कर लेनी चाहिये।

बृहत् बड़वानल रस

शुद्ध पारा, गन्धक शुद्ध, हरताल तबकी, मैनासिल शुद्ध, कृष्णाभ्रक भस्म (अर्क दुग्ध योग से बनी हुई) मीठा तेलिया, सर्पविष प्रत्येक दो तोले जमालगोटे के बीज १५० नग। प्रथम पारे और गन्धक की कजजली करलें और फिर शेष द्रव्य मिला कर मछली, भैंस मोर, कबूतर, और बकरी के पित्तों से विधिपूर्वक भावना दें और १ रत्ती की गोली बनालें,

इसको 'बृहत्वड़वानल रस' कहा जाता है । इस रस को सन्निपात की अन्तिम अवस्था में प्रयोग करने से असाध्य रोगी भी मृत्यु की भेंट होने से बच जाता है । मात्रा १ से २ गोली अद्रक अथवा पान के रस के साथ तीन २ घंटे पीछे ।

मृगमदासव

मृतसञ्जीवनी सुरा (सुरा न होने पर ब्रायडी) २½ (अढ़ाई) सेर, शहद १¼ (सवा) सेर, कस्तूरी १६ तोले, मरिच, लौंग, जायफल, पीपल, दालचीनी प्रत्येक ८ तोले सब द्रव्यों को एकत्र कर सावधानी से किसी चीनी या शीशे के मर्तबान में भरकर सर्दियों में १ मास और गर्मियों में १५ दिन तक मुख बंद करके रख छोड़ें । इसे नियत समय के बाद निकाल कर छान लें और बोतलों में भर कर रखलें । मात्रा—१ माशे से ३माशे तक ।

प्रत्येक सन्निपात की निर्बल अवस्था में तथा शरीर शीतल हो जाने की हालत में अत्यन्त लाभ करता है तथा रामबाण है । हमारा सहस्त्रों बार का अनुभूत है ।

त्रिदोष निहार रस ।

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक प्रत्येक ४ तोले ले कर कज्जली करें और चीते के रस में ८ दिन खरल करें; इस में शुद्ध मीठा तेलिया ६ माशे मिला कर चीते के रस में एक दिन फिर खरल करें और एक २ रत्ती की गोली बना लें, मात्रा एक से दो गोली तीन २ घंटे बाद । इसे त्रिदोषनिहार रस कहा जाता है । यह रस सान्निपात ज्वर की सब अवस्थाओं में प्रयोग कर सकते हैं । यह त्रिदोष नाशक, अत्यन्त अग्निदीपक, कफनाशक और मन्दाग्नि नाशक है; कफ की वृद्धि तथा मन्दाग्नि में इस का प्रयोग करने से अति लाभ होता है ।

अर्धनारीश्वर रस ।

४ तोले हरताल वरकी ले कर उसे २१ दिन पेठे के रस में खरल करें फिर इस में एक तोला काले सांप की कांचली डाल कर खरल कर लें, एक सम हो जाने पर कपरौटी की हुई आतशी शीशी में भर कर बालुकायन्त्र में १२ पहर की आग दें, शीतल होने पर शीशी से निकाल कर ७ माशे नीला थोथा मिला दें और खरल कर रखें । इस को अर्धनारीश्वर रस कहा

जाता है। जहां चिकित्सक ने अपना प्रभाव जमाना हो तथा आयुर्वैदिक औषधियों की श्रेष्ठता दिखानी हो वहां इस रस के अञ्जन का प्रयोग करें; जिस ओर की आंख में अञ्जन किया जावेगा उस ओर का ज्वर शान्त हो जावेगा।

योगवाही रस या घोड़ा चोली।

रस विषगन्धगिते हरितालम्, त्रिफला त्रिकुटा टंकणक्षारम् ॥
एलुआ अकरकरा मिलाय, मालकंगनी जायफल पाय ॥
वायविडङ्ग जलपत्री आन, लौंग इलायची केशर आन ॥
कस्तूरी कपूरकचरी पाय, नागकेसर सर्व एक भाय ॥
जैपाल ता दुग्ध उबाले तागुण केली मठा मिर्च सो मिल पीसे ॥
पारा गन्धक कज्जली कीजे, भांगरे के रस गोली कीजे ॥
दिन इक्कीस प्रमाण धर दीजे तोलम्, छाय सुखाय ऊपर बोतलम्

शुद्ध पारा, गन्धक, मीठा तेलिया, हरताल शुद्ध, त्रिफला, त्रिकुटा, सुहागे की खील, कुचला शुद्ध, अकरकरा; मालकंगनी; जायफल; जावित्री; वायविडङ्ग, लौंग; इलायची; केसर, कस्तूरी; कपूरकचरी; नागकेसर; प्रत्येक १-१ भाग लें। १ भाग जमाल घोटा लेकर उसे ३ घण्टे तक दूध में उबालें और निकाल कर पित्ता निकाल कर शेष औषधियों में मिला दें। पारे और गन्धक की कज्जली कर के उस में शेष द्रव्य मिला जल भांगरे के रस में २१ दिन घोटकर एक रत्ती की गोली बनालें। इस का नाम योगवाही अथवा अश्वकन्चुकी वटी है। यह रस योगिराज गोरखनाथ का बनाया हुआ है और अपने योगवाही गुण के कारण भिन्न २ रोगों में अनुपान भेद से बहुत लाभ करता है, यह अनेक भयानक रोगों में भी लाभकर है। वास्तव में यह एक योग ही एक बड़े औषधालय का काम देता है।

इस योग के कुछ अनुभूत अनुपान दिये जाते है आशा है वैद्य महानुभाव इन से लाभ उठावेंगे।

१. कफोल्वण सन्निपातज्वर में योगवाही रस अदरक के रस के साथ प्रयोग करने से कास श्वास तथा ज्वर नष्ट होता है।

२. कफ पित्तोल्वण सन्निपात में शहद और मिश्री के साथ देने से लाभ होता है।

३. वातकफोल्बण सान्निपात में योगवाही रस पान के रस के साथ प्रयोग करना चाहिये।

४. आनाह से उत्पन्न हुए ज्वर में गरम पानी से यह रस देने से लाभ करता है।

५. जीर्ण ज्वर में योगवाही रस ज़ीरा काला ४ रत्ती, पुराना गुड़ १ माशा लेकर इनके साथ देने से शीघ्र लाभ करता है।

६. जीर्णज्वर में सत गिलोय १ माशे के साथ योगवाही रस प्रयोग करने से ज्वर शान्त होता है। इस के साथ शीतल जल देना चाहिये।

७. करञ्जुए की गिरी १ माशे के साथ योगवाही रस की एक गोली या दो गोली दोनों समय जल के साथ खाने से रोज़ आने वाला या तीसरे दिन आने वाला ज्वर छूट जाता है।

८. ऐसी दशा में जब जीर्णज्वर के साथ प्लीहा तथा यकृत् बढ़ गया हो तो योगवाही रस सौंफ, कासनी, मकोय के अर्क के साथ देने से ज्वर शान्त होता और प्लीहा तथा यकृत् की शोथ नष्ट होती है।

९. जीर्णज्वर में यदि रोगी को अर्श भी हो तो योगवाही रस गाय के कुछ गरम दूध के साथ देने से अत्यन्त लाभ होता है।

१०. चातुर्थक ज्वर वाले रोगी को शीत लगने से पहिले ही २–४ गोली घीक्वार के अर्क के साथ देने से चौथिया ज्वर रुक जाता है। यह हमारा सहस्रों बार का अनुभूत है।

११. तीसरे दिन आने वाले ज्वर में तुलसी के तीन पत्तों के साथ उपयोग करने से ज्वर अवश्य छूट जाता है।

१२. उदरशूल वाले रोगी को गरम पानी या भुनी हुई हींग के साथ योगवाही रस देने से तत्काल लाभ होता है।

१३. आध्मान रोग में योगवाही रस के साथ निम्न कषाय का प्रयोग करें। सौंफ ६ माशे, बड़ी इलायची ३ माशे, पोदीना सूखा ६ माशे तीनों द्रव्यों का अर्धावशेष काढ़ा बनाकर उसमें दो रत्ती हींग और ४ रत्ती सौंचर नमक मिलाकर योगवाही रस का प्रयोग करने से आध्मानरोग शान्त होता है।

१४. वातोदावर्तरोग में योगवाही रस २–४ गोली त्रिफला कषाय के साथ रोगी को देने से वातोदावर्त शान्त हो जाता है।

१५. पित्तातिसार में योगवाही रस अनार के रस के साथ देने से तत्काल लाभ होता है।

१६. वातातिसार जो शीत के कारण हो उसमें निम्न में किसी के साथ प्रयोग करें। सौंफ़ और पोदीने के साथ या लौंग, जायफल, जावित्री अजवायन, सौंफ़, दालचीनी, सोंठ, पीपल इन द्रव्यों के काढ़े के साथ देने से तत्काल लाभ करता है।

१७. संग्रहणी में योगवाही केवल मट्ठे के साथ ही देना चाहिये, रोगी को केवल मट्ठा ही पीना चाहिये, २१ दिन में अवश्य लाभ करता है।

१८. स्मृतिभ्रंश में योगवाही रस ब्राह्मी के कल्क या स्वरस के साथ प्रयोग करें।

१९. अपस्मार (मिरगी) रोग में योगवाही रस शंखपुष्पी, वच, विडंग, ब्राह्मी, सोंठ और शतावर के काढ़े के साथ देने से लाभ होता है। प्रातः और सायंकाल दोनों समय सेवन करने से लगभग ३ सप्ताह में लाभ होता है।

२०. शिरःशूल में योगवाही रस दूध के साथ सेवन करावें।

२१. कफज शिरोरोग में योगवाही रुद्राक्ष (उस्ते ख़ुद्दूस), धनियां और काली मरिच के काढ़े से लाभ करता है।

२२. आमवात (गठिया) में योगवाही रास्नादि क्वाथ से प्रयोग करने से लाभ करता है।

२३. विशूचिका रोग में योगवाही रस अदरक के रस के साथ प्रयोग करना चाहिये।

२४. राजयक्ष्मा रोग में योगवाही बकरी के दूध के साथ प्रयोग करने से लाभ होता है।

२५. कफज कास में शहद के साथ देने से लाभ करता है।

२६. शुष्क वातकास में मक्खन, मलाई या गाय के दूध में देने से लाभ होता है।

—0•0—

आगन्तुक ज्वर चिकित्सा

आगन्तुजे ज्वरे नैव नरः कुर्वीत लंघनम् ॥

सब प्रकार के आगन्तुक ज्वरों में किसी भी दशा में लंघन कराना उचित नहीं है।

—:०:—

अभिघातज ज्वर चिकित्सा

अभिघातज्वरे युज्यात्क्रियामुष्णविवर्जिताम् ॥
कषायमधुरं स्निग्धं यथादोषमथापि च ॥
अभिघातज्वरो नश्येत्पानाभ्यञ्जेन सर्पिषः ॥
रक्तावसेकैर्मेध्यैश्च तथा मांसरसोदनैः ॥

अभिघात अर्थात् चोट आदि लगने से यदि रोगी को ज्वर आता हो तो उसमें सदा उष्णता रहित क्रिया करनी चाहिये। मधुर तथा कषाय रस बहुल शीतवीर्य द्रव्यों का दोषानुसार प्रयोग करने से लाभ होता है।

जिस रोगी को चोट लगी हुई हो उसे चोट के स्थान पर सेक देने और घी मलने से रुधिर ठीक गति करने लगता है और शूल को लाभ होता है। ऐसे रोगी को घी, दूध और मांस का रस आदि चावलों के साथ उपयोग कराने से लाभ होता है।

—०—

श्रमजनित ज्वर चिकित्सा

श्रमजनित ज्वर में रोगी को दिन में सुलाना और तेल मलना चाहिये। ध्यान रहे कि भागने, मारने, अधिक मार्ग चलने, किसी अंग के फटने, वृक्षादि गिरने और श्रम से अभिघातज ज्वर होता है। इन ज्वरों में उपरोक्त पथ्य हितकारी है।

औषधिगन्ध से उत्पन्न हुए ज्वर की चिकित्सा ।

जयेत्कषायैर्मतिमान्सर्वगन्धकृतैर्भिषक् ॥

औषधि की गन्ध और विष से उत्पन्न हुए ज्वर में बुद्धिमान वैद्य को उचित है कि विषनाशक द्रव्यों और सर्वगन्धादि का प्रयोग करावें ।

सर्वगन्धादि क्वाथ ।

तज, पत्रज, बड़ी इलायची, नागकेशर, कपूर, शीतलचीनी, अगर, लौंग और केशर इन द्रव्यों के क्वाथ को पिलाने से औषधिगन्ध जनित ज्वर शान्त होता है ।

क्रोधजज्वर चिकित्सा ।

क्रोधजे पित्तजित्कार्यं धार्यं सद्वाक्यमेव च ॥
आश्वासेनेष्टलाभेन वायुप्रशमनेन च ॥

क्रोध से उत्पन्न हुए ज्वर में वात तथा पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । काम, क्रोध तथा भय से उत्पन्न हुए ज्वर में धीरज बन्धाने, रोगी को इष्ट वस्तुओं के देने और आनन्दकारक बातों से रोगी का ज्वर शान्त होता है ।

कामज्वर में मनुष्य की कामनाओं को पूरा करने से ज्वर नष्ट हो जाता है ।

—o—

भूतज्वर चिकित्सा ।

भूतविद्या समुद्दिष्टैर्बन्धावेशनताड़नैः ॥
जयेत् भूताभिषङ्गोत्थं मनः शान्त्यै च मानसम् ॥

भूतबाधा से उत्पन्न हुए ज्वर को भूतविद्या में कहे अनुसार बन्धन, आवेश और ताड़न आदि के प्रयोग से शान्त करना चाहिये ।

मानसिक ज्वर चिकित्सा।

मानसिक ज्वर में मन की शान्ति करने वाली युक्तियों से चिकित्सा करें। विधि पूर्वक सहदेवी की जड़ को कण्ठ में बान्धनें से दो-तीन दिन या चार दिन में ज्वर शान्त होता है।

अभिचारज्वर चिकित्सा।

अभिचार और अभिशाप से उत्पन्न हुए ज्वर को हवनादि कार्यों से नष्ट करने का यत्न करें और उत्पात तथा ग्रहों के दोष से उत्पन्न हुए ज्वर को दान, स्वस्तिवाचन, अतिथिपूजन आदि से शान्त करना चाहिये।

सन्तत ज्वर।

आयुर्वेद शास्त्र में सन्तत ज्वर के लक्षण और चिकित्सा विषमज्वराधिकार में लिखे गये हैं और सन्ततज्वर को विषमज्वर का एक भेद माना गया है परन्तु वर्तमान समय में सन्तत ज्वर की चिकित्सा और लक्षण सन्निपातज्वर के समान ही प्रतीत होते हैं। इसलिए हम महर्षि खरनाद के मतानुसार सन्ततज्वर को विषमज्वर से पृथक् एक प्रकार का सन्निपातज्वर मानते हुए इस की चिकित्सा भी सन्निपातज्वर में ही लिखते हैं। इस कारण मोतीज्वर जिस का प्रचलित नाम मोतीझरा है एक प्रकार का सन्निपातज्वर है, इस की चिकित्सा भी यहां सन्निपातज्वर की चिकित्सा में ही लिखी जाती है।

सन्तत ज्वर चिकित्सा।

दोषानुसार सन्ततज्वर की चिकित्सा सन्निपातज्वर में कहे हुए नियमों से ही करनी चाहिये।

मोतीज्वर या मोतीझरा।

इस ज्वर में अति तीव्र ज्वर, मूर्छा, दाह, तन्द्रा, अतिसार, निद्रानाश, वमन, मुख-तालु-कण्ठ और जीभ में अति शुष्कता तथा ग्रीवा, छाती,

पेट के निचले भाग में और कहीं २ गले से ले कर जंघा तक सरसों के दानों की तरह मोती के समान श्वेत दानों का निकलना आदि लक्षण होते हैं।

हमारा अनुभव है कि ज्वर की आदि अवस्था में प्रायः आनाह होता, रोगी रात्रि को अधिक विकल रहता, उसे तृषा अधिक प्रतीत होती तथा अरुचि और दाह भी अधिक होते हैं। कभी २ वात के प्रतिलोम होने से रोगी को प्रलाप होता और ज्वर में रोगी उठ २ कर भागने लगता है। प्रायः ज्वर चढ़ने के दिन से ३ दिन, ५ दिन, ७ दिन या ९ दिन बाद दोष पच्यमान होकर रोगी की ग्रीवा, छाती, बग़ल, पेट और जांघों तक दाने निकलने लगते हैं। यदि चिकित्सा में कोई असावधानी न हो और रोग की प्रारम्भ अवस्था में कोई तीव्र विरेचन न दिया गया हो तो यह दाने शरीर से भली प्रकार निकलने लगते हैं क्योंकि प्रकृति ज्वर को उत्पन्न करने वाले दोषों को दानों द्वारा ही शरीर से निकालती है। ज्यों २ दाने अच्छी तरह भरते जाते हैं उसी प्रकार ज्वर भी मन्द होता जाता है; ज्वर १४ या २१ दिन में भली प्रकार पच जाता है। यदि चिकित्सक से इलाज में कोई असावधानी हो जावे, ज्वर की साम अवस्था में ही रोगी को दस्त कराये जावें अथवा स्वेदन द्रव्यों का प्रयोग कराया जावे तो प्रायः रोग का अन्तिम परिणाम अच्छा नहीं होता। हमें सहस्रों वार ऐसे रोगियों की चिकित्सा का अवसर मिला है और हमें भली भांति ज्ञात है कि हम कभी ऐसे रोगियों से हताश नहीं हुए; इसलिए आवश्यक है कि चिकित्सा के विषय में अपना अनुभव पाठकों के सामने रख दें।

मोतीज्वर की परीक्षा।

ज्वर चढ़ने पर चिकित्सक निश्चय रूप से यह नहीं कह सकता कि रोगी को मोतीज्वर है या नहीं, यह भी निर्णय करना कठिन होता है कि रोगी को दाने निकलेंगे या नहीं। हमारा अनुभव है कि जत्रु (हंसली) के समीप जो एक निम्न स्थान है उस स्थान की शिरायें यदि अति वेग से शीघ्र फड़कती हैं तो समझना चाहिये कि रोगी को दाने निकलेंगे; यदि उस स्थान की शिरायें ज़ोर से न फड़कती हों तो समझ लें कि रोगी को मोती-ज्वर नहीं है।

ध्यान रहे यह लक्षण केवल इसी ज्वर में होते हैं।

मोतीज्वर की चिकित्सा विधि।

जब चिकित्सक को निश्चय हो जावे कि रोग मोतीज्वर ही है तो निम्न विधि से चिकित्सा करें:—

१. समयानुसार रोगी की स्थिति का ध्यान रखते हुए योग्य आतुरालय का प्रबन्ध करें। यदि उष्णकाल हो तो कमरे को पानी से धो कर ठण्डा करें और यदि शीतकाल हो तो अंगीठी में कोयले दहका कर कमरे को गरम रखें।

२. रोगी के लिए आतुरालय का प्रबन्ध हो जाने पर रोगी के वस्त्रों की ओर ध्यान देना चाहिये, ऐसे रोगियों के वस्त्र निर्मल और श्वेत होने चाहियें और प्रति दिन अथवा दूसरे दिन वस्त्र बदलने चाहियें।

३. रोगी के गले में मोतिया, चमेली, चम्पा और गुलाब आदि की माला पहिनावें।

४. रोगी के बिस्तरे पर खूबकलां छिड़क देनी चाहिये और सेल (रामदाने) को रोगी के सामने दहकते हुए कोयलों पर भूनें, यह क्रिया दिन में दो-तीन बार करनी चाहिये।

५. शीतकाल में खद्दर या फलालैन के श्वेत वस्त्र पहिनाने चाहियें। स्मरण रहे कि रोगी को रंगदार कपड़े नहीं पहिनाने चाहियें।

यह सब प्रबन्ध हो जाने पर रोगी की विशेष चिकित्सा की ओर ध्यान देना चाहिये; चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि रोगी के फेफड़े, हृदय, यकृत तथा मस्तिष्क का विशेष ध्यान रखे क्योंकि इस ज्वर में प्रायः पार्श्वशूल हो श्वास रोग आदि होने का भय होता है।

निम्न विधि से चिकित्सा करनी चाहिये:—

१. मोतीज्वर में लंघन ही एक उत्तम औषधि है। जब मोतीज्वर के लक्षण अच्छी तरह स्पष्ट हो जावें तो उस समय केसर ४ चावल लेकर एक या दो मुनक्का में भर कर रोगी को खिलावें। इस से दाने सुगमता से शरीर के बाहिर आ जाते हैं।

२. श्रीमृत्युञ्जय रस की एक गोली प्रातःकाल और एक गोली सायंकाल मुनक्का में देने से मोतीझरा बाहिर निकल आता है। यदि रोगी कफ प्रकृति

काहो अथवा कफ दोष प्रधान हो तो अमृत्युञ्जय दो से चार गोली प्रति मात्रा में दे सकते हैं।

३. तुलसी के पत्ते ७, काली मरिच ७ दाने और केसर २ रत्ती इन को महीन पीस कर सात गोली बनालें और दिन भर में दो तीन गोली रोगी को दें। दाने बाहिर निकालने के लिये यह एक उत्तम औषधि है।

४. मोती ४ नग निगल जाने से दाने भली भान्ति निकल आते हैं।

५. कच्छू की खोपड़ी को पत्थर पर घिस कर ३ चार रत्ती दिन में दो तीन बार देने से दाने शीघ्र बाहिर निकल आते हैं।

जब मोतीझरे के दाने बाहिर निकल आवें परन्तु ज्वर तीव्र हो उस समय नीचे लिखे योगों में से जो योग उचित समझें उपयोग में लावें।

प्रयोग

१. मुनक्का ५ दाने, मुलहठी १½ माशा, खूबकलां ५ माशे, इनको ३२ तोले जल में पकावें, ८ तोले शेष रहने पर १ रत्ती शंखभस्म रोगी को खिला कर यह काढ़ा पिलादें। यह प्रयोग दिन में दो बार पिलाने से मोती-ज्वर शीघ्र नष्ट होता है, यह प्रयोग कफप्रधान दोष में हितकर है।

द्राक्षादि फाण्ट

२. मुनक्का ५ दाने, लसूड़े ७ दाने, मुलहठी १ माशा, खूबकलां ५ माशे, गाज़बां ३ माशे, उन्नाब ५ दाने सब द्रव्यों को ३२ तोले जल में पकाव, तीसरा भाग शेष रहने पर छान कर २ तोले मिश्री डाल कर रोगी को पिलादें। इससे मोती ज्वर शान्त होता है; यह योग पित्तप्रधान रोगी के लिये अतिलाभप्रद और प्रभावकारी है।

द्राक्षादि क्वाथ

मुनक्का ५ दाने, गाज़बां ३ माशे, खूबकलां ५ माशे, सबको ३२ तोले पानी में पकावें, तीसरा भाग शेष रहने पर छान कर रोगी को पिलाने से मोती ज्वर शान्त होता है।

त्रायमाणादि क्वाथ

त्रायमाण के अभाव में गुल बनफ़शा ६ माशे, मुनक्का ५ दाने, गाजबां ३ माशे, सनाय १ माशे, गुलसुर्ख ६ माशे, सब द्रव्यों को आध

सेर पानी में उबालें, पाव भर रहने पर इस में ३ तोले तुरञ्जबीन (यवासक शर्करा) मिलाकर छान लें और रोगी को पिलावें। यह योग सर, स्रंसन, आनाहनाशक, ज्वरहर, कफहर और वातनाशक है, आनाह होने की हालत में रोगी को इस कषाय के देने से दस्त होकर रोगी का पेट साफ़ हो जाता है। यदि एक बार देने से दस्त न हो तो रोगी को प्रातः और सायं दोनों समय दे सकते हैं। स्मरण रहे कि यह क्वाथ ज्वर आने से सात दिन बाद ही दे सकते हैं, ज्वर की प्रारम्भ दशा में कदापि नहीं देना चाहिये।

मोतीज्वर में अतिसार

हमारा अनुभव है कि मोतीज्वर वाले रोगी को प्रायः दूसरे सप्ताह के अन्त अथवा तीसरे सप्ताह के शुरु में अपने आप ही दस्त आने लगते हैं। चिकित्सक को चाहिये कि जब दस्त होनें लगें तो उन दस्तों को किसी तीव्र प्रभाववाली औषधि से एक दम रोकने का यत्न न करे क्योंकि पके हुए मल के शरीर में रुक जाने से आध्यमान आदि नाना प्रकार के उपद्रव हो सकते हैं और वायु प्रतिलोम होकर मस्तिष्क में जाकर विकार उत्पन्न कर देती है जिससे रोगी प्रायः पागल हो जाता है; यदि दस्त अधिक आते हों और रोगी निर्बल हो जावे तो बल की रक्षा के लिये धीरे २ निम्न योगों के प्रयोग से अतिसार को रोक दें।

मुस्तादि क्वाथ

नागरमोथा, बेलगिरी, धाय के फूल, इन्द्रजौ मीठे, लोध पठानी, गज पीपल, प्रत्येक ४ माशे लेकर यथाविधि क्वाथ बनाकर पिलावें, इससे दस्त रुक जाते हैं।

धातक्यादि चूर्ण

धायफूल, लोध, अतीस, मोचरस, इन्द्रजौ मीठे सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनालें। मात्रा—४ रत्ती से १ माशे तक मधु में दें, इससे दस्त रुक जाते हैं।

मोचरसादि चूर्ण

मोचरस, नागरमोथा, पाढल, सोंठ, धायफूल, बेलगिरी, समान

भाग सब द्रव्यों का चूर्ण बनालें। ४ रत्ती की मात्रा में सौंफ के अर्क के साथ देने से तीन वार में ही लाभ होता है।

बिल्वादि क्वाथ

बेलगिरी, सुगन्धबाला, इन्द्रजौ, नागरमोथा, अतीस सब द्रव्यों को एक पाव जल में पकावें, आधा शेष रहने पर मिश्री मिला कर रोगी को पिलावें। यह दस्तों के रोकने के लिए अति प्रभावकारी है। उपरोक्त योगों के साथ २ यदि १ रत्ती से ३ रत्ती तक शंखभस्म देते रहें, तो मोती ज्वरी के दस्त शीघ्र रुक जाते हैं।

श्लेष्मलादि हिम

लसूड़े के १४ पत्ते लेकर पाव भर अर्क गाज़वां में कुचल कर मिट्टी के प्याले में रात को भिगो दें। जब रोगी को प्यास लगे यही हिम मिश्री मिलाकर पिलाते रहें इससे प्रबल दाह शान्त होता है और दो तीन दिन में ज्वर शान्त हो जाता है। यह योग मोती ज्वर के दाने शान्त हो जाने की अवस्था में ही सेवन कराना चाहिये।

हत्पाषाणादि चूर्ण

हत्पाषाण (ज़हरमोहरा,) कछुए की खोपड़ी, बड़ी इलायची के दाने, तुलसी के पत्ते, नारियल का छिलका, पोस्त समान भाग सब द्रव्यों को पीस कर बारीक चूर्ण कर लें। मात्रा दो रत्ती गोमय रस (गाय के गोबर के रस) के साथ प्रयोग करने से मोती ज्वर शान्त होता है।

सुरसादि रस

श्वेत तुलसी, काली तुलसी और पोदीना इन तीनों के समान पत्ते लेकर रस निकाल लें और १ तोला मात्रा में मिश्री मिलाकर रोगी को देने से अतिलाभ होता है।

गुडूच्यादि क्वाथ

हरी गिलोय २ तोले का काढ़ा पिलाने से रोगी को अतिलाभ होता है। इसमें प्रयोग के समय शहद भी मिला लेना चाहिये परन्तु जब मोती

ज्वर वाले रोगी को दस्त भी आते हों उस समय शहद और अजमोद के साथ दिन में ३–४ बार चाटने से अतिलाभ होता है।

वट जटा (बड़ की दाढ़ी) १ तोला, बाजरा १ तोला दोनों को पाव भर पानी में पका कर आधा शेष रहने पर रोगी को पिलाने से मोती ज्वर शान्त होता है।

मोती ज्वरी की उष्मा और क्षीणता के लिए सिद्धयोग

मोती ३ माशे, वंशलोचन ६ माशे, छोटी इलायची ६ माशे, ज़हर मोहरा भस्म ४ मा० गुडुचि सत्व १ तोला सबको भली भान्ति खरल करके २ से चार रत्ती प्रातः सायं गाजवान के अर्क के साथ दें।

विषम ज्वर चिकित्साविधि

ज्वराश्च विषमाः सर्वे सन्निपात समुद्भवाः ।
यथोल्वणस्य दोषस्य तेषु कार्यं चिकित्सितम् ॥

विषमेष्वपि कर्तव्यमूर्ध्वञ्चधाश्च शोधनम् ।
स्निग्धोष्णैरन्नपानैश्च शमयेद्विषमज्वरम् ॥

सब प्रकार के विषमज्वरों के उत्पन्न होने का कारण सन्निपात ही होता है अतएव जो दोष तीव्र हो उसको प्रधान मान कर ही चिकित्सा करनी चाहिए। विषमज्वर में वमन तथा विरेचन द्वारा रोगी का शोधन तथा स्निग्ध, उष्णगुणबहुल द्रव्यों और अन्नपान आदि द्वारा इसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

अधिशेते यथा भूमिं बीजं काले प्ररोहति ।
अधिशेते तथा धातून्दोषः काले प्रकुप्यति ॥
स चापि विषमो देहं न कदापि प्रमुञ्चति ।
धात्वन्तरेषु लीनत्वात्सौक्ष्म्यान्नैवोपलभ्यते ॥

जिस प्रकार पृथिवी में पड़ा हुआ बीज अपने नियत समय के बाद ही उत्पन्न होता है ठीक इसी प्रकार संतत ज्वर आदि विषमज्वरों के उत्पन्न करने वाले दोष शरीर में उत्पन्न होने के बाद अपने स्वाभाविक गुणों के अनुसार नियत समय पर कुपित हो कर ही रोग उत्पन्न करते हैं तथा दोषों के उत्पन्न करने के समय तक वह शरीर के रस आदि धातुओं में निष्कर्म ही पड़े रहते हैं। इसी कारण दोष कुपित होने के समय रोगी को ज्वर का वेग अधिक होता तथा विराम के समय ज्वर उतर जाता है; इसलिए चिकित्सक का कर्तव्य है कि विषमज्वर वाले रोगी को सदा ज्वर दोषनाशक शोधन तथा शमन औषधि दोषों की विरामावस्था में ही देवे जिस से औषधि का पूर्ण प्रभाव हो सके और दोष निर्मल हो जावें जिस से उन में फिर कुपित होने और ज्वर पैदा करने की शक्ति न रहे। ऐसे समय ही रोगी को विरेचन आदि की औषधि देनी चाहिये।

सन्तत ज्वर चिकित्साविधि

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा।
सन्तत्या यो विसर्गी स्यात् संततः स निगद्यते ॥

जो विषमज्वर ७ दिन, १० दिन या १२ दिन तक निरन्तर न उतरे उस को सन्तत ज्वर कहा जाता है क्योंकि यह ज्वर सन्निपात ज्वर के समान ही दोषानुसार १२ दिन की सन्धि तक चढ़ा रहता है तथा सन्निपात से उत्पन्न होता है इसलिए इस की चिकित्सा सन्निपात के समान ही करनी चाहिये।

सन्ततज्वर नाशक क्वाथ

त्रायमाण अनन्तमूल (उशबा), जवासा, कुटकी प्रत्येक ६ माशे इन द्रव्यों का यथा विधि अर्धावशेष क्वाथ पीने से आनाह दूर हो कर ज्वर शान्त होता है।

त्रायमाणादि क्वाथ

त्रायमाण, कुटकी, अनन्तमूल, खस प्रत्येक ६ माशे इन द्रव्यों का क्वाथ रोगी को पिलाने से कफ प्रधान सन्ततज्वर नष्ट हो जाता है।

विशेष चिकित्सा सन्निपातज्वराधिकार में देखो।

सततज्वर चिकित्सा

पटोलादि क्वाथ

पटोलपात, शारिवा (उशबा), नागरमोथा, पाढल, कटुकी प्रत्येक ५ माशे इन सब द्रव्यों का यथाविधि क्वाथ बना कर पिलाने से सततज्वर नष्ट होता है। यह कषाय सर, पाचन तथा रक्त शोधक है।

निम्बादि कषाय

नीम की छाल, पटोलपात, इन्द्रजौ, गिलोय, बड़ी हरड़ का छिलका, जवासा प्रत्येक ४ माशे इन द्रव्यों का काढ़ा विधिपूर्वक बना कर रोगी को प्रातः सायं दोनों समय पिलाने से सततज्वर नष्ट होता है। यह कषाय सततज्वरोत्पादक दोष को नष्ट करने में अति प्रभावशाली और अनुभूत है। यह काढ़ा सर, पाचन, ज्वरनाशक, पित्तहर और संशमन है।

पटोलादि क्वाथ

पटोलपात, नीम की छाल, सुगन्धबाला, गिलोय, बड़ी हरड़ की छाल, इन्द्रजौ प्रत्येक ४ माशे यथाविधि क्वाथ बनावें इस काढ़े का प्रयोग करने से सततज्वर नष्ट होता है। यह क्वाथ आंतों को बल देने वाला, संशमन, ज्वरनाशक, पित्तहर, पाचन और सर है।

तिक्तादि क्वाथ

चिरायता, कटुकी, खस, धनियां, खरैंटी, पित्तपापड़ा, नागरमोथा प्रत्येक ४ माशे इन द्रव्यों का काढ़ा यथाविधि देने से सततज्वर शीघ्र ही

समूल नष्ट होता है। यह क्वाथ सप्तधातुगत ज्वरनाशक तथा पित्तनाशक है।

इन क्वाथों के अतिरिक्त अन्य महाज्वरांकुश रस आदि अनेक औषधियां जो ज्वर रोकने वाली हैं—आगे लिखी जावेंगी। ज्वर को रोकने वाली औषधियों का प्रयोग ज्वर की शमनावस्था में ही करना चाहिये, इस से ज्वर बहुत शीघ्र रुकता है, तेज़ ज्वर में ज्वर रोकने वाली औषधियों के प्रयोग से ज्वर का वेग बढ़ जाता है और तृषा, मुखशोष तथा दाह आदि लक्षण होने लगते हैं।

अन्येद्युष्क ज्वर चिकित्सा।

निम्बादि क्वाथ।

नीमछाल, पटोलपात, त्रिफला, आमला, द्राक्ष, इन्द्रजौ, नागरमोथा, प्रत्येक ४ माशे इन द्रव्यों को पका कर काढ़ा बना यथाविधि रोगी को देने से अन्येद्युष्क ज्वर शान्त होता है। यह काढ़ा पाचन, सर, त्रिदोषनाशक, ज्वरनाशक और मलशोधक है। यह चढ़े हुए ज्वर में दे सकते हैं। इस से ज्वर शान्त हो कर रुक भी जाता है।

द्राक्षादि क्वाथ।

द्राक्षा (मुनक्का), पटोलपात, नीम की छाल, नागरमोथा इन्द्रजौ, त्रिफला प्रत्येक ४ माशे यह क्वाथ रोगी को दिन में दो तीन वार पिलाने से रोज आने वाला ज्वर एक दो दिन में ही शान्त हो जाता है, यह श्रेष्ठ पाचन है।

पटोलादि क्वाथ।

पटोलपात, मुनक्का, आंवला, त्रिफला, गिलोय, वांसे के पत्ते प्रत्येक ४ माशे, यथाविधि क्वाथ बनावें। यह क्वाथ भी पाचन है, इस से रोगी का मल साफ होता रहने से ज्वर और पित्त शान्त होता है।

पिप्पल्यादि क्वाथ।

पीपल, आंवला, लहसन, हींग, दारहल्दी, वच, राई, प्रत्येक २माशे

इन का क्वाथ रोगी को पिलाने से वातप्रधान अन्येद्युष्क ज्वर शान्त होता और वायु अनुलोम होता है।

पटोल्यादि क्वाथ।

पटोलपात, त्रिफला, नीम की छाल, मुनक्का, अमलतास का गूदा, प्रत्येक ५ माशे यथाविधि क्वाथ बनावें इन द्रव्यों का कषाय शहद और मिश्री डाल कर पीने से रोज आने वाला ज्वर हटता है।

पटोलादि कषाय।

पटोलपात, इन्द्रजौ, मुनक्का, देवदारु, त्रिफला, नागरमोथा, मुलहठी, गिलोय और अडूसा प्रत्येक ३ माशे इन औषधियों का काढ़ा पांचों प्रकार के विषमज्वर नष्ट करता तथा नवीन ज्वर का शामक है।

तृतीयक ज्वर चिकित्सा।

किरातादि क्वाथ।

चिरायता, गिलोय, लालचन्दन, सोंठ, प्रत्येक ६ माशे इन द्रव्यों का काढ़ा बना कर पीने से तृतीयक ज्वर का श्रेष्ठ पाचन होता है, इस काढ़े को तीन-चार वार प्रयोग करने से ज्वर नष्ट होता है।

गुडूच्यादि कषाय।

गिलोय, धनियां, नागरमोथा, लाल चन्दन, नेत्रबाला, सोंठ, खस, प्रत्येक ४ माशे इन द्रव्यों का क्वाथ शहद और मिश्री मिला कर दोनों समय पीने से तृतीयक ज्वर अवश्य शान्त होता है; यह सहस्रों वार का अनुभूत और प्रसिद्ध क्वाथ है।

ऐकाहिक ज्वराधिकार में कहा गया पटोलादि क्वाथ भी तृतीयकज्वर की श्रेष्ठ औषधि है।

चातुर्थिकज्वर चिकित्सा।

गुडूच्यादि क्वाथ।

गिलोय, आंवला, नागरमोथा प्रत्येक ८ माशे इन का क्वाथ यथा-

विधि देने से चातुर्थिक ज्वर शान्त होता है, यह चातुर्थिक ज्वर के लिए श्रेष्ठ पाचन है। तीन-चार दिन इस क्वाथ का प्रयोग करने के बाद रोगी को विरेचन देना चाहिये।

देवदार्वादि कषाय।

देवदारु, बड़ी हरड़ का छिलका, अडूसा, शालपर्णी, सोंठ, आंवले प्रत्येक ४ माशे इन द्रव्यों का काढ़ा शीतल होने पर शहद और खाण्ड मिला कर प्रयोग करने से चातुर्थिक ज्वर शान्त होता है। यह उत्तम पाचन, ज्वर-हर, कासहर तथा श्वासनाशक है।

ऐकाहिक ज्वराधिकार में कहा गया पटोलादि कषाय भी चातुर्थिक ज्वर को शान्त करता है।

ज्वर की चिकित्सा में विरेचन एक आवश्यक कर्म है, दोषों का पाक हो जाने पर यदि वह शरीर से अपने आप न निकलते हों तो उन को विरेचन औषधियों द्वारा प्रकृति को सहायता देने के लिए शरीर से निकालना आवश्यक होता है। ज्वर की चिकित्सा में कई स्थान पर विरेचन देने का विधान भी आया है इसलिए विरेचन के लिए कुछ प्रयोग लिख देने आवश्यक है।

विरेचक योग।

१. गुल बुनफ़शा १ तोला, गुल सुर्ख १ तो. सनाय ३ माशे, कद्दू के बीजों की गिरी ६ माशे, इन द्रव्यों को भांग की तरह घोट कर छान लें और तुरञ्जबीन ४ तोले मिला कर दूसरी बार छान कर रोगी को पिलावें, इस के प्रयोग से ३-४ दस्त हो कर पेट साफ हो जाता है। शीतकाल में यह प्रयोग कुछ गरम कर के पिलाना चाहिये।

२. बुनफ़शा १ तोला, कुटकी ३ माशे, गुल सुर्ख ६ माशे, सौंफ ३ माशे, सनाय ३ माशे सब द्रव्यों को आध सेर शुद्ध जल में पकावें, ३ छटांक रहने पर मल कर छान लें और ४ तोले तुरञ्जबीन मिला कर रोगी को पिलावें। इस प्रयोग से सुगमता पूर्वक कई दस्त हो कर पेट साफ हो जाता है।

३. जमालघोटा शुद्ध २ तोले मिश्री २० तोले इन दोनों द्रव्यों को खरल कर के इस में कुछ बून्दें सौंफ के तेल की डाल कर शीशी में भर कर

रख लें। विषम ज्वर वाले रोगी को आवश्यकता होने पर यह औषधि ४ रत्ती से १ माशे तक शर्बत बुनफ़शा या मिश्री की चासनी से खिला दें। यदि इस के देने के बाद दो घण्टे तक रोगी को कोई दस्त न हो तो एक मात्रा और दे देनी चाहिये; इस से दो चार दस्त हो कर कोष्ठ शुद्ध हो जाता है।

जमाल घोटे के प्रयोग से प्रायः चित्त में घबराहट हुआ करती है, इस के प्रयोग के बाद यदि अनारदाने का खट्टा पानी मिश्री डाल कर दे दिया जावे तो किसी प्रकार की घबराहट नहीं होगी और दस्त भी शूलरहित होते हैं।

अनुभूत विरेचक प्रयोग।

१. शुद्ध एरण्डी का तैल १॥ तोले से ४ तोले तक गरम दूध के साथ रोगी को पिलाने से जुलाब हो कर पेट साफ़ हो जाता है।

२. श्वेत निशोथ ले कर पहिले इस के ऊपर से छिलका चाकू से खुरच डालें फिर निशोथ का महीन चूर्ण कर के उस से ६ गुनी खाण्ड मिला कर रख लें। विषमज्वर का वेग शान्त हो जाने की हालत में यह चूर्ण १ तोले से २ तोले तक शीतल जल या मिश्री के शर्बत के साथ रोगी को देने से कोष्ठ साफ़ हो जाता है।

३. कालादाना भाड़ में भून कर उस का छिलका उतार लें, इसे चूर्ण कर इस में इस से चार गुणी खाण्ड मिला कर रख छोड़ें। इस चूर्ण को १ तोला या २ तोले की मात्रा में मिश्री के शर्बत या गरम पानी से देने से दस्त हो कर कोष्ठ शुद्ध हो जाता है। इस से जुलाब हो जाने पर रोगी को ज्वर रोकने की औषधि दें।

४. शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, मीठा तेलिया शुद्ध, बहेड़े की छाल, बड़ी हरड़ का छिलका, आमले, सोंठ, मिरच, पीपल, सब द्रव्य समान भाग लें और सब के समान शुद्ध जमालघोटा ले कर सब को एकत्र कर भांगरे के रस में रगड़ कर एक रत्ती की गोली बना लें। मात्रा १ गोली से २ गोली तक अनारदाने के पानी या मिश्री के जल के साथ प्रयोग करने से भली प्रकार दस्त हो कर रोगी का पेट शुद्ध हो जाता है। अनारदाने का पानी पिलाने से पेट में ऐंठन आदि नहीं होती और ज्वर भी उतर जाता हैं।

सावधान !

सावधान रहें विरेचन ओषधियें सदा ज्वर का वेग शान्त होने की हालत में ही देनी चाहियें ।

अनारदाने का जल बनाने की विधि ।

अनारदाना ५ तोले ले कर १ सेर शुद्ध जल में भिगो दें और थोड़े समय के बाद नितार कर और मिश्री डाल कर जमालघोटे वाली दवाई देने के बाद रोगी को इच्छा के अनुसार प्रयोग करावें । इस के प्रयोग से दाह, विकलता, ऐंठन तथा पेट में किसी प्रकार की दर्द नहीं होती ।

रसों द्वारा चिकित्सा ।

ज्वर चिकित्सा में हम ने रस आदि नहीं लिखे, रस प्रयोग अब एक ही स्थान पर लिखे जाते हैं चिकित्सक रोगी की दशा, प्रकृति तथा ऋतु आदि आवश्यक बातों का ध्यान रखते हुए अपनी समझ के अनुसार योग्य औषधि का प्रयोग कर सकते हैं ।

सर्व ज्वरहर लोह ।

चित्रक (चीता), त्रिकुटा, त्रिफला, वायविडङ्ग, अनारदाना, नागरमोथा, पीपल, गजपीपल, खस, देवदारु, चिरायता, पाढल, कुटकी, कटेली छोटी, सुहाञ्जने के बीज, मुलहठी, मीठे इन्द्रजौ, प्रत्येक १ तोला, लोह भस्म सब द्रव्यों के समान ले सब को बारीक खरल कर के १ रत्ती से २ रत्ती तक गोली बना लें । इस रस को सर्व ज्वरहर लोह कहा जाता है । विषमज्वर के नाश करने में यह आश्चर्य जनक है । (लोहभस्म) इस रस में त्रिफला और घी क्वार के रस के योग से बनी हुई लोहभस्म प्रयोग करनी चाहिये ।

इस रस की २-३ गोलियां जल के साथ अथवा अन्य किसी उचित अनुपान के साथ प्रयोग करने से ज्वर नष्ट होता है । इस के अतिरिक्त सर्व ज्वरहरलोह का प्रयोग रक्त की निर्बलता, यकृत्, प्लीहा, अग्निमांद्य तथा अजीर्ण आदि रोगों में भी सफलता पूर्वक किया जा सकता है । यह औषधि जीर्णज्वर में तत्काल लाभ करती है । ज्वर की आरम्भ अवस्था में कदापि प्रयोग न करें ।

महात्रिषमज्वरान्तक लोह ।

शुद्ध पारा, गन्धक, रससिन्दूर, सुवर्णभस्म, रौप्यभस्म, लोहभस्म, बंगभस्म, कृष्णाभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, हरताल शुद्ध, विद्रुमभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, मुक्ताभस्म । पारे और गन्धक की कज्जली कर के शेष औषधियां मिला दें और पान, गिलोय, पित्तपापड़ा. सम्भालु के पत्ते, त्रिफला, करेला, दशमूल, मकोय, विषखपरा, बांसा, भांगरा और ककरौन्दा इन सब द्रव्यों के रस में तीन २ दिन तक खरल करें और १ रत्ती की गोली बना लें। मात्रा—१ गोली से ३ गोली तक एक रत्ती पीपल के चूर्ण के साथ प्रयोग करा सकते हैं, साथ ही एक वर्ष तक का पुराना गुड़ भी मिला देना चाहिये ।

नोट—महा विषमज्वरान्तक लोह में जो भस्में वर्णन की गई हैं, वह निम्न योगों द्वारा बनी हुई डालनी चाहियें । १ स्वर्ण भस्म—गंधक पारे के योग से काञ्चनार त्वक् के रस अथवा क्वाथ से भावना दे दे कर बनाई हुई (२) रौप्य–ताल योग से बनी हुई,(३) लोहभस्म–रसेन्द्र सारोक्त त्रिफलादिगण के योग वाली,(४)कृष्णाभ्रक–रसेन्द्र सारोक्त सातवीं विधि द्वारा शतपुटी अभ्रकभस्म,(५)ताम्रभस्म–रसेन्द्रसारोक्त तीसरी विधि,(६)विद्रुम–घृत कुमारी के स्वरस योग से बनी हुई,(७) स्वर्णमाक्षिक–रसेन्द्रसारोक्त लवण गन्धक और एरण्ड तैल के योग से बनी हुई डालनी चाहियें । उपरोक्त भस्मों द्वारा बनाया हुआ महाविषमज्वरान्तकलोह ही यथोचित गुण कर सकता है, अन्यथा कुछ भी गुण नहीं करता ।

इस रस के सेवन से सब प्रकार के विषमज्वर, जीर्णज्वर तथा अन्य सब ज्वर नष्ट होते हैं । चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि समयानुसार योग्य अनुपान के साथ इस का प्रयोग करे । यह रस प्रत्येक वैद्य के पास तय्यार रहना चाहिये ।

शीतभंजी रस ।

हरताल वरकी शुद्ध १ तोला, पारा शुद्ध दो तोले, गन्धक शुद्ध ३ तोले, मैनसिल ४ तोले इन द्रव्यों को भांगरे के रस में निरन्तर ७ दिन तक खरल करें । ५ तोले ताम्बा ले कर उस की एक कटोरी बना लें, इस कटोरी में इन सब औषधियों का लेप कर के छाया में सुखा लें फिर इस कटोरी को

किसी मिट्टी की हाण्डी में उल्टा जमा कर उस के किनारों पर अच्छी तरह बालू, चूना और गुड़ तीनों द्रव्यों की लेटी सी बना कर अच्छी तरह लगा दें। इस हाण्डी में बालू भर कर उसे चूल्हे पर चढ़ा दें और बारह पहर (३६ घण्टे) की तीव्र अग्नि दें, स्वांग शीतल होने पर कटोरी को हाण्डी से निकाल कर पीस लें। शीत लग कर चढ़ने वाले ज्वर के लिए यह एक प्रसिद्ध औषधि है।

अनुपान—एक जवान आदमी को उड़द के समान १गोली पान में रख कर दे दें और इस के बाद ७ काली मिर्चें चबाने को दे दें। इस की एक दो मात्रा से ही शीतपूर्वक आने वाला ज्वर नष्ट होता है।

पथ्य—इस रस के सेवन करने वाले व्यक्ति को केवल दूध और भात ही देना चाहिये और भारी भोजन अपथ्य है।

शीतभंजी रस।

शुद्ध पारा, हरताल वरकी शुद्ध, खपरिया शुद्ध, नीलाथोथा शुद्ध, सुहागा शुद्ध, शुद्ध गन्धक, समस्त द्रव्यों को समान भाग ले कर करेले के रस में खरल करें और पहिले लिखे शीतभञ्जीरस के समान ताम्बे की कटोरी में लेप कर के उसी प्रकार रस तय्यार कर लें; इसे भी शीतभञ्जीरस कहा जाता है।

मात्रा, अनुपान तथा पथ्य पूर्व लिखे अनुसार समझने चाहियें।

चातुर्थिकारि रस।

हरताल वर्की शुद्ध, मैनसिल, नीलाथोथा, शंख, गन्धक शुद्ध, सब द्रव्यों को समान भाग ले कर घीक्वार के रस में निरन्तर सात दिन तक खरल करें फिर टिकियां बना कर छाया में सुखा कर विधि पूर्वक कपरोटी कर के गजपुट में फूंक दें; शीतल होने पर निकाल कर घीक्वार के रस में ७ दिन खरल कर के ३ रत्ती की गोली बना लें। मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक।

यह औषधि रोगी को खिलाने से पूर्व छाछ पिलानी चाहिये फिर ११ काली मिर्चों के साथ औषधि देवें, इस के प्रयोग से शीतपूर्वक आने वाला ज्वर वमन हो कर रुक जाता है।

चूड़ामणि रस ।

रससिन्दूर, विद्रुमभस्म,सुवर्णभस्म, रौप्यभस्म,बंगभस्म, मुक्ताभस्म, ताम्रभस्म, लोहसार, कृष्णाभ्रकभस्म प्रत्येक १ तोला; इन सब द्रव्यों को जल से खरल कर के एक से दो रत्ती तक गोली बना लें, इसे चूड़ामणि रस कहते हैं। यह उचित अनुपान के साथ जीर्णज्वर, विषमज्वर, धातुगत ज्वरों को नष्ट करता है तथा हृद्य और बलदायक है। इस रस में वर्णित भस्में पूर्वोक्त महाविषमज्वरान्तक लोह में कही विधि से बनी हुई डालनी चाहियें। मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती दिन में दो तीन बार मिश्री के शर्बत के साथ।

विश्वेश्वर रस ।

पारा शुद्ध, गन्धक, शिंगरफ तीनों द्रव्यों को समान भाग ले कर पीपला मूल, बेरी की जड़, कटैली छोटी और मकोय के काढ़े में तीन २ दिन निरन्तर खरल कर के दो २ रत्ती की गोली बना लें। एक गोली प्रातः और एक गोली शाम को दूध के साथ देने से रात्रि में चढ़ने वाला ज्वर शान्त होता है।

महाराज वटि ।

शुद्ध पारा, गन्धक शुद्ध, कृष्णाभ्रकभस्म प्रत्येक १ तोला; लाल विधारे के बीज, बंगभस्म, लोहसार प्रत्येक ६ माशे; कस्तूरी, ताम्रभस्म प्रत्येक ३ माशे, भांग, शताबर, श्वेत राल, लौंग, तालमखाना, विदारीकन्द मूसली, कौञ्चबीज, जायफल, जावित्री, खरैंटी, कंघी प्रत्येक २ माशे। प्रथम पारे और गन्धक की विधिपूर्वक कज्जली कर लें और फिर समस्त द्रव्य मिला कर मूसली के रस में खरल कर के २ रत्ती से ४ रत्ती तक गोली बना लें। मात्रा १ से २ गोली तक।

यह वटी सब प्रकार के ज्वरों तथा निर्बलता को दूर करने के लिए अति प्रभावशाली औषधि है। विशेष कर धातुगत ज्वरों में इस का खास प्रभाव देखा गया है। इस रस में भी महाविषमज्वरान्तक रसोक्त ही भस्में डालनी चाहियें।

चिन्तामणि रस ।

सुवर्णभस्म, रौप्यभस्म, शुद्ध हरताल वरकी, मोती, गन्धक शुद्ध,

पारा शुद्ध, त्रिफला, त्रिकटु, मैनसिल, कस्तूरी; इन सब द्रव्यों को एकत्र कर १ रत्ती से २ रत्ती तक गोली बना लें, इस का नाम चिन्तामणि रस है। यह रस सब प्रकार के ज्वरों में तथा निर्बलता में अमृत के समान गुण करता है। इस की भस्में भी महाविषमज्वरान्तक लोह के समान ही होनी चाहियें। मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती मधु के साथ दिन में दो तीन बार।

चन्दनादि लोह।

लाल चन्दन, सुगन्धबाला, पाढल, खस, पीपल, हरड़ का छिलका, सोंठ, कुठ, आंवला, वायविडङ्ग, चीता, नागरमोथा प्रत्येक १ तोला, लोहसार १२ तोले; सब द्रव्यों को सम्भालु के अर्क में खरल कर के दो २ रत्ती की गोली बना लें। यह चन्दनादि लोह सब प्रकार के विषमज्वरों के लिए एक उत्तम और अनुभूत औषधि है। मात्रा—एक २ गोली दिन में तीन चार बार; यह रस शरीर में रक्त की न्यूनता को पूरा करता और विषमज्वर नाशक है, इस में लोहभस्म रसेन्द्रसारोक्त त्रिफलादि गण द्वारा बनी हुई डालें।

ज्वरारि अभ्रक।

कृष्णाभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, गन्धक शुद्ध, शुद्ध पारा, मीठा तेलिया शुद्ध प्रत्येक १ तोला धतूरे के बीज २५ तोले, त्रिकुटा ५ तोले; सब को विधि अनुसार अदरक के रस में खरल कर के १ रत्ती से २ रत्ती तक वटी बनावें। इसे ज्वरारि अभ्रक कहा जाता है। उचित अनुपान के साथ सब प्रकार के ज्वरों को शान्त करता है; विषमज्वर, जीर्णज्वर तथा सन्निपात को नष्ट करता है। मात्रा—एक २ रत्ती दिन में तीन चार बार गिलोय के क्वाथ के साथ विषमज्वर की उत्तम औषधि है। इस में लिखी गई भस्में महाविषमज्वरान्तक लोहोक्त ही डालनी चाहियें, अन्यथा गुण नहीं करती।

पुटपक विषमज्वरान्तक लोह

शिंगरफ से निकाला शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक शुद्ध १ भाग; दोनों को यथाविधि खरल करके किसी लोहे की कड़ाही में अग्नि पर रखें और किसी लोहे की सलाई से चलाते रहें। जब पिघल कर शहद के समान हों जावे तो उसे केले के पत्ते पर डालें और दूसरे पत्ते से दबा दें, इस प्रकार पर्पटी बन जावेगी। इस से चौथाई भाग स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म तथा कृष्णा-

भ्रकभस्म प्रत्येक पारे से दोगुनी; बंगभस्म, विद्रुमभस्म, गेरू प्रत्येक पारे से आधा भाग; मुक्ताभस्म, शंखभस्म, सीपभस्म प्रत्येक पारद से चौथाई; सब को एकत्र खरल कर दो सच्चे मोती के सीपों में भर कर कपरोटी करके गजपुट में फूंक दें। शीतल होने पर घीक्वार के रस में खरल करके २ रत्ती की गोली बना लें। यह रस सब प्रकार के ज्वरों की उत्तम औषधि है; हमारा अनुभव है कि निम्नलिखित अनुपानों के साथ प्रयोग करने से अति लाभ होता है—

पीपल १ नग, हींग ४ चावल, सौंचर नमक २ रत्ती सब को बारीक पीस कर गोली मिला कर गरम या ताज़े जल के साथ उपयोग करने से कुछ दिन में ही सब प्रकार के ज्वर प्लीहा और यकृत् नष्ट होते हैं।

नोट—यह रस विषम ज्वर की ऐसी अवस्था में देना चाहिये जब कि रोगी को यकृत् दोष से ज्वर के साथ ही अतिसार भी हो और शरीर में रक्त की मात्रा बिलकुल कम हो गई हो, इस रस में जो भस्में लिखी गई हैं, वह महाविषमज्वरान्तक लोहोक्त ही डालनी चाहियें।

तृतीयकज्वर नाशक यन्त्र

१. रविवार चिरचिटे की जड़ उखाड़ कर लाल रंग के सात धागों में बांधें और इसे रोगी की कमर में बांधने से तृतीयक ज्वर अवश्य छूट जाता है।

२. पुष्यनक्षत्र में रविवार को सहदेवी की जड़ उखाड़ कर रोगी के मस्तक में बांधने से तृतीयक ज्वर अवश्य नष्ट होता है।

३. कुमारी कन्या के काते हुए सूतमें इतवार के दिन उखाड़ी हुई चिरचिटे की जड़ बांध फर रोगी के हाथ में बांधने से चातुर्थिक ज्वर शान्त होता है।

विषमज्वर नाशक नस्य

१. अगस्त वृक्ष के पत्तों के रस की नस्य लेने से चातुर्थिक ज्वर हट जाता है।

२. शिरस के फूल, हल्दी, दारु हल्दी; इन द्रव्यों को बारीक पीस घृत में मिला कर नस्य लेने से चातुर्थिक ज्वर छूट जाता है।

३. हींग तालावी ४ रत्ती पुराने घी में मिला कर नस्य लेने से चातुर्थिक ज्वर नष्ट होता है।

विषमज्वर नाशक चूर्ण।

भांग का चूर्ण ४ रत्ती गुड़ में मिला कर ज्वर चढ़ने से पाहिले ही ३ मात्रा रोगी को देने से तीन मात्रा में ही तिजोरी ज्वर नष्ट होता है।

चातुर्थिक ज्वर नाशक कल्क

१. चिरचिटे की जड़ १ तोला गो दुग्ध में घोट कर पीने से चातुर्थिक ज्वर शान्त होता है।

२. रविवार के दिन चिरचिटे के हरे पत्ते ६ माशे गुड़ में मिला कर खाने से चौथिया ज्वर अवश्य नष्ट होता है। बारी के दिन ज्वर से पाहिले ही २-३ गोली खानी चाहियें।

३. कान के मैल को रूई में लपेट कर तिल के तैल में भिंगो लें और इस का काजल उतारें। इस काजल का नेत्रों में प्रयोग करने से तृतीयक ज्वर अवश्य शान्त होता है।

४. मकड़ी का श्वेत जाला ज्वर के समय से पूर्व ही गुड़ में मिला कर खाने से तृतीयक ज्वर शान्त हो जाता है।

५. चातुर्थिक ज्वर वाले रोगी को नौसादर ३ रत्ती, काली मरिच २ दाने बारी से पहिले खिलाने से चातुर्थिक ज्वर अवश्य शान्त हो जाता है।

६. कलौंजी ४ माशे शहद में मिला कर उपयोग करने से चातुर्थिक ज्वर छूट जाता है। औषधि बारी के दिन ज्वर चढ़ने से पहिले ही खानी चाहिये।

७. धतूरे के पत्ते १ तोला, पान १ तोला, काली मारिच ६ माशे सब को एकत्र कर एक रत्ती की गोली बना लें। यह गोली सुबह और शाम गरम पानी के साथ निरन्तर कुछ दिन खाने से चातुर्थिक ज्वर हट जाता है। पथ्य में रोगी को गोदुग्ध लेना चाहिये।

अतीस के चूर्ण को १॥ माशे की मात्रा में प्रति दिन ३-४ मात्रा कई दिन तक देने से तृतीयक तथा चौथिया बुख़ार रुक जाता है ।

९. लाल फटकरी की अधपकी खील १ माशे से २ माशे तक बारी के दिन ज्वर आने से पहिले २ माशे मिश्री के साथ देने से तीसरे दिन आने वाला ज्वर छूट जाता है ।

१०. अहिफेन १ माशा, काली मरिच २ माशे, कीकर की लकड़ी का कोयला १ तोला, सब को एकत्र कर चूर्ण बना लें । इस चूर्ण की एक २ माशे की दो मात्रा ज्वर चढ़ने से पहिले ही एक २ घण्टे के अन्तर से देने से तिजारी नष्ट होती है; औषधि प्रयोग करने के दिन रोगी को उपवास करावें, खाने को कुछ न दें; बारी का समय टल जाने के दो-तीन घण्टे बाद कुछ खाने को दें । यदि रोगी को अति भूख लगी हो तो थोड़ा दूध गरम कर के मिश्री मिला कर पिलावें ।

११. श्वेत चम्पे की कली डण्डी सहित पान में रख कर ज्वर आने से पहिले आधे २ घण्टे के अन्तर से २-३ मात्रा देने से तृतीयक ज्वर नष्ट होता है । अनुभूत है ।

१२. पित्तपापड़ा, करञ्जुए के पत्ते, गिलोय, कुड़े की छाल, घीक्वार की जड़, काली मरिच, सनाय, निम्बोली, तुलसी के पत्ते, चिरायता, बड़ी हरड़ का छिलका, पीपल, शुद्ध शिंगरफ; सब द्रव्य समान भाग ले नीम्बू के रस में ३ दिन खरल करें और एक २ माशे की गोली बना लें । यह औषधि ज्वर चढ़ने से पूर्व दो २ घण्टे के अन्तर से ४ गोली तक दे देने से सब प्रकार के विषमज्वर नष्ट होते हैं । ध्यान रहे औषधि ज्वर चढ़ा होने पर कभी न दें ।

१३. रत्नगिरी वटी—सम्भालु के पत्ते, गिलोय के पत्ते और गोमे के पत्ते प्रत्येक ४ तोले ले कर मिट्टी के बर्तन में १ सेर जल डाल कर पकावें, चतुर्थांश रहने पर छान कर क्वाथ को हाण्डी में फिर अग्नि पर चढ़ा दें तथा हरड़ का छिलका ४ तोले और पीपल २ तोले डाल कर आग पर पका कर गाढ़ा कर लें और चार २ रत्ती की गोली बना लें । यह वटी सब प्रकार के विषमज्वर को नष्ट करती है ।

१४. मण्डूरभस्म, पीपल, नौसादर इन को समान २ ले कर चूर्ण बना लें । यह चूर्ण सवेरे और शाम ४रत्ती की मात्रा में गरम पानी के साथ खाने

से विषमज्वर शान्त होता है। यह चूर्ण उस समय प्रयोग किया जाता है जब ज्वर के साथ प्लीहा और यकृत् भी बढ़े हों।

१५. सर्जिका सत्व (सोडा), सफ़ेदा कासगरी, दोनों द्रव्यों को समान २ ले कर चूर्ण बना लें। यह चूर्ण ४ रत्ती की मात्रा में बारी से दो घण्टे पहिले जल के साथ देने से तिजारी ज्वर शान्त होता है। यह अनुभूत है।

१६. नारंगी के पत्ते, करञ्जुए के पत्ते, नीम की छाल प्रत्येक ६ माशे लें और पाव भर पानी में पका रोगी को पिलावें। यह प्रयोग दिन में दो बार रोगी को देने से विषमज्वर हटता है।

१७. गिलोय, नीम की छाल, पित्तपापड़ा, कुटकी, नागरमोथा, धनियां, खस, संभालु के पत्ते, चिरायता प्रत्येक २० तोले ले कुछ कूट लें और भभके द्वारा अर्क खींच लें। इस को गुडूच्यादि अर्क कहते हैं, यह हर तरह के नये और पुराने विषमज्वर के लिए लाभप्रद है। यही अर्क दूसरी बार खींचा हुआ तीव्र गुण वाला और सद्यः फलप्रद होता है।

१८. कृष्णाभ्रकभस्म, लोहसार, मीठा तेलिया प्रत्येक १ माशा, पीपल और करञ्जुए की गिरी प्रत्येक २ माशे इन द्रव्यों को नीम्बू के रस में खरल कर के एक २ रत्ती की गोली बना लें। ज्वर चढ़ने से दो २ घण्टे पहिले ३ गोली रोगी को दें, यह नवीन तथा जीर्णज्वर की अनुभूत औषधि है। इस के प्रयोग से २-४ दिन में ही ज्वर नष्ट होता है।

१९. वंशलोचन, छोटी इलायची के दाने, सत गिलोय, पीपल, अभ्रकभस्म श्वेत समान भाग ले अर्क गुलाब से ४ रत्ती की गोली बना लें। यह गोली रोगी को ज्वर चढ़ने से ८ घण्टे पहिले से ही दो २ घण्टे के बाद एक गोली शर्बत बुनफशा या मिश्री के शर्बत के साथ देवें। यह औषधि पित्तप्रधान विषमज्वर के लिए अति लाभकर और शीघ्र फल देने वाली है, यह औषधि हमारी अनुभूत है।

२०. कोनेन, वंशलोचन, छोटी इलायची, विद्रमभस्म, निम्बू का सत प्रत्येक एक २ तोला ले कर दो २ रत्ती की गोली बनावें। यह औषधि रोगी को ज्वर चढ़ने से ६ घंटे पूर्व ही एक गोली प्रति दो२ घण्टे के बाद देते हुए समय से पूर्व ही ३ गोली खिला दें, इस से ज्वर अवश्य रुक जाता है। यह अनुभूत योग है।

२१. कुनीन २ रत्ती, नीम्बू का सत १० रत्ती, मिश्री २॥ तोले । पहिले जल में मिश्री मिला लें और फिर शेष दोनों चीजें मिला दें; यह एक मात्रा है। ऐसी ३ मात्रा रोगी को ज्वर चढ़ने से पहिले देने से ज्वर अवश्य रुक जाता है।

ध्यान रहे कि यदि ज्वर के वेग में दवाई दी जावेगी तो लाभप्रद नहीं है, यह योग ज्वर उतरने पर ही देना चाहिये।

२२. तुलसी तथा कीकर के चार २ पत्ते, अजवायन १ माशा तीनों द्रव्यों को ५ तोले जल में पकावें, १। तोला रहने पर छान लें और बालकों को ही यह औषधि दें। यह प्रयोग बच्चों के लिए बहुत हितकर है। इस से विषमज्वर शान्त होता है।

२३. शुद्ध मीठा तेलिया ५ माशे, रससिन्दूर २ माशे, करञ्जुए की गिरी ६ माशे, सत गिलोय १ तोला सब द्रव्यों को निम्बू के रस में खरल कर २ रत्ती की गोली बना लें। नियमानुसार ज्वर से पूर्व ही दो २ घण्टे बाद ३ गोली दे देने से ज्वर रुक जाता है; यह योग ज्वरनाशक, सर, बलवर्धक, दीपन है। इस से सब प्रकार के विषमज्वर नष्ट हो जाते हैं।

२४. घीक्वार का कन्द १० माशे गरम पानी में घोट कर रोगी को पिलाने से कफप्रधान विषमज्वर नष्ट हो जाता है; यह औषधि कफ को वमन द्वारा निकालने के लिए अति उत्तम है क्योंकि यह औषधि ही वामक है।

२५. नीम की छाल २ तोले कूट कर १॥ पाव जल में पकावें, आध पाव रहने पर उतार कर छान लें, इस में सोंठ चूर्ण ४ रत्ती, धनियां चूर्ण ४ रत्ती मिला कर दो चार दिन तक निरन्तर रोगी को पिलावें इस के प्रयोग से विषमज्वर शान्त होता है।

२६. काला जीरा, एलुआ, सोंठ, काली मरिच, बकायन की गिरी, करञ्जुए की गिरी। सब द्रव्यों को समान भाग ले कर करञ्जुए के पत्तों के रस में घोट कर चने के बराबर गोली बना लें। यह गोली ज्वर चढ़ने से पूर्व दो २ घंण्टे के अन्तर से ३ गोली देने से ज्वर नष्ट होता है।

२७. मुलहठी ६ माशे, अजवायन खुरासानी ३ माशे दोनों द्रव्यों को पाव भर जल में पकावें, १ छटांक रहने पर रोगी को पिला दें, इस से सब प्रकार के विषमज्वर शान्त होते हैं। इस औषधि के प्रयोग से पूर्व रोगी का कोष्ठ शुद्ध कर लेना चाहिये।

उपरोक्त जो योग विषमज्वर के लिए लिखे हैं वह दाहपूर्व विषमज्वर तथा शीतपूर्व विषमज्वर दोनों के लिए समान ही लाभकारी हैं परन्तु चिकित्सकों की सुगमता के लिए कुछ शीतपूर्व विषमज्वरनाशक योग लिखे जाते हैं; आशा है चिकित्सक इन से लाभ उठाने का यत्न करेंगे।

१. हरताल तवकी ६ माशे, सीपभस्म ६ माशे, नीलाथोथा १माशा। तीनों द्रव्यों को घीक्वार के रस में खरल कर के टिकियां बना सुखा लें फिर मिट्टी के शकोरे में बन्द कर कपरोटी कर दश सेर बनकण्डों की आग में फूंक दें, शीतल होने पर निकाल कर चूर्ण कर लें। इस की मात्रा ४ चावल से १ रत्ती तक है, दो मात्रा ज्वर चढ़ने से पूर्व ही मिश्री के शर्बत के साथ प्रयोग करने से बारी से आने वाला ज्वर नष्ट होता है। इस औषधि की ३ मात्रा तक रोगी को दे सकते हैं। यह शीतपूर्व विषमज्वर की अव्यर्थ औषधि है।

२. पारा शुद्ध, गन्धक शुद्ध, मीठा तेलिया प्रत्येक १तोला, धतूरे के बीज ३ तोले और चोक १२ तोले सब द्रव्यों को विधिपूर्वक निम्बु के रस में ३ दिन तक खरल कर के १ रत्ती की गोली बना लें। यह ज्वरांकुश शीतज्वर की अमोघ औषधि है, ज्वर चढ़ने से ८ घंटे पूर्व ही दो २ घंटे बाद १ मात्रा का प्रयोग करें। यह सब प्रकार के विषमज्वरों को रोकती है। ध्यान रहे कि यदि रोगी का पेट साफ न हो तो पहिले विरेचन द्वारा पेट साफ कर लेना चाहिये।

३. पाढल २ तोले का यथाविधि क्वाथ बना कर उस में ४ रत्ती मरिच चूर्ण मिला कर प्रयोग करने से शीतज्वर अवश्य नष्ट होता है। यह शीतज्वर की अद्भुत औषधि है।

४. शतावर ६ माशे, जीरा ६ माशे दोनों द्रव्यों को चूर्ण कर के ५ तोले पानी में घोल कर ज्वर चढ़ने से पूर्व रोगी को देने से शीतज्वर छूट जाता है।

५. कुचला शुद्ध ३ तोले, लौंग १ तोला। दोनों द्रव्यों को महीन कर अदरक के रस में चार दिन खरल कर के १ रत्ती की गोली बना लें। यह गोली ज्वर चढ़ने से पूर्व दो २ घंटे के अन्तर से ३ गोली तक देने से ज्वर रुक जाता है।

६. शुद्ध कुचला चूर्ण कर के रख लें। यह चूर्ण बारी के दिन एक

रत्ती की मात्रा में शहद के साथ दो तीन बार देने से तिजारी, चौथिया आदि सब ज्वर नष्ट होते हैं ।

७. अफ़ीम १ रत्ती, नीम के पत्ते २॥ नग दोनों को महीन पीस कर गुड़ में मिला कर तीन गोली बना लें । यह तीनों गोलियां ज्वर चढ़ने से पहिले एक २ घंटे के अन्तर से रोगी को देने से शीतपूर्व विषमज्वर, तिजारी तथा चौथिया सब ज्वर नष्ट होते हैं ।

८. ३ लाल मरिच ले कर उन्हें पीस लें और बायें हाथ की अंगूठे के पास वाली उंगली (तर्जनी) पर लेप कर के ऊपर से भीगा हुआ कपड़ा लपेट दें, इस से तिजारी रुक जाता है । यह हमारा सहस्त्रों बार का अनुभूत है; परन्तु ध्यान रहे कि भीगा हुआ कपड़ा सूखने न पावे ।

९. प्रातः काल शौच जाने के बाद पीपल की दातुन तोड़ कर पीपल के वृत्त के नीचे ही बैठ कर रोगी बारी वाले दिन चबाता रहे तो तिजारी उस दिन नहीं आवेगा अर्थात् ज्वर रुक जावेगा ।

१०. धतूरे के सूखे बीज ले कर दो शकोरों में रख कर फूंक लें । यह धतूरे के बीजों की भस्म १ माशे से २ माशे तक गुड़ में लपेट कर खाने से तिजारी ज्वर अवभ्य छूट जाता है ।

११. आक के फूल की बिना खिली कली १ नग गुड़ में लपेट कर खिलाने से ज्वर अवश्थ रुक जाता है ।

१२. "अमृत वटी"—धतूरे के बीज ४ तोले, रेवन्दचीनी २॥तोले सोंठ १॥ तोला, गोंद कीकर १ तोला सब द्रव्यों को महीन पीस कर चने के समान गोली बना लें । बारी के दिन ज्वर के समय ६ घंटे पूर्व एक २ गोली दो २ घंटे के अन्तर से ३ गोली का प्रयोग करने से विषमज्वर अवभ्य नष्ट होता है ।

१३. शुद्ध रसौंत २ माशे, एक छटांक जल में घोल कर बारी वाले दिन रोगी को तीन चार बार पिलाने से शीतपूर्व ज्वर नष्ट होता है ।

१४. करेले के पत्ते ३ तोले, जीरा श्वेत १ माशा दोनों को मिला कर रोगी को ज्वर चढ़ने से पूर्व देने से रोगी को ज्वर नहीं चढ़ता ।

१५. पारा शुद्ध, गन्धक शुद्ध, गोदन्ती हरताल, सोमल शुद्ध इन

द्रव्यों को यथाविधि एक सप्ताह तक अदरक का रस डाल डाल कर खरल करके राई के बराबर गोली बना लें। यह गोली सब प्रकार के विषमज्वरों की एक मुख्य और अनुभूत औषधि है।

मात्रा—४ गोली तक ज्वर चढ़ने से पहिले एक २ घंटे के अन्तर से शर्बत फालसा या शर्बत नीम्बू आदि के साथ देनी चाहिये।

पथ्य—रोगी को दूध चावल ही खिलावें।

धातुगतज्वर चिकित्सा।

१. प्रश्न—धातुगत ज्वर से क्या अभिप्राय है?

उत्तर—धातुगतज्वर का अभिप्राय है कि रस आदि सातों धातुओं में से कौन सी धातु में दोष कुपित हो कर ज्वर का कारण बने हुए हैं।

२. प्रश्न—क्या धातुगतज्वर वातज्वर आदि से भिन्न है?

उत्तर—रस-रक्त आदि सप्त. धातुगतज्वर वातज्वर आदि सब प्रकार के ज्वरों से पृथक् नहीं हैं। शास्त्रकार ने केवल निदान तथा चिकित्सा आदि को चिकित्सक की सुगमता के लिए ही वातज्वरादि तथा सप्तधातुगतज्वर आदि अनेक भेद कर दिये हैं, इसलिए चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि चिकित्सा प्रारम्भ करने से पूर्व वात, पित्त तथा कफ के लक्षणों को देख कर रोग का निर्णय करते हुए धातुगतज्वर के लक्षणों का भी ध्यान रखे तथा साध्यासाध्य और चिकित्सा का निर्णय करे।

रसगतज्वर चिकित्सा।

रसस्थे तु ज्वरे तस्मिन्कुर्याद्वमनलंघने ॥

कुपित हुए दोषों के रसस्थ होने पर रोगी को समयानुसार लंघन या वमन कराना उचित है। जब कुपित हुए दोष केवल रस में ही होते और उसे विकृत कर देते हैं, उस दशा में होने वाले ज्वर को रसगतज्वर कहा

जाता है और प्रायः इस प्रकार के दोष वातज्वर, पित्तज्वर, श्लेष्मज्वर, वातपित्त, वातकफ, पित्तकफ, सन्निपात तथा सन्ततज्वर में होते हैं ।

रुधिरगतज्वर चिकित्सा ।

सेकः संशमनो लेयो रक्तमोक्षमसृग्गते ॥

जब दोष रक्तगत होते हुए रक्त को दूषित करते हैं उस समय रक्त का वेग बढ़ जाता तथा उस में उष्णता भी अधिक हो जाती है; ऐसे समय रक्त के वेग और उष्णता को मन्द करने के लिए जल आदि से सेचन करना, रक्तमोक्षण (फ़स्द करना) आदि उपाय करने चाहियें ।

इस प्रकार के दोष प्रायः पित्तोल्वण या वातपित्तोल्वण ज्वरों में पाये जाते हैं ।

मांसगतज्वर चिकित्सा ।

मांसगत दोषों को सदा विरेचन द्वारा निकालना चाहिये । वैद्य का कर्त्तव्य है कि दोषों की पक्वापक्व अवस्था का विचार कर के रोगी को विरेचन देवे । मांसगतज्वर वाले रोगियों को प्रायः एकाहिक ज्वर होता है ।

मेदोगतज्वर चिकित्सा ।

मेदोगतज्वर में मेदनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । मेदोगत दोष होने पर रोगी को प्रायः तिजारी ज्वर आता है; मेदोगतज्वर में स्वेद देना तथा शहद का प्रयोग कराना अति लाभकर है ।

अस्थिगतज्वर चिकित्सा।

अस्थिस्थे तु ज्वरे कुर्याद्वातनाशनं विधिम् ॥
वस्तिकर्म प्रयोक्तव्यभ्यंगोन्मर्दनं तथा ॥

अस्थिपर्यन्त धातुगतज्वर प्रायः वात प्रकृति वाले मनुष्यों को और वातपित्त वालों को होता है; यह ज्वर प्रायः चौथे दिन आता और प्रायः वात के कारण रूक्षांशबहुल होता है। अस्थिगतज्वर को नाश करने के लिए प्रायः वातनाशक कर्म वस्तिप्रयोग तथा तैल आदि स्नेह पदार्थों का मर्दन कराना सदा हितकारी है। इस में वात तथा रूक्षतानाशक बृंहण पदार्थ दूध आदि का प्रयोग लाभकर है।

मज्जागत तथा शुक्रगतज्वर चिकित्सा।

जब दोष शरीरस्थ मज्जा और शुक्र में पहुंच कर उन को दूषित करते हैं तो प्रायः ऐसे ज्वर असाध्य होते हैं अर्थात् यह दोष किसी प्रकार भी शरीर से नहीं निकल सकते; इसलिए इनकी चिकित्सा भी नहीं लिखी जावेगी।

जीर्णज्वर चिकित्सा विधि।

जीर्णज्वरी नरः कुर्यान्नोपवासं कदाचन ॥
लंघनात्स भवेद् क्षीणो ज्वरस्तु स्याद्बलीयतः ॥
पुराणेऽपि ज्वरे दोषाः यद्यपथ्यैः पुनस्तथा ॥
लंघयेत्तत्र तत्पश्चात्पूर्वामेवाचरेत्क्रियाम् ॥

जीर्णज्वर वाले रोगी को लंघन कराना उचित नहीं है क्योंकि रोगी लंघन से निर्बल हो जाता है और दोष न पचने के कारण ज्वर तीव्र हो

जाता है परन्तु जब लंघन द्वारा दोष पच्यमान हो कर ज्वर निर्बल हो गया हो और रोगी के कुपथ्य से ज्वर का वेग तीव्र हो गया हो उस समय रोगी को बल तथा समय के अनुसार लंघन करा के दोषों का पाक कराना चाहिये।

वातबलासक तथा प्रलेपक ज्वर की चिकित्सा भी जीर्ण ज्वर के समान ही समझनी चाहिये।

त्रिकण्टक क्वाथ।

कटैली छोटी, गिलोय, सोंठ प्रत्येक ८ माशे। इन तीनों द्रव्यों का यथाविधि क्वाथ बना कर ४ रत्ती पिप्पली चूर्ण मिला कर रोगी को विधि-पूर्वक देने से जीर्णज्वर, कास, श्वास तथा कफ शान्त होता है। जब रोगी के फेफड़ों में खुश्की न हो और उस के अन्दर से श्वेत रंग का झागदार कफ अधिक जाता हो तथा कफ विदग्ध हुआ पीले या लाल रंग का हो उस समय इस के देने से हानि होती है।

पिप्पल्यादि क्वाथ।

२ तोले हरी गिलोय कुचल कर आध सेर जल में पकावें और एक पाव रहने पर उस में रोगी की अवस्थानुसार ४ रत्ती से १ माशे तक पिप्पलीचूर्ण मिला कर प्रयोग करने से जीर्णज्वर शान्त होता है। यह क्वाथ तीव्र वेग से मलों को शरीर से बाहिर निकालता है किन्तु धीरे २ अपने संशमन प्रभाव से दोषों को सामान्य अवस्था में ला कर उन का शमन करता है। यह ज्वर तथा कफहर और दीपन है।

गुडूची क्वाथ।

हरी गिलोय २ तोले का यथाविधि बनाया क्वाथ दोषानुसार शहद या मिश्री मिला कर देने से जीर्णज्वर नष्ट होता है। यह शमन क्वाथ है, फेफड़ों में रूक्षता होने पर मिश्री डाल कर और कफ झागदार होने की हालत में शहद डाल कर देना चाहिये।

गुडूची स्वरस

गिलोय का रस ५ तो. से १० तो. तक स्वरस समयानुसार शहद, मिश्री अथवा पीपल के चूर्ण के साथ प्रयोग करने से जीर्णज्वर को लाभ होता है;

इस औषधि का निरन्तर कुछ दिन प्रयोग करना चाहिये। सत मुलहठी ४ रत्ती, शकर तिगार ४ रत्ती इन द्रव्यों को फांक कर ऊपर से स्वरस मिश्री डाल कर पीने से जीर्णज्वर और फेफड़े की रूक्षता नष्ट हो कर कफ सरलता से निकलने लगता है।

पिप्पली चूर्ण।

पीपल का चूर्ण १ माशा शहद के साथ चाटने से जीर्णज्वर नष्ट हो जाता है। यह प्रयोग कफ के अधिक निकलने की दशा में अति लाभकर है।

आमलक्यादि चूर्ण।

आंवले सूखे, चीते की छाल, बड़ी हरड़ का छिलका, पीपल, सेन्धा नमक इन द्रव्यों को समान भाग ले कर चूर्ण बना लें, इसे आमलक्यादि चूर्ण कहा जाता है। यह ३ माशे चूर्ण उष्णजल के साथ दिन में ३ बार प्रयोग करने से जीर्णज्वर, मन्दाग्नि, कफ तथा आमाशय की निर्बलता को शान्त करता है और बद्ध कोष्ठ के लिए लाभकर हैं।

एलादि चूर्ण।

छोटी इलायची के दाने, वंशलोचन, कचूर, कल्मी शोरा, अतीस। इन द्रव्यों को समान भाग ले कर चूर्ण बना लें। मिश्री सब से आधा भाग। मात्रा—४ रत्ती से १ माशा तक यह चूर्ण प्रातः और सायं दोनों समय शीतल जल के साथ प्रयोग करने से दो तीन दिन में ही जीर्णज्वर मन्द हो कर छूट जाता है। यदि ज्वर उतरने वाला न होगा तो इस चूर्ण से कुछ लाभ नहीं होता, यह प्रयोग हमारा सहस्रों बार का अनुभूत है।

अष्टादशांग क्वाथ।

मुनक्का, गिलोय, कचूर, काकड़ासिंगी, नागरमोथा, लाल चन्दन, सोंठ, कुटकी, पाढल, चिरायता, धमासा, खस, धनियां, कमल के फूल, सुगन्धबाला, कटैली छोटी, पोहकर मूल, नीम की छाल रोगी के बलानुसार यह द्रव्य २ तोले या ४ तोले ले कर इन का अर्धावशेष क्वाथ रोगी को शीतल कर के पिलावें। इस से जीर्णज्वर शान्त होता है।

हमारे अनुभूत योग।

प्रायः देखा जाता है कि जीर्णज्वर पुराना हो कर तपेदिक में बदल जाता है अतः चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि अति सावधानी और बुद्धिमत्ता से जीर्णज्वर की चिकित्सा करे।

इस रोग की चिकित्सा में ज़रा भी असावधानी करना भयंकर भूल है और यक्ष्मा होने पर रोगी के जीवन का भी सन्देह होता है। इसलिए यहां कुछ ऐसे योग लिखे जाते हैं जो हमारे सहस्रों बार के अनुभूत और शीघ्र ही प्रभाव करने वाले हैं।

चौंसठ पहरी पीपल।

स्वच्छ छोटी पीपल ले कर खरल में ६४ पहर तक निरन्तर खरल कर लें, इस को चौंसठ पहरी पीपल कहा जाता है। यह जीर्णज्वर के लिए अमृत के समान गुणकारी है। मात्रा २ रत्ती से ६ रत्ती तक गिलोय के क्वाथ या शहद से प्रयोग करनी चाहिये।

ध्यान रहे कि पीपल निरन्तर (लगातार) खरल करते रहें।

वर्धमान पिप्पली।

छोटी पीपल ५ नग ले कर पाचन शक्ति के अनुसार गोदुग्ध में इतना पकावें कि पीपल नरम हो जावे; अब पीपल दूध से निकाल कर खा लें और ऊपर से ठण्डा या कुछ गर्म ही दूध मिश्री डाल कर पी लें। अगले दिन ५ पीपल बढ़ा कर इसी तरह करें और आठ दिन तक प्रति दिन पांच पीपल बढ़ाते रहें, नवें दिन से ५ पीपल प्रति दिन घटाने लगें यहां तक कि अन्त में ५ पीपल रह जावें। यह वर्धमान पिप्पली की विधि है।

इस के सेवन से जीर्णज्वर, खांसी, श्वास नष्ट हो कर भूख बढ़ती है। यदि मृदु और कोमल प्रकृति मनुष्य इतनी पीपल न खा सकें तो उन को केवल दूध ही पिलाना चाहिये पर दूध में पीपल उबालने के लिए इस विधि से ही डालनी चाहिये।

पिप्पली वर्धमान (दूसरी विधि)

पहिले दिन १० छोटी पीपल दूध में डाल कर पकावें, दूसरे दिन २० पीपल पकावें; इसी प्रकार १० दिन तक १० पीपल प्रति दिन बढ़ाते

रहें और ग्यारहवें दिन से १० पीपल प्रति दिन घटा कर बीसवें दिन छोड़ दें। इस विधि में रोगी को पीपल नहीं खानी चाहिये केवल दूध ही पीना चाहिये। यह जीर्णज्वर की श्रेष्ठ औषधि है।

वसन्तमालती रस।

स्वर्णपत्र १ माशा, मुक्ता २ माशे, शिंगरफ शुद्ध ३ माशे, काली मरिच ४ माशे, खपरिया ८ माशे सब द्रव्यों को १ तोला मक्खन के साथ निम्बू का रस डाल २ कर खरल में इतना रगड़ें कि मक्खन की स्निग्धता नष्ट हो जावे, फिर इस की एक २ रत्ती की गोली बना लें; इस रस को 'मालतीवसन्त' रस कहा जाता है और यह एक प्रसिद्ध औषधि है। मात्रा १ रत्ती मधु के साथ अथवा इस रस को योग्य अनुपान के साथ प्रयोग करने से हृदय की निर्बलता, अजीर्ण, कफ, श्वास, कास, अरुचि, जीर्णज्वर, यक्ष्मा, क्षय, प्रलापकज्वर, वातबलासकज्वर नष्ट होते हैं।

वसन्तमालती रस विशेष कर रोग की ऐसी दशा में देना चाहिये जब कि ज्वर के साथ अजीर्ण, अतिसार, मन्दाग्नि आदि उपद्रव भी हों, ऐसी अवस्था में इस का विशेष प्रभाव होता है।

वसन्तमालती की उपयोग विधि।

१. एक या २रत्ती मालतीवसन्तरस, १माशा सितोपलादि चूर्ण और ६ माशे शहद मिला कर चाटना चाहिये। ऐसी दिन में २ मात्रा दे सकते हैं।

२. मालतीवसन्त १ रत्ती, सत गिलोय २ माशे, पीपल का चूर्ण ४ रत्ती तीनों को ६ माशे शहद में मिला कर चाटना चाहिये।

३. मालतीवसन्त १ रत्ती, लौंग १, तुलसी के पत्ते ४ और काली मरिच ४ सब को मिला कर शीतल जल के साथ प्रयोग करने से विषमज्वर तथा जीर्णज्वर शान्त होते हैं।

४. मालतीवसन्त १ रत्ती, सितोपलादि १ माशा दोनों को मक्खन ६ माशे और मिश्री ६ माशे में मिला कर चटाने से फेफड़े की रूक्षता, शुष्क कास तथा जीर्णज्वर शान्त होता है।

५. पीपलचूर्ण ४ रत्ती और मालतीवसन्त १ रत्ती दोनों को मिला कर ६ माशे शहद के साथ चटाने से जीर्णज्वर नष्ट होता है।

श्री जय मंगल रस ।

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध टंकण, ताम्रभस्म (बांसायोग से) वंग भस्म(नीम योग से),स्वर्णमाक्षिकभस्म (लवण तथा एरण्ड तैल योग से),सेन्धा लवण, काली मरिच प्रत्येक १ तो. स्वर्णभस्म (काञ्चनार रसयोग से) २ तो. लोहभस्म (त्रिफला तथा मुस्तादि योग से) २ तोले, रौप्यभस्म (हिंगुल तथा घृत कुमारी योग से) २ तोले । सर्व प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बना कर शेष समस्त भस्में इस में मिला दें और धतूरे के पत्तों के रस के साथ तीन दिन, दशमूल क्वाथ में ३ दिन,चिरायता के क्वाथ में तीन दिन, कटुकी के क्वाथ में तीन दिन, हार सिंगार के फूलों के रस में ३ दिन तक खरल करें पश्चात् १रत्ती से २रत्ती प्रमाण की गोलियां बना लें । मात्रा—१रत्ती से २रत्ती दिन में दो तीन वार २ रत्ती से ४ रत्ती जीरा और मधु में मिला कर दें ।

'श्री जय मंगल रस' जीर्णज्वरी को ऐसी दशा में सेवन कराना चाहिये जब कि मन्द २ ज्वर के साथ थोड़ी खांसी भी आती हो और अति क्षीण होने से यक्ष्मा का भय हो । यह रस इस दशा में विशेष लाभप्रद सिद्ध होता है । सब ओर से निराश तथा असाध्य कहे गये जीर्णज्वरी इस से निश्चय आरोग्य लाभ कर सकते हैं ।

बृहत्सर्वज्वरहर लोह ।

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, कृष्णाभ्रक भस्म, स्वर्ण भस्म, रौप्यभस्म, हड़ताल शुद्ध प्रत्येक १ तोला, उत्तम कान्त-लोहभस्म ४ तोले प्रथम पारा और गन्धक की कज्जली करें पश्चात् सब भस्में इस में मिला कर निम्न लिखित औषधियों के रसों में पूरे सात २ दिन खरल करें:—

करेले का रस, दशमूल क्वाथ, पित्तपापड़ा का रस, त्रिफला का क्वाथ, गिलोय का स्वरस अथवा क्वाथ, पान का स्वरस, मकोय का स्वरस, सम्भालू के पत्तों का रस, पुनर्नवा स्वरस, अदरक स्वरस; इन दश चीज़ों के रसों की सात २ दिन भावना दे कर पश्चात् एक २ रत्ती प्रमाण गोली बना लें । मात्रा—एक २ गोली दिन में दो तीन बार, पिप्पली चूर्ण ४ रत्ती, एक वर्ष का पुराना गुड़ ३ माशे में मिला कर सेवन करावें, यह रस भी जीर्ण ज्वरी के लिए एक अव्यर्थ औषधि है । इस में जो भस्में वर्णित

वह सब उपरोक्त श्रीजय मंगल रस में वर्णित भस्मों के प्रकार से बनी हुई होनी चाहियें।

सितोपलादि चूर्ण ।

मिश्री १६ तोले, तवाशीर ८ तोले, पीपल ४ तोले, छोटी इलायची के दाने २ तोले, दालचीनी १ तोला सब द्रव्यों को चूर्ण कर महीन कर लें, इसे 'सितोपलादि चूर्ण' कहा जाता है। यह चूर्ण अरुचि, कास, जीर्णज्वर, तथा विषमज्वर नाशक और बलदायक है तथा आयुर्वेद की एक प्रसिद्ध औषधि है।

पंचमूली क्षीर ।

शालपर्णी, पृष्टपर्णी, कटैली छोटी, कटैली बड़ी, गोक्षुर इन द्रव्यों को लघुपञ्चमूल कहा जाता है। इन से सिद्ध किया हुआ दूध सब प्रकार के जीर्णज्वरों के लिए एक अमूल्य औषधि है। जिन रोगियों को दस्त आते हों उन के लिए भी यह दूध हितकर है। **क्षीर पाक विधि**—२ तोले से ४ तोले क्वाथ द्रव्य को आध सेर से एक सेर पानी और इतने ही गो दुग्ध में मिला कर पकावें जब पानी जल जावे और केवल दुग्धमात्र रह जावे तो रोगी को मीठा मिला कर पिलाना चाहिये।

सितादि क्षीर ।

मिश्री, घी, सोंठ, छुहारे, मुनक्का प्रत्येक २॥ तोले, गोदुग्ध १ पाव और जल १। सेर इन को क्षीरपाक की विधि से सिद्ध कर के पानी जल जाने पर आग से उतार लें और ठण्डा कर के ६ माशे शहद मिला कर रोगी को दें। यह दूध जीर्णज्वर, खांसी, तृषा और आमशूल के लिए अत्यन्त हितकारी है।

सर्व प्रकार के जीर्णज्वर के लिए विशेष लाभप्रद अमृतारिष्ट ।

उत्तम परिपक्व हरित गिलोय ५ सेर, दशमूल की दशों औषधियें ५ सेर दोनों को कूट कर चौंसठ सेर पानी में भिगो दें। एक रात भीगा रहने

के पश्चात् किसी उत्तम कली किये हुए पात्र में इतना पकावें कि पानी चौथा भाग रह जावे, फिर ठंडा होने पर खूब मल कर छान लें और किसी उत्तम मिट्टी के चिकने पात्र में डाल दें, पात्र ऐसा होना चाहिये कि जिस में उपरोक्त पानी और नीचे लिखी हुई प्रक्षेप की औषधियें डालने पर पात्र का चौथा भाग खाली रहे।

प्रक्षेप औषधियें।

काला जीरा ६४ तोले, पित्तपापड़ा ८ तोले, सप्त पर्ण (सतोना); त्रिकुटा, नागरमोथा, नाग केसर, कुटकी, इन्द्रजौ, अतीस प्रत्येक चार २ तोले सब का चूर्ण कर के उपरोक्त पात्र में डाल दें और इसी में १२॥ सेर गुड़ डाल कर अच्छी प्रकार मिला दें, तत्पश्चात पात्र का मुख बन्द कर दें, शीतकाल हो तो १ मास और यदि उष्णकाल हो तो १५ दिन पश्चात् पात्र का मुख खोल कर देखें, यदि अच्छे प्रकार नितर गया हो तो नितरे हुए अरिष्ट को छान कर सावधानी से बोतलों में भर लें। मात्रा—१ तोले से २ तोले दोनों समय भोजन के पश्चात् पिलाने से जीर्णज्वर और जीर्णज्वर सम्बन्धी सर्व उपद्रव नष्ट होते हैं। यह अरिष्ट जीर्णज्वरी के लिए ऐसी दशा में विशेष लाभ करता है, जब कि ज्वर के साथ २ मन्दाग्नि तथा पक्वाशय के दोष से कच्चा ही मल निकलता हो। यह अरिष्ट वसन्तमालती रस तथा वृहत्सर्वज्वरहर लोहरस के साथ २ रोगी को भोजनानन्तर सेवन कराने से विशेष लाभ करता है।

लोहासव।

लोहचूर्ण, त्रिकुटा, त्रिफला, अजमोद, वायविडंग, नागरमोथा, चित्रक मूल छाल, प्रत्येक १६ तोले सब को कूट कर चूर्ण कर लें और मिट्टी के चिकने पात्र में ३२ सेर जल, ३। सेर मधु, ५ सेर गुड़ तथा उपरोक्त औषधियें डाल कर मुख बन्द कर दें और यथाविधि नितर जाने पर छान कर बोतलों में भर लें। मात्रा—१ तोले से २ तोले तक दोनों समय भोजनोत्तर। यह आसव जीर्णज्वरी को ऐसी अवस्था में लाभ करता है, जब कि ज्वर के कारण यकृत तथा प्लीहा दूषित होने से रोगी को पाण्डु हो गया हो, शरीर में रक्त की न्यूनता हो तथा ज्वर के साथ ही थोड़ा बहुत अतिसार भी हो।

ज्वर में तैल प्रयोग।

जीर्णज्वर तथा विषमज्वर के रोगी के लिए पूर्वोक्त रस तथा औषधियों के साथ २ यदि प्रति दिन किसी उत्तम ज्वरघ्न तैल की मालिश भी की जावे तो इस से रोगी को विशेष लाभ होता है। अतः यहां पर कुछ अनुभूत ज्वरघ्न तैलों के प्रयोग दिये जाते हैं।

किरातादि तैल।

मूर्वा, लाख पीपल, हल्दी, दारहल्दी, मजीठ, इन्द्रायण, मुश्कबाला, पोहकरमूल, रास्ना, गजपिपली, त्रिकुटा, पाठा, इन्द्रजौ, सेन्धा लवण, साम्भर लवण, सोंचल लवण, बांसामूल, अनन्तमूल, देवदार, चिरायता, प्रत्येक १ सेर सब को कूट कर चूर्ण करें पाकार्थ दही का पानी २ मन, तिल तैल २० सेर सब को किसी ताम्र के उत्तम पात्र में डाल कर मन्द २ अग्नि पर पकावें, जब तैल मात्र रह जाये तो अग्नि पर से उतार कर तैल को छान लें और सावधानी से बोतलों में भर कर रखें। आवश्यकतानुसार जीर्णज्वरी को इसे नित्य प्रति दिन के १० बजे मालिश करावें। इस के प्रयोग से सन्तत, सतत, धातुगत, जीर्ण तथा विषमादि सर्व ज्वर नष्ट होते हैं।

बृहत्किरातादि तैल।

चिरायता ५ सेर कूट कर २४ सेर पानी में पकावें जब चौथा भाग जल रह जाये तो मल कर छान लें, कड़वा तैल ४ सेर, मूर्वा १ सेर, लाख पीपल १ सेर, पानी १६ सेर पकावें शेष ४ सेर रहने पर छान लें, कांजी ४ सेर, दही का पानी ४ सेर। कल्कार्थ निम्नलिखित चीजों को लेकर बारीक पीस लें:—

चिरायता, सुगन्धवाला, रास्ना, कुठ, लाख पीपल इन्द्रायणमूल, मजीठ, हल्दी, दारहल्दी, मूर्वा, मुलहठी, नागरमोथा, सेन्धालवण विडलवण, मुश्कबाला, सतावर, श्वेत चन्दन, कुटकी, सोये बीज, रेणुका, देवदारु; खस; पद्मपुष्प धनियां, पिपली; वच; कचूर, त्रिफला, देशी अजवायन, अजमोद; गोखरु, शालपर्णी; पृष्टपर्णी, त्रायमाणमूल; वायविडंग; कालाजीरा श्वेतजीरा; वकायनमूल छाल; हाऊबेर; यवक्षार; अतीस. प्रत्येक २ तोले सब

को एक उत्तम पात्र में डाल कर मन्द २ अग्नि पर पकावें। जब तैल मात्र रह जावे तो छान कर बोतलों में भर लें, यह बृहत्किरातादि तैल भी सर्व ज्वर नाशक तथा बल वर्धक है। विशेष कर जीर्ण तथा धातुगतज्वर में अत्यन्त लाभ करता है। इस की भी नित्य मालिश करनी चाहिये।

बृहज्ज्वरभैरव तैल।

गिलोय, बांसा, निम्ब छाल, वकायन छाल, मूर्वा, चन्दन, चिरायता इन्द्रजौ प्रत्येक आध सेर को कूट कर १६ सेर जल में पकावें; जब चौथा भाग पानी रह जावे तो इस में २सेर तिल तैल डाल कर निम्न कल्कार्थ औषधियें भली प्रकार बारीक पीस कर मिला दें:—

कल्कार्थ औषधियें।

गिलोय, अतीस, हल्दी, दारहल्दी, सप्तपर्ण (सतोना), पिप्पली, पीपलामूल, सुहाञ्जने के बीज, शिलाजीत, पटोलपत्र, धनियां, कुठ, चिरायता, मूर्वामूल, असगन्ध, कण्टकारी छोटी, कण्टकारी बड़ी प्रत्येक २ तोले, ४ सर पानी। सब को किसी उत्तम पात्र में डाल कर मन्द २ अग्नि पर पकावें; जब तैल मात्र रह जावे तो छान कर बोतलों में भर लें। यह तैल भी जीर्णज्वर, धातुगतज्वर तथा विषमज्वर के लिए एक अव्यर्थ औषधि है। इस के प्रयोग से ज्वर शान्त होता और रोगी का बल बढ़ता है, इस की नित्य मालिश करनी चाहिये।

लाक्षादि तैल।

पीपल की लाख का रस ४ सेर, तिलों का तेल १ सेर, गाय के दूध का दही ४ सेर, शतावर, हल्दी, मुलहठी, रास्ना, असगन्ध, कुटकी, मरोड़फली, सम्भालु के बीज, चन्दन श्वेत, नागरमोथा, देवदारु, कूठ कड़वा प्रत्येक एक २ तोला। इन द्रव्यों को गाय के दूध की छाछ में घोट कर कल्क बना लें; फिर ताम्बे के बर्तन में सब द्रव्यों को डाल कर तैलपाक विधि से तैल बना लें। इस को लाक्षादि तैल कहते हैं और यह जीर्णज्वर की एक प्रसिद्ध औषधि है। इस की मालिश से रोगी का सूखा हुआ शरीर पुनः हरा हो जाता है।

———

लाख का रस निकालने की विधि।

पीपल की लाख १ सेर को रात १६ सेर शुद्ध जल में भिगो दें और उस में ५ तोले पठानी लोध का चूर्ण, ३ माशे सज्जी और दस नग बेरी के पत्ते डाल कर रख दें और अगले दिन प्रातः काल चूल्हे पर चढ़ा कर पकावें; चतुर्थांश शेष रहने पर उतार लें और छान कर रख लें। यही लाख का रस बनाने की विधि है, यही रस तैल बनाने में उपयोग करना चाहिये।

ज्वरोपद्रव चिकित्सा विधि ।

सञ्जातोपद्रवो व्याधिस्त्याज्यो न स्याच्चिकित्सकैः ॥
व्याधौ शान्ते प्रणश्यन्ति सद्यः सर्वेऽप्युद्रवाः ॥
अतो व्याधिं जयेद्यत्नात्पूर्वं पश्चादुपद्रवान् ॥
तेष्वपि प्रचुरेषु प्राङ् नाशयेदाशुकारिणम् ॥
मूलव्याधिं जयेत्पूर्वं यत्र यो वा भवेद्बली ॥
अविरोधेन कार्यो तदुभयोरपि च क्रिया ॥

मूलव्याधि उत्पन्न होने के पश्चात् उत्तर २ जो व्याधि होती है उस को उपद्रव कहते हैं । पहिले लिखा जा चुका है कि ज्वर में दस उपद्रव होते हैं—

१. श्वास	४. वमन	७. मलबन्ध
२. मूर्छा	५. तृषा	८. हिचकी
३. अरुचि	६. अतिसार	९. खांसी

१०. शरीर में दाह

ज्वर में इन उपद्रवों को देख कर रोगी को घबराना नहीं चाहिये तथा चिकित्सक को किसी प्रकार की घबराहट में न पड़ कर सावधानी से चिकित्सा करनी चाहिये। इन की चिकित्सा करते हुए ध्यान रखें कि यदि मूलव्याधि प्रबल और उपद्रवहीन हों तो प्रधान चिकित्सा मूलव्याधि की करनी चाहिये तथा उसके बाद उपद्रवों की। यदि उपद्रव बलवान् हों तो पहिले उपद्रवों को मुख्य मान कर चिकित्सा करें। यदि उपद्रव और मूलव्याधि दोनों समान हों तो दोनों की समान चिकित्सा करें। इस चिकित्सा में दोनों का समान ही ध्यान रखते हुए साथ २ चिकित्सा करें।

ज्वर में श्वास तथा हिक्का चिकित्सा ।

हिक्कारोग और श्वासरोग दोनों में वायु का विकार होता है। इन दोनों में से हिक्कारोग तो प्राणवायु और उदानवायु के विकृत होने से उत्पन्न

होता है परन्तु श्वास रोग में केवल प्राणवायु ही विकृत होती है। इन दोनों रोगों में प्रायः वायु के रूक्षांशबहुल होने के कारण वातावह स्रोतों के संकुचित होने पर श्वास लेने और श्वास छोड़ने दोनों क्रियाओं में ही कष्ट होता है; इसलिये चिकित्सक को उचित है कि इन रोगों में स्रोतशोधक और वातानुलोमक क्रिया करें।

हिक्कानाशक प्रयोग।

१. एक पाव गाय के दूध में ६ माशे सोंठ पका कर देने से हिक्का शान्त होती है।

२. मुलहठी का चूर्ण २ माशे शहद में चाटने से हिचकी दूर होती है।

३. तीन-चार बून्द पानी में दो तीन रत्ती नमक मिला कर नस्य लेने से हिचकी शान्त होती है।

४. हींग १ भाग, उड़द १ भाग, घी १ भाग, हल्दी १ भाग सब को मिला कर दहकते हुए कोयलों पर डाल कर इन का धुआं मुख द्वारा पीने से हिचकी शान्त होती है।

५. हींग का धुआं पीने से भी हिचकी रुकती है।

६. सोंठ ६ माशे, पान की जड़ ६ माशे, पीपल ६ माशे; इन द्रव्यों का चतुर्थांश क्वाथ शहद डाल कर पिलाने से हिचकी तुरन्त रुक जाती है। यह क्वाथ शीतल कर के पीना चाहिये।

७. पान की जड़ मुख में रख कर चूसने से हिचकी दूर होती है।

८. माक्षिक विट् ४ रत्ती से १ माशे तक शहद में मिला कर चाटने से हिचकी नष्ट होती है।

९. मैनसिल को चिलम में रख कर पीने से हिचकी नष्ट होती है।

१० बिजौरे नीम्बू का रस २ तोले, शहद ६ माशे और काला नमक १ माशा मिला कर पीने से हिचकी नष्ट होती है।

११. स्त्री के दूध की नस्य लेने से हिचकी रुक जाती है।

१२. मोर के पंख की भस्म ४ रत्ती शहद में मिला कर चटाने से अति प्रबल हिचकी रुक जाती है।

१३. श्वास कुठार रस १ रत्ती से २ रत्ती तक मधु के साथ चाटने से हिचकी अवश्य रुक जाती है।

श्वासनाशक योग।

१. कटैली छोटी, धमासा, पटोलपत्र, काकड़ासिंगी, पद्माख, पोहकरमूल, कुटकी, कचूर, इन्द्रजौ, समस्त २ से ४ तोले। बलानुसार इन द्रव्यों का अर्धावशेष क्वाथ यथाविधि देने से श्वास शान्त होता है।

२. पीपल, कायफल, काकड़ासिंगी, समान भाग तीनों द्रव्यों का चूर्ण बना कर ४ रत्ती से १ माशे तक शहद के साथ प्रयोग करने से अति प्रबल श्वास तत्काल नष्ट होता है।

३. भारंगी, नीम की छाल, नागरमोथा, गिलोय, हरड़ का छिलका, चिरायता, बांसे के पत्ते, अतीस, बुनफ़शा, कुटकी, वच, सोंठ, काली मरिच, पीपल, सोनपाठा, कुड़े की छाल, रास्ना, धमासा, पटोलपात, पाढल, कचूर, दारहल्दी, इन्द्रायण की जड़, निशोथ, ब्राह्मी, पोहकरमूल; कटैली, कटैला, हल्दी, आंवला, बहेड़े का छिलका, देवदारु इन सब द्रव्यों को समान मात्रा में रोगी के बलानुसार २ से ४ तोले तक ले कर आध सेर जल में पका अर्धावशेष होने पर थोड़ी सी मिश्री मिला कर रोगी को घूंट २ पिलावें। यह श्वास को शमन करने के लिए उत्तम औषधि है।

मूर्छानाशक योग।

प्राय: पित्त और तमोगुण के अधिक होने पर तमोगुण बहुल और पित्त से दूषित हुए रक्त के शिर में पहुंचने पर तमोगुण के संकोचक प्रभाव से ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के केन्द्र संकुचित हो कर इन की क्रिया अवरुद्ध होने पर मूर्छा आ जाती है तथा ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की क्रिया अवरुद्ध होने से अचेतनता हो जाती है। मूर्छावस्था में चिकित्सक को उचित है कि सदा पित्त को प्रधान मान कर स्रोतों के विकासक और मस्तिष्कशोधक द्रव्यों का उपयोग कर के मूर्छा नष्ट करने का प्रयत्न करें।

भ्रम—पित्त, वात और रजोगुण के संयोग से प्राणियों को इस प्रकार भ्रम होता है कि पित्त बहुत बढ़ जाता और वात भी मध्यावस्था में बढ़ा होता है तो रजोगुणबहुल रुधिर के मस्तिष्क में पहुंच कर रजोगुण के

क्रियाकारक अधिक प्रभाव से रोगी की बुद्धि के ब्रह्मा आदि नामक केन्द्रों की क्रिया विकृत हो कर अति तीव्र हो जाती हैं जिस के कारण रोगी को समस्त पदार्थ घूमते हुए दीख पड़ते हैं और वह किसी बात का यथावत् निर्णय नहीं कर सकता । इस हालत को भ्रम कहते हैं ।

तन्द्रा--तमोगुण, रजोगुण, वात तथा कफ के प्रबल होने पर रोगी को तन्द्रा होती तथा तमोगुण और कफ के अधिक होने पर निद्रा आ जाती है ।

तन्द्रा और निद्रा में केवल यह अन्तर है कि—

१. निद्रा स्वाभाविक और तन्द्रा अस्वाभाविक है ।

२. तन्द्रा में बिल्कुल अचेनता नहीं होती, निद्रा में पूर्ण अचेनता हो जाती है ।

तन्द्रा की चिकित्सा में वातकफ को प्रधान मान कर वातानुलोमन और मस्तिष्क शोधन क्रिया करनी चाहिये ।

पित्तज मूर्छानाशक उपाय ।

गुलाब का अर्क, अर्क केवड़ा, चन्दन श्वेत घिसा हुआ; इन तीनों द्रव्यों में कपड़ा भिगो कर रोगी के मस्तक पर रखें और इन अर्कों की छींटें रोगी के नेत्रों और मस्तक पर ज़ोर २ से मारें । इस प्रकार मूर्छा नष्ट हो जाती है ।

आनाहजनित मूर्छानाशक उपाय ।

बहुधा रोगी को आनाह होने के कारण तथा वायु के प्रतिलोम होने पर मूर्छा हो जाती है, ऐसी दशा में निम्न उपाय करने चाहियें:—

१. साबुन, ग्लिसरीन या अन्य द्रव्यों की बत्ती बना कर उस बत्ती का गुदा में प्रयोग करें । इस से रोगी को दस्त हो कर वायु अनुलोमन होने पर तत्काल मूर्छा हट जाती है ।

२. यदि बत्ती चढ़ाने से कुछ लाभ न हो तो चिकित्सक को चाहिये कि तत्काल वस्ति का प्रयोग करे । वस्ति के उपयोग से मल शुद्ध हो कर रोगी को लाभ हो जाता है ।

शीतजनित मूर्छानाशक उपाय ।

कभी २ अत्यन्त शीत लगने के कारण तमोगुण के संकोचक प्रभाव से मस्तिष्क से निकली वातशिराओं तथा केन्द्रों की क्रिया अति मन्द हो जाती है जिस से रोगी को मूर्छा हो जाती है ।

प्रयोग

१. लौंग, जायफल, जावित्री प्रत्येक १ माशा; केसर, कस्तूरी प्रत्येक ४ रत्ती सब द्रव्यों का महीन चूर्ण कर के ४ रत्ती मात्रा में ३ माशे शहद और ३ माशे पान के रस में चाटने से या मुख में डालने से ही रोगी मूर्छा हट जाती है । इस औषधि को मुख में डालने पर रोगी के नथने एक मिनिट तक बन्द कर लेने चाहियें जिस से औषधि तत्काल शरीर में पहुंच जावे ।

२. शिरीष के बीज, पीपल, काली मरिच, सांभर नमक, मैनसिल और लहसुन इन सब द्रव्यों को समान भाग में बारीक पीस कर नस्य दें । इस नस्य के प्रयोग से तत्काल मूर्छा हट जाती है ।

३. गुड़, तिल का तल, गेहूं का आटा इन को समान भाग ले कर हलवा बना लें । यह हलवा शिर पर और समस्त शरीर पर बार २ बांधने से सर्दी दूर हो कर मूर्छा शान्त होती है ।

४. छाया में सुखाये हुए कनेर के पत्ते ६ माशे, काली मरिच ४ नग बादाम की गिरी एक नग सब को बारीक पीस कर इस की नस्य लें । इस के प्रयोग से कफजनित मूर्छा नष्ट हो जाती और रोगी को तत्काल होश आ जाती है ।

हृदयदौर्बल्य जनित मूर्छा के उपाय ।

कभी २ हृदय निर्बल होने से भी रोगी को मूर्छा हो जाती है । ऐसी दशा में वैद्य को उचित है कि पहिले परीक्षा करें कि मूर्छा का कारण हृदय की निर्बलता ही है या नहीं क्योंकि हृदय निर्बल होने की अवस्था में हृदय की गति अति मन्द हो जाती है । यदि यह गति मन्द हो तो हृदय के उत्तेजक द्रव्य, जैसे चन्द्रोदय १ रत्ती, कस्तूरी २ चावल दोनों को ६ माशे उत्तम मधु के साथ प्रयोग करें इस से हृदय की क्रिया तीव्र होती और मूर्छा भी दूर हो जाती है ।

यदि रोगी को पित्तवातजनित हृदय दौर्बल्य, हृदय की अधिक धड़कन (पैल्पिटेशन) या निर्बलता के कारण मूर्छा हुई हो तो इस अवस्था में मोती १ रत्ती अर्क गुलाब, अर्क बेदमुश्क, या अर्क गाज़बां के साथ देने से तत्काल लाभ होता है ।

कासनाशक उपाय ।

१. पीपल, कचूर, पोहकरमूल, हरड़, सोंठ, नागरमोथा इन सब द्रव्यों को समान भाग ले कर चूर्ण बना लें और एक वर्ष का पुराना गुड़ मिला कर गोली बांध लें । इस गोली को मुख में रख कर चुसाने से कास शान्त होता है ।

२. बहेड़े का छिलका और पीपल दोनों समान भाग ले कर इन का चूर्ण शहद में मिला कर चटाने से खांसी तुरन्त शान्त होती है ।

३. कटैली छोटी और पीपल प्रत्येक १ तोला लें और दोनों को कूट कर एक पाव पानी में पकावें, एक छटांक शेष रहने पर शहद मिला कर रोगी को पिलावें । इस के प्रयोग से कफप्रधान कासरोग शान्त होता है ।

४. काकड़ासिंगी, सोंठ, काली मरिच, पीपल, पोहकरमूल, बड़ी हरड़ का छिलका, बहेड़े की छाल, आंवला, कटैली छोटी, भारंगी, पांचों लवण इन सब द्रव्यों को समान भाग ले कर यथाविधि क्वाथ बना कर पिलाने से खांसी नष्ट होती है । यह खांसी की अनुभूत औषधि है ।

५. अदरक ३ माशे, शहद ६ माशे दोनों को मिला कर चटाने से खांसी दूर होती है ।

६. बहेड़े की बकली मुख में रख कर चूसने से खांसी नष्ट हो जाती है ।

७. मैनासिल को बारीक पीस कर बेरी के पत्तों पर लेप कर के रोगी को चिलम में रख कर पिलावें, इस धूएं के पीने से अति प्रबल खांसी भी नष्ट हो जाती है । इस के पीछे रोगी को दूध पिलाना चाहिये ।

८. काला मरिच १ तोला, पीपल २ तोले, अनार का छिलका, ४ तोले, गुड़ १ वर्ष का पुराना ८ तोले, जौखार ६ माशे सब द्रव्यों को महीन पीस कर गुड़ में गोली बना लें । यह गोलियां मुख में रख कर चूसने से अत्यन्त प्रबल खांसी नष्ट हो जाती है ।

तृषा नाशक उपाय

लंघन आदि के कारण वायु के रूक्षांश और पित्त के उष्णांश के शरीर में अधिक बढ़ जाने से ऊर्ध्वगत वायु से तालु तथा अन्य जलवाही स्रोतों में शुष्कता होने से तृषा लगती है अतः चिकित्सक का कर्तव्य है कि वह प्यास को शान्त करने के लिये सदा वातपित्तनाशक, रूक्षताहर तथा तृप्तिकारक द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करें। कुछ तृषानाशक योग लिखे जाते हैं, जिनसे आशा है कि समयानुसार प्रयोग करने पर लाभ होगाः—

१. बड़ की कोंपल, महुआ, धान की खील, मीठा कूठ, कमलगट्टे की गिरी; सब द्रव्य समान भाग ले चूर्ण बना लें; इसे शहद के साथ मिला कर थोड़ा २ चाटने से प्यास शान्त हो जाती है। यह अनुभूत योग है।

२. बिजौरा नीबू, कैथ, अनारदाना, लोध, बेर का छिलका; सब द्रव्यों को समान भाग लेकर जल से पीस कर माथे पर लेप करने से दाह और प्रबल तृषा शान्त होती है।

३. बिजौरे का रस, घी तथा नमक तीनों द्रव्यों को एकत्र कर माथे पर लेप करने से दाह और प्यास को लाभ होता है।

४. नागरमोथा, धनियां, पित्तपापड़ा, सुगन्धबाला, खस, चन्दन श्वेत, सूखे आंवले सब द्रव्य चार तोले लेकर विधि पूर्वक अर्धावशेष क्वाथ रोगी को पिलाने से दाह और तृषा तत्काल शान्त होते हैं।

५. यदि विरेचन द्वारा कोष्ठ शुद्धि करा देने पर भी ज्वरी मनुष्य को तृषा बहुत हो तो शीतल जल में शहद मिला कर रोगी को पेट भर पिलावें और तत्काल ही कण्ठ में अंगुली या मोर का पङ्ख डाल कर वमन करा दें। इस प्रकार अति तीव्र प्यास शान्त होती है।

६. सोने या चांदी को तपा २ कर पानी में ७ बार बुझावें; इस पानी के पिलाने से प्यास शान्त हो जाती है।

७. चावलों का धोवन मिश्री या शहद मिला कर थोड़ी २ देर बाद पिलाने से पित्त तथा तृषा नष्ट होती है।

८. शीतल चीनी का चूर्ण २ रत्ती खिला कर ऊपर से शीतल जल पिलाने से प्यास अवश्य नष्ट होती है। यह प्रयोग हमारा सहस्त्रों बार का अनुभूत है ।

९. शहद को कुछ देर मुख में रख कर ग़रारे करने से दाह और तृषा शमन हो जाती है।

१०. धान की खील २ तोले, कमलगट्टे की गिरी १ तोला, बड़ की कोंपल १ तोला पोटली बांध कर जल में मिला दें और यही जल रोगी को पिलावें । इससे अवश्य तृषा शान्त होती है । यह हमारा अनुभूत प्रयोग है।

११. अनारदाना ४ तोले लेकर १$\frac{1}{4}$ सेर पानी में भिगो दें, इसमें से थोड़ा २ पानी मिश्री मिला कर रोगी को थोड़ा २ पिलावें। इससे प्रबल तृषा और दाह शान्त होती है ।

१२. चांदी की गोली मुख में रखने से प्यास रुक जाती है अथवा छुहारे की गुठली मुख में रख कर चूसने से प्यास नहीं लगती। सूखे आंवले और मिश्री मुख में रख कर चूसने से भी प्यास नहीं लगती।

—— o-:-o ——

वमन नाशक उपाय

१. पित्त पापड़ा २ तोले आध सेर जल में पकावें, आधा रहने पर उतार कर शीतल करके थोड़ा शहद मिला कर रोगी को पिलावें, इससे वमन रुक जाती है ।

२. जङ्ग हरड़ का चूर्ण शहद के साथ चाटने से वमन रुकती है।

३. गिलोय हरी १ तोला, नीम की छाल ६ माशे, पटोलपात ६ माशे त्रिफला ६ माशे। सब द्रव्यों का यथाविधि क्वाथ बना कर शहद डाल पीने से वमन रुक जाती है ।

४. चन्दन श्वेत १ तोला आध सेर पानी में पकावें, आधा रह जाने पर उतार कर छान लें और ठण्डा करके थोड़ा शहद मिला कर पिलाने से पित्तज वमन शान्त होती है ।

अतिसार नाशक उपाय

प्रायः कभी २ रोगी को ज्वरावस्था में ही दस्त होने लगते हैं। ज्वर रोगी को दस्त प्रायः तीन कारणों से होते हैं:—

१. कभी २ दोष पच कर अपने आपही शरीर से निकलने लगते हैं। जिससे दस्त आने लगते हैं।

२. पित्तोल्वण ज्वर में जब पित्त अधिक निकलता है तो उससे भी दस्त आने लगते हैं।

३. दोष पच जाने पर अग्नि मन्द हो जाती है, इस दशा में रोगी के कुपथ्य करने से भी दस्त आने लगते हैं।

यदि पहिली अवस्था के कारण दस्त हों, तो चिकित्सक निर्णय करे कि दोष या मल शरीर से निकल चुके हैं या नहीं; यदि मल निकल गया हो तो वातानुलोमन क्रिया द्वारा दस्तों को तुरन्त रोकने का यत्न करें। यदि निराम दोष शरीर में शेष हों और रोगी बलवान हो तो प्रकृति को कुछ सहायता देकर मल को शरीर से निकाल दें; परन्तु यदि रोगी के अति निर्बल हो जाने की आशङ्का हो तो दस्तों को इस प्रकार रोकें कि रोगी को दिन में कम से कम एक बार टट्टी अवश्य आती रहे।

दूसरी दशा में पित्तनाशक वातानुलोमन चिकित्सा द्वारा दस्तों को रोकें।

तीसरी दशा में वैद्य आम और पक्व का विचार करके बल की रक्षा करता हुआ ज्वर चिकित्सा मिश्रित अतिसार की चिकित्सा करें।

—०—

प्रयोग

१. गिलोय, इन्द्रजौ मीठे, नागरमोथा, चिरायता, नीम की छाल, अतीस, सोंठ प्रत्येक चार माशे इन द्रव्यों का यथाविधि क्वाथ बनाकर पिलाने से ज्वरातिसार नष्ट होता है। यह आमातिसार के लिये भी विशेष हितकर और वातनाशक है।

२. सोंठ, गिलोय, इन्द्रजौ, नागरमोथा; इनका यथाविधि बनाया क्वाथ ज्वरातिसार को नष्ट करता है।

३. धानेयां, बेलगिरी, सोंठ, ख़स, नागरमोथा; इन द्रव्यों का काढ़ा ज्वर तथा आमातिसार का नाशक है।

इसके सिवाय 'ज्वरातिसार' अधिकारोक्त आनन्द भैरव, मृतसंजीवनी वटी आदि योग भी दे सकते हैं।

अरुचि चिकित्सा

कर्भा २ ज्वर में रूक्षता बढ़ जाने और जिह्वा की लाला ग्रन्थियों की क्रिया मन्द पड़ जाने से रोगी को अरुचि हो जाती है। जब रोगी को अरुचि हो, उस समय वैद्य का कर्तव्य है कि वात शिराओं के उत्तेजक और लाला-जनक रोचन द्रव्यों द्वारा रोगी की चिकित्सा करे।

योग

१. निम्बू को काट कर आधे भाग पर काली मिर्च और सैंधा नमक डाल कर तथा कुछ गरम करके रोगी को देने से लाला ग्रन्थियों से लार अधिक निकलती है तथा रुचि पैदा होती है।

२. वायविडङ्ग को महीन पीस कर अनार के रस और शहद में मिला कर ग़रारे करने से भी रुचि उत्पन्न होती है।

३. अदरक के रस को कुछ गरम करके नमक डाल कर ग़रारे करने से भी रुचि उत्पन्न होकर क्षुधा लगती है।

४. नीवू या बिजौरे नीवू का केसर निकाल कर इस में नमक और काली मरिच मिला कर रोगी के खिलाने से रुचि होती और रोगी को भूख लगती है।

५. यदि ज्वर उतर जाने के बाद भोजन करने पर कुछ ज्वर का अंश प्रतीत हो और साथ ही अरुचि भी हो, तो सत गिलोय ४ रत्ती, वंशलोचन २ रत्ती, छोटी इलायची के दाने १ रत्ती सब को पीस कर शहद में मिला कर प्रातः और शाम दोनों समय रोगी को चटाने से लाभ होता है।

अंगदाह नाशक उपाय

१. पित्त की प्रबलता के कारण यदि ज्वर रोगी को अतिदाह हो, तो ऐसी दशा में नाभि पर एक कांसी का पात्र रख कर धीरे २ शीतल जल की धारा छोड़नी चाहिये। इससे दाह शान्त होता है।

२. गुलाब जल, सिरका दोनों को मिला कर एक कपड़े का टुकड़ा भिगो कर रखने से भी दाह शान्त हो जाता है।

३. श्वेत चन्दन को घिस कर मस्तक पर लेप करने से दाह शान्त होता है।

४. गोघृत में कपड़ा तर कर सिर पर रखने से दाह शान्त होता है।

५. गाय या बकरी के कच्चे दूध में कपड़ा तर करके वार २ मस्तक पर रखने से दाह शान्त होता है।

ज्वर में शिरःशूल चिकित्सा

उपरोक्त उपद्रवों के अतिरिक्त ज्वर की अवस्था में रोगी को शिरःशूल से बड़ा कष्ट होता है अतः यहां पर कुछ योग लिखे जाते हैं जो ज्वरावस्था में होने वाली शिर पीड़ा को नष्ट करके रोगी को लाभ पहुंचाते हैं।

१. मुचकन्द के फूल सुंघाने से अथवा मुचकन्द पुष्पों को पीस कर मस्तक पर लेप करने से सिर-दर्द को आराम होता है।

२. कुठ, एरण्ड की जड़ का छिलका और सोंठ इन सब को समान भाग लेकर दही की छाछ में पीस कर वात-ज्वर में होने वाली सिर दर्द की दशा में कुछ गर्म कर मस्तक पर लेप करने से सिर दर्द दूर होता है।

३. श्वेत चन्दन, खस, मुलहठी, खरेंटी, नरवी, कमल फूल समान भाग गो-दुग्ध में पीस कर पित्त ज्वर सम्बन्धी सिर पीड़ा में मस्तक पर लेप करने से सिर दर्द हट जाता है।

४. रेणुका, बालछड़, तगर, नागर मोथा, अगर, देवदार, रास्ना, कुठ समान भाग जल में पीस कर गर्म करके लेप करने से कफ और वात-ज्वरी की सिर पीड़ा को आराम होता है

५. मुलहठी, दाख, मिश्री इनको एकत्र पीस कर नस्य देने से अथवा मुलहठी, दालचीनी, तेजपत्र, इनको दूध में पीस कर नसवार देने से पित्त ज्वरी की सिर पीड़ा हट जाती है।

६. शत धौत घृत अर्थात् सौ बार धोएं हुए घी की नस्य देने से अथवा इसकी मालिश करने से पित्तज्वर में होने वाली सिर पीड़ा दूर हो जाती है।

७. श्वेत चन्दन और कपूर को गौ-दुग्ध में पीस कर मस्तक पर लगाने से गरमी की सिर दर्द दूर हो जाती है।

८. सोंठ को दुग्ध में पीस कर नस्य देने से वात कफ ज्वरी की सिर पीड़ा हट जाती है।

९. सोंठ और गुड़ को पीस कर नसवार देने से सिर पीड़ा को आराम होता है।

१० पीपल और सेंधा नमक पानी में पीस कर दो तीन बून्द नाक में टपकाने से कफ ज्वरी की सिर दर्द को आराम होता है।

सर्वज्वरों में पथ्यापथ्य
और
वैद्य का कर्त्तव्य

भिषक् सर्वेषु रोगेषु निर्दिष्टानि यथा यथम्।
निदानं पथ्यापथ्यानि त्रीणि यत्नाद्विचिन्तयेत् ॥

अर्थात् चिकित्सक का कर्तव्य है कि समस्त रोगों में चिकित्सा करते समय शास्त्र में कहे हुए निदान, पथ्य व अपथ्य इन तीनों का यत्न से अर्थात् सावधानी पूर्वक विचार करे। निदान अर्थात् रोग के कारण तथा पथ्य और अपथ्य-अर्थात् इस रोग पर कौन २ वस्तु हितकर और कौन २ अहितकर हैं। हितकर पदार्थों का विधान तथा अहित कर पदार्थों का परित्याग कर दे क्योंकि ऐसा कहा भी है:—

विनापि भेषजं व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते ।
न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि ॥

अर्थात् औषधि सेवन के बिना भी केवल पथ्य अर्थात् परहेज़ करने से रोग निवृत्ति हो सकती है और पथ्य हीन रोगी अर्थात् बदपरहेज़ रोगी चाहे सैकड़ों औषधियां भी खावे, उसका रोग नष्ट नहीं हो सकता । अतः प्रत्येक रोग में उचित पथ्य या आहार विहार करना परमावश्यक है, और भी कहा है—

पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः ।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः ॥

अर्थात् जो रोगी पथ्य पूर्वक रहने वाला है, उसको औषधि सेवन से क्या ? क्योंकि उसका रोग तो केवल पथ्य करने से ही नष्ट हो जाता है और जो पथ्य नियम का पालन नहीं करता अर्थात् अपथ्य सेवन करता है, उसको औषधि सेवन से क्या ? क्योंकि कुपथ्य रूपी दोष से उसका रोग तो दिन प्रति दिन बढ़ता ही जायगा अतः समस्त रोगों में पथ्य नियम का पालन करना और कुपथ्य का परित्याग रोगी के लिये परमावश्यक है । कहा भी है—

रुक्षु सर्वास्वपथ्यानि यथास्वं च विवर्जयेत् ।
ता ह्यपथ्यैर्विवर्द्धन्ते दोहदैरिव वीरुधः ॥

अर्थात् रोगी को चाहिये कि सर्वदा अपथ्य (अहितकारी पदार्थों का सेवन) का परित्याग कर दे, क्योंकि कुपथ्य करने से रोग इस प्रकार बढ़ जाते हैं जैसे जल सिंचन करने से लता बेलादि बढ़ जाती हैं ।

सर्व रोगों में वैद्य के कर्तव्य

पूर्वं सर्वगदे कुर्यान्निदानपरिवर्जनम् ।
तेनैव रोगाः शीर्यन्ते शुष्क नीरा इवांकुराः ॥

अर्थात् समस्त रोगों की चिकित्सा करते समय चिकित्सक का प्रथम

कर्तव्य है कि निदान अर्थात् जिन मिथ्याहार विहारादि कारणों से रोग उत्पन्न हुआ है उनका परिवर्जन करे क्योंकि निदान के परिवर्जन से रोग स्वयं ही ऐसे नष्ट हो जाते हैं, जैसे जल के सूख जाने अथवा जल के न मिलने से वृक्षों के अंकुर स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं।

दोषान् दूष्यान्देशकालौ सात्म्यं सत्त्वं वलं वयः ।
प्रकृतिं भेषजं वन्हिमाहारं च प्रयत्नतः ॥
निरीक्ष्य मतिमान् वैद्यश्चिकित्सां कर्तुमुद्यतः ।
पथ्यान्नियोजयेन्नित्त्यं यथास्वं सर्व रोगिषु ॥

अर्थात् वात, पित्त, कफ, दोष और रस, रक्त, मांस मेदादि दूष्य, जांगल, आनूप, साधारणादि देश; वर्षा, शरद्, वसन्तादि काल; अपनी आत्मा के लिये हित और अहितादि सात्म्य,वल,पराक्रम, पुरुषार्थादि सत्व,बाल, वृद्ध, युवादि वय अर्थात् अवस्था, आंतरिक स्वभाव या मिज़ाज़, प्रकृति, भेषज अर्थात् औषधि, सम, विषम, मन्दादि वन्हि अर्थात् जठराग्नि और आहार को चिकित्सा आरम्भ करने से पूर्व वैद्य का कर्त्तव्य है इन सब बातोंको यत्न पूर्वक भली भान्ति समझ ले, इसके पश्चात् चिकित्सा कर्म में प्रवृत हो।

तरुण ज्वर में पथ्य

वमनं लंघनं काले यवागु स्वेदनानि च ।
कटुतिक्तरसौ चैव पाचनं तरुणज्वरे ॥

यथोचित समय पर वमन, लंघन; यवागु, (जौ का पकाया पानी या पुराने चावलों का पतला भात), स्वेदन वाह्य अथवा आन्तरिक उपचार से पसीना निकालना, कड़वे तीखे रस युक्त औषधियों से पाचन आदि तरुण ज्वर में पथ्य है, लङ्घन के विषय में यह बात सदा याद रखनी चाहिये कि लंघन हमेशा सामज्वर (अर्थात् जब दोष कच्चे हों) में ही कराना उचित है, निराम ज्वर अर्थात् जब दोष पक जावें, तो ऐसी अवस्था में लंघन का निषेध है।

सन्निपात तथा आमज्वर में पथ्य

सन्निपाते त्विदं सर्वं कुर्यादामकफापहम् ।
अवलेहोऽञ्जनं नस्यं गण्डूषं चायसक्रियाः ॥
पादयोर्हस्तयोर्मूले कण्ठकूपे च शङ्खयोः ।
स्वेदो भृष्टकुलत्थानां कणानां चूर्णघर्षणम् ॥

सान्निपातज्वर में उपरोक्त लङ्घनादि के अतिरिक्त आम और कफ को पकाने वाली औषधि आदि का प्रयोग करना चाहिये और आवश्यकतानुसार अवलेह, अञ्जन, नस्य, गण्डूष (कुल्ला) और आयस-कर्म (दाग देना) आदि कर्म करे. यदि रोगी के पांव, हाथ, गले और कनपटी आदि स्थानों में पसीना आता हो; तो भूनी हुई कुलथी को महीन चूर्ण कर के पसीने के स्थान पर मालिश करावें ।

तरुण ज्वर में अपथ्य

स्नानं विरेकं सुरतं कषायं व्यायाममभ्यञ्जनमन्हिनिद्राम् ।
दुग्धं घृतं वैदलमामिषं च तक्रं सुरां स्वादु गुरु द्रवं च ॥
अन्नं प्रवातं भ्रमणं च क्रोधं त्यजेत्प्रयत्नात् तरुणज्वरार्तः ।
आसप्तरात्रं तरुणं ज्वरं तत् सूर्य्याहमध्यं परतः पुराणम् ॥

तरुण ज्वर अर्थात् ज्वर की प्रथमावस्था में रोगी के लिये निम्नलिखित आहारों विहारों का निषेध करना चाहिये ।

स्नान, विरेचन (जुलाब), सुरत (मैथुन), बिना पकाये हुए क्वाथ कषाय या हिम, व्यायाम (कसरत), अभ्यञ्जन अर्थात् तैल, घृतादि की मालिश, उबटना, दिन में सोना, दूध, घी, दाल, मांस, दही; दही का मठा, सुरा (शराब), स्वादु पदार्थ (मिठाई), गुरु (भारी पदार्थ) द्रव (पतले शर्बतादि), अनाज, हवा में फिरना, क्रोध करना इन सब का तरुण ज्वरी को यत्न से परित्याग करना परमावश्यक है, ज्वर आने से

सात दिन पर्यन्त ज्वर की तरुण और बारह दिन तक मध्यम संज्ञा होती है, इसके बाद जीर्ण अर्थात् पुराना कहलाता है।

मध्यम ज्वर में पथ्य

पुरातनः षष्टिशालयश्च वृंताकसौभाञ्जनकारवेलम्।
वेत्राकमाषाढ़फलं पटोलं कर्कोटकं मूलकपोतिकाश्च॥
मुद्गैर्मसूरैश्चणकैः कुलत्थैर्मकुष्टकैर्वा विहितश्च यूषः।
पाठामृतावास्तुक तण्डुलीय जीवन्तिशाकानि च काकमाची॥
द्राक्षा कपित्थानि च दाडिमानि बैकं कतान्येव पचेलिमानि।
लघूनि सात्म्यानि च भेषजानि-पथ्यानि मध्यज्वरीणाममूनि॥

मध्यम ज्वरी के लिये निम्न-लिखित वस्तुएं हितकर हैं अतः दोष, देश, कालादि का विचार करके इन्हीं का प्रयोग कराना चाहिये, पुराने साठी चावल अथवा पुराने धान, बैंगन, सुहांजने की फली, करेला, बेंत की नरम कोंपल का शाक, आषाढ़ मास के पके हुए फल, परवल, ककौड़ा, मूली, चुलाई का शाक, मूँग, मसूर, चना, कुलथी, मोठ इनमें से किसी एक का यथारुचि यूष, पाढ़, गिलोय, बथुआ, मकोय आदि का शाक, दाख, अंगूर, कैथ, अनार आदि फल और दोषानुसार औषधि यह सब मध्यम ज्वरी के लिये पथ्य अर्थात् हितकर हैं।

ज्वर में पत्र शाकादि पथ्य

बालमूलकवास्तूकतण्डुलीयकपर्पटान्।
तिक्तशाकं पटोलं च गुडूचिपल्लवान्यपि॥
मारिषं निम्बपत्रं च कालशाकं च दार्विकम्।
चांगेरी चापि जीवन्तीमाचिकास्यान्निषण्णकैः॥
पत्रशाकं प्रियाणां च ज्वरितानां प्रदापयेत्।

अर्थ—छोटी मूली अथवा नरम मूली, बथुआ, चौलाई, पित्त-पापड़ा; परवल, गिलोय के पत्ते, जावित्री, चांगेरी (खट्टी बूटी या तिप-

त्तिया), मकोय, यथःरुचि इन शाकों में से कोई एक शाक ज्वर रोगियों के लिये दे सकते हैं।

ज्वर में यूष का पथ्य

मसूरान् चणकान् मुद्गान् कुलत्थांश्च मकुष्टकान् ।
यूषार्थं यूषसात्म्यानां ज्वरितानां प्रदापयेत् ॥

अर्थ—मसूर, चना, मूंग, कुलथी, मोठ, इनमें से किसी एक का देश, काल, प्रकृति आदि का विचार करके ज्वरी को यूष अर्थात् रस देना चाहिये।

ज्वर में पथ्य मांस

लावान् कपिंजलानेणान्पृषतान् शरभान् शशान् ।
कालपुच्छान्कुरंगांश्च तथैव मृगमात्रकान् ॥
मासार्थं मांससात्म्यानां ज्वरितानां प्रदापयेत् ।

अर्थ—यदि ज्वर रोगी मांसहारी हो और वैद्य रोगी को मांस-पथ्य देना चाहे, तो निम्न मांसों में से कोई एक मांस यथारुचि दे सकते हैं:—

सफेद तीतर, काला हिरण तथा बन्द वाला हिरण, शरभ अर्थात् आठ पांव वाला जानवर जो सिंह का शत्रु कहलाता है, शशा (खरगोश) कालपुच्छा (दुम्बा), कुरङ्ग (लाल वर्ण का हिरण) तथा जितने प्रकार के हिरण हैं; यह सब मांस ज्वरी के लिये पथ्य हैं।

ज्वर में अपथ्य मांस

सारसक्रौंचशिखिनस्तथा कुक्कुटतित्तराः ।
ज्वरितानां न शस्यन्ते इति केचिच्चिकित्सकाः ॥

सारस, क्रौञ्च (बगुला), मोर, मुरगा, और काला तीतर इन जानवरों के मांस ज्वरी के लिये अपथ्य अर्थात् अहितकर हैं अतः इन के सेवन का निषेध है।

ज्वर में पथ्य अन्न

वत्सरोषितधान्यस्य तण्डुलाद्यं ज्वरे हितम् ।
रोटिकार्थं प्रदातव्यं द्विवर्षोषितमल्पशः ॥
गोधूमादियथासात्म्यमन्यदप्यल्पमर्पयेत् ॥

अर्थ—जहां ज्वर रोगी को अन्न देना उचित हो वहां निम्न-लिखित अन्नों में से यथारुचि अन्न दे सकते हैं, जैसे एक वर्ष के पुराने चावलों का भात, यदि ज्वरी रोटी की इच्छा करे तो दो वर्ष के पुराने चावल अथवा गेहूं की थोड़ी रोटी देनी चाहिये ।

द्वन्द्वज ज्वर में पथ्य

दाडिमामलमुद्गानां यूषश्चानलपैत्तिके ।
ह्रस्वमूलकयूषेण योजयेत्कफवातिके ॥
पटोलं निम्ब यूषस्तु पथ्यः पित्तकफात्मके ।

अर्थ — अनार, आमला तथा मूँग का यूष वात पित्त ज्वर में पथ्य है, नरम मूलों का यूष कफ तथा वात ज्वर में पथ्य जानना; परवल और नीम के पत्तों का यूष पित्त कफ ज्वरी के लिये पथ्य है ।

जीर्ण ज्वर में पथ्य

विरेचनं छर्दनमंजनं च नस्यं च धूमोऽप्यनुवासनं च ।
शिराव्यधः संशमनं प्रदेहोऽभ्यंगोऽवगाहः शिशिरोपचारः ॥
एणः कुलिंगो हरिणो मयूरो लावः शशस्तित्तिरकुक्कटौ च ।
क्रौंचः कुरंगः पृषतश्चकोरः कपिञ्जलो वर्तककालपुच्छौ ॥
एरण्डतैलं सितचन्दनं च द्रव्याणि सर्वाणि पुरेरितानि ॥

अर्थ—जुलाब देना; वमन कराना; अञ्जन लगाना; नस्य (नसवार) देना; धूमपान (हुक्का पीना), वस्ति कर्म (अनीमा करना), फसद करना, ज्वर को दबाने वाली अथवा रोकने वाली औषधियों का सेवन

कराना, मालिश करना, जल चिकित्सा अर्थात् ऋतु अनुकूल गरम तथा ठण्डे जल के टब में बैठ कर अङ्गों को मल २ कर स्नान करना, काले हिरण, साधारण हिरण, मोर; श्वेत तीतर; खरगोश. चकोर; मुरगा, बटेरादि का मांस बकरे का मांस; गाय बकरी का दुग्ध और घी; हरड़, पर्वत के झरनों का जल; विरेचन के लिये एरण्डी का तैल; सफेद चन्दन तथा प्रथम कहे हुए सम्पूर्ण पदार्थ जीर्ण ज्वरों के लिये पथ्य हैं। वैद्य को चाहिये कि देश; काल; प्रकृति तथा रोगी के बलाबल को विचार करके उपरोक्त पदार्थों में से यथोचित का सेवन करावे; उपरोक्त आहार और व्यवहार जीर्ण ज्वरी के लिये पथ्य अर्थात् हितकर हैं।

समस्त ज्वरों में पथ्यापथ्य

विष्णोर्नामसहस्रस्य पठनं श्रवणं श्रुतेः ।
देवानां ब्राह्मणानां च गुरुणामपि पूजनम् ॥
ब्रह्मचर्यं तपो होमः प्रदानं नियमो जपः ।
साधूनां दर्शनं नित्यं रत्नौषधिविधारणम् ॥
मङ्गलाचरणं चेति वर्गः सर्वान् ज्वरान् जयेत् ।
आधिवासनकर्म्माणि रक्तस्रग्वस्त्रधारणम् ॥
वमिवेगं दन्तकाष्टमसात्म्यमपि भोजनम् ।
विरुद्धान्यन्नपानानि विदाहीनि गुरूणि च ॥

अर्थ—परमात्मा या विष्णु सहस्र नाम का पाठ; वेदादि धर्म-ग्रन्थों का श्रवण, देवता;सिद्ध; गुरु; ब्राह्मणादि सत्पुरुषों का पूजन व सत्सङ्ग ब्रह्मचर्य का पालन; तप; हवन; यज्ञ; दान; नियम; जप और सदैव साधु जनों का दर्शन; रत्नों का धारण और दिव्यौषधियों का सेवन; मङ्गलाचरण यह सब वर्ग समस्त ज्वर रोगियों के लिये पथ्य हैं; इनके आचरण से सर्व प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं और अधिवासन कर्म अर्थात् सुगन्धित इतर, फुलेलादि का शरीर पर लगाना, लाल वर्ण के पुष्पों की माला पहनना; लाल रङ्ग के वस्त्रों को धारण करना; वमनादि वेगों को रोकना; किसी वृक्ष की दांतन करना; प्रकृति विरुद्ध भोजन करना तथा विरुद्ध क्षीर-

मत्स्यादि पदार्थों का सेवन, बिना रुचि जलपान करना, दाहकारी तथा भारी पदार्थों का सेवन यह सब व्यवहार सर्व प्रकार के ज्वरों में अपथ्य, अहितकर हैं अतः इनको ज्वरी सर्वदा त्याग दें।

ज्वरान्त में अपथ्य

व्यायामं च व्यवायं च स्नानं चंक्रमणानि च।
ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्न बलवान्भवेत् ॥

अर्थ—व्यायाम-अर्थात् दण्ड कसरतादि, मैथुन अर्थात् स्त्री-प्रसङ्ग और अधिक चलना फिरना, यह काम ज्वर टूट जाने पर भी नहीं करने चाहियें, जब तक कि शरीर में पूर्ण रूप से बल न आ जावे।

अतिसाराधिकार

अतिसार निदान

गुर्वतिस्निग्धरूक्षोष्ण द्रवस्थूलातिशीतलैः ।
विरुद्धाध्यशनाजीर्णैर्विषमैश्चापि भोजनैः ॥
स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषैः भयैः ।
शोकदुष्टातिमद्यातिपानैरसात्म्यर्तुपर्ययैः ॥
जलाभिरमणैर्वेगविघातैः कृमिदोषतः ।
नृणां भवत्यतीसरो लक्षणं तस्य वक्ष्यते ॥

अति भारी, स्निग्ध, रूखे, गरम, अति शीतल भोजन, विषम भोजन तथा एक बार भोजन के ऊपर दूसरी बार भोजन से अतिसार हो जाता है। अजीर्ण में भोजन करने, स्नेह, वमन, विरेचन आदि क्रियाओं को विधि अनुसार न करने, विष, भय, शोक, अति मदिरा पान, ऋतु तथा प्रकृति विरुद्ध भोजन से तथा पेट में दोष जन्य कृमि पैदा होने से प्रायः अतिसार हो जाता है।

वात, पित्त आदि दोष भारी भोजन तथा विरुद्ध भोजन आदि कारणों से कुपित होकर अतिसार के कारण बन जाते हैं।

हृन्नाभिपार्श्वोदरकुक्षितोदगात्रावसादानिलसन्निरोधात् ।
विट्सङ्ग आध्मानमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥

हृदय, नाभिं, पसली और पेट में पीड़ा, मल का रुकना, अफारा और भोजन न पचना आदि लक्षण अतिसार होने से पाहिले ही प्रकट होने लगते हैं।

लक्षण

संशम्येमां धातुरग्निं प्रवृद्धो वर्चोमिश्रो वायुनाधः प्रणुन्नः ।
सरत्यतीवातिसारं तमाहुर्व्याधिं घोरं षड्विधं तं वदन्ति ॥

रस, जल, मूत्र, स्वेद, पित्त और रुधिर आदि द्रव धातु बढ़ी हुई अग्नि को मन्द करके वायु के कारण मल के साथ मिल कर गुदा से निकलते हैं। इस प्रकार यह धातु विकृत होकर गुदा मार्ग द्वारा प्रवाह रूप से निकलते हैं, इसको अतिसार रोग कहा जाता है।

अतिसार रोग ६ प्रकार का है:—

१. वातज.	३. कफ-जनित,	५. शोक-जनित,
२. पित्तज.	४. सान्निपातज.	६. आमजन्य.

आम और पक्व अतिसार में भेद

संसृष्टमामैर्दोषैस्तु न्यस्तमप्सु निमज्जति ।
पुरीषं भृशदुर्गन्धिर्पिच्छिलं चामसंज्ञितम् ।
एतान्येव तु लिंगानि विपरीतानि यस्य वै ।
लाघवं च विशेषेण तत्तु पक्वं विनिर्दिशेत् ॥

आमदोषयुक्त मल जल में डूब जाता है और उसमें से अत्यन्त दुर्गन्धि आती है इसके साथही आम मल चिकना होता है। जो जल में डूबता नहीं, किन्तु जल में तैरता रहता है, जिसमें बहुत दुर्गन्धि नहीं होती तथा बहुत चिकना नहीं होता उसको पक्व मल समझना चाहिये।

अतिसार से उत्पन्न होने वाले रोग

दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यर्शो भगन्दरान् ।
शोथपाण्ड्वामयप्लीहगुल्ममेहोदरज्वरान् ॥

अतिसार रोग में नियमानुसार चिकित्सा न करने अथवा रोगी के अपथ्य से निम्न लिखित रोग उत्पन्न हो सकते हैं—

१. दण्डक	४. आध्मान	७. भगन्दर	१०. प्लीहा	१३. जलोदर
२. अलसक	५. संग्रहणी	८. शोथ	११. गुल्म	
३. विशूचिका	६. अर्श	९. पाण्डुरोग	१२. प्रमेह	

असाध्य अतिसार के लक्षण

असंवृतगुदं क्षीणं शूलाध्मातैरुपद्रुतम् ।
गुदे पक्के गतोष्माणमतिसारिणमुत्सृजेत् ॥
शोथं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासकासमरोचकम् ।
छर्दिं मूर्छां च हिक्कां च दृष्ट्वातिसारिणमुत्सृजेत् ॥
हस्तपादांगुलिसन्धिप्रपाको मूत्रनिग्रहः ।
पुरीषस्योष्णतातीव मरणायातिसारिणः ॥
अतिसारी राजरोगी ग्रहणीरोगवानपि ।
मांसाग्निबलहीनो यो दुर्लभं तस्य जीवनम् ॥

१. जिस अतिसार रोगी की गुदा से मल निकलने के बाद गुदा अच्छी तरह बन्द न हो तथा रोगी निर्बल और अफारे से पीड़ित हो; जिस की गुदा पक गई हो, शरीर जिस का शीतल हो और जठराग्नि नष्ट हो जावे उस अतिसार रोगी को असाध्य समझना चाहिये ।

२. शोथ, शूल, ज्वर, तृषा, श्वास, कास, अरुचि, वमन, मूर्छा और हिचकी इन लक्षणों से युक्त अतिसार रोगी को असाध्य समझें ।

३. जिस अतिसार रोगी की हाथ पांव की अंगुलियां और उन की सन्धि पक गई हों, मूत्र रुक गया हो, मल अति गरम आता हो उस रोगी को असाध्य जानना चाहिये ।

४. अतिसाररोगी, क्षयरोगी तथा ग्रहणीरोग वाले मनुष्य का बल, अग्नि और मांस क्षीण हो जाने पर उन को असाध्य समझना चाहिये ।

साध्यासाध्य अतिसार की मुख्य परीक्षा

बाले वृद्धे त्वसाध्यो हि लिङ्गैरेतैरुपद्रुतः ।
अपि यूनामसाध्यो स्यादतिदुष्टेषु धातुषु ॥

उपरोक्त उपद्रवों से युक्त बालक और वृद्ध अतिसार रोगीको असाध्य

समझना चाहिये परन्तु यदि युवा रोगी के भी धातुओं में अधिक विकार हो जावे तो उस युवा (जवान) अतिसार रोगी को भी असाध्य समझना चाहिये ।

अतिसार मुक्त के लक्षण

यस्योच्चारं बिना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति ।
दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्यास्थितस्तंस्योदरामयः ॥

जिस समय अतिसार रोगी की अग्नि बलवान् हो, कोष्ठ हलका हो, जिस के मूत्र और अपानवायु मल के बिना भी भली प्रकार निकलते हों उस समय समझ लें कि रोगी अतिसार रोग से मुक्त हो गया है ।

अतिसार चिकित्साविधि

आमपक्वं क्रमं हित्वा नातिसारे क्रिया यतः ।
अतोऽतिसारे सर्वस्मिन्नामं पक्वं च लक्षयेत् ॥
न च संग्राहकं दद्यात् पूर्वमामातिसारिणे ।
अकाले संगृहीतस्तु विकारान्कुरुते बहून् ॥
डिम्भस्थः स्थविरस्थश्च वातपित्तात्मकश्च यः ।
क्षीणधातुबलश्चापि बहुदोषोऽतिविस्रुतः ॥
आमोऽपि स्तम्भनीयः स्यात्पाचनान्मरणं भवेत् ।
लंघनमेकं मुक्त्वा न चान्यदस्तीह भेषजं बलिनः ॥
समुदीर्णदोषनिचयं तत्पाचयेत्तथा शामयेत् ।
शूलानाहप्रसेकार्तं वामयेदतिसारिणम् ॥

चिकित्सक को उचित है कि अतिसार रोगी की चिकित्सा में दोषों के आम और पक्व होने का निर्णय भली प्रकार कर लेवे । यदि रोगी को अपक्व अर्थात् आम मल के दस्त आते हों तो इस अवस्था में ग्राही अर्थात् दस्त रोकने वाली औषधियों का प्रयोग करा के आम मल को शरीर में रोकना उचित नहीं है क्योंकि यथोचित समय के बिना आम को शरीर में रोक देने से पहिले कहे हुए दण्डक, अलसक आदि रोग हो जाते हैं । यदि आमातिसार वाला रोगी वातपित्त प्रकृति का हो, बालक, वृद्ध, क्षीणधातु, बलहीन और अनेक दोषों से युक्त हो अथवा जिसको बहुत दस्त आ चुके हों ऐसे रोगी को आमयुक्त होने पर भी मलरोधक औषधियां दे कर दस्तों को रोकने का यत्न करें क्योंकि ऐसी दशा में यदि रोगी निर्बल ही होता जावे तो उस की मृत्यु का भय रहता है । बलवान् रोगी के आमदोष को कभी नहीं रोकना चाहिये । बलवान् रोगी को पहिले लंघन के सिवाय कोई औषधि नहीं देनी चाहिये क्योंकि लंघन से बढ़े हुए दोषों का शमन और पाचन हो जाता है । जिस रोगी को शूल और अफारा हो उस अतिसार रोगी को वमन करा देनी चाहिये ।

अतिसार में लंघनविधि

हितं लंघनमेवादौ पूर्वरूपेऽतिसारिणे ।
कार्यं चानशनस्यान्ते सद्रवं लघुभोजनम् ॥
आमेऽपि लंघनं शस्तमादौ पाचनमेव वा ।

अतिसार रोगी को पूर्वरूप में ही दोष स्वल्प होने पर बल तथा सहन-शक्ति के अनुसार रोग के प्रारम्भ से ही दोष पचने के समय तक लंघन कराना चाहिये। लंघन के अन्त में रोगी को पतले और लघु पदार्थों का भोजन कराना उचित है; आमदोष में भी लंघन का ही विधान है पर यदि किसी कारणवश लंघन न करा सकें तो पाचन द्रव्यों का ही प्रयोग करना चाहिये ।

अतिसार रोग में लंघन की कोई अवधि नहीं है, चिकित्सक को उचित है कि रोगी के बल तथा अवस्थानुसार यथोचित समय तक उसके बल का ध्यान रखते हुए लंघन करावें । यदि किसी कारणवश लंघन के प्रयोग करने के बाद भी रोगी के आमदोष न पचें तो मृदु, स्निग्ध, श्लक्ष्ण गुण वाले मृदु, सर, विरेचन द्रव्यों द्वारा आम को शरीर से निकाल कर दीपन, पाचन और ग्राही औषधियों द्वारा दस्त रोकने का यत्न करें । पक्व दोष के अनुसार ही आममल में भी लंघन अथवा दीपन पाचन क्रिया ही करनी चाहिये ।

जलविधान

सर्वातिसाररोगेषु शीतं वारि विवर्जयेत् ॥

सब प्रकार के अतिसार रोग और संग्रहणी में शीतल जल वर्जित है ।

जल प्रयोग

धान्याम्बुभ्यां शृतं तोयं तृष्णादाहातिसारिणे ।
ह्रीबेरशृंगवेराभ्यां मुस्तापर्पटकेन वा ॥
मुस्तोदीच्यशृतं शीतं प्रदातव्यं पिपासवे ॥

यदि पित्तातिसार वाले रोगी को दाह और तृषा अधिक हो तो षडंग योग की विधि से धनियें और सुगन्धबाला से उबाला हुआ पानी देना चाहिये । यदि वात और पित्त की अधिकता से रोगी को तृषा अधिक हो तो सोंठ और सुगन्धबाला सहित पकाया हुआ जल हितकारी है। यदि पित्त बहुत अधिक हो तो नागरमोथा, पित्तपापड़ा अथवा नागरमोथा तथा सुगन्धबाला से सिद्ध किया हुआ जल विशेष लाभदायक होता है ।

वातातिसार चिकित्सा

वातातिसार रोग समानवायु तथा अपानवायु के प्रकोप के कारण होता है । समानवायु के कुपित होने से विषमाग्नि होजाती है और अन्न यथावत् नहीं पच सकता; अन्न का रस आंतों में ठीक प्रकार आकर्षित न होने से तथा विकृत-वायु के आन्तों में अधिक वेग से सञ्चार करने के कारण आन्तों में गड़गड़ाहट होती है तथा रोगी को कभी पतला और कभी गाढ़ा दस्त शब्द तथा आम सहित होता है । अपानवायु के बिगड़ने से मूत्र अथवा खांसने के साथही दस्त हो जाता है । चिकित्सक का कर्तव्य है कि समान अथवा अपान वायु की क्रिया ठीक करने के लिये इस रोग में सर्वदा वात-नाशक, वातानुलोमक, दीपक तथा पाचक द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करे ।

वचादि क्वाथ

वच, अतीस, इन्द्रजौ, नागरमोथा प्रत्येक ६ माशे लें । इन द्रव्यों का यथाविधि क्वाथ बना कर रोगी को पिलाने से वातातिसार नष्ट होता है । यह क्वाथ रोग की पूर्व अवस्था में देना चाहिये ।

मुस्तादि क्वाथ

नागरमोथा, इन्द्रजौ, लोध, बेलगिरी, आम की गुठली, धाय के फूल इन सब द्रव्यों को दो तोले लेकर इनका समयानुसार यथाविधि क्वाथ बना कर रोगी को पिलाने से वातातिसार नष्ट होता है । यह क्वाथ आम पचने के पश्चात् ही लाभकारी होता है, क्योंकि इसके समस्त द्रव्य संग्राही अर्थात् दस्तों को रोकने वाले हैं ।

अजमोदादि क्वाथ

अजवायन, सोंठ, धनियां, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, शालपर्णी,

पृश्नपर्णी यह सब द्रव्य दो तोले लेकर इनका अर्धावशेष क्काथ रोगी को पिलावें, इससे वातातिसार शीघ्र नष्ट होता है। यह क्काथ दीपन, पाचन, ग्राही तथा वातहर है।

हिंग्वादि चूर्ण

हीरा हींग भुनी हुई, पाढल, बड़ी हरड़ की छाल, धनियां, अनारदाना, चीते की छाल, कचूर, अजमोदा, सोंठ, काली मरिच, पीपल, हाऊबेर अम्लवेत, पोदीना, जवाखार, सोंचर नमक, सेन्धा नमक, समुद्र नमक, नौसादर, सब द्रव्य समान भाग लेकर चूर्ण बना लें। यह चूर्ण ४ रत्ती से १½ माशे तक उष्ण जल के साथ दिन में कई बार देने से आमशूल सहित वातातिसार नष्ट होता है। यह चूर्ण अति वातानुलोमक, पाचक, तथा सर है और विकृत वायु को ठीक करता है।

अनुभूत योग

कृष्णावटी

लौंग, जायफल, केसर, हींग, अफीम, जीरा स्याह, पीपल प्रत्येक १ तोला सब को महीन पीस कर सुहाञ्जने के रस से उड़द के बराबर गोली बना लें। यह गोली रोगी को दो २ या तीन २ घण्टे के अन्तर से दिन में ४ से ६ गोली तक अर्क सौंफ अथवा गर्म जल के साथ दे सकते हैं, इनके प्रयोग से वातातिसार अवश्य नष्ट होता है। यह योग हमारा स्वनिर्मित और सहस्रों बार का अनुभूत है। यह योग अतिसार की पक्वावस्था में ही देना चाहिये अथवा जब रोगी अधिक दस्तों के कारण अति निर्बल हो गया हो और दस्तों को बन्द करना हो, ऐसी अवस्था में आम तथा पक्व का ख्याल न करते हुए इस योग को दें सकते हैं।

अहिफेन वटी

अहिफेन १॥ माशा, केसर १ माशा, हींग १ माशा। तीनों को महीन पीस कर निर्बीज खोखले छुहारे में भर कर उस पर धागा बांध चारों ओर गेहूं का आटा लगा दें और पुटपाक की रीति से दहकती हुई निर्धूम अग्नि में कुछ मिनट तक रख कर पका लें; ऊपर लगा हुआ आटा लाल हो जाने पर इसे निकाल कर ठण्डा कर लें और आटा उतार कर छुहारे सहित पीस कर उड़द प्रमाण गोली बना लें। वातातिसार की पक्वावस्था में इस वटी की केवल दो तीन मात्रा देने से ही लाभ हो जाता है; यदि रोगी को बार २ दस्त आते हों या दस्त होने की आशङ्का हो तो एक २ घण्टे के अन्तर से ३-४ गोली सौंफ के अर्क के साथ देने से दस्त रुक जावेंगे, पर ध्यान रहे कि दस्त रुकने के ४ घण्टे पीछे तक इसकी कोई मात्रा न देनी चाहिये।

आनन्द भैरव रस

शुद्ध शिंगरफ; शुद्ध मीठा तेलिया; काली मिरच; सुहागे की खील, पीपल, सब द्रव्य समान भाग लें ३ दिन तक अदरक के रस के साथ खरल करते रहें और ४ चावल से १ रत्ती तक गोली बना लें, इसे आनन्द-भैरव रस कहते हैं। यह दस्तों के रोकने के लिये अनुभूत औषधि है, दिन में ४ बार दो २ घण्टे के अन्तर से दे सकते हैं। यह दीपन, पाचन, ग्राही, वातनाशक, वातानुलोमन तथा दीपन हैं, आम को पचाकर समान तथा अपान वायु की क्रिया ठीक करता है।

पूर्णचन्द्रोदय रस

हड़ताल वर्की शुद्ध, लोह भस्म, कृष्णाभ्रक भस्म प्रत्येक ४ तोला, कपूर ६ माशा, शुद्ध गन्धक ६ माशा, जायफल, कपूर कचरी, तेजपात; कपूर, तालीसपत्र, नागकेसर, सोंठ, पीपल, काली मिरच; दालचीनी,

पिपलामूल, लौंग, प्रत्येक १ तोला सब को एकत्र पीसकर जल के साथ १ रत्ती से २ रत्ती की गोली बनावें। मधु अथवा बेल फल की मज्जा के साथ दिन में दो तीन मात्रा दें; वातातिसार की अत्युत्तम औषधि है; इस रस का प्रयोग वातातिसार की ऐसी दशा में करना चाहिये; जब कि अन्य कोई औषधि काम न करती हो, इस रस में जो लोहादि भस्में वर्णित हैं, वह निम्न बनी हुई होनी चाहियें।

१. लोह भस्म; रसेन्द्र सरोक्त, शृङ्गवेरादि गण द्वारा निर्मित होना चाहिये।

२. अभ्रकभस्म, अर्कदुग्ध और रसेन्द्रसारोक्त शृङ्गवेरादि गण द्वारा बनी हुई डालनी चाहिये।

पित्तातिसार चिकित्सा

—*०*—

पित्तातिसार रोग में कदापि लंघन नहीं कराना चाहिये क्योंकि पित्त का गुण ही सर है और पित्त के प्रकोप से दस्त आते हैं क्योंकि प्रकुपित हुआ पित्त प्रायः अधोमार्ग से ही निकलता है। लंघन कराने से पित्त बढ़ता है इसलिये पित्तातिसार में कभी भी लंघन नहीं कराना चाहिये।

मुस्तादि क्वाथ

नागरमोथा, अतीस, वच, इन्द्रजौं, कुड़े की छाल; इन द्रव्यों का क्वाथ बना कर यथाविधि रोगी को पिलाने से पित्तातिसार नष्ट होता है।

रसाञ्जनादि चूर्ण

शुद्ध रसौंत, अतीस, कुड़े की छाल,इन्द्रजौ,धाय के फूल, सोंठ सब द्रव्यों को समान भाग ले कर चूर्ण बना लें। मात्रा—१॥ माशे से ३ माशे तक शहद के साथ प्रयोग करने से तथा इसके बाद चावलों का धोवन पीने से पित्तातिसार शान्त होता है।

बृहत् गङ्गाधर चूर्ण

नागरमोथा, सोनपाठा, सोंठ, बेलगिरी, मोचरस, पाढल, इन्द्रजौ मीठे, धाय के फूल, कुड़े की छाल, आम की गिरी; लज्जालुबीज, अतीस; सब द्रव्यों को समान भाग लेकर चूर्ण कर लें। यह गङ्गाधर चूर्ण है। १॥ माशा मात्रा ६ माशे शहद के साथ शङ्खभस्म ४ रत्ती, लवणभास्कर चूर्ण १ माशा मिला कर चटा दें और ऊपर से चावलों का धोवन पिला दें; इस प्रकार यह पित्तातिसारी को अवश्य लाभ करता है।

कर्पूर रस (१)

हींग भुनी हुई; अफ़ीम; नागरमोथा; इन्द्रजौ; जायफल और कर्पूर। सब द्रव्य समान भाग ले महीन पीस कर कुड़े की छाल के काढ़े से २ दिन तक खरल करके एक २ रत्ती की गोली बना लें।

यह रस १ रत्ती, शङ्खभस्म २ रत्ती और लवणभास्कर चूर्ण ४ रत्ती मिला कर चावलों की धोवन के पानी के साथ दिन में ३-४ बार देने से पित्तातिसार अवश्य नष्ट होता है।

कर्पूर रस (२)

शुद्ध शिङ्गरफ, जायफल, नागरमोथा, इन्द्रजौ, कपूर, अफीम। प्रत्येक १ तोला। कुड़ा छाल के क्वाथ से खरल करके १ रत्ती प्रमाण गोली बनावें और चावलों के पानी अथवा अर्क इलायची से तीन २ घण्टे के अन्तर से दें, यह पित्तातिसार की अव्यर्थ औषधि है।

कफातिसार चिकित्सा

श्लेष्मातिसारे प्रथमं हितं लंघनपाचनम्।
योज्यश्चामातिसारघ्नो यथोक्तो दीपनो गणः॥

कफातिसार में पहिले लंघन और पाचन द्रव्यों का प्रयोग हितकर है, इसके बाद केवल अग्निवर्धक और पाचन द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये।

कफातिसारनाशक योग

सौंफ शुद्ध ५ तोले लेकर उसमें २॥ तोले सोंठ मिला कर दोनों का चूर्ण बना लें। मात्रा ६ माशे। इस चूर्ण को दिन में ३-४ बार गरम पानी के साथ प्रयोग करने से कफातिसार नष्ट होता है।

चित्रकादि क्वाथ

चित्रक, पीपलामूल, गजपीपल, पीपल प्रत्येक ६ माशे लें। इन द्रव्यों का यथाविधि सिद्ध किया हुआ क्वाथ शहद मिलाकर रोगी को पिलाने से कफातिसार शान्त होता है। यह कफातिसार की पूर्वावस्था में देना चाहिये।

बृहत् गगनसुन्दर रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कृष्णाभ्रक भस्म, लोहसार, वराटभस्म, रूपरस, अतीस प्रत्येक १ तोला। सब को रगड़ कर धनियें और अदरक के क्वाथ में अलग २ सात दिन तक खरल करके १ रत्ती की गोली बना लें। यह बृहत् गगनसुन्दर रस है। इसकी ४ मात्रा रोगी को सौंफ के अर्क के साथ १ दिन में देने से कफातिसार नष्ट होता है; यह रस दीपन, पाचन, रक्तवर्धक, बलदायक, ग्राही और शोथनाशक है। कफातिसार रोगी को निर्बलता, मन्दाग्नि, आंतों तथा यकृत् में शोथ और अजीर्ण होने पर इसके प्रयोग से लाभ होता है। इस रस में कृष्णाभ्रकादि भस्में वातातिसारोक्त पूर्णचन्द्रोदय रस की विधि से बनी हुई डालनी चाहियें।

वातपित्तातिसार चिकित्सा

इसमें सदा वात तथा पित्त का नष्ट करने वाली क्रिया करनी चाहिये।

कट्फलादि चूर्ण

कायफल, मुलहठी, लोध पठानी, अनार का छिलका। इन सब द्रव्यों को समान भाग लेकर चूर्ण बना लें। यह चूर्ण १॥ माशे से तीन माशे तक चावलों के धोवन के साथ प्रयोग करने से वातपित्तातिसार नष्ट होता है। यह चूर्ण वायु का अनुलोमक, शूल तथा रक्तातिसार का नाशक है।

मुस्तकादि चूर्ण

नागरमोथा, इन्द्रजौ, देवदारु, अतीस समान भाग लें। इन द्रव्यों का चूर्ण बना लें, यह चूर्ण ३ माशे तक चावलों की धोवन के साथ दिन में ३—४ बार प्रयोग करने से वातपित्तातिसार नष्ट होता है। वातपित्त-जनित ज्वरातिसार में गिलोय और धनियें के क्वाथ के साथ प्रयोग करने से लाभ करता है। इसके अतिरिक्त वातपित्तातिसारोक्त रस भी वातपित्तातिसार में दे सकते हैं।

वातकफातिसार चिकित्सा

वातकफातिसार को नष्ट करने के लिये सदा वातानुलोमन, दीपन, पाचन तथा ग्राही द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये।

चित्रकादि क्वाथ

चित्रक, अतीस, नागरमोथा; बेलगिरी, सोंठ, कुड़े की छाल; इन्द्रजौ, बड़ी हरड़ का छिलका प्रत्येक ३ माशे। सब द्रव्यों का यथाविधि क्वाथ बना कर पीने से वातकफातिसार अवश्य नष्ट होता है। यह पक्व दस्तों को एक दम रोक देता और निर्बल मनुष्यों के आमदोष को भी पचाता है।

पित्तकफातिसार चिकित्सा

इस प्रकार के अतिसार में पित्त तथा कफ नाशक द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये। इस रोग में प्रायः आममिश्रित लाल रङ्ग के दस्त होते हैं, इसलिये पहिले आम को निकालने का यत्न करें और इसके बाद दस्तों को रोकना चाहिये।

लोध्रादि पुटपाक

लोध पठानी, लाल चन्दन, मुलहठी, दारहल्दी, पाढल, कमल के फूल, अरलू की छाल; प्रत्येक द्रव्य दो २ तोले ले चावलों की धोवन में महीन पीस कर गोला बना लें, इस गोले पर आम या जामुन के गीले पत्ते लपेट कर ऊपर से धागा और गीली मट्टी लगा पुटपाक की विधि से अग्नि में पका लें, अब अग्नि से निकाल कर इसका रस निचोड़ कर थोड़ा २ रोगी को पिलावें। इसके प्रयोग से तत्काल कफातिसार नष्ट होता है। यदि कफ अधिक प्रबल हो तो इस पुटपक रस की औषधियों में सोंठ अधिक बढ़ा देने से बहुत लाभ होता है। पुटपक रस की २ तोले की मात्रा एक बार देनी चाहिये।

सान्निपातज अतिसार चिकित्सा

सन्निपातज अतिसार में तीनों दोष वात, पित्त, कफ कुपित होते हैं, इसलिये ऐसे दस्तों में प्रायः समान तथा अपान वायु के विकृत होने से अग्नि विषम हो जाती और छोटी आन्तों की अन्त्रधराकला में कुछ शोथ हो जाती है; पित्त कभी अधिक और कभी कम निकलता है तथा दस्तों के साथ आम और रक्त आता है। वैद्य का कर्तव्य है कि इस रोग में दोषों को भली प्रकार निर्णय करके समय तथा दोषानुसार चिकित्सा करे।

कुटजत्वक् पुटपाक

कुड़े की गीली छाल ५ तोला लेकर पूर्वोक्त विधि से पुटपाक करके रस निकाल लें और शहद डाल कर रोगी को पिलावें; इससे सन्निपातज अतिसार अवश्य नष्ट होता है।

हरीतक्यादि वटी

बड़ी हरड़ की छाल, नागरमोथा; सोंठ, गुड़ पुराना; इन चारों द्रव्यों को समान भाग लेकर ४ रत्ती से १ माशे तक गोली बना लें। दिन में ३–४ बार रोगी को गरम जल के साथ खिलाने से सब प्रकार के दस्तों को लाभ होता है।

यह वटी वातकफोल्वण सन्निपातज अतिसार में पेट में आमदोष के होने पर प्रयोग करने से अधिक लाभ होता है।

गुडूच्यादि क्वाथ

गिलोय, पृष्टपर्णी, शालपर्णी, कटैली छोटी, नागरमोथा, बेलगिरी, सोंठ, पाढल, चिरायता, सुगन्धबाला, इन्द्रजौ; प्रत्येक ३ माशे लेकर यथा-विधि क्वाथ बनाकर रोगी को पिलाने से सन्निपातज अतिसार नष्ट होता है। यह प्रयोग उपद्रव सहित अतिसार; ज्वर, कास; श्वास; अग्निमांद्य और अजीर्ण में भी योग्य अनुपान से देने पर लाभ करता है।

आम पक्व भेद से अतिसार चिकित्सा

ऊपर वात; पित्त, कफ आदि से उत्पन्न होने वाले अतिसार की दोषों के अनुसार चिकित्सा लिखी गई है, अब यहां आम और पक्व भेद से कुछ अनुभूत योग लिखे जाते हैं; जिससे चिकित्सा में सुगमता हो और चिकित्सक को प्रयोग निर्णय में कोई कष्ट न उठाना पड़े।

शुण्ठी पुटपाक

पांच तोले सोंठ को बारीक पीस कर एरण्ड के पत्तों के रस में गोला बना लें, ऊपर से आम या जामुन के गीले पत्ते लपेट कर धागा बांध दें, इस धागे के ऊपर चारों ओर मिट्टी लगा कर कण्डों की निर्धूम अग्नि में रख दें। गोला लाल होने पर इसे आग में से निकाल ठण्डा होने दें, जब पकी हुई सोंठ को इस गोले में से तोड़ कर निकाल लें, यही शुण्ठी पुटपाक है। आम सहित क़फातिसार में शुण्ठी पुटपाक शहद के साथ, पित्तातिसार में खाण्ड के साथ और वातातिसार में ४ रत्ती सौंचर नमक के साथ प्रयोग करने से दस्तों को लाभ होता है, इसके दो चार दिन सेवन करने से आम अवश्य पच जाता है। यह दीपन, पाचन, ग्राही और वातानुलोमन है, यह आम को पचाता भी है और निकालता भी है।

धान्यपंचक क्वाथ

धनियां, नागरमोथा, बेलगिरी, सोंठ, नेत्रवाला; यह पांचों द्रव्य २ से चार तोले तक रोगी के बलानुसार लें और यथाविधि क्वाथ बना कर रोगी को पिलावें। यह श्रेष्ठ पाचन; ग्राही और दीपन है; इसके सेवन से आमसहित दस्त अति शीघ्र रुक जाते और रोगी को भूख अधिक लगती है। यह धान्यपञ्चक सर्वत्र प्रसिद्ध है।

अर्धपक्व शुण्ठी चूर्ण

सोंठ के चूर्ण को कुछ अधकचरा भून कर तीन दिन तक एरण्ड के पत्तों के रस में खरल कर के एक २ माशे की वटी बना लें; यह वटी आमा-

तिसार को निसन्देह नष्ट करती है। दिन भर में उष्ण जल या सौंफ के अर्क के साथ ५-६ गोली दे सकते हैं।

वत्सकादि क्वाथ

इन्द्रजौ, अतीस, बेलगिरी, नागरमोथा, नेत्रवाला, कचूर प्रत्येक ४ माशे। इन सब द्रव्यों का यथाविधि क्वाथ बना कर रोगी को देने से रक्त मिश्रित आमातिसार नष्ट होता है और पुराने दस्तों को भी लाभ होता है।

पथ्यादि वटी

बड़ी हरड़ का छिलका, अतीस, हींग, सौंचर नमक, वच, सेन्धा नमक इन द्रव्यों को चूर्ण कर अदरक के पानी में रगड़ कर एक माशे की गोली बना लें। यह पथ्यादि वटी सौंफ के अर्क के साथ देने से अतिसार नष्ट होता है,; यह गोली आम को पचा कर शरीर से निकालती, वायु को अनुलोम करती और आमशूल की दशा में अधिक गुण करती है।

पक्वातिसार चिकित्सा

यदि अतिसार रोग में पक्व मल निकले तो इस का कारण प्रायः पित्त का प्रकोप होता है, इस के साथ ही अग्नि भी तीव्र होती है इसलिए तिक्त-कषायरस, ग्राही औषधियों के प्रयोग से लाभ होता है। यदि इस प्रकार की औषधियों से आनाह का भय हो तो इस चिकित्सा के साथ२ आनाह का ध्यान रखते हुए आनाहनाशक द्रव्य का भी प्रयोग करते रहना चाहिये।

समंगादि चूर्ण

लज्जालु बीज, धाय के फूल, मजीठ, लोध पठानी, अतीस इन द्रव्यों को समान भाग ले कर चूर्ण बना लें। यह चूर्ण शक्ति के अनुसार ३ माशे से ६ माशे तक रोगी को मधु या चावलों की धोवन के साथ देने से पक्वातिसार शान्त होता है।

गंगाधर क्वाथ

चौलाई, अनार के पत्ते, जामुन के पत्ते, सिंघाड़े के पत्ते, नेत्रवाला, सोंठ, नागरमोथा प्रत्येक ३ माशे, इन द्रव्यों का यथाविधि क्वाथ बना कर रोगी को पिलाने से पक्वातिसार नष्ट होता है। इस क्वाथ में शहद डाल कर प्रयोग करना चाहिये, यह क्वाथ पित्तोल्वण सान्निपात की एक उत्तम औषधि है।

पूर्वोक्त गंगाधरचूर्ण भी पक्वातिसार की श्रेष्ठ औषधि है।

कुटज पुटपाक

एक पाव कुड़े की छाल ले कर इसे चावलों की धोवन के साथ पीस कर पुटपाक की विधि से पका कर रस निचोड़ लें। रोगी के बलानुसार इस क्वाथ की ६ माशे से दो तोले तक मात्रा शहद मिला कर दिन में ३-४ बार देने से सब प्रकार के भयंकर दस्त रुक जाते हैं। यह उत्तम और अनुभूत औषधि है।

दाड़िम पुटपाक

कुटज पुटपाक के समान ही दाड़िम पुटपाक का रस भी पक्वातिसार की उत्तम औषधि है। पका हुआ अनार लेकर इस पर गीली मिट्टी में सना हुआ कपड़ा लपेट दें और उपलों की निर्धूम अग्नि में पका लें ऊपर की मिट्टी लाल होने पर आग में से निकाल कर ठण्डा होने पर रस निकाल लें और रोगी को २ से ४ तोले की मात्रा दें।

बिल्व पुटपाक

बेल की गिरी को चावलों के पानी से रगड़ कर पुटपाक की रीति से पका कर रोगी को बलानुसार ६ माशे से २ तोले तक दिन में २ बार प्रयोग कराने से सब प्रकार के दस्त रुक जाते हैं।

संग्रहणी रोग में कहा हुआ कुटजावलेह भी सब प्रकार के दस्तों को रोकने की एक उत्तम औषधि है।

अतिसार नाशक सिद्ध उपाय

१. जब रोगी बहुत दिनों से या अधिक दस्त होने से निर्बल और निढाल हो गया हो तो निर्बीज सूखे आमलों की पिट्ठी बनाकर रोगी को चित्त लिटा कर उसकी नाभि के चारों ओर उस पिट्ठी को एक या १॥ अंगुल मोटी तह जमा दें और इस कुण्डलाकार गढ़े में अदरक का रस भर दें। रोगी कुछ देर इसी प्रकार चित्त लेटा रहे इससे नाभिस्थ समान वायु ठीक होकर आन्तों की आकर्षण-शक्ति बढ़ जावेगी और दस्त रुक जावेंगे। इसके कुछ समय बाद जो रोगी को दस्त होगा वह गाढ़ा और बन्धा हुआ होगा। इस प्रयोग से अतिसार का प्रबल वेग भी रुक जाता है, यह प्राचीन शास्त्रीय अनुभूत योग है।

२. आम की गुठली की गिरी दही में पीस कर नाभि पर लेप करने से भी दस्त रुक जाते हैं।

कणादि लोह

पीपल, सोंठ, पाढल, काली मरिच, पिपला मूल, बड़ी हरड़ की छाल, बहेड़े का छिलका, आमला, दालचीनी, इलायची छोटी, पत्रज, बेलगिरी, नेत्रबाला, चन्दन। सब द्रव्यों को समान भाग लेकर चूर्ण बना लें, अब सब द्रव्यों के समान लोहसार मिला कर खरल करके दो रत्ती की गोली बना लें; इसे कणादि लोह कहते हैं। यह रस १ दिन में सोलह रत्ती तक दिया जा सकता है।

अनुपान—अर्क इलायची, अर्क सौंफ या अर्क पोदीने में से समयानुसार किसी से दे सकते हैं। इसमें जो लोह भस्म कही गई है, वह रसेन्द्रसारोक्त शृङ्गवेरादिगण द्वारा निर्मित होनी चाहिये।

चन्द्रकला वटी

सुहागा भुना हुआ १ तोला, शिंगरफ शुद्ध २ तोले, अफ़ीम शुद्ध ४ तोले। सब को एकत्र खरल करके काली मरिच के समान गोली बना लें। यह चन्द्रकलावटी दस्तों के रोकने में अद्भुत प्रभाव दिखाती है; यदि

रोगी को रात्री में अधिक दस्त होते हों और दिन में कम या बिल्कुल न होते हों तो १ गोली को ६ माशे शहद के साथ प्रयोग करके इसके अद्‌भुत प्रभाव की परीक्षा कर सकते हैं।

अमृतार्णव रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहसार, भुना हुआ सुहागा, कचूर, धनियां, नेत्रबाला, नागरमोथा, पाठा, जीरा श्वेत, जीरा स्याह, अतीस। सब द्रव्य समान भाग लेकर बकरी के दूध में खरल करके एक २ माशे की गोली बना लें, इसे अमृतार्णव रस कहते हैं।

इस रस को निम्न रोगों में निम्न अनुपानों के साथ प्रयोग करने से लाभ होता है—

१. वातपित्तातिसार में धनियां, श्वेत जीरा, भांग का चूर्ण १ माशा गोली के साथ मिला कर शहद में चाटने से लाभ होता है, रोगी को भूख खूब लगती है और मल और मूत्र खुल कर आते हैं।

२. पित्तातिसार में चावलों की पीच (मण्ड) के साथ प्रयोग करने से लाभ होता है, रक्तातिसार भी इस अनुपान से नष्ट होता है।

३. जल के साथ देने से पित्तकफातिसार शान्त होता है।

४. केले का रस २ तोले से ४ तोले तक गोली के साथ रोगी के बलानुसार देने से प्रबल पित्तातिसार भी शान्त होता है।

५. मोचरस के साथ इस रस का प्रयोग करने से पक्व-कफातिसार नष्ट होता है।

६. कटैली के रस के साथ उपयोग करने से साम कफातिसार नष्ट होता. कास शान्त होती, और वस्ति शुद्ध होकर मूत्र खुल कर आता है।

७. धनियें और सोंठ के कषाय के साथ प्रयोग करने से आमातिसार नष्ट होकर अग्नि दीप्त होती है।

अभयनृसिंह रस

शुद्ध शिङ्गरफ; मीठा तेलिया; सोंठ, काली मरिच, पीपल, जीरा श्वेत, जीरा काला, सुहागा भुना हुआ, गन्धक शुद्ध, कृष्णाभ्रकभस्म, शुद्ध पारद, प्रत्येक औषधि एक भाग, अहिफेन २ भाग, पारे गन्धक की कज्जली कर

के ६ घण्टे तक निरन्तर रगड़ते रहें फिर शेष द्रव्य मिला कर १ रत्ती की गोली बना लें। यह वटी जीरा श्वेत ४ रत्ती और शहद ६ माशे के साथ दिन भर में २–३ बार प्रयोग करने से सान्निपातातिसार और अन्य सब प्रकार के अतिसारों को लाभ करता है। यह हमारा सहस्रों बार का अनुभूत योग है।

अहिफेनासव

महुए से बनाई हुई मदिरा ५ सेर, अफीम शुद्ध २० तोले, नागरमोथा, जायफल, इन्द्रजौ, छोटी इलायची प्रत्येक द्रव्य ४ तोले। इन सब द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण बना लें और सुरा में डाल कर पन्द्रह दिन या १ मास तक वर्तन का मुख बन्द करके रख छोड़ें। नियत समय के बाद निकाल कर छान कर बोतल में भर लें, इसको अहिफेनासव कहते हैं।

मात्रा–१० बिन्दु।

अनुपान—समयानुसार अर्क सौंफ, अर्क पोदीना, अर्क इलायची या जल में मिला कर पिलावें, यह हर प्रकार के दस्तों की एक श्रेष्ठ और प्रभावशाली औषधि है।

लवङ्ग द्राविका

अतीस, नागरमोथा, पाठा, बेलगिरी, धनियां, धाय के फूल, मोचरस, जीरा श्वेत, लोध, इन्द्रजौ मीठा, नेत्रबाला, राल, काकड़ासिंगी, सेन्धानमक, सोंठ, काली मरिच, पीपल, खरैंटी, जवाखार, अफ़ीम, रसौंत। सब द्रव्यों को समान भाग लें और सब द्रव्यों के समान लौंग लेकर महीन चूर्ण बना लें; इस चूर्ण को पोस्त के पानी में खरल करके रख लें।

मात्रा—१ रत्ती से ४ रत्ती तक।

अनुपान— अर्क सौंफ, अर्क पोदीना, अर्क इलायची, या ताज़े पानी से आवश्यकतानुसार प्रयोग करें। यह अनुभूत तथा अति प्रभावशाली औषधि है।

कुटजारिष्ट

ज्वरातिसार में कहा कुटजारिष्ट भी दस्तों के लिए उत्तम औषधि है।

कुटजावलेह

ग्रहणी अधिकार में कहा गया कुटजावलेह अतिसार रोग की प्रसिद्ध और अचूक औषधि है ।

बब्बूलारिष्ट

बबूल का छिलका १० सेर दो मन पानी में पकावें, जब चौथा भाग शेष रह जावे तो अग्नि पर से उतार कर खूब मल कर छान लें, फिर इसको किसी चिकने पात्र में भर कर १५ सेर गुड़ और निम्नलिखित औषधियों का चूर्ण मिलाकर मुख बन्द कर दें, और शीतकाल में एक मास के पश्चात् तथा उष्ण काल में १५ दिन के पश्चात् खोल कर नितरा हुआ अरिष्ट बोतलों में भर लें:— धाय के फूल ३ पाव, पीपल ८ तोला, जायफल, कङ्कोल, इलायची, दालचीनी, तेजपत्र; नागकेसर, लौंग, काली मरिच, प्रत्येक ४ तोला । सब को कूट कर मिलावें ।

मात्रा—१ तोला से २ तोला तक दिन में २–३ बार ।

यह भी अतिसार की उत्तम औषधि है ।

रक्तातिसार चिकित्सा

पित्तातिसार में रोगी के कुपथ्य करने से पित्त अधिक बढ़ जाता और अन्त्रधराकला में क्षत तथा शोथ होने से रोगी को रक्तातिसार हो जाता है, जिससे रोगी को अधिकतर दस्तों के साथ रक्त आता है । चिकित्सक का कर्तव्य है कि इस रक्तातिसार में बड़ी बुद्धिमत्ता से चिकित्सा करे, इस रोग में सदा श्लक्ष्ण, क्षत तथा शोथ नाशक, ग्राही, पित्त और वातहर द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ।

कुठजादि क्वाथ

इन्द्रजौ, अतीस, नागरमोथा; नेत्रवाला; लोधपठानी; धाय फूल; लाल चन्दन; अनार का छिलका; पाढल—प्रत्येक ३ माशे । इन द्रव्यों का

क्वाथ यथाविधि बना कर पीने से रक्तातिसार अवश्य नष्ट हो जाता है। यह प्रयोग तीन चार दिन तक रोगी को पिलाना चाहिये।

पित्तातिसार में कहा हुआ "रसाञ्जनादिचूर्ण" भी रक्तातिसार के लिये एक उत्तम औषधि है।

शीघ्र प्राप्त होने वाले कुछ योग

१. चावलों के जल के साथ मिश्री मिला कर पीने से रक्तातिसार शान्त होता है।

२. अनार का छिलका और कुड़े की छाल का काढ़ा में मिश्री तथा शहद मिला कर पीने से रक्तातिसार नष्ट हो जाता है।

३ पहाड़ी नागकेशर का चूर्ण ३ रत्ती मक्खन में मिला कर दिन में २--३ बार खिलाने से रक्तातिसार दूर हो जाता है।

४. मोचरस, मिश्री, इन्द्रजौ, धाय के फूल, लोध पठानी। सब द्रव्य समभाग लेकर इनका चूर्ण बना लें, यह चूर्ण २ तोले तथा बेलगिरी, २ तोले लेकर पकाये हुए बकरी के दूध के साथ प्रयोग करने से रक्तातिसार हटता है।

५. आम के पत्ते, जामुन के पत्ते, बबूल के पत्ते, आंवले के पत्ते सब द्रव्य २ तोले से ५ तोले तक लेकर पानी में घोटने के बाद छान कर पीने से रक्तातिसार नष्ट होता है।

६. चन्दन श्वेत को घिस कर ४--६ रत्ती तक शहद में मिला कर चाटने के बाद ऊपर से चावलों का पानी पीने से रक्तातिसार शान्त होता है।

७. गेरू, श्वेत कत्था, राल श्वेत, कतीरा गोंद, प्रत्येक समभाग। इन द्रव्यों को बकरी के दूध में रगड़ कर एक २ माशे की गोली बना चावलों की धोवन से देने पर रक्तातिसार शान्त हो जाता है।

प्रवाहिका (पेचिश) चिकित्सा

प्रवाहिका रोग में प्रायः बृहदन्त्रस्थ अन्त्रधराकला में शोथ हो जाता है। इस रोग में अपान वायु के अधिक विकृत हो जाने से तथा पेट में सुद्दे होने से रोगी को शूल बहुत होता है, पित्त अधिक होने की अवस्था में गुदा में मलत्याग के समय अति दाह होता है और दस्त लाल रङ्ग का तथा आम मिश्रित होता, है कफ प्रबल होने की हालत में श्वेत वर्ण की आम कभी विष्टा से मिल कर निकलती और कभी आम ही आती है। इस रोग में सदा वातानुलोमन, क्षतनाशक, शूलनाशक और आमनिस्सारक चिकित्सा पहले करनी चाहिये; आम कोष्ठ में न रहने पर दीपन, पाचन, ग्राही और शोथनाशक द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये।

तासामतीसारवदादिशेच्च लिंगं क्रमं चामविपक्वतां च ॥

प्रवाहिका की चिकित्सा आम और पक्वातिसार के समान करनी चाहिये।

हरीतक्यादि काढ़ा

बड़ी हरड़ की छाल २ तोले कूट कर १॥ पाव पानी में पकावें, २ छटांक शेष रहने पर इसमें १ तोले से ४ तोले तक एरण्डी का शुद्ध तेल डाल कर रोगी को पिलावें। इसके प्रयोग से सुद्दे (शुष्क विष्टा) निकल कर स्वतः ही प्रवाहिका नष्ट हो जाती है। यदि इस प्रकार पूर्ण लाभ न हो तो सामान्य ग्राही दीपन द्रव्यों के उपयोग से लाभ होता है।

अश्वकर्णादि प्रयोग

१ तोला ईसबगोल २ तोले एरण्डी के तेल में भिगो कर गरम दूध में डाल कर पीने से आम सुखपूर्वक तत्काल बाहर हो जाती है और कोष्ठ शुद्ध हो जाता है। यह दोनों योग पेचिश की पूर्व अवस्था में अवश्य सेवन कराने चाहियें।

हरीतक्यादि चूर्ण

छोटी काली हरड़ ५ तोले लेकर शुद्ध घी में भून लें इसमें ५ तोले

सौंफ मिला कर चूर्ण बना लें। यह चूर्ण ६ माशे तक शर्बत-बनफ़शा के साथ चाटने से कोष्ट शुद्ध हो जाता है; यह आमशूल को नष्ट करने और आम को निकालने के लिये श्रेष्ट रेचन है।

सिद्ध योग

बनफशा १ तोला, मग़ज़ कद्दू ६ माशे, गुलसुर्ख़ ६ माशे, सौंफ ४ माशे। सनायपत्र २ माशे। इन सब को सरदाई के समान रगड़ कर मिश्री मिला रोगी को पिलाने से प्रवाहिका नष्ट होती है। यह योग मृदुकोष्ठ, कोमल प्रकृति तथा गार्भिणी के लिये एक अमूल्य औषधि है; इसके एक दो बार सेवन करने से ही प्रवाहिका समूल नष्ट हो जाती है।

बिल्वादि अवलेह

बेलगिरी, लोध पठानी, काली मारेच प्रत्येक ३ माशे; गुड़ १ तोला, शुद्ध एरण्ड का तैल ४ तोले। सब द्रव्यों को एकत्र कर अवलेह बना लें। यह अवलेह ३ से ६ माशे तक दिन में ३–४ बार सौंफ के अर्क के साथ देने से प्रवाहिका नष्ट होती है। यह योग हमारा हज़ारों बार का अनुभूत है।

नागराजादि चूर्ण

नागकेसर, मोचरस दोनों को समभाग लेकर चूर्ण बना लें।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक।

अनुपान—शहद में यह चूर्ण मिला कर छाछ के साथ रोगी को प्रयोग करावें, दिन में ३–४ बार सेवन कराने से आम पच कर रोगी को लाभ हो जाता है। कोष्ठ में कुछ एक आम रहने की हालत में यह अति लाभ करता है।

चिञ्चा प्रयोग

इमली की मृदु छाल ३ माशे पतले दही या छाछ में घोट कर पीने से रक्तातिसार और प्रवाहिका को तत्काल लाभ होता है।

सर्जरसादि चूर्ण

सर्जरस (राल श्वेत), मोचरस; दोनों द्रव्यों को महीन पीस कर चूर्ण बना लें।

मात्रा—४ रत्ती से १ माशे तक दिन में कई बार बकरी के दूध के साथ प्रयोग करने से रक्तातिसार और प्रवाहिका को अवश्य लाभ होता है।

गङ्गाधर रस

धाय के फूल; इन्द्रजौ; मोचरस; लोध पठानी; नागरमोथा; अफ़ीम; पारा शुद्ध; गन्धक शुद्ध; बेलगिरी समान भाग। सब द्रव्यों को यथाविधि खरल करके रस तयार कर लें। इसको "गङ्गाधर रस" कहते हैं।

मात्रा--१ रत्ती से ४ रत्ती तक।

अनुपान--दही की छाछ के साथ दिन में ३–४ बार प्रयोग से लाभ होता है। यह प्रवाहिका रोग के लिये अद्वितीय और अचूक औषधि है; कोष्ठ में पहुंचते ही अपना प्रभाव तत्काल दिखाती है। हमारा सहस्रों बार का अनुभूत योग है। यदि पेचिश के साथ ज्वर भी हो; तो गङ्गाधर रस अनार के रस अथवा अनारदाने की सरदाई के साथ प्रयोग करना चाहिये।

लाई चूर्ण

गंधक शुद्ध १ तोला; पारा शुद्ध ६ माशे। दोनों को यथाविधि कज्जली करके सोंठ, काली मरिच; पीपल प्रत्येक ५ तोले; पांचों नमक चार २ माशे; हींग भुनी हुई १ तोला; जीरा श्वेत; जीरा काला प्रत्येक १ तोला लेवें। इन सब द्रव्यों से आधी भांग मिला कर यथाविधि चूर्ण बना लें।

मात्रा-४ रत्ती से १ माशा तक।

अनपान—दही की छाछ के साथ दिन में ३–४ बार प्रयोग करने से प्रवाहिका नष्ट होती है।

यह चूर्ण शास्त्रोक्त एक प्रसिद्ध औषधि है; इसके सेवन से अति कष्ट साध्य और जीर्ण प्रवाहिका रोग अवश्य नष्ट हो जाती है।

हरीतक्यादि वटी

बड़ी हरड़ का छिलका १ तोला; आंमला; माजू; कपूट प्रत्येक १ तोला- केसर ६ माशे। सब द्रव्यों को अर्क गुलाब में ३ दिन खरल करके चने के बराबर गोली बना लें।

मात्रा—४ गोली तक ।

अनुपान—दिन में ३-४ बार अर्क गुलाब या अर्क सौंफ के साथ प्रयोग करने से प्रवाहिका रोगी को अति लाभ होता है ।

कुटजाष्टक अवलेह

कुड़े की गीली छाल ९ सेर कूट कर १६ सेर जल में पका कर काढ़ा करें, चतुर्थांश रहने पर उतार कर छान लें फिर इस क्वाथ में सीमल का गोंद २ तोले, पाढल, धाय के फूल, नागरमोथा, अतीस, बेलगिरी, लज्जालु-बीज प्रत्येक ४ तोले इन सब द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिला कर पकावें और अवलेह के समान हो जाने पर उतार लें; इसे कुटजाष्टकावलेह कहते हैं ।

मात्रा—६ माशे तक ।

अनुपान—चावलों का जल, गाय का दूध या बकरी का दूध, इन में से आवश्यकतानुसार किसी से भी प्रयोग कर सकते हैं । यह औषधि सब प्रकार के अतिसार, संग्रहणी, रक्तार्श और रक्तातिसार की उत्तम औषधि है ।

प्रवाहिका रोग में रस कर्पूर का प्रयोग

प्रवाहिका के लिये रस कर्पूर भी एक उत्तम औषधि है । प्रयोग से पूर्व रस कपूर को खरल करके जल में भिगो दें, २४ घण्टे बाद पानी नितार दें, इसी प्रकार ३ बार खरल करके नितार लें और चूर्ण करके रख लें ।

मात्रा—१ रत्ती ।

अनुपान—रस कपूर १ रत्ती, इलायची बड़ी १ दाना । दोनों को एकत्र कर शीशी में डाल कर ऊपर से ८ तोला शुद्ध जल मिला दें । यह औषधि दिन में २-३ बार २ तोले सेवन कराने से प्रवाहिका को लाभ होता है ।

रस कपूर को बिना शुद्ध किये भी उपयोग कर सकते हैं परन्तु बिना शुद्ध किये देने से मुंह आ जाता है ।

गर्भिणी के लिये प्रवाहिका नाशक योग

सिद्ध योग

गुल बुनफ़शा ६ माशे, मग़ज़ कद्दू ६ माशे, सौंफ ३ माशे, सनाय पत्र १ माशा। सब द्रव्यों को समान भाग जल में घोटकर उसमें थोड़ा गरम दूध और मिश्री मिला कर पिलाने से प्रवाहिका रोग को अवश्य लाभ होता है। यह अनुभूत औषधि है।

हरीतक्यादि चूर्ण

छोटी काली हरड़ (जङ्गी हरड़) कुछ घी में भून लें फिर आधी भुनी हुई सौंफ २ भाग, सोंठ १ भाग, इलायची बड़ी १ भाग, मिश्री सब द्रव्यों से दोगुणी मिला कर सब को एकत्र कर चूर्ण बना लें।

मात्रा—२ माशे से ३ माशे तक।

अनुपान—दिन में ३–४ बार अर्क सौंफ के साथ प्रयोग करना चाहिये।

बालातिसार नाशक अनुभूत योग

१. सौंफ १ माशा, अजवायन १ माशा, जायफल ४ रत्ती। सब द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बना लें। २ रत्ती से ४ रत्ती तक बालक के बलानुसार दे देवें; बालक को आनाह होने के कारण जब दस्त होते हों तो अर्क सौंफ के साथ इस चूर्ण का प्रयोग करने से अति लाभ होता है।

२. बालक के जीर्ण दस्तों में सोडा बाई कार्ब (सर्जिका सत्वोत्पलकण) एक से २ रत्ती तक समयानुसार माता के दूध में प्रयोग करने से अवश्य लाभ होता है। यह हमारा शतशः अनुभूत योग है।

अतिविषादि चूर्ण

अतीस के चूर्ण के प्रयोग से बालकों के सब प्रकार के दस्त रुक जाते

हैं। इस चूर्ण को ४ चावल भुनी हुई हींग के साथ माता के दूध में देने से शीत से उत्पन्न हुए बालकों के दस्त तुरन्त रुक जाते हैं।

इसी प्रकार केसर १ या २ चावल की मात्रा में दूध के साथ प्रयोग करने से शीत के कारण उत्पन्न हुए बालकों के दस्त नष्ट होते हैं।

गङ्गाधर चूर्ण से बालकों के हरे पीले दस्त रुक जाते हैं।

केशर वटी

केशर, हींग भुनी हुई, अफ़ीम शुद्ध सब को समान भाग लेकर एकत्र पीस कर बाजरे के समान गोली बना लें। यह वटी अर्क सौंफ के साथ दिन में ३ बार सेवन कराने से सब प्रकार के दस्त रुक जाते हैं। यह सैकड़ों बार का अनुभूत योग है।

बिल्वादि वटी

बेलगिरी, सोंठ, जायफल, नाग केशर, बड़ी इलायची के दाने। सब द्रव्यों को चूर्ण कर पोस्त के डोडे के काढ़े में दो दिन तक खरल करके एक २ रत्ती की गोली बना लें। यह वटी दिन में २–३ बार माता के दूध अथवा सौंफ के अर्क के साथ उपयोग करने से दस्त रुक जाते हैं। यह वटी आमाशय को बलिष्ट कर वमन रोक देती है। दीपन, पाचन, ग्राही, वमननाशक और रक्तावरोधक है।

अतिसार नाशक सद्यः प्राप्य योग

१. गूलर का दूध बताशे में भर कर ८–१० दिन खाने से सब प्रकार के दस्त रुक जाते हैं।

२. मोचरस और मिश्री सम भाग लेकर इनका चूर्ण कर लें, इस की २ माशे की मात्रा दिन भर में २–३ बार देने से पुराने दस्त, संग्रहणी और पित्तातिसार को लाभ होता है।

३. आम की गुठली और बेलगिरी का यथाविधि क्वाथ बनाकर

पिलाने से अतिसार अवश्य नष्ट हो जाता है । इस काढ़े में मिश्री और शहद मिला कर प्रयोग कराना चाहिये ।

४. घी में भुनी भांग २ माशे तक रात्रि के समय शहद में मिला कर चटाने से रोगी को रात भर नींद आ जाती और दस्त रुक जाते हैं। यह अति क्षुधावर्धक और अजीर्णनाशक योग है ।

५. एक रत्ती अफ़ीम बकरी के ६ तोले दूध में घोल कर पिलाने से रक्तातिसार और प्रवाहिका को लाभ होता है, विशेष कर रक्तोल्वण प्रवाहिका में यह उत्तम है।

६. आम की कोंपल और कैथ का गूदा दोनों को मिला कर चावलों के पानी से दिन में ३-४ बार देने से रक्तातिसार को तत्काल लाभ होता है ।

७. बबूल के पत्तों का रस १ तोला दिन में एक बार पीने से सब प्रकार के दस्तों को लाभ होता है तथा इसके योग से गुदभ्रंश को भी लाभ होता है ।

८. कुड़ की हरी छाल का रस दस्तों की एक उत्तम औषधि है ।

९ जायफल का चूर्ण ४ रत्ती से १ माशे तक दही या छाछ के साथ दिन में २ बार प्रयोग करने से सब प्रकार के दस्त नष्ट हो जाते हैं ।

१०. अरलू की छाल और सोंठ का चूर्ण ३ माशे की मात्रा में चावलों के जल के साथ दिन में कई बार प्रयोग करने से दस्त निस्सन्देह रुक जाते हैं ।

नाभिभ्रंशजनित अतिसार चिकित्सा

जातिफलादि वटी

जायफल, अफ़ीम शुद्ध, शिङ्गरफ शुद्ध, अजवायन देसी, हरड़ छोटी घी में भुनी हुई; सब द्रव्यों को खरल करके १ रत्ती की गोली बना लें ।

मात्रा—१ रत्ती ।

अनुपान—जल के साथ जातिफलादि वटी दोनों समय प्रयोग करने से नाभि ठीक हो जाती और दस्त रुक जाते हैं ।

यवान्यादि वटी

अजवायन देसी, सोंठ, नक छीकनी बूटी की भस्म प्रत्येक १ तोला, गुड़ पुराना ३ तोले। सब को एकत्र खरल करके जङ्गली बेर के समान गोली बना लें, यह यवान्यादि वटी कही जाती है। यह वटी प्रातः सायं प्रयोग करने से नाभि ठीक हो जाती और दस्त भी रुक जाते हैं।

कांची लेप

फटकरी श्वेत १ तोला, माजू हरे १ तोला। दोनों द्रव्यों को सिरके से पीस कर नाभि के चारों ओर गाढ़ा २ लेप कर दें और उस पर भीगा कपड़ा रख दें, इसके सङ्कोचक प्रभाव से अन्य स्थानों में हटी हुई नाभि अपनी जगह आ जाती और उसकी क्रिया ठीक हो जाती है।

भय तथा शोकातिसार चिकित्सा

भयशोकसमुद्भूतौ ज्ञेयौ वातातिसारवत्।
तयोर्वातहरी कार्या हर्षणाश्वासनैःक्रिया ॥

भय तथा शोक से उत्पन्न हुए अतिसार रोग में प्रायः वात कुपित होता है क्योंकि यह मानसिक व्याधि है, अतएव इस रोग में सदा वातपित्त-नाशक, आनन्दजनक, शोक तथा भयनाशक धीरज आदि क्रिया द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये।

शोथातिसार चिकित्सा

शोथातिसार में सदा शोथनाशक चिकित्सा मिश्रित अतिसारनाशक चिकित्सा करनी चाहिये।

पुनर्नवादि काढ़ा

पुनर्नवा, इन्द्रजौ, बेलगिरी, अतीस, नागरमोथा, काली मरिच प्रत्येक ४ माशा। इनका क्वाथ पीने से शोथातिसार नष्ट होता है। यहां

यह प्रयोग केवल उदाहरण के लिये दिया गया है। इसके अतिरिक्त दुग्ध वटी, अहिफेन वटी, विजयपर्पटी, रसपर्पटी, पञ्चामृत पर्पटी, लोहपर्पटी आदि अनेक शोथातिसार की उत्तम औषधि हैं, जो अपनी जगह पर लिखी जावेंगी।

निःसार पीड़ित अतिसार चिकित्सा

क्षय से पीड़ित ज्वरातिसार रोगी को मलाई वाली दही में शहद डालकर पिलाने या सुवर्ण गरम करके उसे दूध में बुझा कर उस दूध में शहद डाल कर प्रयोग कराने से लाभ होता है। इस रोग में सदा स्निग्ध, धातुवर्धक तथा अग्निवर्धक द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये।

विष्टाक्षय चिकित्सा

यदि तीक्ष्ण अग्नि वाले रोगियों को पित्त और वायु की प्रबलता के कारण विष्टा क्षय होवे अर्थात् थोड़ा २ करके ग्रन्थिरूप होकर निकले तो इन रोगियों को पुरीष के संग्राही द्रव्यों का प्रयोग करावें।

शुंठ्यादि प्रयोग

१. सोंठ, राब (एक गुड़ का भेद), दही, तैल और दूध। इन सब द्रव्यों को अथवा समयानुसार जिनको आवश्यक समझें मिला कर रोगी को पिलाने से लाभ होता है।

२. खरैंटी और सोंठ से सिद्ध किया हुआ दूध रोगी को देने से अति लाभ होता है।

विषजनित अतिसार चिकित्सा

कभी २ जमालघोटा, अरण्डी के बीज, थोहर या सेहुण्ड का दूध तथा जलापा आदि तीव्र वीर्य, क्षतकारक, शोथजनक तथा तीव्र विरेचन द्रव्यों

के विधिविरुद्ध या अधिक मात्रा में प्रयोग करने से रोगी को अति पतले २ दस्त और वमन होने लगती है। ऐसी दशा में चिकित्सक को उचित है कि शान्ति कारक, हृद्य, क्षतनाशक, शोथनाशक तथा शीतवीर्य द्रव्यों द्वारा रोगी की चिकित्सा करे।

दही प्रयोग विधि

जमालघोटे आदि के विष से उत्पन्न हुए अतिसार में दही की छाछ में धनिये का चूर्ण मिला कर अथवा दही और गुलाब मिला कर रोगी को निरन्तर पिलाने से लाभ होता है। ध्यान रहे ऐसे रोगी को पानी के बदले भी दही की छाछ ही पिलाना चाहिये।

विशेष चिकित्सा विष प्रकरण में देखो।

गुददाह--गुदपाक चिकित्सा

जब बहुत दस्त होने के कारण या पित्त की अधिकता से गुदा में अति दाह होवे या गुदा पक जावे तो उस दशा में दाहनाशक द्रव्यों के क्वाथ से गुदा को बार २ धोना हितकर है। यहां ऐसे कुछ योग दिये जाते हैं—

१. पटोलपात और मुलहठी के काढ़े से गुदा को धोने से दाह और गुदपाक नष्ट होता है।

२. बकरी के दूध में मिश्री और शहद मिलाकर इसे पीने और गुदा को धोने से गुदाशूल और गुदा की दाह नष्ट होती है।

गुदशूल चिकित्सा

१. चूहे का मांस पका कर उसे बांधने तथा इस जल के वाष्प देने और गुदा को धोने से तीव्र गुदशूल नष्ट होता है।

२. घी और मैदे को जल सहित पका कर हलवा बना लें, इस हलवे को हलका २ गरम ही गुदा पर बांध देने से गुदशूल तत्काल नष्ट होता है।

गुदभ्रंश चिकित्सा

प्रायः अधिक दस्त होने के कारण गुदा की संवर्णी नामक मांसपेशी ढीली हो जाने के कारण गुदा बाहिर निकल आती है, प्रचलित भाषा में इसे कांच निकलना कहते हैं और शास्त्र में इस रोग को गुदभ्रंश कहा गया है और स्निग्ध, कषायरसबहुल तथा खिंचावट पैदा करने वाले द्रव्यों के द्वारा इसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

१. चूहे की चर्बी कुछ गरम कर के गुदा के चारों ओर कांच पर लेप करने से कांच बन्द हो जाता है।

२. चूहे या घोंघे का मांस पका कर उस में घी या तेल डाल कर इसकी वाष्प देने से कांच निकलना बन्द हो जाता है।

३. हुलदुल बूटी (सुवर्चला) बूटी का रस हाथों पर लगा कर गुदा पर हाथ रखने से कांच निकलनी बन्द हो जाती है। यह प्रयोग स्त्रियों के लिए अति लाभदायक है।

४. पुराने जूते का चमड़ा या लसूड़े की राख घी लगा कर कांच पर छिड़कने से कांच निकलना बन्द होता है।

५. मुर्गी के अण्डे की सफ़ेदी कांच पर लगा कर इसे भीतर करने से गुदा की दाह और कांच निकलना बन्द हो जाता है।

६. बकरी के सुम की भस्म, माजू, फटकरी भुनी हुई, अनार की कली, अनार का छिलका; सब द्रव्यों को महीन पीस कर घी लगा कर छिड़कने से गुदा का निकलना अवश्य नष्ट होजाता है।

अतिसार रोग में पथ्य

वमनं लंघनं निद्रा पुराणाः शालियष्टिकाः।
विलेपी लाज मंडश्च मसूर तुवरी रसः ॥
शशो वै लाव हरिणकपिंजलभवा रसाः।
सर्वे क्षुद्रझषाः श्रंगी डिंडशो मधुरालिकाः ॥

तैलं छागं घृतं क्षीरं दधि तक्रं गवामपि ।
दधिजं वा पयोजं वा नवनीतं गवां जयेत् ॥
नवं रम्भाफलं पुष्पं क्षौद्रं जम्बूफलानि च ।
भव्यं सहार्द्रकं विश्वं शालूकं च विकङ्कतम् ॥
कपित्थं बकुलं बिल्वं तिन्दुकं दाडिमद्वयम् ।
तालं वटफलं चापि चांगेरी विजया कणा ॥
ज़ातिफलं च ह्रीवेरं जीरकं गिरिमल्लिका ।
कुस्तुम्बुरु महानिम्बकषायः सकलो रसः ॥
अन्नपानानि सर्वाणि दीपनानि लघुनि च ।
नाभेर्द्वयांगुलोऽधस्ताच्छस्त्रेणार्द्धेन्दुवद्दहेत् ।

अर्थ—वमन, लङ्घन, निद्रा (सोना), पुराने साठी चावल, चावलों का यूष, धान की खीलों का मण्ड (पीछ), मसूर, अरहर की दाल का पानी अथवा पतली दाल, शशा, तीतर, हरिण, इनके मांस का रस और सींगी, खुड्डी, मधुरालिका आदि सब प्रकार की छोटी मछली, सरसों का तैल, बकरी और गाय का घृत, दही, मठा, तक्र, नवीन केले के फल का शाक, तथा केले के फल का शाक, मधु (शहद), जामुन की त्वक और पत्ते, गज पीपल, सोंठ, अद्रक, कटाई, कैथ, बिल का फल, खट्टा और मीठा दोनों प्रकार का अनार, ताड़फल, चांगेरी (चुपतिया), भांग, मजीठ, जायफल, हाऊबेर, ज़ीरा, कुड़े की छाल, धनिया, बकायन तथा सब प्रकार के कसैले पदार्थों का रस और सब अग्नि सन्दीपक हलके अनाज और पीने के द्रव्य और नाभि से दो अंगुल नीचे ऊपर लोहे के शस्त्र को गरम करके दाग देना। यह सब अतिसार रोगी के लिये पथ्य अर्थात् सुखदायी हैं; चिकित्सक को चाहिये कि इनमें से देश, काल, बल तथा प्रकृति के अनुसार यथोचित पथ्य अतिसार रोगी के लिये विधान करे।

अतिसार रोग में जल

दशांशं षोडशांशं वा शतांशं वा शृतं जलम् ।
सुशातं पाचनं ग्राही दीपनं दोषनाशनम् ॥
यथा यथा शृतं तोयं ज्वरातिसारणो भवेत् ।
दीपनं पाचनं ग्राही आरोग्यं च तथा तथा ॥

अर्थ—पकाने पर दशवां, सोलहवां अथवा सौवां भाग रहा हुआ ठण्डा जल पाचन, ग्राही, अग्निसन्दीपन और दोषों का नाश करने वाला होता है । चिकित्सक को चाहिये कि दोष, देश, काल, प्रकृति तथा बल आदि का विचार करके वातातिसारी को दशमांश रहा हुआ पित्तातिसारी को सोलहवां भाग रहा हुआ और कफ तथा सन्निपात अतिसार वाले को पकने पर सौवां भाग रहा हुआ जल ही पीने को देवें क्योंकि इस प्रकार से पका हुआ जल ज्वर और अतिसार रोगी के लिये बड़ा ही लाभ करता है; यदि यह कहें कि यह जल औषधि से भी बढ़ कर काम करता है, तो इसमें अत्युक्ति नहीं है ।

अतिसार रोग में अपथ्य

स्वेदोऽञ्जनं रुधिरमोक्षणमम्बुपानम् ।
स्नानं व्यवायमपि जागरधूमनस्यम् ॥
अभ्यंजनं सकलवेगविधारणं च ,
रूक्षाण्यसात्म्यमशनं च विरुद्धमन्नम् ।
गोधूममाषयववास्तुककाकमाची ,
निष्पाव कन्द मधु शिग्रुरसालपूगम् ।
कूष्माण्डतुम्बि वदरं गुरु चान्नपानम् ,
ताम्बूलमिक्षु गुडमद्यमयोदिका च ।
द्राक्षाम्लवेतसफलं लशुनं च धात्री ,

दुष्टाम्बुमस्तुगृहवारि च नारिकेलम् ।
संस्नेहनं मृगमदोऽखिलपत्रशाकं ,
क्षारा सराणि सकलानि पुनर्नवा च ।
उर्वारुकं लवणमम्लमपि प्रकोपो,
वर्ज्योऽतिसारगदपीड़ितमानवेषु ॥

अर्थ—स्वेद अर्थात् पसीना निकलना, अञ्जन (सुरमा) लगाना, रक्त मोक्षण-फसद (खून निकलवाना), अधिक जल पीना; स्नान करना, स्त्री प्रसङ्ग, रात्री में जागना, धूम पान (हुक्का पीना), नस्य (नस्वार) लेना, तेल अथवा घृत की मालिश करना, मल मूत्रादि वेगों को रोकना, रूखे और अपनी प्रकृति के विरुद्ध अन्नादि का भोजन करना, गेहूं, उड़द, जौ, बथुवा, मकोय, चौलाई, फली वाले शाक, सब प्रकार के कन्द, पत्तों वाले शाक, सुहांजना, आम, सुपारी, पेठा, काशी फल, तुम्बी, बेर, भारी अनाज, पान; ईख या ईख का रस, गुड़, शराब, पोई का शाक, द्राक्ष (दाख), अम्लवतफल, लसन, आमला, दूषित जल, दही का जल, घर में पड़ा हुआ बासी पानी, नारियल अथवा नारियल का जल स्नहन कर्म, तीव्र क्षार और दस्तों के लाने वाले सम्पूर्ण पदार्थ, ककड़ी, खीरा, खरबूजा, पुनर्नवा (सांठ) निमक और खटाई जिन में अधिक डाले गये हों ऐसे पदार्थ । यह सब अतिसार रोग वाले के लिये अपथ्य अर्थात् वर्जित हैं ।

ज्वरातिसार चिकित्सा

ज्वरातिसारयोरुक्तं भेषजं यत्पृथक् पृथक् ।
न तन्मिलितयोः कार्यमन्योऽन्य वर्धते यतः ॥
च्यवमानं ज्वरोत्सृष्टमुपेक्षेत मलं सदा ।
अति प्रवर्तमानन्तु साधयेत्सचिकित्सितैः ॥

अतस्तौ प्रतिकुर्वीत विशेषोक्तचिकित्सितैः ।
लंघनमुभयोरुक्तं मिलिते कार्यं विशेषतस्तदनु ॥
उत्पलषष्टिकसिद्धं लाजामण्डादिकं सकलम् ।

ज्वर तथा अतिसार की पृथक् २ चिकित्सा में, जो औषधियां वर्णन की गई हैं उनको मिलाकर ज्वरातिसार में कभी प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि ज्वरनाशक औषधियां प्रायः भेदक और रेचक होती हैं तथा अतिसारहर औषधियां ग्राही और मलस्तम्भक होती हैं। दोनों प्रकार की विरुद्ध गुणवाली भेदक और ग्राही औषधि के उपयोग करने से ज्वरवर्धक प्रभाव होता है।

ज्वरातिसार में यदि दस्तों द्वारा पक्व मल निकल रहा हो तो उसकी उपेक्षा करनी चाहिये, परन्तु यदि अधिक दस्त होने लगें तो समयानुसार अतिसार नाशक औषधियों द्वारा भली प्रकार चिकित्सा करनी उचित है। ज्वरातिसार में ध्यान रक्खें कि यदि ज्वर के पैदा करनेवाले दोष साम हों और दस्तों में भी सामता हो तो पहिले रोगी को विधिपूर्वक लंघन कराना चाहिये परन्तु यदि रोगी अधिक निर्बल हो तो कमल और धान की खीलों से सिद्ध किया हुआ यूष इत्यादि लघु पदार्थ दें, जो अतिसारहर तथा ज्वर को नष्ट करने वाले हैं।

उत्पलषष्टक कषाय

पृष्टपर्णी, खरैंटी, बेलगिरी, धनियां, सोंठ, कमल—प्रत्येक ४ माशे। इन द्रव्यों का यथाविधि सिद्ध किया हुआ क्वाथ खट्टे अनार का रस २ तोले मिला कर प्रयोग कराने से ज्वरातिसार नष्ट होता है। यह योग वातपित्तोल्वण ज्वरातिसार की एक विशेष औषधि है।

दशमूलादि क्वाथ

२ तोले मिश्रित दशमूल का क्वाथ, सोंठ का चूर्ण ३ माशे डाल कर सेवन कराने से त्रिदोष तथा वातकफोल्वण ज्वरातिसार नष्ट होता है।

बृहत् गुडूच्यादि क्वाथ

गिलोय, अतीस, धनियां, नेत्रबाला, पाढल, चिरायता, इन्द्रजौ

मीठे, लाल चन्दन, खस, पित्तपापड़ा प्रत्येक ३ माशे । इन द्रव्यों का यथाविधि क्वाथ बनाकर शहद मिला कर पिलाने से ज्वरातिसार नष्ट हो जाता है । यह काढ़ा पित्त तथा वातजनित अतिसार और ज्वर को नष्ट करता है, यह रक्तगत ज्वरातिसार की एक श्रेष्ठ औषधि है ।

उत्पलादि चूर्ण

कमल के फूल, अनार का छिलका, कमल केसर, सब द्रव्य समान भाग ले कर चूर्ण बना लें ।

मात्रा—३ माशे तक ।

अनुपान—यह चूर्ण चावलों के जल के साथ पित्तोल्बण ज्वरातिसार में, गिलोय के काढ़े के साथ वातज तथा त्रिदोषज में तथा गुलबुनफ़शे के काढ़े के साथ कफपित्तोल्बण ज्वरातिसार में प्रयोग करने से लाभ होता है । इस चूर्ण का विशेष प्रभाव है कि ज्वर की हालत में हृदय में घबराहट नहीं होने देता ।

सुदर्शन चूर्ण, त्र्युषणादि चूर्ण तथा अतिसारोक्त कर्पूर रस ज्वरातिसार की श्रेष्ठ औषधि है । वैद्य का कर्त्तव्य है कि अवस्थानुसार योग्य अनुपान से उचित औषधि का प्रयोग करें ।

बृहत्कुटजावलेह

कुड़े की छाल ५ सेर एक मन भर पानी में पकावें. जब पकते २ चतुर्थांश शेष रह जावे, तो अग्नि पर से उतार कर ठण्डा करके खूब मल कर छान लें. और इस छने हुए जल को लोहे की कड़ाही में डाल इसमें १ सेर खांड मिला पुनः अग्नि पर रख कर मन्द २ अग्नि पर पकावें । जब पकते २ लेह (चटनी) की तरह हो जावे, तो इन निम्नलिखित द्रव्यों का उत्तम बना हुआ चूर्ण मिला दें । चूर्ण द्रव्य—पाठा, बराहक्रान्ता, विल्वफल की मज्जा, धायफूल, नागरमोथा, अनार का छिलका, अतीस; लोध, मोचरस, राल सफेद, रसाञ्जन (रसौंत), धानियां, ख़स, मुशकबाला प्रत्येक १ तोला । सब का बारीक चूर्ण उपरोक्त लेह में मिला दें और लेह ठण्डा होने पर उसमें १६ तोले मधु मिला दें ।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक दिन में ३--४ बार देने से ज्वरातिसार को नष्ट करता है ।

प्रयोग—इसका प्रयोग ज्वरातिसार की उस अवस्था में विशेष लाभ करता है, जब कि पित्त दोष प्रधान हो और अतिसार में रक्त भी आता हो ।

अनुपान—जल अथवा अर्क इलायची ।

मृत्संजीवनी वटी

पिप्पली १तोला, मीठा तेलिया (विष) १तोला, हिंगुल शुद्ध २तो. । तीनों चीज़ों को नीम्बू के रस से बराबर ३ दिन तक खरल करके मूली के बीज के बराबर गोली बनावें ।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक ३ घण्टे के अन्तर से दिन में ३–४ बार ।

अनुपान—ताज़ा जल, यह औषधि वात कफोल्लवण तथा त्रिदोषज ज्वरातिसार में प्रयोग करनी चाहिये, इसके सेवन से रोगी को शीघ्र लाभ होता है ।

गगन सुन्दर रस

सुहागा, शुद्ध हिंगुल, गन्धक शुद्ध, अभ्रक भस्म समान भाग लेकर दुद्धी बूटी के रस में ३ दिन तक भावना दें, पश्चात् २ रत्ती प्रमाण की गोली बना लें ।

मात्रा—एक २ गोली ।

अनुपान—२ रत्ती श्वेत राल चूर्ण और ४॥ माशा मधु के साथ दिन में ३–४ बार सेवन कराने से रक्त सहित ज्वरातिसार नष्ट होता है, यह रस वातपित्तोल्वण ज्वरातिसार में सेवन कराना चाहिये ।

नोट—इस रस में जो अभ्रक भस्म कही गई वह रसराज सुन्दरोक्त १०० पुटी भस्म डालनी चाहिये ।

सिद्ध प्राणेश्वर रस

शुद्ध गन्धक ४ भाग, पारा ४ भाग, अभ्रक ४ भाग, सज्जीखार, सुहागा, यवक्षार, सैन्धवलवण, सौंचल लवण, नौसादर, समुद्र लवण,

हरड़, बहेड़ा, आमला सोंठ; मरिच; पीपल; इन्द्रजौ; ज़ीरा श्वेत; कालाजीरा; चित्रक; अजवाइन; हींग; वायविडङ्ग, सोये; प्रत्येक का चूर्ण एक भाग; पहले पारे और गंधक की विधि पूर्वक कज्जली बना कर सब वस्तुयें इस में मिला दें और पानी के साथ खरल करके २ रत्ती प्रमाण गोली बनावें ।

मात्रा–१ गोली ।

अनुपान–दिन में तीन चार बार पान के रस के साथ अथवा गरम जल के साथ, यह रस वात कफोल्वण ज्वरातिसार में विशेष लाभ करता है।

नोट—इस रस में अभ्रक भस्म अर्क दुग्ध अथवा अर्क पत्र रस और धतूर पत्र रस से बनी हुई डालनी चाहिये ।

कुटजारिष्ट

कुड़े की छाल १० सेर, महुए के फूल १ सेर, मुनक्का ५ सेर, गम्भारी की छाल १ सेर सब द्रव्य कूट कर ३ मन ८ सेर पानी में पकावें, चतुर्थांश शेष रहने पर अग्नि पर से उतार कर मल कर छान लें और किसी मिट्टी के स्निग्ध पात्र में भर कर उस में १० सेर गुड़ और २ सेर धाय के फूल डाल कर मटके का मुख बन्द करके १५ दिन तक रख छोड़ें, यदि शीतकाल हो तो १ मास तक पड़ा रहने दें । इस समय के बाद इसे निकाल कर छान लें, इस को कुटजारिष्ट कहा जाता है ।

कुटजारिष्ट ज्वरातिसार और अतिसार की उत्तम औषधि है ।

मात्रा—१½ तोले ।

अनुपान –रोगी के बल और अवस्थानुसार जल या अर्क सौंफ में मिला कर देना चाहिये । कुटजारिष्ट के प्रयोग से मन्दाग्नि नष्ट होती है ।

अभ्रक वाटिका

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, कृष्णाभ्रकभस्म प्रत्येक १ तोला । पारे और गन्धक की कज्जली करके इसमें अभ्रक मिला दें फिर काली मरिच १ तोला सुहागा भुना हुआ ६ माशे, त्रिकटु १ तोला सब को एकत्र कर भांगरा, चीता, गोमा, मण्डूकपर्णी तथा भांग इन सब द्रव्यों के रस में एक २ दिन खरल करके मटर के बराबर गोली बना लें ।

मात्रा—१ गोली।

रोगी की अवस्था और बलानुसार योग्य अनुपान के साथ प्रयोग करने से यह वटी ज्वर, अतिसार, ज्वरातिसार तथा संग्रहणी को नष्ट करती है।

पहिले लिखे आनन्द भैरव, अमृतार्णव रस, मृतसंजीवनी रस आदि भी ज्वरातिसार के लिए श्रेष्ठ योग हैं।

संग्रहणी रोग

संग्रहणी के मुख्य लक्षण

द्रवं घनं सितं स्निग्धं सकटिवेदनं शकृत्।
आमबहुसपैच्छिल्यं सशब्दं मन्दवेदनम्॥
पक्षान्मासाद्दशाहाद्वा नित्यश्चापि विमुञ्चति।
आन्त्रकूजनमालस्यं दौर्बल्यं सदनं भवेत्॥
दिवा प्रकोपो भवति रात्रौ शान्तिं च गच्छति।
दुर्विज्ञेया दुर्निवारा चिरकालानुबन्धिनी॥
सा भवेदामवातेन संग्रहग्रहणी मता।

ग्रहणी रोग के निम्न लक्षण मुख्य होते हैं, इन लक्षणों के होने पर ग्रहणी रोग का निदान समझना चाहिये। इस रोग में १५ दिन, १० दिन, एक मास में या सदा ही पतला या गाढ़ा, थोड़ा चिकना, कच्चा, बहुत पतला पिच्छिल, अल्प वेदना सहित तथा कमर में दर्द हो कर मल आता है, आंतों में शब्द होता, आलस्य होता तथा ग्लानि और दुर्बलता आदि लक्षण होते हैं। इस रोग का वेग दिन में अधिक और रात्रि में कम हो जाता है, रोग आम वायु से उत्पन्न होता तथा बहुत देर तक रहता है, इस रोग की परीक्षा करनी कठिन होती और यह कष्ट साध्य रोग है।

असाध्य संग्रहणी के लक्षण

प्रसुप्तिः पार्श्वयोः शूलं तथा जलघटीध्वनिः ।
तं वदन्ति घटीयंत्रमसाध्यं ग्रहणीगदम् ॥

निद्रा अधिक आवे, पसलियों में शूल हो तथा अजीर्ण होवे और जिस प्रकार रहट के घड़े से जल गिरते हुए शब्द होता है, उसी प्रकार आंतों से मल के निकलते समय शब्द होवे उस रोग को घटी यन्त्र नामक रोग कहा जाता है और इस रोग को असाध्य समझना चाहिये ।

सामान्य साध्यासाध्य लक्षण

बालक ग्रहणी साध्या यूनि कृच्छ्रा समीरिता ।
वृद्धे त्वसाध्या विज्ञेया मतं, धन्वन्तरेरिदम् ॥

बालकों की संग्रहणी सुखसाध्य, जवान पुरुषों की कष्टसाध्य और वृद्ध पुरुषों को संग्रहणी होने पर उसे असाध्य समझना चाहिये ।

संग्रहणी रोग में समान वायु के विकृत होने के कारण उदरस्थ तीन स्थान यकृत्, आमाशय तथा क्षुद्रान्त्र में विकार हो जाता है ।

१. ग्रहणी रोगी के यकृतस्थ पित्ताशय में पित्त साधारण मात्रा में उत्पन्न होने की अपेक्षा न्यून या अधिक मात्रा में पैदा होता है जिससे पित्त यथावत् समान मात्रा में पाचक रस के साथ नहीं मिल सकता ।

२. आमाशय में पाचक रस (गैस्ट्रिक जूस) ठीक मात्रा में न निकलने के कारण आमाशय निर्बल होकर पाचन कार्य करने में असमर्थ हो जाता है जिसके कारण रोगी को आम सहित अपक्व मल आता है ।

समान वायु में विकार होने के कारण छोटी आन्तों की अन्नधराकला में शोथ होने से आन्तों में उदक स्रोतों की क्रिया तीव्र और रसवह स्रोतों की क्रिया मन्द हो जाती है जिससे आहार का स्वच्छ रस जो उनमें सदा आकर्षित होता था अब आसानी से आकर्षित नहीं हो सकता और रोगी को पतले दस्त होते हैं ।

चिकित्सक को चाहिये कि सबसे पहिले समान वायु की क्रिया ठीक करने का यत्न करे, इसके साथ ही ग्रहणी कला के विकार, पित्त की न्यूनाधिकता और आमाशय की विकृति को दूर करने का भी ध्यान करे। जब तक यह विकार ठीक नहीं हो पाते, उतनी देर तक संग्रहणी में लाभ होना कठिन ही नहीं परन्तु असम्भव है।

संग्रहणी रोग की एक सर्वोत्तम औषधि

संग्रहणी रोग की सबसे उत्तम तथा अद्वितीय औषधि तक्र है। शास्त्रों का वचन है कि जो संग्रहणी रोग सैंकड़ों दवाइयों के सेवन करने से भी शान्त नहीं होता, वह तक्र के सेवन से इस प्रकार नष्ट होता है जैसे कि सूर्य के प्रकाश से अन्धकार का अस्तित्व नहीं रहता।

हमारा सहस्त्रों बार का अनुभव है कि प्रायः जिन संग्रहणी के रोगियों को अनेकों औषधियों के प्रयोग से भी लाभ नहीं हुआ और जिनके जीवन से रोगी और वैद्य दोनों हताश हो गये थे उनको तक्र का यथाविधि कल्प कराने से लाभ हुआ और वह राज़ी हो गये। हम अपने चिकित्सक भाइयों को सदा यही परामर्श देंगे कि वह संग्रहणी के रोगी को विधि अनुसार तक्र या दूध का कल्प करावें, इस प्रकार इलाज करने से रोगी का अवश्य लाभ होगा जिससे चिकित्सक की कीर्त्ति तथा यश की वृद्धि होगी।

तक्र कल्प विधि

ग्रहणीरोगिणां तक्रं संग्राही लघु दीपनम्।
सेवनीयं सदा गव्यं त्रिदोषशमनं हितम्॥

संग्रहणी के रोगी के लिये तक्र दीपन, पाचन तथा लघु गुण प्रभाव से त्रिदोषनाशक तथा संग्रहणी हर सिद्ध होता है; इसलिये रोगी को सदा तक्र सेवन कराना चाहिये। तक्र सेवन करने की दो विधि हैं—

१. उत्तम गोदधि में चतुर्थांश जल डालकर दही को मथ लें और नौनी घी (मक्खन) निकाल लें, इस शेष पदार्थ को तक्र कहते हैं।

तक्र सेवन कराने के समय रोगी को अन्न तथा जल बिल्कुल न दें तथा इच्छानुसार यथेच्छ मात्रा में सोंठ का चूर्ण मिला कर भूख

में तथा प्यास में भी तक्र सेवन करावें। जब कुछ दिन तक्र का सेवन करने से निर्बलता, रूक्षता, तथा मूत्र और नेत्रों का श्वेत होना आदि लक्षण विदित हों तो किसी प्रकार भी घबराना नहीं चाहिये, इस समय रोगी को फिर से स्निग्धतायुक्त थोड़ा २ तक्र देना शुरू कर दें और क्रमशः बढ़ाते हुए मलाई सहित मथा हुआ घोल रोगी को पिलावें। ग्रहणी रोग के शांत होने पर रोगी को लघु अन्न आदि देना प्रारम्भ कर दें।

२. दूसरी विधि यह है कि रोगी अन्न का सेवन भी करता रहे और नौनी घी सहित तक्र आवश्यकतानुसार सोंठ का चूर्ण मिला कर पीवे; धीरे २ अन्न घटाता जावे और इसी प्रकार तक्र की मात्रा अधिक बढ़ाता जावे यहां तक कि अन्न का बिल्कुल त्याग कर देवे, भूख और प्यास में तक्र का ही सेवन करे। तक्र के कल्प की दशा में रोगी परिश्रम, मैथुन, अधिक बोलना और क्रोध आदि को सर्वथा परित्याग कर देवे। इस प्रकार तक्र का कल्प करने से रोगी का रोग जाता रहता और वह स्वस्थ हो जाता है; स्वस्थ होने पर धीरे २ लघु अन्न देना शुरू कर दें।

ध्यान रहे तक्र का कल्प सदा विधि पूर्वक करना चाहिये, विपरीत विधि से तक्र का सेवन कालकूट विष का प्रभाव करता है।

दुग्धकल्प की विधि "विजय पर्पटी" की व्याख्या में देखो।

टिप्पणी—तक्रकल्प में समयानुसार सोंठ के चूर्ण के अतिरिक्त अन्य औषधियों का भी प्रयोग कर सकते हैं, जिन में से कुछ आगे दी जाती हैं—

दोष भेद से तक्र के साथ निम्न द्रव्यों का प्रयोग करना उचित है

१. वातोल्बण अतिसार में लवण।

२. पित्तोल्बण संग्रहणी में मिश्री।

३. कफोल्बण रोग में त्रिकटु।

पित्तज संग्रहणी में बकरी के दूध का कल्प अति लाभदायक सिद्ध होता है।

संग्रहणी रोग चिकित्सा

ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत् ।
दोषं सामं निरामं च विद्यादत्रातिसारवत् ॥

अतिसारोक्तविधिना तस्यामञ्च विपाचयेत् ।
लंघनैर्दीपनीयैश्च सदातिसारभेषजैः ॥

वस्तिकर्म भिषग् कुर्यान्मन्दाग्नेः रुद्धवर्चसः ।

ग्रहणी दूषित होने की हालत में चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि अजीर्ण रोग के समान ही चिकित्सा करे । दोषों की साम और निराम अवस्था का भली प्रकार निर्णय करके अतिसारोक्त चिकित्सा के क्रम से दीपन, पाचन द्रव्यों द्वारा रोग को नष्ट करने का यत्न करे, इन का प्रयोग करने से पूर्व लंघन करा लेना भी अति आवश्यक है ।

जिस वातजन्य ग्रहणी में अग्नि मन्द हो और मल का अवरोध हो वहां वैद्य का कर्त्तव्य है कि वस्तिकर्म का प्रयोग करें ।

जातिफलादि चूर्ण

जायफल, लौंग, इलायची छोटी, तेजपत्र; दालचीनी; नागकेसर; कर्पूर; चन्दन श्वेत; श्वेत तिल; चीते की छाल; वंशलोचन, अगर; तालीशपत्र; आंवला; बड़ी हरड़ की छाल, कलौंजी; सोंठ; वायविडङ्ग; काली मरिच; पीपल सब द्रव्य समान भाग लें और सब द्रव्यों के समान भांग मिला कर विधिवत् चूर्ण बना लें तथा समस्त चूर्ण के बराबर मिश्री मिला लें; यह जातिफलादि चूर्ण है ।

मात्रा—३ माशे तक ।

यह चूर्ण शहद में मिला कर रोगी को चटाने से सामान्य ग्रहणी के सिवाय क्षयजन्य अतिसार तथा उस की निर्बलता में भी अति लाभ होता है ।

ग्रहणी गजेन्द्र वटी

पारा शुद्ध, गन्धक शुद्ध, लोहसार, शंखभस्म, सुहागे की खील, हींग, कचूर, तालीश पत्र, नागरमोथा, धनिया, जीरा श्वेत, सेंधा नमक, धाय के फूल, अतीस, सोंठ, अगर, बड़ी हरड़ का छिलका, भिलावा शुद्ध; पत्रज; जायफल; लौंग; दालचीनी; इलायची छोटी; नेत्रबाला; बेलगिरी; मेथी के बीज सब द्रव्य समान भाग लेकर ३ दिन भांगरे के रस में खरल कर के २ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—४ गोली।

अनुपान—बकरी का दूध या दही। रोगी को केवल दूध ही पिलावें।

दुग्धवटी

अहिफेन शुद्ध तथा शुद्ध मीठा तेलिया प्रत्येक १॥ माशा; लोहभस्म ५ रत्ती; कृष्णाभ्रकभस्म ६ रत्ती सब द्रव्यों को गाय के दूध में खरल करके एक रत्ती की गोली बना लें। यह दुग्धवटी है।

मात्रा—अधिक से अधिक ४ गोली है।

अनुपान—इसका अनुपान गोदुग्ध है, इसके सेवन में पहिले रोगी को एक गोली प्रातः और एक सायं दूध के साथ दें। इस औषधि के साथ दूध के सिवाय अन्य सब पदार्थ वर्जित हैं; रोगी पहिले दिन आध सेर दूध पीवे और प्रतिदिन एक पाव दूध बढ़ाता रहे। इस औषधि के सेवन के बाद लवण तथा जल सर्वथा न देने चाहिये। इस के प्रयोग से पुरानी संग्रहणी और शोथ नष्ट हो जाती है।

दुग्धवटी २.

शुद्ध पारा, गन्धक, मीठा तेलिया, शिंगरफ, संखिया श्वेत, कृष्णाभ्रक भस्म, ताम्रभस्म, लोहसार, हरतालवर्की शुद्ध; अफ़ीम शुद्ध सब द्रव्य समान भाग ले कर गोदुग्ध से यथाविधि खरल कर के ४ चावल की गोली बना लें।

यह बटी उपरोक्त विधि से प्रयोग करनी चाहिये। यह संग्राही तथा शोथ की एक अमूल्य औषधि है, इस के सेवन के समय रोगी २५ सेर तक पक्का दूध पी सकता है। यह हमारी अनुभूत औषधि है।

रसपर्पटी

समभाग शुद्ध पारे और गन्धक की यथाविधि कज्जली बना कर किसी लोहे की कड़ाही में डाल कर अग्नि पर रखें और किसी लोहे की सलाई से चलाते रहें, पिघल जाने पर गाय के गोवर पर केले का पत्ता बिछा कर उस पर इसे डाल दें और इसके ऊपर से दूसरा पत्ता बिछा कर दबा दें, इस प्रकार जो पर्पटी (पपड़ी) बन जावेगी यही रस पर्पटी है । यह पर्पटी गृहणी रोग, क्षय, अग्निमांद्य तथा नाना प्रकार की पीड़ाओं को अति लाभ करती है ।

मात्रा—४ रत्ती तक ।

अनुपान—भुना हुआ जीरा ।

दुग्धवटी के प्रयोग के समान इसके साथ भी रोगी को केवल दूध ही पिलाना चाहिये । हमारा अनुभव है कि पर्पटी के साथ "हिंग्वादि चूर्ण" १ माशा और लोकनाथ रस २ रत्ती देते हुए तक्र को कल्प कराने से रोगी को अति लाभ होता है; इसके साथ रोगी को १० सेर तक तक्र पिला सकते हैं ।

लोह पर्पटी

पारा शुद्ध, गन्धक शुद्ध तथा लोह भस्म प्रत्येक २ तोले लेकर विधिवत् खरल में एक साथ रगड़ें और पूर्वोक्त विधि से पर्पटी बना लें, यह लोह पर्पटी है ।

मात्रा—इसकी मात्रा १ रत्ती से आरम्भ करके थोड़ी २ बढ़ानी चाहिये ।

अनुपान—दूध, धनियें तथा जीरे का काढ़ा या भास्कर लवण चूर्ण के साथ दें ।

यकृत् अथवा आन्तों की ग्रन्थियों में शोथ होने की दशा में यह अति लाभदायक है और समस्त शरीर के शोथ को शान्त करती है ।

स्वर्ण पर्पटी

पारा शुद्ध ८ तोले और स्वर्णभस्म १ तोला । इन दोनों द्रव्यों को खरल कर लें, जब पारे में सुवर्ण अच्छी तरह मिल जावे, तब आठ तोले

शुद्ध गन्धक मिलाकर ३ दिन निरन्तर खरल करें और विधिपूर्वक पर्पटी बना लें। इसको स्वर्ण पर्पटी कहा जाता है ।

मात्रा—१ रत्ती से ४ रत्ती तक।

अनुपान—१॥ माशे भुने हुए श्वेत जीरे के अनुपान से शहद से चटाकर ऊपर से दूध पिला दें ।

दुग्धवटी के समान इस औषधि के साथ भी रोगी को दूध या छाछ ही देनी चाहिये। यह ग्रहणी तथा यक्ष्मा की श्रेष्ठ औषधि है ।

पंचामृत पर्पटी

गन्धक शुद्ध ८ तोले, पारा शुद्ध ४ तोले, लोह भस्म २ तोले, कृष्णाभ्रक भस्म १ तोला, ताम्रभस्म ½ भाग। सब द्रव्यों को एकत्र कर यथाविधि पर्पटी बना लें । इसे पञ्चामृत पर्पटी कहते हैं ।

मात्रा—२ रत्ती तक ।

अनुपान—उपरोक्त अनुपानों में योग्य अनुपान के साथ यथाविधि सेवन कराने से संग्रहणी आदि रोग नष्ट होते हैं ।

विजय पर्पटी

आमलेसार गन्धक लेकर पहिले ७ दिन तक उसे भांगरे के रस में निरन्तर खरल करते रहें, फिर सुखाकर आग पर पिघलाने के बाद भांगरे के रस में ही बुझा कर शुद्ध करें इस प्रकार गन्धक को ७ बार शुद्ध कर लें। यह शुद्ध गन्धक ५ तोले, पारा शुद्ध ४ तोले, रौप्यभस्म २ तोले, स्वर्ण-भस्म १ तोला, वैक्रान्त (हीराभस्म) ६ माशे, मोती भस्म ६ माशे । सब द्रव्यों को खरल करके उपरोक्त विधि से पर्पटी बना लें। इसका नाम विजयपर्पटी है । यह पर्पटी २ रत्ती की मात्रा में सेवन करने से दुर्निवार ग्रहणी, शोथ, आमशूल, अतिसार, यक्ष्मा, पाण्डु, कामला, अम्लपित्त, वातरक्त, विषमज्वर और प्रमेह आदि विविध रोगों का निराकरण करती है और रोगी क्रमशः बलवान होता जाता है ।

अनुपान—दूध ।

मात्रा—यह पर्पटी २ रत्ती से आरम्भ करके चार २ चावल मात्रा में प्रतिदिन बढ़ा कर १० रत्ती तक ले आवें; इससे अधिक मात्रा में कदापि

प्रयोग नहीं करना चाहिये। यदि इस पर्पटी को सेवन करने वाले रोगी को वात तथा पित्त प्रबल हो तो नारियल का जल पिलाना चाहिये; यदि रोगी का आमाशय शुद्ध हो और अपना काम ठीक प्रकार करने लगे तो रोगी को धनियां, सोंठ; जीरा, हींग और सैंधव आदि से सिद्ध लघुपथ्य भी दे सकते हैं अन्यथा दूध के सिवाय कोई अन्य पदार्थ नहीं देना चाहिये।

हंसपोटली रस

वराटभस्म; सोंठ, काली मरिच, पीपल, सुहागे की खील, मीठा तेलिया, गन्धक शुद्ध, पारा शुद्ध सब पदार्थ समान भाग लेकर यथाविधि खरल करके नींबू के रस में घोट कर २ रत्ती की गोली बना लें। दिन में तीन चार गोली दे सकते हैं।

आमयुक्त गृहणी में यह रस लाभ दायक है।

कुटजावलेह और लाई चूर्ण भी अनुपान के साथ देने से गृहणी में लाभ करते हैं।

ग्रहणी शार्दूल वटी

जायफल, लौंग, काला जीरा, कूठ कड़वा, सुहागे की खील, नौसादर, दालचीनी, इलायची छोटी, धतूरे के बीज, अफीम प्रत्येक एक २ तोला ले एकत्र खरल कर के भांग के रस में २ रत्ती की गोली बना लें, यह ग्रहणी शार्दूल रस है। यह औषधि गृहणी रोग के लिए अति लाभकर है।

मात्रा–३ गोली तक।

अनुपान–यह वटी रूक्ष है इसलिए चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि अवस्थानुसार निम्न अनुपानों द्वारा इस का प्रयोग करें। पित्त प्रधान रोग में धनियें तथा नागरमोथे के क्वाथ से, वात तथा कफ प्रधान रोग में मधु से तथा पित्त प्रधान रोग में अनार के रस से औषधि का प्रयोग करना चाहिये।

महाराज नृपति वल्लभ

लोहभस्म को आमले की रस की १०० भावना दे कर ३ तोला लें, अभ्रकभस्म १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, मुक्ताभस्म १ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला, रौप्यभस्म, काकड़ासिंगी; सुहागा; गजपीपल; जमालघोटे की जड़, मरिच, सेंधा नमक; पत्रज; अजवायन देसी; नेत्रबाला; सोंठ; धनियां;

वायविडङ्ग; शुद्ध कपूर; चित्रक, मीठा तेलिया;पारा शुद्ध; गन्धक शुद्ध । प्रत्येक १ तोला । शुद्ध निशोथ २ तोले, लौंग, जायफल, जावित्री, दालचीनी प्रत्येक आठ २ तोला, विड़लवण समस्त द्रव्यों से आधा, छोटी इलायची सब द्रव्यों के समान । सब द्रव्यों को यथाविधि खरल करके बकरी के दूध और निम्बू के रस की सात २ भावना देवें और २ रत्ती की गोली बना लें। यह महाराज नृपतिवल्लभ रस है ।

मात्रा—४ रत्ती से १० रत्ती तक ।

अनुपान—संग्रहणी रोग में यह औषधि रोगी को दोनों समय प्रातः सायं शहद से चटावें, आहार में केवल छाछ ही देवें । इसके प्रयोग से संग्रहणी अवश्य नष्ट हो जाती है।

मन्दाग्नि में कहे हुए लवणभास्कर, दाडिमाष्टक चूर्ण आदि भी योग्य अनुपान के साथ विधिवत् प्रयोग करने से लाभ होता है ।

हिरण्य गर्भ पोटली रस

पारा १ भाग, स्वर्ण भस्म २ भाग, मुक्ता भस्म ४ भाग, शंख भस्म ६ भाग, गन्धक ३ भाग, वराट ३ भाग, सुहागा १/४ भाग । प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बना लें। पश्चात् सब चीज़ों को एकत्र खरल में डाल कर बराबर ३ दिन पर्यन्त निम्बू के रस के साथ खरल करें और गोलाकार बना कर छाया में सुखा लें, फिर शराव सम्पुट में बन्द करके ३० बनोपलों में फूँक दें स्वांग शीतल होने पर रस को निकाल कर खरल करके सावधानी से रक्खें । यह हिरण्यगर्भ पोटली रस कहलाता है ।

मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक ।

अनुपान—गोघृत १॥ माशा, मधु ६ माशा, काली मरिच का चूर्ण २ रत्ती दिन में २ बार प्रातः सायं सेवन करावें। यह रस ग्रहणी रोगी को ऐसी दशा में देना चाहिये, जबकि साथ ज्वर भी आता हो । यह ग्रहणी, मन्दाग्नि और विषम ज्वर की अपूर्व औषधि है ।

पंचामृत लोह मण्डूर

लोहभस्म, ताम्रभस्म, गन्धक शुद्ध, अभ्रक भस्म, पारा, सोंठ, काली मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आमला, नागरमोथा, वायविडङ्ग,

चित्रक, पिप्पला मूल, चिरायता, देवदारु, हल्दी, दारहल्दी, पोहकरमूल, अजवायन, ज़ीरा काला, श्वेतज़ीरा, कचूर, धनियां, चव्य—प्रत्येक १ तोला, मण्डूर भस्म १३ तोला; गोमूत्र ५२ तोला; पुनर्नवा १०४ तोला । प्रथम गोमूत्र और पुनर्नवा क्वाथ में मण्डूर भस्म डाल कर पकावें, जब लेहवत् गाढ़ा हो जावे, तो सब वस्तुओं को मिलाकर अग्नि पर से उतार लें और २ से ४ रत्ती तक गोली बना लें । यह रस पुराने शोथ युक्त ग्रहणी रोग में प्रयोग करना चाहिये, इसके सेवन से यकृत्; प्लीहा के दोष तथा पाण्डु; और कामला भी नष्ट हो जाते हैं; उदर के प्रायः समस्त विकारों के लिये रामबाण औषधि है ।

ग्रहणी शार्दूल रस

पारा १ तोला, गन्धक २ तोला दोनों की कज्जली बनावें, फिर इसमें सोलहवां भाग स्वर्ण भस्म और लौंग, निम्बपत्र, जावित्री, जायफल, छोटी इलायची प्रत्येक २ तोला । सब का बारीक चूर्ण करके कज्जली में मिला दें और दो सीपों में बन्द करके ऊपर से कपड़ौटी करके, १ सेर बनकरडों की निर्धूमाग्नि में रख कर लघु पुट दें । स्वांग शीतल होने पर निकाल कर पीस कर शीशी में भर लें ।

मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक ।

अनुपान—सौंफ के जल अथवा गरम जल से दिन में ३-४ बार। यह प्रसूता स्त्री की ग्रहणी, मन्दाग्नि, अतिसार में विशेष लाभ करती है ।

नोट—ग्रहणी अधिकार में जितने रस अथवा पर्पटी आदि वर्णन किये गये हैं, इनमें प्रायः लोह अभ्रक और स्वर्ण का अधिक प्रयोग होता है, चिकित्सक लोग प्रायः इन भस्मों को जैसी उनके पास बनी हुई होती हैं, मिला देते हैं; जिससे यथोचित लाभ नहीं होता । हमारे विचार में इन रसों में शृङ्ग वेरादि गण द्वारा भस्म की हुई लोह और अभ्रक डालनी चाहिये, और स्वर्ण तथा रजत की गंधक, पारे और तुलसी पत्र रस द्वारा सिद्ध की हुई भस्म डालनी चाहिये ।

पिप्पल्यासव

पिप्पली, काली मिरच, चव्य, हल्दी, चित्रकमूल छाल, नागरमोथा, वायविडङ्ग, सुपारी, लोध, पाठा, आंवला, एलुवालक, खस, लाल चन्दन, कुष्ठ, लौंग, तगर, जटामांसी, दालचीनी, छोटी इलायची, तेज पत्र, प्रियंगू, नाग केसर प्रत्येक २ तोला, पानी ३२ सेर, गुड़ १५ सेर, धाय के फूल ½ सेर, द्राक्षा ३ सेर। सब को एक चिकने बर्तन में भर कर मुख बन्द कर दें। यदि शीतकाल हो तो २० दिन और उष्णकाल हो तो १५ दिन के पश्चात् बर्तन का मुख खोल कर देखें यदि आसव भली प्रकार नितर गया हो, तो इस नितरे हुए पदार्थ को बोतलों में भर लें।

मात्रा—१ तोला से २ तोला तक।

यह ग्रहणी, अग्निमांद्य तथा अर्शादि उदर रोगों की परमौषधि है।

अनुपान—यह आसव ग्रहणी रोगी को उस समय सेवन कराना चाहिये जबकि रोगी को पथ्य में अन्न प्रयोग कराने लग जावें। भोजनोत्तर दोनों काल इसकी एक २ मात्रा देने से बड़ा ही लाभ होता है।

तक्रारिष्ट

तक्र (गोदधि की छाछ) ८ सेर, अजवाइन, आंमला, हरड़, काली मिरच प्रत्येक १० तोले; पांचों लवण २० तोले। अजवाइन आदि वस्तुओं का चूर्ण करके तक्र में मिलाकर किसी चिकने पात्र में बन्द कर दें और उष्णकाल में चौथे दिन; शीतकाल में आठवें दसवें दिन खोल कर नितरे हुए अरिष्ट को बोतलों में भर लें।

मात्रा—२ तोले से ५ तोले तक।

अनुपान—दोनों समय भोजन के पश्चात् सेवन करावें।

यह अरिष्ट भी उसी समय लाभ करता है; जबकि चिकित्सक ग्रहणी रोगी को अन्न का पथ्य देने लगे।

ग्रहणी रोग में पथ्य

निद्रा छर्दनं लङ्घनं चिरभवा ये शालयः षष्ठिकाः,
मण्डो लाजाकृतो मसूरतुवरीमुद्गप्रसूता रसाः।

निःशेषोद्धृतसारमेव दधि यत्सत्क्षीर गवां छागयोः,
वा नवनीतमेव दधिजं तद्भूत्पयः सम्भवम् ।
छागान्याज्य पयो दधीन तिलजं तैलं सुरा माक्षिकं;
शालूकं वकुलं च दाडिम युगम् नव्यानि भव्यानि च ।
रम्भायाः कुसुमं फलं, च तरुणं, विल्वं च शृङ्गाटकं,
चांगेरी विजया कपित्थ कुटजाजाजी कसेरूणि च ।
तक्रं काञ्चटसौनिषण्णदलकं जातिफलं जाम्बवम्,
धन्याकानि च तिन्दुकानि च महानिम्बोऽरुणा पेलवम् ।
क्रव्यालावशशैण तित्तर रसाः क्षुद्रा झषाः सर्वशः,
खुडीशो मधुरालिका च खलिशः सर्वः कषायो रसः ।
नाभेर्द्व्यंगुलकादधोर्ध शशिवद्वंशास्थि मूलं तथा,
दाहः प्रज्वलितायसा च कथितं पथ्यं ग्रहण्यातुरे ।

अर्थ--दिन में सोना तथा अधिक सोना, वमन कराना, लंघन करना, पुराने साठी चावल, दधि खीलों का मांड, मसूर, अरहर, मूंग का यूष (रस), गो दधी का तक्र (छाछ) जिस में से मक्खन निकाल लिया हो, बकरी का दही तथा दूध में से निकाला हुआ मक्खन, तथा घृत, बकरी का दूध दही, तिल का तैल, मदिरा (शराब), मधु, दोनों प्रकार खट्टे मीठे अनार, केले के फल तथा कच्चे फलों का शाक, विल्वं फल, चूके का शाक, भांग, कैथ, कुड़ाछाल; जीरा, कसेरु, जायफल, जामुन, धनिया, तेन्दुक फल, बकायन, मंजीठ; अफीम, मांस खाने वाले पक्षियों का मांस रस अथवा हिरण ततिर के मांस का रस, खुडीश मधुरालिका नाम की अथवा सब प्रकार की छोटी मछली, सब प्रकार कसैले रस, नाभि से दो अंगुल नीचे तथा वंशास्थि (रीढ़ की हड्डी) पर अर्ध चन्द्रमा के समान तप्त लोहे से दाग देना; यह सब ग्रहणी रोगी के पथ्य अर्थात् हितकर हैं ।

ग्रहणी रोग में अपथ्य

रक्त स्रुतिं जागरमम्बूपानं स्नानं स्त्रियं वेगविनिर्ग्रहं च ।
नस्याञ्जनस्वेदनधूमपानं श्रमं विरुद्धाशनमातपं च ॥
गोधूमनिष्पाव कलायमाषयवाद्रकच्छत्रकराजमाषान् ।
उपोदिकं वास्तुककाकमाचीकूष्माण्डतुम्बीमधुशिग्रुकन्दान् ॥
ताम्बूलमिक्षुकं बदरं रसालमूर्वारुकं पूगफलं रसोनम् ।
धान्यम्लसौवीरतुषोदकानि दुग्धं गुडं मस्तु च नारिकेलम् ॥
पुनर्नवावार्हतवैणवानि सर्वाणि शाकानि च पत्रजानि ।
दुष्टाम्बु गोवारि कुरंगानामि क्षारं समस्तानि साराणि चापि ॥
द्राक्षा तथाम्लं लवणं रसं च गुर्वन्नपानं सकलं च पूपम् ।
वैद्यश्चिकित्सन् ग्रहणी विकारं विवर्जयेत्सन्ततमप्रमतः ॥

अर्थ—रुधिर मोक्षण अर्थात् फसद करना, रात्रि में जागना, बहुत जल पीना, स्नान करना, स्त्री प्रसंग, मल मूत्रादि वेगों को रोकना, नसवार लेना; अञ्जन लगाना, पसीना निकालना; हुक्का पीना; परिश्रम करना; विरुद्ध भोजन; धूप में बैठना, अग्नि सेंकना, गेहूं (लेविया) आलू, मटर, उड़द, जौ, राजमाष (हरवां) पूई पेठा, तूम्बी, वथुआ, मकोय, सुहाञ्जना तथा सर्व प्रकार कन्दादि का शाक, ईख, बेरं, खीरा ककड़ी, सुपारी, लहसन, धान की कांजी, जौ की कांजी, दूध, गुड़, दही का मक्खन सहित घोल, नारियल सब प्रकार के पत्तों का शाक, दूषित जल; गोमूत्र, कस्तूरी, यवक्षार; तथा सब प्रकार के द्रावक क्षार, द्राक्षा, सब प्रकार घी में पके हुए पदार्थ, यह सब पदार्थ तथा कर्म ग्रहणी वाले रोगी के लिए अपथ्य अर्थात् हानिकारक जानने । अतः वैद्य को चाहिये कि इन सब को रोगी के लिए वर्जित कर दें ।

अर्शोरोगाधिकार

जब शरीरस्थ दोष, वात, पित्त तथा कफ आदि रसरक्त आदि धातुओं को दूषित कर देते और व्यान वायु नियम विरुद्ध कार्य करने लगती है, उस समय गुदा, नाभि, नाक तथा मेढ़ (उपस्थेन्द्रिय) में मांस के अंकुर अर्थात् मस्से पैदा हो जाते हैं, इनको अर्शरोग कहा जाता है तथा लौकिक भाषा में बवासीर कहते हैं। आयुर्वेद में अर्शरोग के निम्न ६ भेद माने जाते हैं—

वातज	श्लेष्मज	रक्तज
पित्तज	सन्निपातज	सहज

सामान्यतया बवासीर के दो भेद ही संसार में माने जाते हैं—

वातार्श (वादी) तथा रक्तार्श (खूनी)

जैसे कहा है—

सामान्यतो बवासीरो रीही ख़ूनी द्विधा भवेत्।
ख़ूनी ह्यपि न वातस्य बिना कोपेन सम्भवेत्॥

बवासीर साधारणतया बादी (रीही) और ख़ूनी (रक्तार्श) दो प्रकार की समझी जाती है, परन्तु ध्यान रहे कि खूनी बवासीर भी वायु के प्रकोप के बिना कभी नहीं होती अर्थात् अर्शरोग में वायु का प्रकोप होना आवश्यक है।

वातार्श रोग में गुदा में मस्से होने के कारण प्रवाहण, विसर्जन तथा संवरण आदि कार्य ठीक न हो सकने के कारण अपान वायु प्रातिलोम हो जाती और उदावर्त आनाह आदि नाना प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं। वातार्श में प्रायः मस्सों में बोझ, खुजली, तथा शूल अधिक होता है: कभी कभी मलत्याग के समय शूल इतना होता है कि रोगी शूल से डरता हुआ मलत्याग के लिये ही नहीं जाता, जिससे रोगी को उदावर्त हो जाता और परिणाम अच्छा नहीं होता। कभी २ ऐसा भी होता है कि मस्से गुदा से

बाहिर निकले आंत और फिर गुदा में प्रविष्ट नहीं होते, बल्कि बाहर ही जुड़ जाते हैं इसको छपकली निकलना कहते हैं।

रक्तार्श रोग में मस्सों में खुजलाहट और दाह आदि अधिक होते हैं; मस्सों में से रुधिर कभी तो मल के साथ मिला हुआ और कभी मल-त्याग के बाद बून्द २ करके टपकता है । कभी २ रक्त इतनी मात्रा में आता है कि रोगी को मूर्छा हो जाती है, निरन्तर रुधिर स्राव होते रहने के कारण रोगी का रङ्ग बरसाती मेंढक के समान पीला हो जाता है।

साध्यासाध्य अर्श के सामान्य लक्षण

बाह्यायान्तु वलौ जातान्येकदोषोल्वणानि च ।
अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च ॥
सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तरां वलिम् ।
जायन्तेऽर्शांसि संश्रित्य तान्यसाध्यानि निर्दिशेत् ॥

वाह्य और आभ्यन्तर भेद से अर्श दो प्रकार की समझी जाती है।

१. बाह्यार्श अर्थात् जो बवासीर गुदा की सम्बरणी नामक बलि में पैदा हुई हो एक दोष के प्रकोप से उत्पन्न हो तथा जिसको हुए अभी एक वर्ष न व्यतीत हुआ हो उस बवासीर को सुखसाध्य समझना चाहिये।

२. जो बवासीर गुदा के अन्दर प्रवाहिणी नामक तीसरी वलि में हुई हो तो उसे आभ्यन्तरार्श कहा जाता है। जो अर्श जन्म से ही हो तथा आभ्यन्तरार्श। इन दोनों को असाध्य समझना चाहिये। त्रिदोषज बवासीर भी असाध्य ही समझी जाती है।

कष्टसाध्य अर्श के लक्षण

द्वन्द्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च ।
कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च ॥

जो बवासीर गुदा के अन्दर दूसरी विसर्जनी नामक वलि में हो अर्थात् जिसके मस्से दूसरी वालि में हों- जिनमें कोई से दो दोष प्रधान हों तथा जो एक साल की पुरानी हो गई हो उस रोग को कष्टसाध्य समझना चाहिये।

याप्य अर्श के लक्षण

शेषत्वादायुषस्तानि चतुष्पादसमन्वये ।
याप्यन्ते दीप्तकायाग्नेः प्रत्याख्येयान्यतोऽन्यथा ।

जिस रोगी की आयु शेष हो- चिकित्सा के चारों पाद ठीक हों, रोगी की जठराग्नि दीप्त हो तथा रोगी बलवान हो तो उस अर्शो रोगी को याप्य समझना चाहिये ।

इसके विपरीत लक्षणों वाले रोगी को असाध्य समझना चाहिये ।

अरिष्ट लक्षण

हस्ते पादे नाभ्यां गुदे वृषणयोस्तथा ।
शोथो हृत्पार्श्वशूलं च यस्यासाध्योऽर्शसोहि सः ।
हृत्पार्श्वशूलं संमोहश्छादरङ्गस्य रुग्वज्वरः ।
तृष्णा गुदास्यपाकश्च निहन्युर्गुदजातुरम् ॥
तृष्णारोचकशूलार्तमतिप्रस्रुत शोणितम् ।
शोथातिसार संयुक्तमर्शांसि क्षपयन्ति हि ॥

जिस बवासीर वाले रोगी के हाथ, पैर, नाभि, गुदा और अण्डकोष में शोथ हो, छाती और पसलियों में अधिक दर्द हो तथा मोह, तृषा, वमन, शरीर में पीड़ा, ज्वर, अरुचि, और गुदापाक आदि लक्षण हों उस रोगी की आशा छोड़ देना चाहिये । अधिक रक्त निकलने के कारण यदि रोगी निर्बल हो गया हो और हृदय की क्रिया भी मन्द पड़ गई हो तथा साथ ही दस्त भी आते हों तो उस रोगी का भी बचना कठिन होता है ।

अर्शरोग में अग्नि रक्षा

अर्शोऽतिसार ग्रहणी विकाराः प्रायेण चान्योऽन्यनिदानभूताः ।
सन्नेऽनले न सन्ति दीप्ते रक्षेददस्तेषु विशेषतोऽग्निम् ॥

प्रायः अतिसार, संग्रहणी; बवासीर आदि रोग यकृत् की क्रिया मन्द होने के कारण होते हैं, अतः चिकित्सक का कर्तव्य है कि इन रोगों में अग्नि की रक्षा का विशेष ध्यान रखे ।

स्त्रियों में कभी २ गर्भावस्था के कारण अर्श हो जाती है उस अवस्था में गर्भरक्षा का विशेष ध्यान रक्खे ।

अर्शरोग की चिकित्सा

भित्वा विबन्धाननुलोमाय यन्मारुतस्याग्निबलाय च ।
तदन्नपानौषधमर्शिना सेव्यं विवर्ज्यं विपरीतमस्मात् ॥
आवर्तमानमुच्छूनकठिनेभ्यो हरेदसृक् ।
अर्शोभ्यो जलजाशस्त्रसूचिकूर्चै पुनः पुनः ॥
शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्न व्याधिरुपशाम्यति ।
रक्तदुष्टे भिषक्तस्माद्रक्तमेवावसेचयेत् ।
दुष्टे स्रावे शोधनं कार्यं लंघनं च यथाबलम् ।
यावच्च दोषैः कालुष्यं स्रुतेस्तावदुपेक्षणम् ॥
यत्तु प्रक्षीण दोषस्य रक्तं वातोल्वणस्य च ।
स्नेहैस्तच्छोधयेद्युक्तैः पानाभ्यंजनबस्तिभिः ॥
यत्तु पित्तोल्वणं रक्तं घर्मकाले प्रवर्तते ।
स्तम्भनीयं तदेकान्तान्न चेद्वातकफानुगम् ॥
दुष्टवास्त्र पित्तं प्रबल बलौ च कफानिलै ।
शीतोपचारः कर्तव्यः सर्वथा तत्प्रशान्तये ॥
वातोल्वणानि प्रायेण भवन्त्यस्रेति निःसृते ।
अर्शांसि तस्मादधिकंज्जत्येन्नसमाचरेत् ॥

पहिले कह चुके हैं कि सब प्रकार की बवासीर में वायु का प्रकोप होना आवश्यक है इसलिये अर्श की चिकित्सा में वायु को प्रधान मान कर ही इलाज करना चाहिये। वायु को अनुलोम करने तथा विबन्ध आदि को नष्ट करने के लिये उचित औषधियों तथा योग्य अन्न-पान की व्यवस्था करनी उचित है, रोगी को वातनाशक ही पथ्य देना चाहिये।

वातार्शस् में वैद्य का कर्तव्य है कि पहिले, धूम, लेप और तैल आदि द्वारा मस्सों को नष्ट करने का यत्न करे, यदि किसी प्रकार भी शीत, उष्ण, रूक्ष तथा स्निग्ध आदि क्रियाओं द्वारा लाभ न हो और वायु का अधिक प्रकोप होने के कारण मस्सों में काठिनता और शूल अधिक हो, तो जोकें लगाकर, सूई द्वारा या कुर्ची आदि शस्त्र से मस्सों में क्षत करके रुधिर निकाल दें। इस युक्ति से फूले हुए मस्से निचुड़ जावेंगे और शूल तथा शोथ आदि भी शान्त होंगे।

यदि वातार्श में मल शुष्क हो जावे और वायु के प्रातिलोम होने के कारण उदावर्त हो तो वैद्य को उचित है कि फलवर्ति (श्याफा) या तीक्ष्ण द्रव्यों द्वारा अनुवासन वास्ति का प्रयोग करें या निरूहण वस्ति दें। आनाह तथा मन्दाग्नि होने की हालत में दीपन, पाचन और वातानुलोमन द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये।

रक्तार्श में प्रायः रक्त के अधिक निकल जाने के कारण वायु प्रबल हो जाती है, इसलिये वातचिकित्सा को प्रधान मानकर रक्तार्श की चिकित्सा करनी चाहिये। यदि रक्तार्श में रुधिर अधिक निकलता हो तो यह निर्णय करें कि मस्सों से निकलने वाला रक्त शुद्ध है या अशुद्ध। यदि वह लाल वर्ण का और शुद्ध प्रतीत हो, तो उसे तिक्त द्रव्यों के प्रयोग से तत्काल रोकने का यत्न करें तथा यदि रोगी जवान और बलवान हो तो उसे यथा-शक्ति लङ्घन भी कराना उचित है।

यदि निकलने वाला रक्त अशुद्ध हो तथा अशुद्ध रक्त के निकलने के बाद भी शरीर शुद्ध न हो तथा रक्तस्राव से रोगी के शरीर में वायु के प्रकोप का भय हो, तो उस दशा में रक्त को न निकालें किन्तु वायुनाशक अभ्यंग आदि क्रियाओं द्वारा दोष को नष्ट करने का यत्न करें।

यदि रक्त के दुष्ट होने का कारण पित्त हो तो उस अवस्था में शीतवीर्य द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये। पित्तोल्वण अर्श में रक्त का उचित मात्रा में शरीर से निकल जाना ही उचित है किन्तु कफ तथा वातो-ल्वण बवासीर में रक्तस्राव करना कभी लाभकर नहीं होता।

बवासीर को नष्ट करने की युक्तियां

१. वातानुलोमक, अग्निवर्धक, पित्तनाशक तथा कफनाशक द्रव्यों का सेवन ।

२. शस्त्रक्रिया या दाहकर्म्म द्वारा मस्सों का नाश करना ।

३. धूप देकर मस्सों के नाश करने का प्रयत्न करना ।

४. लेप द्वारा मस्सों की चिकित्सा ।

५. गुदा तथा मस्सों पर तैल; मरहम आदि स्निग्ध पदार्थ लगाना ।

६. मस्सों पर पुल्टिस या अन्य पदार्थों की टिकिया बांधना ।

७. वर्त्ति (श्याफा) (सपाज़ीटरी......का प्रयोग ।)

८. अनुवासन या निरूहण वस्ति का प्रयोग करना ।

९. जोकों तथा शस्त्र द्वारा रुधिर निकालना ।

१०. क्षारसूत्र का उपयोग करना ।

प्राचीन समय में बवासीर की चिकित्सा में प्रायः शस्त्रक्रिया या दाहकर्म्म द्वारा मस्सों को नष्ट किया जाता था, परन्तु आज कल दाहकर्म्म द्वारा मस्सों को नष्ट करने की प्रथा तो प्रायः बिलकुल ही नष्ट हो चली है, भारत में कहीं २ पर शिक्षाहीन अनाड़ी आदमियों को दाहकर्म्म द्वारा मस्सों को नष्ट करते सुना गया है, परन्तु इन मनुष्यों को ठीक ज्ञान न होने से रोगी को अति कष्ट ही नहीं होता; अपितु उसकी जान भी ख़तरे में हो जाती है । हमें भी ऐसे अनेक रोगियों की चिकित्सा करने का अवसर मिला है; जिनकी जान ही मस्से जलाने के कारण संकट में पड़ गई थी; ऐसे रोगी विधिपूर्वक चिकित्सा करने के बाद भी कई मास में उठने बैठने लायक़ हो सके ।

प्राचीन काल में शस्त्रक्रियर द्वारा मस्सों को काट दिया जाता था; जैसा कि आज कल भी बहुत डाक्टर करते हैं ।

इन दोनों क्रियाओं के विषय में हमारी सम्मति है कि दाहकर्म्म द्वारा या शस्त्र क्रिया द्वारा मस्सों को नष्ट करने का यत्न नहीं करना चाहिये; क्योंकि गुदा एक सद्योघ्न मर्म है; जिस पर ज़रा भी चोट लग जाने से मनुष्यों की मृत्यु हो सकती है । यदि किसी कारणवश मस्सों को कटवाना ही उचित जान पड़े; तो किसी अनुभवी शल्य चिकित्सक द्वारा कटवा दें;

परन्तु ध्यान रहे कि सब मस्से एक बार ही नहीं कटवाने चाहियें; एक या दो छोटे मस्सों को अवश्य छोड़ देना चाहिये जिससे थोड़ा २ अशुद्ध रक्त निकलता रहे क्योंकि अशुद्ध रक्त शरीर में रुक जाने से जलोदर; रक्तपित्त; तथा उन्माद आदि रोग उत्पन्न होने का भय रहता है।

धूप, अभ्यङ्ग और लेप से विशेष लाभ

धूपनालेपनाभ्यंगैः प्रस्रवन्ति गुदांकुराः ।
सञ्चितं दुष्टरुधिरं ततः संपद्यते सुखी ॥

मस्सों को धूप देने; लेप करने तथा किसी प्रकार के विशेष तैल आदि लगाने से इनमें रुका हुआ रक्त भलीभांति निकल जाता है; जिसके निकलने से वायु अनुलोम होता तथा मस्से निचुड़ जाने से रोगी को पीड़ा की शान्ति होती है। इसलिए अर्शोरोग में धूप आदि का प्रयोग करना चाहिये।

अर्श नाशक प्रयोग

अर्श रोग और तक्र

जिस प्रकार तक्र संग्रहणी की एक अमूल्य औषधि है उसी प्रकार बवासीर के लिए भी तक्र अमृत के समान है। प्राचीन आयुर्वेदज्ञ ऋषियों का कथन है कि जिस प्रकार तक्र हरी दूब को जला देता है उसी प्रकार यह बवासीर के मस्सों को नष्ट करता है, तक्र द्वारा समूल नष्ट हुए मस्से फिर सारी आयु में कभी नहीं होते। अर्श के अतिरिक्त तक्र वात तथा कफ से उत्पन्न हुए अनेक रोगों के लिए उत्तम औषधि है; तक्र के सेवन से शरीरस्थ सम्पूर्ण स्रोत शुद्ध होकर धातुओं की वृद्धि होती और शरीर में अग्नि बल बढ़ता है।

चिकित्सक को उचित है कि बवासीर में घोल, मंथ तथा तक्र इन तीनों में से किसी को रोगी के बल के अनुसार ७ दिन, १० दिन, १५ दिन

या एक मास तक निम्न विधि से सेवन करावे और रोग के अनुसार औषधियों का संयोग कर ले।

१. वातज तथा कफज बवासीर में हाऊ बेर, चीता, हींग तथा सोंठ के साथ तक्र का प्रयोग करे।

२ वातार्शस् में शुद्ध भिलावे और अजवायन से युक्त जौ के सत्तू के साथ तक्र देने से अति लाभ होता है।

३. पित्तार्शस् में बेलगिरी और कैथ के गूदे के साथ तक्र का उपयोग करे।

४, पीलु वृक्ष (एक झाड़ी होती है) के फल खाकर ऊपर से तक्र पीवे, यह प्रयोग १ मास तक करना चाहिये।

५. रोगी को अन्न सर्वथा बन्द करा देवें और उसके स्थान पर तक्र का ही सेवन करावें, रोगी के बल का विचार करते हुए यह प्रयोग करना चाहिये।

तक्र सेवन में पथ्य

तक्र सेवन करनेवाले रोगी को तक्र की पेया, तक्र भात तथा तक्र से मिश्रित यूष और धान की खीलों के सत्तू आदि का प्रयोग कराना चाहिये।

अर्शोरोग के लिये प्रयोग

१. ज़िमीकन्द (सूरणकन्द) को पुटपाक करके घी में भून कर १ तोले से २ तोले की मात्रा में नित्य सेवन करने से वातार्श नष्ट होता है।

२. अर्कपत्र (मदार के पत्ते) १ सेर लें और पांचों लवण तथा घी उन पर लेप कर दें और गजपुट द्वारा हांडी में फूंक दें; स्वांग शीतल होने पर निकाल कर खरल कर रख लें। यह चूर्ण १ माशे से ३ माशे तक गरम जल के साथ प्रयोग करने से २ सप्ताह में वातार्श नष्ट होता है।

३. हरीतक्यादि वटी—बड़ी हरड़ का छिलका १ तोला, चीते की छाल २ तोले, सोंठ २ तोले, भिलावा शुद्ध २ तोले, काली मरिच २ तोले, पीपल १ तोला, पीपलामूल २ तोले, जीरा स्याह २ तोले, चव्य २ तोले, पुटपक्व जिमीकन्द पावभर, जवाखार ८ तोले। सब द्रव्यों को एकत्र खरल

कर के सब औषधियों के समान पुराना गुड़ मिला कर ३ माशे की गोली बना लें। यह गोली ६ माशे से १ तोले तक सेवन करने से २ सप्ताह में वातार्श नष्ट होता है।

४. वटपत्र (बड़ के पत्ते) और सूखे आंवले प्रत्येक ४ तोले लेकर दोनों को कुछ कूटने के बाद १ पाव गाय के घी में भून लें।

मात्रा—६ माशे से ६ माशे तक प्रयोग करने से तीन सप्ताह में पित्तार्श और रक्तार्श नष्ट होती है। इस प्रयोग का सेवन करन वाला रोगी औषधि खाने के बाद गरम पानी से गरारे करे, शीतल जल न पीवे।

५. काले तिल २ माशे, नागकेसर २ माशे, मिश्री २ माशे सब को एकत्र पीस कर २ तोले मक्खन में मिला कर चाटने से रक्तार्शस् नष्ट होती है।

६. नारियल का छिलका जला कर भस्म बना लें यह भस्म ४ रत्ती मिश्री ४ माशे दोनों को बकरी के दूध के साथ सेवन करने से रुधिर रुक जाता है।

७. नागकेसर ६ माशे, मिश्री १ तोला, मक्खन २॥ तोले। तीनों को मिलाकर चाटने से रुधिर रुक जाता है।

८. कुड़े की छाल, चन्दन श्वेत, नाग केसर, रसौंत सब को एकत्र कर चूर्ण बनालें। यह चूर्ण ६ माशे बकरी के दूध के साथ देने से रक्त रुक जाता है।

९. कसौंदी के २ तोले पत्ते जल में घोट कर मिश्री मिला कर पीने से रुधिर रुक जाता और मस्से भी नष्ट होते हैं। देसी कसौंदी से पहाड़ी कसौंदी अधिक उत्तम है।

१०. ककरौन्दा (कुक्कड़ छिंदी) के पत्तों का रस २ तोले ले १तोला गाय के गरम घी में मिला कर कुछ दिन पीने से रक्तशंसु नष्ट होती है। यह हमारा अनुभूत योग है।

११. प्याज़ को बारीक कतर कर धूप में सुखा लें और घी में भून कर १ तोला लें इस में तिल १ माशा, मिश्री २ तोले मिला प्रातः काल दूध के साथ देने से बवासीर का रूक्षांश नष्ट होता है।

१२. रसौंत और कलमी शोरा दोनों समान भाग लेकर १६गुना मूली का रस डाल कर आग पर पकाने के बाद गाढ़ा करें और २ रत्ती की गोली बना लें। यह वटी प्रातः और सायंकाल बासी पानी के साथ देने से वात तथा रक्तार्शस् अवश्य शान्त होती है।

१३. नीम की गिरी, बकायन की गिरी, गुग्गल, रसौंत, एलुआ, मरिच सब द्रव्य समान भाग ले कर ३ दिन खरल करें, गाढ़ा होने पर १ माशे की गोली बना लें।

मात्रा—१ गोली दूध या जल के साथ प्रयोग करने से सब प्रकार की बवासीर को लाभ होता है।

१४. मोती के सीप की भस्म १० तोले, रसौंत १० तोले दोनों की मूली के रस में ७ दिन खरल करके ४-४ रत्ती की गोली बना लें। प्रातः सायं एक एक गोली बकरी के दूध के साथ सेवन करने से रक्तार्श शान्त हो जाता है,

१५. अम्बा हल्दी और मोम दोनों को घोट कर उड़द के बराबर गोली बना लें, दोनों समय १ गोली सेवन करने से सब प्रकार की बवासीर शान्त होती है।

१६. करञ्जुए की गिरी, सोंठ, इन्द्रजौ, सोनपाठा, सैंधा नमक चीते की छाल, सब को समान भाग ले विधिवत् चूर्ण बना लें।

मात्रा—३ माशे तक गाय की छाछ के अनुपान से वातार्शस् नष्ट होती है।

१७. घी क्वार के पत्ते घोट कर मरिच मिला कर पीने से रुधिर रुक जाता है।

समशर्करा चूर्ण

सोंठ ७ तोले, पीपल ६ तोले, मरिच ५ तोले, नागकेसर ४ तोले, पत्रज ३ तोले, एलाबीज १ तोला, मिश्री २६ तोले सब द्रव्यों को कूट कर चूर्ण बना लें।

मात्रा—६ माशे तक।

अनुपान—ताजे जल के साथ प्रयोग करने से अग्नि दीपन होती, वायु अनुलोम होती तथा बवासीर नष्ट होती है।

कल्याण लवण

भिलावा शुद्ध, बड़ी हरड़ का छिलका, बहेड़े का छिलका, आंवला, दन्ती, चित्रक सब द्रव्य समान भाग लेकर सब से द्विगुण लवण मिला कर एक नारियल में भर कर गजपुट में फूंक दें, शीतल होने पर निकाल कर खरल कर लें।

मात्रा—३ माशे तक।

अनुपान—गरम जल के साथ प्रयोग करने से वात तथा कफार्शस को लाभ होता है।

प्राणदा गुटिका

सोंठ १२ तोले, मरिच १६ तोले, पीपल ८तोले, तालीसपत्र ४तोले, नागकेसर २ तोले, पीपलामूल १२ तोले, तेजपात ७माशे, इलायची १तोला, जीरा स्याह १ तोला, दालचीनी १ तोला, खस १तोला, जिमीकन्द १तोला, पुराना गुड़ १२० तोले सब को एकत्र कर ६ माशे की गोली बना लें। दोनों समय भोजन के बाद १ गोली शुद्ध जल के साथ सेवन करानी चाहिये, इस से सब प्रकार की बवासीर को लाभ होता है।

अर्शकुठार रस

पारा ४ तोले, गन्धक ८तोले, लोहभस्म (त्रिफला क्वाथ द्वारा भावित) ताम्रभस्म, (पारा, गन्धक और वांसे के रस से बनी हुई) प्रत्येक ८ तोले, दन्तीमूल, सोंठ, काली मरिच, पीपल,जिमीकन्द, वंशलोचन, सुहागा खील, यवक्षार, सैन्धा नमक प्रत्येक २० तोले, थोहर का दूध ३२ तोले तथा गोमूत्र ३२ तोले सब द्रव्यों का चूर्ण कर थोहर का दूध और गोमूत्र मिला कड़ाही में मन्दाग्नि द्वारा पकावें गाढ़ा होने पर खरल करके एक २ माशे की गोली बना लें, इसे अर्शकुठार रस कहा जाता है। एक वटी गरम जल के साथ प्रातः काल खानी चाहिये, इस के सेवन से वायु अनुलोम होती तथा सब प्रकार की बवासीर विशेष कर बादी बवासीर शान्त होती है। अनुभूत है।

चक्रदेश्वर रस

पारा ४ भाग, सुहागा खील ५ भाग, अभ्रकभस्म (किकरौंदारस से

भावित ५ भाग। सब द्रव्यों को खरल कर पुनर्नवारस से ३ दिन रगड़ कर २ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—२ रत्ती।

अनुपान—गाय के दूध या घी में मिलाकर १ वटी प्रयोग करावें, इस प्रकार दोनों समय सेवन करने से वातार्श नष्ट होती है।

अभयारिष्ट

बड़ी हरड़ का छिलका १० सेर, मुनक्का ५ सेर, वायविडङ्ग ३ सेर महुए के फूल १ सेर। इन द्रव्यों को १२८ सेर जल में पका क्वाथ बना लें, चतुर्थांश रहने पर उतार कर छानने के बाद गोखरु, निशोथ, धनियां, धाय के फूल, इन्द्रायण, पीपलामूल, सोंठ, जमालगोटे की जड़, सौंफ तथा मोचरस प्रत्येक १६ तोले डाल किसी स्निग्ध पात्र में भर कर अरिष्ट की विधि से अरिष्ट तय्यार कर लें।

मात्रा—२॥ तोले।

अनुपान—दोनों समय भोजन के पश्चात् सेवन करने से आनाह-सहित अर्श को नष्ट करने में यह अभयारिष्ट अति लाभकर है।

हरीतक्यादि वटी

काबली हरड़ की बकली, बहेड़े की छाल, आमला, छोटी हरड़ प्रत्येक ५ तोले। सब का चूर्ण कर ककरौंदा, सत्यानाशी और कङ्घी के रस की अलग २ तीन २ भावना देकर सुखा लें। फिर इसमें वायविडङ्ग, चाकसू, नीम के बीजों की गिरी, सनाय, गन्धक, जीरा श्वेत प्रत्येक ५ तोले मिलावें; इन सब द्रव्यों के समान शुद्ध रसौंत डाल मूली के रस में २१ दिन निरन्तर खरल करके २ रत्ती की गोली बना लें। कोसे गाय के दूध में घी डाल कर गोली के बाद रोगी को पिलाना चाहिये; रोगी को आनाह होने पर दिन में २ बार यह गोली दें और ६ माशे तक ईसबगोल दे दिया करें। इस प्रकार औषधि सेवन से अर्श और आनाह दोनों शान्त होते हैं, रक्तस्राव बहुत जल्दी रुक जाता और मस्से नष्ट होते हैं। यह हमारी सहस्रों बार की अनुभूत औषधि है और ४० दिन तक सेवन करने से सब प्रकार के अर्श को लाभ करती है।

श्री बाहुशाल गुड़

निसोत, चव्य, दन्तीमूल, गोखरु, चित्रक मूल छाल, कचूर, नागरमोथा, इन्द्रायणमूल, सोंठ, वायविडङ्ग, हरड़छाल प्रत्येक ४ तोला, भिलावां शुद्ध ३२ तोला, विधारा मूल ३२ तोला, ज़िमींकन्द ६४ तोला। इन सब को कूट कर ६४ सेर जल में क्वाथ करें, चौथा भाग शेष रहने पर इस को खूब मल कर छान लें और इसमें क्वाथ से तीन गुणा पुराना गुड मिला कर पकावें। जब लेह के समान पाक हो जावे तो अग्नि पर से उतार कर इसमें निम्न लिखित द्रव्यों का चूर्ण मिला दें—

चूर्णद्रव्य—निसोत, चव्य, ज़िमींकन्द, चित्रकमूल छाल प्रत्येक २४ तोले। चूर्ण को भलीभांति मिलाकर किसी चिकने पात्र में रक्खें।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक।

अनुपान—ठण्डा पानी। यह अर्श रोग की अव्यर्थ औषधि है, विशेष कर वात और कफार्श के रोगी के लिये अमृत के समान लाभ करता है। रक्तार्श और पित्तार्श में बकरी के दूध के साथ सेवन कराने से अति लाभ होता है।

दशमूल गुड़

दशमूल २० तोला, चित्रकमूल छाल २०तोला, दन्तीमूल २० तोला इनको कूट कर ३२ सेर जल में पकावें, जब चतुर्थांश शेष रह जावें, तो मल कर छान लें और इस क्वाथ में ५ सेर पुराना गुड़ मिला कर मन्दाग्नि पर पुनः पकावें, जब लेह के समान हो जावे, तो इसमें निम्न द्रव्यों का चूर्ण मिला दें—

चूर्णद्रव्य—निसोत १ सेर, पिप्पली ½ सेर मिला कर चिकने पात्र में रख लें।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक।

अनुपान—जल तथा घृत मिश्रित गौ के दूध के साथ सेवन करावें, यह भी वातार्श की परमौषधि है. इसके सेवन से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। बद्धकोष्ट, अजीर्ण तथा पाण्डु आदि रोग शान्त होते हैं।

अग्निमुख लोह

निसोत, सम्भालू (निर्गुण्डी), चित्रकमूल छाल, थोहर, मुण्डी, सूई आंमला प्रत्येक ३२ तोला, जल ३२ सेर । सब द्रव्यों को कूट कर यथाविधि क्वाथ बनावें, जब चतुर्थांश शेष रह जावे तो छानकर इसमें १। सेर गोघृत और मनःशिला योग से भस्म किया हुआ लोह ४८ तोला, खांडं १। सेर मिला कर मन्दाग्नि पर पाक करें, जब लेह के समान हो जावे, तो इसमें निम्न द्रव्यों को भली भांति मिला दें—

वायविडङ्ग चूर्ण १२ तोला, त्रिकुटा चूर्ण ६ तोला, त्रिफला चूर्ण २० तोला, शिलाजतु ४ तोला । सब चीज़ों को मिला कर चिकने पात्र में रक्खें ।

मात्रा—१ माशे से ३माशे तक ।

अनुपान--तक्र के साथ सेवन कराना चाहिये । यह पुराने अर्श की एक अव्यर्थौषधि है, इसके सेवन से सब प्रकार के अर्श,पाण्डु, शोथ, प्लीहा तथा उदर रोग नष्ट होते हैं, अनुभूत है ।

नित्योदित रस

रससिंदूर, ताम्रभस्म, (गन्धक, पारा और बांसा रस से बनी हुई) लोहभस्म (त्रिफला क्वाथ से बनी हुई) अभ्रक भस्म [ककरौंदा रस के योग से बनी हुई], शुद्ध मीठा विष (वत्सनाभ), गन्धक, प्रत्येक २ तोला, भिलावां शुद्ध १२ तोला । इन सब को ज़िमीकन्द के रस में तीन दिन पर्य्यन्त खरल करें और उड़द प्रमाण गोली बना लें ।

मात्रा--प्रातः सायं एक २ गोली ।

अनुपान--गोघृत ३ तोले के साथ सेवन करें । यह वात; कफ; की बवासीर के लिये अति लाभकारी औषधि है ।

कुटजावलेह

कुड़ा की छाल ५ सेर कूट कर ३२ सेर जल में पकावें, चतुर्थांश शेष रहने पर छान लें और इस छने हुए क्वाथ को पुनः पकावें; जब लेह के समान हो जावे तो इसमें १॥ सेर पुराना गुड और आध सेर गोघृत

भली प्रकार मिला दें। तत्पश्चात् निम्नलिखित द्रव्यों का उत्तम चूर्ण इस पाक में मिला दें--

चूर्णद्रव्य—शुद्ध भिलावां; वायविडङ्ग, त्रिकुटा, त्रिफला, रसौंत, (रसाञ्जन), चित्रकमूल छाल, इन्द्रजौ, वच, अतीस, विल्व प्रत्येक ४ तोला। सब का चूर्ण करके उपरोक्त लेह में मिलावें, यह औषधि सब प्रकार के अर्श रोग को नष्ट करती है, विशेष कर इस का प्रयोग रक्तार्श और पित्तार्श के रोगियों को कराना चाहिये।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक।

अनुपान—बकरी के दूध और तक्र के साथ सेवन करावें।

दन्त्यरिष्ट

दन्तीमूल, चित्रकमूल छाल, दशमूल प्रत्येक ८ तोला। इनको कूट कर ३२ सेर पानी में पकावें और २४ तोला त्रिफला के मिलित पत्रों को भी इसी में मिला दें, जब पानी ८ सेर शेष रह जावे तो छानकर इसमें ९ सेर गुड मिला कर किसी चिकने पात्र में बन्द कर दें। शीतकाल में एक मास और उष्णकाल में १९ दिन के पश्चात् खोल कर देखें, यदि भली प्रकार नितर गया हो तो इसको छानकर बोतलों में भर लें।

मात्रा—१। तोला से २॥ तोला तक।

अनुपान—दोनों समय भोजन के पश्चात् सेवन करावें, यह भी पुराने अर्श की परमौषधि है।

रक्तार्श के लिये कुछ अनुभूत प्रयोग

रक्तार्श की चिकित्सा करते समय चिकित्सक को चाहिये कि आरम्भ में ही रक्त को रोकने वाली कोई क्रिया न करें क्योंकि यदि प्रवृत्त हुए दुष्ट रक्त को हठात् रोका जायगा, तो इससे शूल, आनाह तथा नाना रक्त व्याधियां हो जाने का भय है, जब दुष्ट रक्त निकल जाने पर शरीर का आधारभूत शुद्ध रक्त स्राव होता हो, जिससे रोगी क्षीण हो रहा हो तो उस समय शीघ्र ही निम्न प्रयोगों में से कोई एक सेवन कराना चाहिये; ताकि शीघ्र ही रक्त बन्द हो जाये।

१. नागकेसर १॥ माशे से ३ माशे तक २ से ४ तोले नौनी घी (मक्खन) में मिलाकर सेवन कराने से रक्त बहुत जल्द बन्द हो जाता है।

२. मजीठ, नीलोत्पल, मोचरस, लोध, तिल, लाल चन्दन। इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बना लें।

मात्रा—१ माशा से ३ माशा तक।

अनुपान—बकरी के दूध के साथ प्रातः सायं सेवन कराने से रक्त शीघ्र बन्द हो जाता है।

३. कुड़ाछाल का चूर्ण १ माशे से ३ माशे तक बकरी के दही के तक्र के साथ सेवन कराने से रक्त अवश्य बन्द हो जाता है।

४. पके हुए बिल्व फल के गूदे का शर्बत बनाकर व्यवहार करने से रक्त बन्द हो जाता है।

५. रसांजन (रसौंत) ५ तोला, चाकसू ६ माशा, कपूर ६ माशे, योगराज गुग्गुल की भांति कूटकर चार रत्ती की गोली बनायें, इन गोलियों को प्रातः सायं बकरी के दूध के साथ सेवन करने से रक्त अवश्य बन्द हो जाता है।

मात्रा—२ से ४ गोली तक।

६. मुचकुन्द के फूलों को सुखा कर पीस लें और इसमें थोड़ा घृत और फूलों के चूर्ण से दुगुनी मिश्री मिला कर बकरी के दूध के साथ सेवन करें।

मात्रा—६ माशे से १ तोला तक।

अनुपान—प्रातः सायं प्रयोग में लावें, एक दो दिन में ही रक्त बन्द हो जाता है।

७. एक नारियल का ऊपर वाला छिलका उतार कर जला लें और ठण्डा करके इसकी राख बना लें।

मात्रा—३ माशे तक।

अनुपान—बकरी के दूध के साथ सेवन करने से रक्त अवश्य बन्द हो जाता है।

८. आम के वृक्ष की नरम कोंपलें १ तोला सरदाई की तरह घोंट कर मिश्री मिला कर पीने से रक्त अवश्य बन्द हो जाता है।

९. माजू सब्ज़ ८ नग; सज्जी ३ माशे; आम के पत्ते ६ माशे। तीनों को चिलम में रख कर चरस की तरह पिलावें; एकही बार पीने से धारा प्रवाह रक्त बन्द हो जाता है।

१०. किकरौंदा (कुकड़छिद्दी) का स्वरस २ तोला। इसमें १ तोला गाय का गर्म किया हुआ घृत मिला कर पीने से रक्त बन्द हो जाता है।

११. कसौंदी के पत्ते २ तोले सरदाई की तरह घोंट कर पीने से रक्त बन्द हो जाता है।

अर्शनाशक धूप

१. कुचले के चूर्ण को दहकते हुए कोयलों पर डाल कर उस से निकला धूआं मस्सों को देने से मस्से नष्ट हो जाते और शूल भी नहीं होता।

२. देवदाली (बिन्दाल) के काढ़े का भपारा देने से भी मस्सों को लाभ होता है।

३. कपूर ६ माशे और आंवले सूखे १० तोले दोनों को एकत्र कर उपरोक्त विधि से धूप देने से मस्सों को कुछ दिन में ही लाभ होता है।

४. मैनसिल, सोंठ, गूगल, सरसों, देवदारू, पोहकरमूल, कलिहारी, सज्जीखार इन द्रव्यों का चूर्ण कर इस की धूप देने से मस्से नष्ट होते हैं।

ध्यान रहे कि यह धूनी सावधानी से लेनी चाहिये जिस से कि धूंआं आंखों को न लग जावे।

अर्शनाशक लेप

१. हल्दी और कड़वी तोरी दोनों द्रव्यों को महीन पीस कर मस्सों पर लेप करने से मस्से नष्ट हो जाते हैं।

२. संखिया श्वेत ६ माशे, गन्धक आमलासार १ तोला, हरताल तबकी १ तोला, बड़ी हरड़ की छाल १ तोला चारों द्रव्यों को महीन खरल कर दो मट्टी के प्यालों में इस प्रकार रखें कि एक प्याले में चूर्ण रख कर दूसरे प्याले का मुख जोड़ कर कपड़मिट्टी कर दें फिर चूल्हे पर चढ़ा कर १५ मिनिट तक नीचे अग्नि जलावें; नीचे उतार कर शीतल होने पर औषधि निकाल किसी लोहे के पात्र में रख कर १० तोले शुद्ध घृत में ६ घण्टे तक

खरल करके आवश्यकतानुसार मस्से पर सरसों के दाने जितनी औषधि लगावें। इस के प्रयोग से मस्से कुछ दिन में अवश्य नष्ट हो जाते हैं।

३. काले सांप की कांचली की राख तैल में मिला कर लगाने से मस्से हट जाते हैं।

४. तम्बाकू के पत्तों को पीस कर लेप करने से मस्से शान्त होते हैं।

५. सेन्धा नमक ३ माशे और देवदाली (बिन्दाल) के बीज दोनों को सिर्के में पीस कर लेप करने से मस्से नष्ट होते हैं।

अर्शनाशक तैल और मरहम

बृहत् कासीसादि तैल

हीरा कसीस, कलिहारी, कूठ, सोंठ, मरिच, पीपल, सेन्धा नमक, श्वेत कनेर की ज़ड़, वायविडङ्ग, चीते की छाल, बांसे के पत्ते, जमालघोटे की जड़, कड़वी तोरी के बीज, चोक, हरताल प्रत्येक एक एक तोला ले कूट कर इन का कल्क बना लें फिर थोहर का दूध ८ तोले, आक का दूध ८ तोले, तिल तैल १ सेर; गोमूत्र ४ सेर सब द्रव्यों को कड़ाही में चढ़ा कर विधि अनुसार तैल बना लें। इसे बृहत् कासीसादि तैल कहते हैं; यह तैल मस्सों पर मलने से मस्से अवश्य नष्ट हो जाते हैं।

वृश्चिक तैल

१. पाव भर सरसों के तैल में २५ बिच्छू डाल कर ४० दिन धूप में रक्खें और फिर छान लें। इस तैल को मस्सों पर मलने से मस्से नष्ट होते हैं। अनुभूत योग है।

२. बिच्छू को सरसों के तैल में जलाकर छान लें: इस तैल में रूई भिगो कर गुदा में रखने से मस्से अवश्य नष्ट हो जाते हैं।

मरहम नीम

निम्बोली की गिरी को नीम के तैल में उतार कर उसी तैल में

रगड़ दें और प्रति तोला तैल में २ रत्ती नीलाथोथा बारीक करके मिला दें। यह महरम मस्सों पर लगाने से मस्से नष्ट होते हैं।

अर्श नाशक पुलटिस या लुगदी

भांग हरी १ तोला; अफीम १ माशा दोनों द्रव्यों को घोंट कर लुगदी बना कुछ गरम करके मस्सों पर बांध दें; इसके प्रयोग से मस्सों की शूल तथा शोथ आदि शीघ्र नष्ट होकर रोगी को चैन पड़ जाती है।

२. सोये के बीज २ तोले कुछ पकाकर इनको रगड़ कर लुगदी बना लें। अब श्वेत फिटकिरी की खील और गोघृत मिला कर मरहम बना लें। इसमें से थोड़ी मरहम लगाकर ऊपर सोये के बीजों की लुगदी रख कर लङ्गोट बांध दें; इसी प्रकार १ सप्ताह तक दवाई का प्रयोग करने से पुरानी से पुरानी बवासीर शान्त होती है। इसके प्रयोग से मस्से शीघ्र गिर जाते हैं।

प्याज़ का भुरता

प्याज़ को काटकर लुगदी बना इसे घी में भून लें और गरम ही मस्सों पर बांध दें। जब मस्से फूल जाते और रोगी पीड़ा के कारण बैठ नहीं सकता तो इस औषधि के प्रयोग से लाभ होता है। यह योग हमारा सैंकड़ों बार का अनुभूत है।

अर्श रोग में पथ्य

विरेचनं लेपनमस्रमोक्षः क्षाराग्निशस्त्राचरितं च कर्म ।
पुरातनाः लोहितशालयश्च षष्टिकाश्चापि यवाः कुलत्थाः ॥
पटोलधत्तूरसोनवन्हिपुनर्नवासूरणवास्तुकानि ।
जीवन्तिका दन्तशठा सुरा च शुण्ठिर्वयस्था नवनीततक्रम् ॥
कंकोलधात्रीरुचकंकपित्थमौष्ट्राणि मूत्राज्य पयांसि च ।
भल्लातकं सर्षपजं च तैलं गोमूत्रसौवीरतुषोदकानि ॥
गोधाखुलोमानि गवोष्ट्रलोम श्वावित्कुलिंगाज खरोतुकीशः ।
तरक्षुचाषश्च सृगालकाका येऽत्यल्पमांस प्रसहाश्चतेऽपि ।
वातापहं यश्च यदाग्निकारि तदन्नपानं हितमर्शसेभ्यः ॥

अर्थ—विरेचन अर्थात् जुलाब कराना, रुधिर निकालना, क्षार कर्म अर्थात् तीव्र तेज़ाबादि से मस्सों को जलाना, दाग़ देना, शस्त्रकर्म द्वारा मस्सों को काटना, पुराने लाल चावलों का भात खाने को देना, जौ कुलथी, परवल, धत्तूर, लहसन, चित्रक, सांठी, जिमीकन्द, बथुआ, चूका, पुरानी शराब, सोंठ, हरड़, मक्खन, दही की छाछ, कंकोल, आंवले, सौंचल नमक, कैथ फल, ऊंट का मूत्र, घी, दूध, भिलावां, सरसों का तैल, गो मूत्र, कांजी, तुषोदक, गोह, चूहे, गाय, और ऊंट के बाल, सेह, ककरा, बन्दर आदि थोड़े मांस वाले पशु पक्षियों का मांस, वात नाशक तथा अग्नि प्रदीपक अन्न और ताम्बूल (पान) यह सब वस्तुएं अर्श रोगी के लिये पथ्य अर्थात् हितकारी है ।

अर्शरोग में अपथ्य

अनूपमामिषं मत्स्यं पिण्याकं दधि पिष्टकम् ।
माषानं करीरं निष्पावं विल्वं तुम्बीमुपोदिका ॥
पक्वाम्रं शालुकं सर्वं विष्टम्भीनि गुरूणि च ।
आतपं जलपानानि वमनं वस्ति कर्म च ॥
प्राच्यवन्त्य प्रान्तोत्थ नदीनां सलिलानि च ।
विरुद्धानि च सर्वाणि मारुतं पूर्वदिग्भवम् ॥
वेगरोधं स्त्रियं पृष्ठयानमुत्कटकासनम् ।
यथास्वं दोषलं चान्नमर्शसः परिवर्जयेत् ॥
यत्पथ्यं यदपथ्यं च वक्ष्यन्ते रक्तपित्तिनाम् ।
रक्तार्शोरोगिणा तत्तदपि विद्याद्विशेषतः ॥
यानं पानं दिवास्वप्नं गुर्वन्नमतिभोजनम् ।
व्यावायं कलह चापि क्षतक्षारं विधिं त्यजेत ॥
यदुक्तमर्शसामादौ भैषज्यं पथ्यमेव च ।
तदेव चर्मकीलानां कार्यं दोषादिभेदतः ॥

अर्थ—अनूप देश में रहने वाले पशु पाक्षियों का मांस, मछली, तिलों की मिठाई, दही; मैदे और पीठी के बने हुए सर्व पदार्थ, उड़द, करीर, (टेंट), महामाष की फली, विल्व, तुम्बी, पोई का शाक, पके आमफल, भसीडा (भें) और बद्धकोष्ट (कबज़) करनेवाली सब वस्तुयें, धूप में फिरना, नदी नालों का जल पीना, वमन कर्म, वास्ति कर्म, पूर्व तथा पश्चिम की ओर बहने वाली नदियों का जल; दुग्ध मांसादि सब प्रकार के विरुद्ध पदार्थ, पूर्व दिशा की वायु, मल मूत्रादि वेगों का रोकना, अधिक स्त्री प्रसङ्ग और घोड़े आदि की पीठ पर सवार हो कर विचरना, उकड़ू होकर बैठना तथा दोषों को बढ़ाने वाला अन्न पान—यह सब बवासीर रोगी को त्याग देने चाहियें। इसी तरह रक्त पित्त रोग में जो जो वस्तुयें पथ्यापथ्य लिखी हैं; वह सब रक्तार्श रोगी को त्याग देनी चाहियें। सवारी करना, बार बार पानी पीना, दिन में सोना; भारी अन्न का अत्यन्त भोजन, स्त्री प्रसङ्ग, क्रोध करना, रुधिर निकलवाना, तीक्ष्ण क्षार तेज़ाबादि का मस्सों पर लगाना यह सब कर्म रक्तार्श रोगी त्याग देवे। बादी की बवासीर में जो औषधि अन्नादि पथ्यापथ्य कही गई हैं, वह सब चर्म कील रोगी का चिकित्सक दोषों के भेद को यथावत् समझ कर चिकित्सा करे।

जठराग्नि विकार चिकित्सा

जठराग्नि के भेद

स्मरण रहे कि जठराग्नि पर ही मनुष्य के शरीर का निर्भर है; इस पर ही आयु; दोष तथा धातु आदि की वृद्धि, क्षय और जीवन आश्रित है; इसलिये जठराग्नि की रक्षा के लिये मनुष्यों को सदा सावधान रहना चाहिये। अग्नि का रक्षा के लिये सदा आहार परिमित करना चाहिये; क्योंकि परिमित मात्रा में किया हुआ भोजन जठराग्नि द्वारा भली प्रकार परिपक्व होकर शारीरिक बल और आयु की वृद्धि करता है। कहा भी है—

सारं यत्तच्चिकित्सायाः परमाग्नेश्चपालनम् ।
तस्माद्यत्नेन कर्त्तव्यं वन्हेस्तु परिपालनम् ॥

जठराग्नि की रक्षा करना ही चिकित्सा का सार है; अतएव सर्वदा यत्न से जठराग्नि की रक्षा करनी चाहिये और भी कहा है-=

अस्तु दोष शतं क्रुद्धं सन्तु व्याधि शतानि च ।
कायाग्निमेव मतिमान् रक्षन् रक्षति जीवितम् ॥

मानव शरीर में चाहे सैकड़ों दोष विकृत हो जावें और चाहे सैकड़ों रोग उत्पन्न हो जावें केवल कायाग्नि की रक्षा करन से ही जीवन बच सकता है।

मनुष्यों की प्रकृति के भेद से अग्नि ४ प्रकार की मानी गई हैं—

१. **मन्दाग्नि**—प्रायः कफ और वात प्रकृति वाले मनुष्यों की अग्नि मन्द होती है।

२. **तीक्ष्णाग्नि**—वात पित्त प्रकृति वाले मनुष्यों की अग्नि तीक्ष्ण होती है।

३. **विषमाग्नि**—वात प्रकृति वाले मनुष्यों की अग्नि विषम मानी जाती है।

४. **समानाग्नि**—जिन व्यक्तियों की प्रकृति सम होती है उनकी अग्नि भी समान होती है।

मन्दाग्नि वाले मनुष्यों को थोड़ी मात्रा में किया हुआ भोजन भी

भली प्रकार नहीं पचता। इस कारण ऐसे मनुष्य प्रायः निर्बल होते हैं और उनको अधिकतर ग्लानि; सिर और पेट में भारीपन तथा मुख से पानी जाना आदि लक्षण होते हैं।

तीक्ष्णाग्नि वाले मनुष्यों को अधिक मात्रा में किया हुआ भोजन भी सहज मे पच जाता है तथा उनको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता।

विषमाग्नि वाले व्यक्तियों को भोजन कभी अच्छी प्रकार पच जाता और कभी नहीं पचता। ऐसे पुरुषों को प्रायः आनाह और उदावर्त आदि वात रोग हो जाते हैं।

समाग्नि वाले पुरुष को परिमाण का किया हुआ भोजन तो भली प्रकार पच जाता है; परन्तु भोजन में ज़रा भी अधिकता हो जाने पर वह अच्छी प्रकार नहीं पचता।

चिकित्सकों को उचित है कि चारों प्रकार की अग्नि का विचार करके चिकित्सा प्रारम्भ करें।

अजीर्ण रोग

प्रायः समाग्नि वाले पुरुषों को मिथ्या आहार विहार या अपरिमित आहार करने से विषमाग्नि अथवा मन्दाग्नि हो जाती है; इस अवस्था में उन पुरुषों को अजीर्ण रोग समझना चाहिये। इसी प्रकार शेष तीन तरह के अग्नि वाले व्यक्तियों को भी अजीर्ण रोग हो सकता है जिनकी चिकित्सा और निदान आगे लिखे जावेंगे।

अजीर्ण रोग के भेद

अजीर्ण रोग के पांच भेद नीचे लिखे जाते हैं—

१. आमाजीर्ण. ३. विष्टब्धाजीर्ण.
२. विदग्धाजीर्ण. ४. रसशेषाजीर्ण.
५. दिनपाकी अजीर्ण.

आमाजीर्ण चिकित्सा विधि

—:४:*:४:—

लंघनकार्यमामे तु कारयेत् विधिवत्भिषक् ।

आमाजीर्ण रोग प्रायः कफ प्रकृति वाले पुरुषों को अपरिमित आहार करने से अथवा निर्बल पुरुषों को कफ की वृद्धि के कारण होता है । इस रोग में आमाशय का कार्य मन्द और पित्त भी न्यून होता है ।

आमाजीर्ण में आमाशय अपक्व अन्न से अति भरा होने के कारण रोगी को खाये हुए अन्न की डकार आती तथा मुख में बार २ पानी आता है; इस रोग में रोगी की गालों और पपोटों पर शोथ विदित होती है । इस रोग में रोगी को विधिवत् लंघन तथा वमन कराने के बाद दीपन, पाचन, वातानुलोमन तथा कफनाशक द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ।

विदग्धाजीर्ण चिकित्सा विधि

विदग्धे वमनं कार्यं वक्ष्यते तत्वदर्शिभिः ॥

पित्तवहुल, तीक्ष्णाग्नि, समाग्नि वाले अथवा अन्य पुरुषों को पित्तकारक अपरिमित मिथ्या आहार विहार से यह रोग हो जाता है। पित्त की अधिकता के कारण रोगी को विदग्ध और अपक्व अन्न के डकार आते हैं क्योंकि आमाशय इस से भरा होता है । रोगी को बार २ गरम और पित्त के स्वाद वाली तथा धूंएं के समान डकारें आती हैं, इन के साथ पित्त से होने वाले दाह, मूर्छा, स्वेद तथा भ्रम आदि लक्षण भी विदित होते हैं । इन अवस्थाओं में चिकित्सक को उचित है कि रोगी के आमाशय से तीक्ष्ण पित्त से मिश्रित दोषों को वमन द्वारा निकाल दे तथा इस प्रकार शोधन के बाद पित्तनाशक शीतल औषधियों द्वारा चिकित्सा करे ।

विष्टब्धाजीर्ण चिकित्सा विधि

विष्टब्धे स्वेदनं शस्तं वमनं लंघनं हितः ॥

विष्टब्धाजीर्ण प्रायः वात प्रकृति वाले पुरुषों को अथवा अन्य पुरुषों में वायु की वृद्धि के कारण हो जाता है। इस रोग में भी अन्य रोगों की भान्ति रोगी का अपरिमित भोजन ही कारण होता है। इस रोग में वायु की गति अति तीव्र और प्रतिलोम होने के कारण मल अवरुद्ध हो जाता तथा शरीर में आनाह, आध्मान, अंगों का अकड़ना और शूल आदि विविध लक्षण होते हैं। इस रोग की चिकित्सा में दोषानुसार रोगी को स्वेद, वमन तथा लंघन का प्रयोग कराना चाहिये।

रसशेषाजीर्ण चिकित्सा विधि

अश्रद्धा हृद्व्यथाशुद्धोऽप्युद्गारो रसशेषतः ।
शयीत किञ्चिदेवात्र सर्वश्च नाशितो दिवा ॥

परिपक्व हुए भोजन का रस सारे शरीर में तो आकार्षित हो जाता है परन्तु कुछ शेष रह जाता है जिस से रसशेषाजीर्ण होता है; इस रोग में शरीर तथा दिल कुछ भारी रहता और बुरे २ डकार आते हैं, रस के नियमानुसार गति न करने से हृदय में भी पीड़ा रहती है।

अजीर्ण के उपद्रव

मूर्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः ।
उपद्रवाः भवन्त्येते मरणं चाप्यजीर्णतः ॥

अजीर्ण रोग से मूर्छा, प्रलाप, वमन, लार का गिरना, ग्लानि, भ्रम तथा मरण तक भी हो सकता है।

कभी २ देखा जाता है कि बहुत काल तक रोगी को अजीर्ण रहने के कारण भ्रम, प्रलाप अथवा उन्माद आदि रोग हो जाते हैं, जिनकी परीक्षा करते हुए प्रायः चिकित्सक अजीर्ण की ओर न ध्यान देते हुए मस्तिष्कसम्बन्धी रोग को निर्णय करते हैं; इसलिये यदि किसी रोगी को कभी भ्रम, उन्माद आदि रोग हों तो उस रोगी की जठराग्नि के बलाबल की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

अजीर्ण चिकित्सा

अजीर्ण के नाश के लिये नीचे योग लिखे जाते हैं, रोगी के दोषों का विचार करते हुए जिन योगों को आवश्यक समझें, चिकित्सक उनका प्रयोग कर सकते हैं।

धान्यकादि क्वाथ

धनियां और सोंठ प्रत्येक ६ माशे लेकर दोनों द्रव्यों का अर्धावशेष क्वाथ रोगी को पिलावें; इससे आमाजीर्ण शान्त होता है। यह क्वाथ दीपन, तथा पाचन है। इससे आम शीघ्र पच जाता है।

एलादि क्वाथ

बड़ी इलायची के दाने ३ माशे, दालचीनी ४ माशे, नागकेसर ५ माशे, काली मरिच ६ और पीपल ४ माशे, सोंठ ४ माशे। सब द्रव्यों का यथाविधि क्वाथ बना कर प्रयोग करने से आमाजीर्ण नष्ट होता है।

अमृतादि वटी

मीठा तेलिया शुद्ध १ भाग, सोंठ २ भाग, मरिच ३ भाग, पीत धराटभस्म ४ भाग। सब द्रव्यों को ३ दिन निम्बू के रस में खरल कर १ रत्ती की गोली बना लें। इस प्रयोग को अर्क सौंफ या गरम जल के साथ देने से आमाजीर्ण हटता है।

हरीतक्यादि चूर्ण

हरड़ छोटी, सौंफ प्रत्येक ५ तोले, सोंठ २॥ तोले । पहिले हरड़ों को घी में भून लें फिर सोंठ और सौंफ को पृथक २ तवे पर अर्धपक्व भून लें। सब द्रव्यों को एकत्र कर सबके समान खांड मिला दें।

मात्रा—३ माशे तक।

अनुपान—गर्म जल के साथ यह चूर्ण रोगी के बलानुसार दिन में ३-४ बार प्रयोग कराने से आमाजीर्ण नष्ट होता है।

हिंग्वादि लेप

हींग, सेन्धा नमक, सोंठ, काली मरिच, पीपल । सब द्रव्यों को गरम जल से पीस कर गरम २ ही आमाशय पर दो तीन बार लेप करने से आमाजीर्ण शान्त होता है।

जीरकादि लेह

जीरा श्वेत, छोटी इलायची के दाने, अनारदाना, आलूबुख़ारा, मुनक्का । सब द्रव्यों को महीन पीस कर थोड़ा नमक मिला कर रोगी को थोड़ी २ देर बाद चटावें। इस लेह से विदग्धाजीर्ण शान्त होता है।

सितादि चूर्ण

मिश्री १॥ तोले; पोदीना ४ माशे, अम्लवेतस ४ माशे; दालचीनी; ३ माशे; तालीसपत्र ३ माशे। सब द्रव्यों का यथाविधि चूर्ण बना लें।

मात्रा—३ माशे तक।

अनुपान—प्रति मात्रा ताज़े पानी के साथ प्रयोग करने से विदग्धाजीर्ण शान्त होता है।

राजवटी

सोंठ ४ तोले; गन्धक २ तोले; सेन्धा नमक १ तोला । सब द्रव्यों को नीम्बू के अर्क में खरल करके २ रत्ती की गोली बना लें। यह राजवटी विदग्धाजीर्ण की एक उत्तम औषधि है; इसके प्रयोग से अवश्य लाभ होता है।

शंखवटी

इमलीखार, पांचों नमक, शङ्ख के टुकड़े प्रत्येक ४ तोले; हींग भुनी हुई ६ माशे, सोंठ, काली मिरच प्रत्येक १ तोला; पारा और गन्धक प्रत्येक ६ माशे। पहिले शङ्ख के टुकड़ों को अग्नि में तपा २ कर इतनी बार बुझावें; कि शङ्ख की भस्म हो जावे; फिर समस्त द्रव्यों को खरल कर के नींबू के रस के साथ ४ रत्ती से १ माशे तक गोली बना लें।

मात्रा—दिन में ३ या ४ गोली तक।

अनुपान—शङ्खवटी शीतल जल के साथ प्रयोग करने से विदग्धाजीर्ण को अवश्य लाभ होता है।

शङ्खवटी नम्बर २

पारा २ तोले; गन्धक १ तोला; मीठा तेलिया ६ तोले; काली मिरच ६ तोले; शङ्खभस्म ६ तोले; सोंठ; सज्जीखार समुद्र नमक; हींग भुनी सुहांजने की जड़ की छाल; सौंचर नमक; नौशादर प्रत्येक १० तोले। यथाविधि नींबू के रस में खरल करके ४ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—२ गोली तक।

अनुपान—शीतल जल या अर्क सौंफ के अनुपान से प्रयोग करने पर विदग्धजीर्ण तथा अन्य सब प्रकार का अजीर्ण नष्ट होता है। यह योग हमारा सहस्रों बार का अनुभूत है।

त्रिफलादि वटी

त्रिफला, त्रिकटु, अजवायन, लौंग, चित्रक, दालचीनी, रूमी मस्तकी, वायविडङ्ग प्रत्येक १ तोला, बड़ी इलायची के दाने ३ माशे, केसर, जावित्री प्रत्येक ३ माशे। सब द्रव्यों को सुहांजने के रस में खरल कर बेर के बराबर गोली बना लें।

अनुपान—एक गोली गरम पानी के साथ प्रयोग करने से अजीर्ण को लाभ होता है।

अजीर्णकण्टक रस

शुद्ध पारा, शोधित मीठा तेलिया, गन्धक शुद्ध प्रत्येक १ तोला, काली मिरच ३ तोले। सब द्रव्यों को यथाविधि खरल करके कण्टकारी के

फलों के रस में २१ दिन रगड़ कर एक रत्ती की गोली बना लें। यह अजीर्णकण्टक रस दिन में ३ गोली तक गरम पानी के साथ सेवन करने से अजीर्ण नष्ट होता है।

अजीर्णगज केसरी

शङ्खभस्म, सीपभस्म, गन्धक शुद्ध, मण्डूर भस्म, सुहागे की खील, नौसादर, सांभर लवण, पीपल, चीते की छाल, अजवायन देसी प्रत्येक ४ तोले। इन सब द्रव्यों का चूर्ण बना १ सेर नीबू के रस में खरल करके कांच की दृढ़ बोतलों में भर कर ज़मीन में गाड़ दें और १४ दिन बाद निकाल कर काम में लावें। यह रस अजीर्णगजकेसरी कहा जाता है।

मात्रा--३ माशे से ६ माशे तक।

अनुपान--गरम पानी के अनुपान से ग्रहणी, यकृत् रोग, प्लीहा और अजीर्ण में प्रयोग करने से इन रोगों को शीघ्र नष्ट करता है; यह योग हमारा सहस्रों बार का अनुभूत है, इसे वैद्य महोदय अवश्य व्यवहार करें।

अर्कपुष्पादि वटी

आक की बिना खिली कलियां, मरिच, सेन्धा नमक, सोंठ, पीपल, नौसादर, त्रिफला प्रत्येक समभाग ले महीन पीस कर ४रत्ती की गोली बना लें। यह वटी उदरशूल, अजीर्ण, वातशूल, संग्रहणी और विशूचिका रोग की एक श्रेष्ठ औषधि है।

हिंग्वष्टक चूर्ण

सोंठ, मिर्च, पीपल, जीरा श्वेत भुना हुआ, जीरा स्याह, सेंधा नमक, सौंचर नमक, हींग भुनी हुई। प्रत्येक समान भाग ले चूर्ण बना कर काम में लावें।

मात्रा—३ माशे की मात्रा।

अनुपान--गरम पानी के साथ प्रयोग करने से विष्टब्धाजीर्ण शान्त होता है।

पाचक पिप्पली

नीबू का रस पाव भर, सेन्धा नमक ५ तोले। दोनों को मिला कर उसमें छोटी पीपल डाल कर चार दिन पड़ी रहने दें, इसे पाचक-पिप्पली कहते हैं। दिन भर में ३-४ बार इसके प्रयोग से सब प्रकार का अजीर्ण नष्ट होता है।

यवानी प्रयोग

स्वच्छ देसी अजवायन को साफ़ करके पहिले एक बार घीक्वार के रस में भिगो कर सुखा लें; फिर नींबू के रस की भावना दे सुखा कर रख लें। यह अजवायन १ माशे से ३ माशे तक गरम पानी के साथ प्रयोग करने से सब प्रकार के उदर रोग, शूल, अजीर्ण तथा मन्दाग्नि को नाश करती है।

वड़वानल रस

पारा, गन्धक, मीठा तेलिया, लौंग प्रत्येक १तोला,जायफल ६ माशे; सब को खरल कर इमली के रस की भावना देकर १ रत्ती की गोली बना लें, यह वड़वानल रस १ गोली से ४ गोली तक भिन्न २ अनुपानों से दिया जाता है--

१. अजीर्ण में अदरक के रस के साथ उपयोग करना चाहिये।

२. मन्दाग्नि में काली मरिच के साथ दें।

३. उदरशूल में पानस्वरस में दें।

४. अतिसार में नागरमोथे के काढ़े से दें।

५. कृमिरोग में वायविडङ्ग के काढ़े में दें।

६. संग्रहणी रोग में नागरमोथा, धनियां और सोंठ का काढ़ा बना कर उसके साथ दें।

७. प्रमेहरोग में १माशा हल्दी और ३माशे मधु से चटानी चाहिये।

८. आमवात रोग में रास्नादि कषाय के साथ व्यवहार करने से लाभ होता है।

लवणभास्कर चूर्ण

पीपल, धनियां, पीपलामूल, जीरा स्याह, सेन्धा नमक प्रत्येक ८ तोले; सौंचर नमक २० तोले, पत्रज, तालीशपत्र नागकेशर, अजवायन प्रत्येक ८ तोले; समुद्र नमक ३२ तोले; काली मरिच २० तोले, जीरा श्वेत भुना हुआ ४ तोले, सोंठ ४ तोले, दालचीनी और बड़ी इलायची के दाने प्रत्येक २ तोले; अनारदाना ३२ तोले, अम्लवेद १६ तोले। इन द्रव्यों का विधिवत् चूर्ण बना लें।

अनुपान---३ माशे की मात्रा में गरम पानी के साथ या अर्क सौंफ के साथ प्रयोग करने से यह चूर्ण मन्दाग्नि, अजीर्ण आदि सब प्रकार के उदर रोगों को नष्ट करता है।

बृहत् अग्निमुख चूर्ण

जवाखार, सज्जीखार, चीते की जड़ की छाल, पाढल, करञ्ज की जड़, पांचों नमक, छोटी इलायची, तेजपात, भारङ्गी, वायविडङ्ग, हींग, पोहकरमूल, कपूर, दालचीनी, निशोथ, नागरमोथा, वच, इन्द्रजौ, आमला, जीरा श्वेत गजपीपल, कलौंजी, अम्लवेद, अनारदाना, तिन्तड़ीक (सिमाक़) त्रिकटु, भिलावा शुद्ध, अजमोद, हाऊवेर, अमलतास का गूदा, तिलक्षार, पलाशक्षार, सुहाञ्जनाक्षार, मण्डूर सब द्रव्यों को सम भाग ले कर नींबू रस, अदरक का रस, काञ्जी और सिरके में पीस कर इन द्रव्यों की तीन २ भावना दे कर रख लें। यह बृहत् अग्निमुख चूर्ण कहाता है; यह चूर्ण सम्पूर्ण उदर रोगों की अद्वितीय और अनुपम औषधि है। ४ रत्ती से १ माशे तक की मात्रा में गरम जल, अर्क सौंफ या छाछ आदि के साथ यथा समय प्रयोग करना चाहिये।

शतपुष्पादि शर्करोदक

२ तोले सौंफ को आध सेर पानी में उबालें, आध पाव शेष रहने पर उतार कर छान लें, इस में पाव भर खाण्ड और ३ माशे सुहागे की खील मिला कर यथाविधि शर्बत बना लें। यह शर्बत बच्चों की मन्दाग्नि को तीव्र करने के लिए एक अति हितकारी औषधि है।

मरिचादि वटी

लाल मिरचों के चूर्ण को निरन्तर ४० दिन नीम्बू के अर्क में खरल कर के २ रत्ती की गोली बना लें। यह गोली ४ रत्ती की मात्रा में पान में रख कर खाने से मन्दाग्नि शान्त होती और भूख बढ़ती है।

विष्टब्धाजीर्ण में स्वेद

१. विष्टब्धाजीर्ण वाले रोगी को एक मोटी चादर देने के सिवाय शेष सब कपड़े उतरवा दें और गरम पानी की भाप दें, इस से पसीना हो कर अजीर्ण नष्ट होती है।

२. अलसी की पुलटिस बना शूल की जगह पर गरम सेक दें, इस प्रकार भी स्वेद हो कर शूल और अजीर्ण शान्त होते हैं।

३. सोये के बीज और नमक को पीस कर पोटली बना लें, इस पोटली को तवे पर गरम कर के शूल के स्थान पर बार २ सेक देने से शूल शान्त होती है।

श्री रामबाण रस

पारा, मीठा विष, लौंग; गन्धक, प्रत्येक १ तोला, काली मिरच २ तोला, जायफल ६ माशा। इन सब को तिन्तड़ीक रस के साथ खूब खरल करके उड़द प्रमाण गोली बनावें। यह रस वाताजीर्ण रोग के लिये अति लाभ करता है।

मात्रा—एक २ गोली दिन में ३–४ बार।

अनुपान—गरम जल अथवा सौंफ के अर्क के साथ सेवन करावें।

विष्टब्धाजीर्ण सुकुमार मोदक

पिप्पली, पिप्पलामूल, सोंठ, काली मिरच, हरडछाल, आंवला, चित्रकमूलछाल, कृष्णाभ्रक भस्म (अर्क दुग्ध योग से) गिलोय, कुटकी, प्रत्येक का चूर्ण २ तो., दन्ती मूल ६ तो., निसोत १६ तो., खांड २४ तो.। पहले सब वस्तुओं का यथाविधि बारीक चूर्ण कर के खांड की चाशनी बना लें और जब चाशनी भली प्रकार पक जाये तो अग्नि पर से उतार कर उपरोक्त चूर्ण मिला कर सब औषधियों के समान मधु मिला कर ३ माशे से ६ माशे तक मोदक बना लें।

मात्रा—१ से २ मोदक।

अनुपान—गर्म जल अथवा सौंफ के अर्क के साथ सेवन करने से विष्टब्धाजीर्ण को विशेष लाभ होता है।

त्रिवृतादि मोदक

निसोत, पिप्पलामूल, दन्ती मूल, पिप्पली, चित्रकमूल छाल प्रत्येक ४ तो., गिलोय २०तो., सोंठ २०तो., गुड़ २॥ सेर। पहली चीजों का चूर्ण बना कर गुड़ की चाशनी बना लें और चूर्ण को मिला कर छः छः माशे प्रमाण के मोदक बना लें।

मात्रा—२ मोदक।

अनुपान—गर्म जल के साथ सेवन करने से विष्टब्धाजीर्ण में विशेष लाभ होता है, यह मोदक वात और विष्टब्धाजीर्ण रोगी को ही सेवन कराने चाहियें।

अग्निमुख लवण

चित्रकमूल छाल, त्रिफला, दन्तीमूल, निसोत, पोहकरमूल प्रत्येक समान भाग, सब के बराबर सैंधा लवण। यथाविधि चूर्ण बना कर इस चूर्ण को थोहर के दूध की तीन दिन पर्यन्त भावना दे कर थोहर के डंडे में भर दें, पश्चात इस डंडे पर कपड़मिट्टी कर के आग में पका लें। जब ऊपर वाली कपड़मिटी लाल हो जावे तो अग्नि में से निकाल कर ठंडा कर के चूर्ण को निकाल कर धूप में सुखा लें और पीस कर रखें।

मात्रा—४ रत्ती से १ माशा तक।

अनुपान—गर्म जल से यह चूर्ण भी विष्टब्धाजीर्ण की अद्वितीय औषधि है। इस से विष्टब्धाजीर्ण अवश्य नष्ट होता है।

विदग्धाजीर्ण लवङ्गादि मोदक

लौंग, पिपली सोंठ, काली मरिच, जीरा श्वेत, जारी काला, नागकेसर, तगर, छोटी इलायची, जायफल, वंशलोचन, कटफल, तेजपत्र; कमलबीज, लाल चन्दन, कंकोल, अगर, खस; अभ्रक भस्म (शोरा और केले के रस के योग से) कपूर, जावित्री, मोथा, जटामांसी, जौ, धनियां, सोये, प्रत्येक समान भाग सब के बराबर लवङ्ग। सब को भली भांति कूट कर चूर्ण बना लें, सब चूर्ण से दुगुनी उत्तम खांड। यथाविधि खांड की चाशनी कर के उस में चूर्ण को मिला दें और ३ माशे से ६ माशे के मोदक बना लें।

मात्रा—१ से २ मोदक।

अनुपान—दिन में एक-दो बार इस के सेवन से विदग्धाजीर्ण अम्लपित्त, कफपित्त और आमाशय का खटाई आदि रोग दूर होते हैं। विदग्धाजीर्ण की विशेष औषधि है।

मुस्तकारिष्ट

नागरमोथा १०सेर ले कर २मन जल में पकावें जब पानी चौथा भाग शेष रह जाये तो खूब मल कर छान लें, फिर इस में १५ सेर गुड़ मिला कर किसी मिट्टी के चिकने पात्र में डाल दें और ऊपर से निम्न लिखित औषधियें कूट कर डाल दें, अजवाइन, काली मरिच, सोंठ, लौंग, मेथी के बीज, चित्रकमूल छाल, जीरा काला, प्रत्येक ८ तो. इन का चूर्ण डाल कर

ऊपर से ६४ तोले धायफूल डाल दें और पात्र का मुख बन्द कर के एक मास के पश्चात् खोल कर नितरा हुआ आसव सावधानी से बोतलों में भर लें।

मात्रा—१ तो. से २ तोले तक।

अनुपान—भोजनोत्तर दोनों काल सेवन करने से अजीर्ण तथा अग्नि मान्द्य को लाभ करता है, यह आसव विशेष कर अजीर्ण रोगी को ऐसी अवस्था में देना चाहिये जब कि रोगी को दस्त भी आते हों, ऐसी दशा में इस के सेवन से विशेष लाभ होता है।

विशेष रस प्रयोग

अग्नि सन्दीपन रस

पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रकमूल छाल, सोंठ, काली मिरच, पांचों लवण, यवक्षार, सज्जीक्षार, सुहागा, ज़ीरा, काला ज़ीरा, अजवाइन, वच, सौंफ, भुनी हींग, जायफल, चित्रकमूलछाल, कुष्ट, जावित्री, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, इमलीक्षार, अपामार्गक्षार, मीठा तेलिया, पारा, गन्धक, लोहभस्म, अभ्रक भस्म, बंगभस्म, लौंग, हरड़छाल प्रत्येक १तोला, अम्लवेत २ तोला, शंख भस्म ४ तोला। इन सबको भली भांति पीस कर पन्चकोल, चित्रक, अपामार्ग, चांगेरी के रस तथा क्वाथ में तीन २ दिन खरल करें। तत्पश्चात् निम्बू के रस में २१दिन पर्यन्त खरल करके २रत्ती से ४ रत्ती की गोली बनावें और दोषानुसार अनुपान की कल्पना करें। यदि वातदोष प्रधान हो तो उष्णोदक, सौंफ के जल, धान्यादि क्वाथ के साथ सेवन करें। पित्त की प्रधानता में लवंग और छोटी इलायची के क्वाथ के साथ और जहां कफ प्रधान हो शुंठी क्वाथ अथवा अजवाइन के अर्क के साथ सेवन करावें।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक।

अनुपान—प्रातः सायं भोजनोत्तर। इस के सेवन से सर्व प्रकार का अजीर्ण तथा अग्नि मान्द्य नष्ट हो जाते हैं। सहस्रों बार का अनुभूत है।

सूचना—इस रस में जो अभ्रकादि भस्में वर्णित हैं वह निम्न-प्रकार से बनी हुई होनी चाहियें :—

१. लोहभस्म, हिंगुल और घृतकुमारी योग से बनी हुई।

२. अभ्रकभस्म शृङ्गवेरादि गण से बनी हुई।

३. वङ्ग भस्म, हड़ताल और घृतकुमारी योग से बनी हुई।

४. वङ्ग भस्म निम्बू रस द्वारा सिद्ध की हुई।

अग्नि तुण्डी रस

पारा, गन्धक, मीठा तेलिया, अजमोद, त्रिफला, सज्जीक्षार, यवक्षार, चित्रकमूल छाल, सेन्धा लवण, ज़ीरा, सौंचललवण, वायविडङ्ग, समुद्रनमक, सुहागा प्रत्येक समभाग लेकर यथाविधि चूर्ण करें और इस चूर्ण के समान घी में भुना हुआ कुचला चूर्ण मिला कर जम्बीरी निम्बू के रस में बराबर ७ दिन पर्यन्त खरल करके आधी रत्ती से १ रत्ती तक गोली बनावें।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक।

अनुपान—गर्म पानी के साथ सेवन कराने से अजीर्ण तथा मन्दाग्नि रोग नष्ट होते हैं।

यह रस अजीर्ण तथा अग्निमान्द्य की ऐसी दशा में प्रयोग कराना चाहिये जब कि रोगी को अग्निमान्द्य के साथ २ उदर शूल भी होता हो, ऐसी दशा में इसके सेवन से विशेष लाभ होता है। हमारा सहस्रों बार का अनुभूत है।

महोदधि रस

मीठा तेलिया १ तोला, रस सिन्दूर १ तोला, जायफल २ तोला, पिप्पली ३ तोला, सोंठ ६ तोला, वराट भस्म ६ तोला, लवङ्ग ५ तोला, सब को भली प्रकार पीस कर लवङ्ग के क्वाथ के साथ १दिन खरल करें और १ रत्ती से २ रत्ती की गोली बना लें। दोनों समय भोजन के पश्चात् १ से २ गोली ठण्डे पानी के साथ दें। यह रस विदग्धाजीर्ण तथा अम्लपित्त रोग में सेवन कराना चाहिये अथवा मन्दाग्नि वाले को भोजन के २-३ घण्टा पीछे खट्टे डकार आते हों तो उसको भी विशेष लाभ करता है।

भास्कर रस

पारा, गन्धक, मीठा तेलिया, जायफल, त्रिकुटा, सुहागा, ज़ीरा श्वेत प्रत्येक १ तोला, लोह भस्म, शङ्ख भस्म, अभ्रक भस्म, वराट भस्म प्रत्येक २ तोला, लौंग १९ तोला इनको यथाविधि पीस कर, ३ दिन पर्यन्त शतावर के रस और ३ दिन निम्बू के रस में खरल करके २रत्ती प्रमाण गोली बनावें, यह रस भी विदग्धाजीर्ण तथा अम्लपित्त रोग में विशेष लाभ करता है।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक।

अनुपान-ठण्डे जल अथवा लवंग और इलायची के क्वाथ के साथ सेवन कराना चाहिये।

सूचना—इस रस में जो लोहादि भस्में वर्णित हैं, वह निम्न प्रकार से बनी हुई होनी चाहियें :—

१. लोहभस्म त्रिफला रस द्वारा (२) अभ्रकभस्म शोरा और केले के रस से बनी हुई (३) शंख और वराटभस्म घीक्वार के रस से बनी हुई होनी चाहिये।

वृहदाग्निकुमार रस

पारा १ तोला, गन्धक २ तोला, सुहागा २ तोला, त्रिफला १ तोला त्रिकुटा १ तोला, यवक्षार १ तोला, पांचों लवण १ तोला। इनको यथाविधि पीस कर अद्रक के रस में ७ दिन पर्यन्त खरल करें और ४ रत्ती से १ माशा तक गोली बना लें।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक।

अनुपान—अद्रक के रस के साथ थोड़ा नमक डालकर सेवन करावें।

यह रस कफ प्रधान तथा कफ प्रकृति के रोगियों के लिये विशेष लाभ करता है और सदा कफ प्रधानावस्था में ही सेवन कराना चाहिये।

पाशुपत रस

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, लोहभस्म ३ भाग, मीठा विष

६ भाग। इनको यथाविधि पीसकर चित्रकमूलछाल के क्वाथ से ३ दिन मर्दन करें। पश्चात् इसमें धतूरबीजों की भस्म ३२ भाग, सोंठ ३ भाग, मिरच ३ भाग, पिप्पली ३ भाग, लौंग ३ भाग, छोटी इलायची ३ भाग, जायफल ½ भाग, पांचों नमक प्रत्येक ½ भाग, स्नुहीक्षार (थोहर), एरण्ड-क्षार, इमली क्षार, अपामार्ग क्षार, अश्वत्थक्षार (पीपल), यवक्षार, हरड़, सज्जीक्षार, हींग भुनी, ज़ीरा, सुहागा प्रत्येक १ भाग। सब को यथाविधि पीसकर निम्बू के रस में बराबर ७ दिन पर्यन्त खरल करके १ रत्ती प्रमाण गोली बनावें। यह रस आमाजीर्ण, वाताजीर्ण तथा जिस अग्निमान्द्य रोगी को कफ प्रधान हो सेवन कराना चाहिये।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक।

अनुपान—गरम जल अथवा अद्रक के रस के साथ सेवन करावें।

सूचना—इस रस में जो लोहभस्म कही गई है वह शृङ्गवेरादि गण द्वारा बनी होनी चाहिये।

क्रव्याद रस

पारा १ पल, गन्धक २ पल, ताम्रभस्म ½ पल। इनको भली प्रकार खरल करके लोहे की कड़छी में डालकर अग्नि पर पिघलावें और एरंड पत्तों पर डालकर पर्पटी बना लें। पश्चात् पर्पटी को पीस कर एक लोहे की कड़ाही में डाल इस पर ५ सेर निम्बू रस डाल दें और मृदु अग्नि पर पकावें, जब रस पक जावे तो पञ्चकोल के २॥ सेर क्वाथ और अम्लवेत के २॥ सेर क्वाथ में पकावें पुनः अग्नि पर से उतार कर इसमें सुहागा ४ पल, विडलवण २ पल, काली मिरच १० पल पीसकर मिला दें और ७ दिन तक चणकाम्ल डाल कर खरल करें और २ रत्ती प्रमाण गोली बना लें। यह क्रव्याद रस मन्दाग्नि और अजीर्ण रोग की अव्यर्थ औषधि है।

मात्रा—१ गोली से २ गोली पर्यन्त।

अनुपान—भोजन के पश्चात् तक्र के साथ सेवन करावें।

यह रस अजीर्ण और मन्दाग्नि की ऐसी दशा में देना चाहिये, जब रोगी को अजीर्ण के साथ श्वेत और मटियाले रङ्ग के दस्त भी आते हों, इस के सेवन से आमाजीर्ण गुल्म तथा प्लीहादि उदर रोग नष्ट होते हैं।

सूचना—इसमें लोहभस्म रसेन्द्रसारोक्त शृङ्गवेरादि गण द्वारा

बनी हुई और ताम्रभस्म रसेन्द्रसारोक्त तीसरी विधि से बनी हुई डालें, अन्यथा इस रस का कोई फल नहीं होता ।

वीरभद्राभ्रक

सहस्र पुटि अभ्रक भस्म २ तोले ले कर चित्रकमूल छाल क्वाथ के साथ ६० दिन निरन्तर खरल करें, पश्चात् सूख जाने पर अद्रक का रस डाल कर आधी रत्ती प्रमाण की गोली बना लें ।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक ।

अनुपान—पान के रस के साथ अथवा अद्रक रस से सेवन करावें । यह रस आमाजीर्ण में तथा जहां रोगी कफ प्रकृति का हो सेवन कराना चाहिये । इस के सेवन से सर्व प्रकार के उदर रोग, शोथ, आमवात, वातरक्त, विसूचिकादि नष्ट होते हैं ।

ज्वालानल रस

यवक्षार, सज्जीक्षार, पारा, गन्धक, पिप्पली, पिप्पलामूल, चव्य, चित्रकमूल छाल, सोंठ प्रत्येक २ तो., भांग सूखी हुई १८ तो., सुहांजने की छाल ६ तो. । प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली कर लें पश्चात् सब औषधियों का चूर्ण कर के इस में मिला दें और भांग, चित्रक, भंगरा, सुहांजना के रस में तीन २ दिन खरल करें और २ रत्ती से ४ रत्ती तक की गोली बना लें ।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक ।

अनुपान—गर्म जल अथवा सौंफ के अर्क के साथ यह रस ऐसी दशा में सेवन कराना चाहिये जब कि अजीर्ण और मन्दाग्नि के साथ २ दस्त भी आते हों ।

रसोनादि वटी

लहसन, जीराकाला, सेंधा लवण, गंधक शुद्ध, सोंठ, काली मरिच, पिप्पली, भूनी हींग, सब को समान भाग ले कर नींबू के रस में तीन दिन खरल करें और २ रत्ती प्रमाण गोली बना लें ।

मात्रा—२ से ४ गोली तक ।

अनुपान—गर्म जल के साथ दिन में तीन बार सेवन करने से अजीर्ण तथा मन्दाग्नि को विशेष लाभ होता हैं। यह गोलियां रोग की ऐसी दशा में विशेष लाभ करती हैं जब कि अजीर्ण के साथ उदर शूल और अफारा भी हो।

अजीर्ण से पैदा होने वाले कृच्छ्रसाध्य रोग

अजीर्ण रोग के कारण कभी २ विसूचिका, अलसक, भस्मक तथा विलम्बिका आदि रोग पैदा हो जाते हैं, उनकी चिकित्सा लिखी जाती है।

विसूचिका

सूचीभिरिव गात्राणि तुदन् संतिष्ठतेऽनलः ।
यत्राजीर्णेन सा वैद्यैर्विषूचीति निगद्यते ॥

विदित हो कि विसूचिका रोग—जो हैज़े के नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध है—एक भयङ्कर तथा सांक्रामिक रोग है। इस रोग में वायु के अति प्रबल होने से दस्त और वमन होने लगते हैं तथा शरीर में सूई चुभोने के समान पीड़ा होती है, इसलिये इस रोग को विद्वान् लोग विसूचिका कहते हैं।

इस रोग की उत्पत्ति का मुख्य कारण दूषित जल, वायु तथा अन्न आदि के अतिरिक्त अपरिमित भोजन भी समझा जाता है। वेग के भेद से यह विसूचिका रोग दो प्रकार का माना जाता है—

तीव्र वेग वाले हैज़े में रोगी को ३–४ बार ही दस्त और वमन हो कर अत्यन्त निर्बलता हो जाती तथा रोगी निश्चेष्ट हो जाता है।

मध्य वेग वाले विसूचिका रोग में रोगी को निरन्तर दस्त और वमन होते रहते हैं, जिनकी संख्या बहुत अधिक होती है।

दोषचयकाल

अशनलोलुप तथा जिह्वा के लालची लोगों के शरीर में दूषित जल,

वायु तथा विषसंयुक्त विसूचिका रोग के उत्पन्न करने वाले पदार्थों के पहुंचने पर प्रायः १ दिन या अधिक से अधिक ४ दिन तक रोगी को कोई कष्ट नहीं प्रतीत होता, इस समय में दोषों का चय होता रहता है इस समय के उपरान्त वृद्धि को प्राप्त हुए दोष पहिले अजीर्ण के लक्षण उत्पन्न करते और फिर विसूचिका रोग कर देते हैं ।

प्रथमावस्था के लक्षण

ग्लानिर्गौरवविष्टम्भभ्रममारुतमूढ़ता ।
विबन्धे वा प्रवृत्तिर्वा सामान्याजीर्ण लक्षणम् ॥

रोगी को रोग के आक्रमण से पूर्व पहिले चय के समय अजीर्ण के लक्षण होते हैं—सिरदर्द, भ्रम, ग्लानि, विकलता तथा घबड़ाहट होती है । अब दोषवृद्धि होने पर प्रायः पहिले १ दिन रोगी को ३–४ दस्त हो जाते हैं, जिससे रोगी अति भयभीत हो जाता है, उसके बाद बहुधा ऐसा होता है कि रात्रि में सोते २ अचानक रोग का आक्रमण हो जाता है और रोगी को दस्त तथा वमन होने लगते हैं ।

द्वितीयावस्था के लक्षण

इस दशा में रोगी के मल और वमन में पहिले तो खाद्य पदार्थ ही जैसे के तैसे निकल जाते हैं और फिर चावलों की पीछ के समान श्वेत रङ्ग के दस्त होने लगते हैं तथा कांजी के समान वमन होने लगती है । हाथ और पैरों में उद्वेष्टन (ऐंठन) होती, प्यास के मारे रोगी बेचैन होता, शिर में पीड़ा होती, घबड़ाहट बढ़ जाती और पीया हुआ पानी दस्तों में निकल जाता है । यह हालत प्रायः १२ से १४ घण्टे तक रहती है और इसके बाद रोगी के अधिक निर्बल हो जाने पर तृतीयावस्था के लक्षण विदित होने लगते हैं ।

तृतीयावस्था के लक्षण

इस हालत में रोगी अत्यन्त निर्बल हो जाता, वमन और दस्त बन्द हो जाते या थोड़ी २ देर बाद ठहर कर होने लगते हैं, सारे शरीर में शीतलता हो जाती, सांस लेने में कठिनता होती, निर्बलता हो जाने से बोलना

कठिन होता और स्वर हीन हो जाता, चेहरा दब जाता, आंखें भीतर को घुस जातीं, मूत्र रुक जाता, आंखों के चारों ओर नीले रंग की रेखा हो जाती नाड़ी रुक २ कर चलने लगता, शरीरोष्मा अत्यन्त कम होकर ६४ दर्जे से भी कम प्रतीत होती, होंठ नीले हो जाते और चेहरे पर मुर्दनी छा जाती है। इनके साथ विकलता तथा घबराहट बढ़ जाती है। इन लक्षणों के हो जाने पर रोगी ३ से १० घण्टे के भीतर हा यमलोक को सिधार जाता है।

शमनावस्था

दोषों की शमनावस्था में शरीर की ऊष्मा बढ़ कर रोगी का शरीर धीरे २ गरम होने लगता है, यहां तक कि रोगी को ज्वर हो जाता है, नाड़ी की गति नियमानुसार होने लगती, मूत्र खुल कर आता, रोगी की कांति दीप्त होती, नेत्र भली प्रकार स्वच्छ और निर्मल प्रतीत होने लगते तथा धीरे २ समस्त दोष शमन होकर रोगी स्वस्थ हो जाता है।

शमनावस्था में ज्वर के साथ २ कभी त्वचा पर कोठ, उदर्द आदि लक्षण भी उत्पन्न होते हैं, कभी मुख तथा कण्ठ की लालाग्रंथियों में शोथ होकर उनमें पीप पड़ जाती है, कभी नेत्रों के जलाश्रित पटल में क्षत होकर वह गल जाता है, कभी २ मुखपाक होकर मुख में छाले हो जाते हैं, शरीर में पिड़िका अधिक हो जाती तथा अन्य लक्षण होने लगते हैं। रोगी के मूत्र में पहिले तो ओज (एल्ब्यूमिन) और फिर शर्करा निकलने लगती है, यह रोग जीर्ण होने पर रोगी के रक्त, शुक्र आदि धातुओं में निर्बलता हो जाती है।

विसूचिका का परिणाम

विसूचिका रोग में निम्न लक्षण होने पर रोगी को असाध्य समझना चाहिये—

१. यदि रोगी को वृक्करोग हो और फिर हैज़ा हो जावे तो उसका बचना कठिन होता है।

२. यदि रोगी को देर तक रोग रहे तो निर्बलता तथा क्षीणता हो जाने से रोगी के जीवन की आशा नहीं रहती।

विसूचिका की चिकित्सा

रोग के प्रारम्भ में रोगी के वमन और दस्त कभी नहीं रोकने चाहियें किन्तु प्रकृति को सहायता देकर रोग के कारण दोष रूपी विष को शरीर से निकालने का यत्न करना चाहिये, जिससे रोगी का शरीर शुद्ध होकर रोग शान्त हो, इसलिये चिकित्सक का कर्तव्य है कि विसूचिका नाशक द्रव्यों द्वारा पहिले रोगी के आमाशय और आन्तों को शुद्ध करे और इसके बाद शमनोपाय करे। आंतों और आमाशय को शुद्ध करने के लिये १ गिलास पानी में १ तोला नमक मिला कर रोगी को पिला दें, इस से पेट साफ़ हो जाता है।

मरिचादि वटी

काली मरिच १ तोला, अहिफेन ६ माशे, कपूर शुद्ध ६ माशे, हींग भुनी हुई १ तोला। इन द्रव्यों को पुराने गुड़ में मिला कर १ रत्ती की गोली बना लें। आधे २ घण्टे के अन्तर से यह औषधि गरम पानी के साथ रोगी को देने से कुपित दोष शरीर से निकल कर रोगी को लाभ होता है। यह गोली विसूचिका की आरम्भावस्था में ही देनी चाहिये, इस से प्रायः लाभ होता है।

पलाण्डुस्वरसादि अर्क

प्याज़ का रस ८ तोले, हींग भुनी हुई ४ रत्ती, नमक सांभर ८ रत्ती, कपूर शुद्ध ८ रत्ती, अफीम ४ रत्ती। सब द्रव्यों को एकत्र खरल कर शीशी में भर लें।

मात्रा—१० बून्द तक।

अनुपान—सौंफ के अर्क के साथ कई बार प्रयोग करने से लाभ होता है। यह योग भी विसूचिका की आरम्भावस्था में ही लाभ करता है।

मरिचादि क्वाथ

लाल मरिच २ तोला, सेन्धानमक ३ माशे, पानी १ सेर में पकावें, आधा सेर रहने पर उतार कर छान लें।

मात्रा—२ तोले।

अनुपान—अर्क पोदीना के साथ प्रति १५ मिनिट के बाद प्रयोग करें। इससे आरम्भावस्था में विशेष लाभ होता है।

राजिकादि वटी

राई ५ तोले, नमक सांभर १ तोला, लहसुन २ तोले, लाल मरिच के बीज २ तोले। सब द्रव्यों को नीबू के रस में घोट कर २ रत्ती की गोली बना लें।

अनुपान—अर्क सौंफ के साथ प्रति १५ मिनिट के बाद देने से लाभ होता है। यह भी रोग की आरम्भावस्था के लिये उत्तम योग है।

अर्कजटावटी

आक (मदार) की जड़ की छाल अति सूक्ष्म पीस कर १दिन अदरक के रस में खरल करके १ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—१ गोली।

अनुपान—सौंफ के अर्क के साथ आध २ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये, यह औषधि अनुभूत है और अति लाभकारी है।

मरिचादि वटी

लाल मरिच ५ तोले, चूना बुझा हुआ २ तोले। दोनों द्रव्यों को निम्बू के अर्क के साथ खरल करके २ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—१ गोली।

अनुपान—गरम जल या अर्क सौंफ के साथ आधे २ घण्टे बाद दें, विसूचिका की मध्य अवस्था में विशेष लाभ करती है।

विशूचिकान्तक वटी

हींग भुनी, जवाखार, सज्जीखार, सेन्धा नमक, काला नमक, नौसादर, पीपल, पिप्पलामूल, चित्रक की जड़ की छाल, काली मरिच, कचूर, धनियां, वच, तिन्तिड़ीक (सेमाकदाना), अजमोद, पोहकर मूल,

सोंठ, जीरा स्याह, करञ्ज की गिरी, बड़ी हरड़ की छाल, पाठल । सब द्रव्यों को समभाग लेकर नीबू के अर्क से खरल करके जङ्गली बेर के समान गोली बना लें । यह औषधि उदरशूल, विसूचिका, वमन तथा अजीर्ण रोग की एक श्रेष्ठ औषधि है ।

मात्रा—एक २ गोली ।

अनुपान—आधे २ घण्टे के अन्तर से अर्क सौंफ के साथ प्रयोग करनी चाहिये ।

कर्पूरासव

उत्तम मदिरा (ब्राण्डी) १० सेर, कपूर शुद्ध ६४तोले, इलायची छोटी ८तोला, नागरमोथा, सोंठ, अजवायन, काली मरिच प्रत्येक ८तोले । सब द्रव्य एकत्र कर एक शीशे के ऐसे बर्तन में बन्द कर दें, जिसमें वायु प्रवेश न कर सकती हो; आठ दिन बाद नितरा हुआ आसव बोतलों में भर लें । यह आसव विसूचिका की प्रत्येक अवस्था में लाभ करता है और हमारा सहस्रों बार का अनुभूत है ।

मात्रा—५ से १० बून्द तक ।

अनुपान—यह आसव अर्क सौंफ के साथ प्रति १५ मिनिट के बाद प्रयोग करना चाहिये और जिस प्रकार रोगी की दशा सुधरती जावे उसके साथ ही साथ औषधि में अन्तर भी बढ़ा देना चाहिये ।

विसूचिका विध्वंसन रस

भुना हुआ सुहागा, स्वर्णमाक्षिक भस्म, गन्धक शुद्ध, पारा, मीठा तेलिया शुद्ध, सर्पविष (अभाव में साङ्खिया डालें) सब द्रव्यों को यथाविधि खरल कर सरसों के समान गोली बना लें;यह विसूचिका विध्वंसन रस है । यह औषधि रोग की असाध्यावस्था में प्रयोग करने से लाभ होता है । हमारा सहस्रों बार का अनुभूत है ।

सूचना—इस रस में स्वर्णमाक्षिक भस्म, गन्धक और लवण योग से बनी हुई डालनी चाहिये ।

संजीवनी वटी

बायविडङ्ग, त्रिकटु, त्रिफला, गिलोय शुष्क, भिलावा, मीठा तेलिया शुद्ध। सब द्रव्यों का चूर्ण कर गोमूत्र और अद्रक के रस में तीन २ दिन खरल करके १ रत्ती की गोली बना लें।

रोगविजय रस

पारा१तोला, गन्धक१तो०, मीठा तेलिया २तो० सुहागा कच्चा६तो०, काली मरिच ६तो०, पिप्पली ६तो०, केसर १तो०, लौंग १तो०,सोंठ १तो०। प्रथम पारे और गन्धक की भली प्रकार कज्जली बना लें, फिर सब वस्तुओं को पीस कर इसमें मिलाकर एरण्ड के पत्तों के रस में ६ घण्टे और आक के पत्तों के रस में ८ घंटे खरल करें और एक एक रत्ती की गोली बना लें। यह रस विसूचिका की सब दशाओं में लाभ करता है।

मात्रा —दो गोली तक।

अनुपान—गर्म पानी के साथ एक २ घण्टा पीछे दें।

इस वटी के प्रयोग से अति उग्र विसूचिका रोग भी शान्त होता है; अर्क सौंफ, अर्क पोदीना, अर्क इलायची या गरम पानी के साथ प्रयोग करने से शीघ्र ही लाभ होता है। यह गोली भी रोग की सब हालतों में लाभ करती है।

विसूचिका रोग के उपद्रवों की चिकित्सा

१. जौ का आटा तथा जवाखार दोनों को छाछ के साथ गरम कर पेट पर लेप करने से शूल अवश्य शान्त होता है।

२. चूहे की विष्टा ४ तोले, सौंफ २ तोले, सेन्धा नमक ६ माशे, हींग ३ माशे, कलमी शोरा १ तोला। सबको पीस कर हलका गरम करके लेप करने से अफारा, शूल और मूत्राघात नष्ट होता है।

विशूचिका नाशक अंजन

१. चिरचिटे के पत्ते और काली मरिच पीसकर घोड़े की लार में रगड़ कर नेत्रों में लगाने से विसूचिका रोग शमन होता है।

२. त्रिकुटा, करञ्जुए की गिरी, दारुहल्दी, हल्दी, नीबू की जड़ की छाल। सब द्रव्यों को पीसकर गोली बना लें। आवश्यकता होने पर जल में घिस कर नेत्रों में लगावें, इसके प्रयोग से विसूचिका तथा प्रलाप आदि उपद्रव शान्त होते हैं।

तृषानाशक उपाय

१. लौंग २०दाने ले १सेर पानी में पका लें, शीतल होने पर विसूचिका रोगी को थोड़ा २ पिलाने से प्यास शान्त होती है।

२. जायफल ४दाने ले १सेर पानी में पकाकर उपरोक्त विधि से रोगी को पिलाने से प्यास नष्ट होती है।

३. पानी में नागरमोथा ४तोला औटा कर वही जल देने से भी तृषा शान्त होती है।

४. अर्क सौंफ, अर्क इलायची, अर्क पोदीना, अर्क गुलाब प्रत्येक २० तोले, बरफ़ २० तोले। सब को एकत्र कर रोगी को बार २ थोड़ा २ पिलाने से प्यास अवश्य नष्ट होती है।

५. पीपलवृक्ष की लकड़ी के दहकते हुए कोयले ५ तोले लेकर किसी मृत्तिकापात्र में स्वच्छ और निर्मल जल भरकर उसमें कोयलोंको बुझा दें और कुछ समय जल में ही पड़े रहने दें। यह जल विसूचिका रोग में उत्पन्न हुई प्यास को रोकने के लिये एक श्रेष्ठ औषधि है।

६. कूठ मीठा, धान की खीलें, कमलगट्टे की गिरी, बड़ की कोंपल सब को एकत्र कर मधु में मिला कर गोली बनावें। इन गोलियों को मुख में रख कर चूसने से दाह और तृषा शान्त होती है।

७. एक सेर जल में ५ तोले कलौंजी डाल किसी मिट्टी के बर्तन में पकावें, आधा शेष रहने पर उतार कर ठण्डा कर लें। यह जल ठण्डा कर के रोगी को थोड़ा २ पिलाने से विसूचिका रोग की प्यास शान्त होती है, हमारा सहस्रों वार का अनुभूत है।

वमन नाशक उपाय ।

१. छोटी इलायची के दाने, धान की खील, लौंग, नागकेसर, पीपल, मेंहदी, बेर की गुठली की गिरी, नागरमोथा, चन्दन श्वेत सब द्रव्य सम भाग ले कर सब के बराबर मिश्री मिला कर चूर्ण बना कर रखें, इस चूर्ण को दोगुने शहद में मिला कर चटनी बना लें और रोगी को थोड़ी २ चटावें । यह अवलेह सब प्रकार की वमन रोकने के लिए अति लाभकारी औषधि है ।

२. तीव्र गरम जल थोड़ा २ रोगी को पिलाने से वमन रुक जाती है ।

३. राई ५ तोले, कपूर ६ माशे दोनों को गरम जल से पीस कर आमाशय पर लेप करने से वमन तत्काल शान्त होती है । यह १५ मिनट से अधिक नहीं रहने देना चाहिये ।

४. मोर के पंख की भस्म ३ माशे और पीपल का चूर्ण ६ माशे दोनों को शहद में मिला कर चटाने से वमन रुक जाती है ।

उद्वेष्टन की चिकित्सा

रोगी को दस्त और वमन अधिक हो जाने से उस का शरीर निर्बल हो जाता और शरीरस्थ वायु अति प्रबल हो जाता है जिस से व्यान वायु का ठीक प्रकार संचार न होने से रोगी के हाथ, पैर और विशेषतः पिण्ड-लियों में ऐंठन होने लगती है और रोगी को बहुत कष्ट होता है । इस अवस्था में चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि वातानुलोमन क्रिया द्वारा ऐंठन को नष्ट करने का प्रयत्न करें, यदि पिण्डलियों में ऐंठन अधिक हो तो गरम पानी में राई का चूर्ण डाल कर रोगी के पैर धुलावें ।

१. सोंठ और कायफल दोनों को या अलग २ कूट कर इन के चूर्ण को शरीर पर मलने से ऐंठन नष्ट होती है और रोगी का शरीर भी गरम हो जाता है ।

२. पुरानी रुई को गरम कर के हाथ पैर को सेकने से ऐंठन नष्ट हो जाती है।

३. ब्राण्डी और तारपीन का तेल दोनों सम भाग मिला कर मर्दन करने से ऐंठन अवश्य नष्ट होती है।

४. सरसों के तेल में कूठ कड़वा और सेन्धा नमक मिला कर लेप करने से ऐंठन शान्त होती है।

५. नमक और बालू दोनों की पोटली बना कर तवे पर गरम कर के सिर्का छिड़क कर शरीर को भपारा देनें से ऐंठन नष्ट होती है।

६. चन्द्रोदय, रससिन्दूर, कस्तूरी आदि का लेह या कस्तूरी वटी का प्रयोग करने से भी शरीर गरम हो जाता और ऐंठन शान्त होती है।

मूत्रशोधक विधि

१. चूहे की विष्टा १० तोले, कलमी शोरा १० तोले दोनों को पीस कर वस्ति प्रदेश (मसाने) पर गरम २ लेप करने से मूत्र भली प्रकार आने लगता है।

२. टेसू के फूल तथा कलमी शोरा या टेसू के फूल और भांग को जल में पका कर वृक्कस्थान तथा वस्त्याशय पर कुछ गरम ही लेप करने से रोगी को मूत्र आसानी से आने लगता है।

जब रोगी के वमन और दस्त रुक जावें तथा मूत्र भी अवरुद्ध हो उस समय उचित है कि रोगी के वृक्कदेश पर सेक दें और निम्न प्रयोग काम में लावें—

छोटी इलायची के दाने ३ माशे, गोखरु ६माशे, पेठे के बीज ४माशे, खीरे और ककड़ी के बीज ३ माशे, जवासा ३ माशे। सब द्रव्यों का चतुर्थांश काढ़ा बनां लें। पहिले रोगी को ६ रत्ती कलमी शोरा और १॥ माशा जवाखार की फंक्की देकर ऊपर से काढ़ा पिला दें, इससे बहुत शीघ्र ही मूत्र खुल कर आने लगता है।

हिक्का नाशक उपाय

१. सेन्धा नमक १माशा घी में पीसकर सूंघने से हिचकी तत्काल रुक जाती है।

२. केले की जड़ का रस रोगी को सुंघाने से हिक्का शान्त होती है।

३. मोर के पङ्ख की भस्म ३माशे मधु में मिला कर चाटने से हिचकी बन्द हो जाती है।

अनुभूत योग—मैनसिल, पारा, गन्धक, मीठा तेलिया प्रत्येक पदार्थ शुद्ध करके एक २ तोला लें, इसमें ८ तोले मरिच चूर्ण मिला कर यथाविधि खरल कर लें।

अनुपान—यह हिक्कान्तक रस २ से ४ रत्ती तक मधु में मिला कर चटाने से हिचकी तत्काल शान्त होती है। यह रस हमारा सहस्त्रों बार का अनुभूत है।

स्वेदनाशक चिकित्सा

१. कुलथी भूनकर उसका महीन चर्ण शरीर पर मलने से स्वेद आना रुक जाता है।

२. प्रवालभस्म ४ रत्ती मधु में मिला कर चटाने से पसीना बन्द होता है।

विशेष चिकित्सा सान्निपात ज्वर में देखो !

अर्क तैल

अर्क (मदार) के पत्तों का रस १ सेर, धतूरे के पत्तों का रस, थोहर के डण्डे का रस, सुहांजने की जड़ का रस, अद्रक का रस प्रत्येक १ सेर; दही की छाछ, कांजी, तिल तैल प्रत्येक १ सेर, कूठ तथा सेन्धा नमक प्रत्येक ८ तोले। सब द्रव्यों को एकत्र कर विधिवत् तैल तय्यार करें। इस तैल को शरीर पर मलने से मूर्छा, स्वेद, ऐंठन आदि उपद्रव सहित विसूचिका रोग नष्ट होता है।

विसूचिकानाशक अवगाहन विधि

———:-०ॐ०-:———

असाध्य विसूचिकारोगी को एक शीतल जल से भरे टब में बिठा दें और दाह तथा प्यास होने पर उसे निरन्तर नरमूत्र पिलाते रहें, शरिर गरम होने पर रोगी को टब से निकाल दें। हमारा अनुभव है कि यह विधि विसूचिका रोग की असाध्य हालत में भी बहुत लाभ करती है।

विसूचिका रोग में असाध्य लक्षण

यः श्यावदन्तोष्टनखोऽल्पसंज्ञो वम्यार्दितोऽभ्यन्तरयातनेत्रः ।
क्षामस्वरः सर्वविमुक्तसन्धिर्यायान्नरोऽसौ पुनरागमाय ॥

जिस रोगी के दांत, होंठ और नख काले हो जावें, संज्ञा नष्ट हो जावे, वमन बहुत होती हो, नेत्र भीतर घुस गये हों तथा सम्पूर्ण शरीर की सन्धियां ढीली हो गई हों, ऐसे विसूचिका रोगी को असाध्य समझना चाहिये ।

विसूचिका के उपद्रव

निद्रानाशोऽरतिः कम्पो मूत्राघातो विसंज्ञता ।
अमी उपद्रवाः घोराः विसूच्यां पंच दारुणाः ॥

निद्रानाश, बेचैनी, कम्प, मूत्राघात, मूर्छा । यह पांच उपद्रव यद्यपि सम्पूर्ण रोगों में ही भयङ्कर हैं, परन्तु विसूचिका रोग में यह उपद्रव विदित होने पर समझ लें कि रोगी का बचना कठिन है ।

अलसक रोग चिकित्सा विधि

आमाशयोऽलसीभूतस्तेन सोऽलसकः स्मृतः ।
विविधैर्वेदनोद्भेदैर्वाय्वादिभृशकोपतः ॥
सोऽलसोऽत्यर्थदुष्टास्तु दोषाः दुष्टामबद्धखाः ।
यान्तस्तिर्यक् तनुं सर्वां दण्डवत् स्तम्भयन्ति चेत् ॥
आमदोषं महाघोरं वर्जयेद्विषसंज्ञकम् ।
विषरूपाशुकारित्वाद्विरुद्धोपक्रमतस्त्वतः ॥
अथाममलसीभूतं साध्यं त्वरितमुल्लिखेत् ॥

जब अजीर्ण की विशेषावस्था में विसूचिका आदि के उत्पन्न करने

वाले दोष आमाशय की क्रिया को शिथिल कर देते हैं तथा वह दोष न वमन द्वारा बाहिर निकलते और न आमाशय से बृहदन्त्र की ओर अधोमार्ग की ओर जाते हैं, उस समय वायु अति कुपित होकर नाना प्रकार की शूल, आध्मान तथा तीव्र पीड़ा आदि लक्षण उत्पन्न कर देता है, इस रोग को अलसक कहा जाता है।

अलसक रोग के लक्षण विदित होने के बाद आमाशयस्थ स्रोतों के आमदोष से अवरुद्ध हो जाने के कारण कुपित हुआ वायु हाथ पैर आदि में विचरता हुआ अति कष्ट देता तथा सारे शरीर को दण्ड के समान स्थिर करके शूल उत्पन्न करता है, इस रोग को "विलम्बिका रोग" कहा जाता है। इसको ही साधारण लौकिक भाषा में बन्द-हैज़ा (Cholera Cicca) कहते हैं।

विलम्बिकालसकयोरयमेव क्रियाक्रमः ॥

जो चिकित्सा विसूचिका रोग के लिये लिखी गई है उसी के अनुसार इन अलसक आदि रोगों की चिकित्सा करनी चाहिये। इन दोनों रोगों में विसूचिकाविध्वन्सन, पाशूपत रस, कर्पूरासवादि सद्यः फलकारी औषधियें ही लाभ पहुंचा सकती हैं।

भस्मकरोग चिकित्सा

तीक्ष्णाग्नि वाले मनुष्य में कफ क्षीण तथा वात और पित्त के तीव्र होने के कारण रोचकाग्नि इतनी तीव्र हो जाती है कि किया हुआ भोजन तत्काल ही पच जाता है, इसको भस्मक रोग कहा जाता है। इस रोग वाला रोगी दिन भर में पशुओं के समान २०-२९ सेर से भी अधिक भोजन खा सकता है। इन लोगों को भूख लगने पर यदि भोजन नहीं मिलता तो शारीरिक रक्त आदि धातु ही भस्म होने लगते और शरीर थोड़े दिनों में ही निर्बल हो जाता है।

भस्मक रोग के उपद्रव

तृट्स्वेददाहमूर्छादीन् कृत्वैषोऽत्यग्निसंभवात् ।
पक्त्वान्नमाशु धात्वादीन्स क्षिप्रं नाशयेद्ध्रुवम् ॥

यह भस्मक रोग अग्नि की अधिकता के कारण तृषा, स्वेद, दाह और मूर्छा आदि लक्षण पैदा कर देता है, अन्न को शीघ्र पचा कर यह रोग धातुओं को नष्ट करने लगता है ।

तं भस्मकं गुरुस्निग्धसान्द्रमन्दहिमस्थिरैः ।
अन्नपानैर्नयेत् शांतिं पित्तघ्नैश्च विरेचनैः ॥

भस्मक रोग की चिकित्सा में वैद्य को उचित है कि गुरु, स्निग्ध, कठोर, मन्द, शीतल, स्निग्ध तथा कफवर्धक द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करते हुए पित्तनाशक क्रिया विरेचन और घृतपानादि द्वारा इस रोग की चिकित्सा करे । भोजन के उपरान्त रोगी को सुला देना इस रोग में अति लाभकर है ।

भस्मक रोग के लिये प्रयोग

१. घृत तथा मधु मिलाकर यवागू सेवन करने से भस्मक रोग शान्त होता है ।

२. भैंस का दूध, दही तथा घी अत्यन्त बढ़ी हुई जठराग्नि को शमन करने के लिये एक उत्तम औषधि है ।

३. चावलों का चूर्ण घृत सहित दूध में मिला कर सेवन करने से जठराग्नि मन्द हो जाती है ।

४. काली निशोथ दूध में मिला कर विरेचन के लिये देना अति लाभकर है ।

भिन्न २ प्रकार के आहार से अजीर्ण आदि रोग उत्पन्न हो सकते हैं, निम्न कोष्ठक में अजीर्ण जनक कारण और उनके दूर करने की चिकित्सा लिखी जाती है जिससे चिकित्सा में सहायता मिल सके ।

अजीर्णजनक कारण तथा उनके निर्हरण करने के द्रव्यों का प्रदर्शक कोष्ठक

अजीर्णकारक द्रव्य	अजीर्णनाशक द्रव्य
१, कटहल के अजीर्ण में	केले की पकी फली खाना लाभकर है।
२. केले से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	घी का पान करना अथवा चावल चबाना ,, ,,
३. नारियल से ,, ,,	चावल खाना ,, ,,
४. आम से ,, ,,	सोंठ में दूध मिलाकर पीना ,, ,,
५. चिरौंजी से ,, ,,	हरड़ का छिलका प्रयोग करना ,,
६. महुए से ,, ,,	नीम की गिरी घोंटकर पीना ,, ,,
७. बेल से ,, ,,	,, ,, ,, ,, ,,
८. खिरनी से ,, ,,	,, ,, ,, ,, ,,
९. खजूर से ,, ,,	,, ,, ,, ,, ,,
१०. कैथ से ,, ,,	,, ,, ,, ,, ,,
११. घी से ,, ,,	नीम का रस पीना ,, ,,
१२. तक्र से ,, ,,	,, ,, ,, ,, ,,
१३. सिंघाड़े से ,, ,,	सोंठ लाभकर है।
१४. गूलर से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	सोंठ का बासी काढ़ा उत्तम है।
१५. चावलों से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	देसी अजवायन और पीपल घोंट कर देना श्रेष्ठ है।
१६. दूध से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	देसी अजवायन चबाना लाभकर है।
१७, साठी के चावल से हुए अजीर्ण में	दही का तोड़ पीना लाभकर है।
१८, ककड़ी से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	गेहूं की रोटी खाना लाभकर है।
१९. गेहूं की रोटी से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	कांजी का पीना लाभकर है।
२०. चने की रोटी से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	कांजी का पीना लाभकर है।
२१. उरद से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	कांजी का पीना लाभकर है।
२२. मटर से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	कांजी का पीना लाभकर है।

अजीर्णकारक द्रव्य	अजीर्णनाशक द्रव्य
२३. कड्डी बूटी से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	नागरमोथेका काढ़ा पीना लाभकर है।
२४. कमलनाल से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	नागरमोथेका काढ़ा पीना लाभकर है।
२५. कसेरू से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	नागरमोथेका काढ़ा पीना लाभकर है।
२६. मिश्री से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	नागरमोथेका काढ़ा पीना लाभकर है।
२७. कुलथी से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	दही का पानी पीना लाभकर है।
२८. दाल या पिट्ठी से उत्पन्न ,,	कांजी का पानी पीना ,, ,, ।
२९. खिचड़ी से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	मूङ्ग का पानी पीना लाभकर है।
३०. भल्लों से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	लौंग, हींग तथा इलायची का पानी पीना लाभकर है।
३१. फेनी से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	लौंग या सोंठ खाना लाभकर है।
३२. पापड़ से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	सुहांजने के बीज लाभकर है।
३३. लड्डू से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	पीपलामूल खाना लाभकर है।
३४. मालपूड़े से उत्पन्न हुए ,,	पीपलामूल खाना लाभकर है।
३५. पूरी से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	कांजी का प्रयोग लाभकर है।
३६. मछली से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	कांजी का प्रयोग लाभकर है।
३७. कछुए के मांस से ,, ,,	जवाखार श्रेष्ठ है।
३८. कबूतर के मांस से ,, ,,	कासनी की जड़का प्रयोग लाभकर है।
३९. तीतर के मांस से ,, ,,	कासनी की जड़का प्रयोग लाभकर है।
४०. बथुए के साग से ,, ,,	खेसार का काढ़ा लाभकर हैं।
४१. सरसों के साग से ,, ,,	खेसार का काढ़ा लाभकर है।
४२. पालक के साग से ,, ,,	सफ़ेद सरसों का शाक लाभकर है।
४३. करेले से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	सफ़ेद सरसों का शाक लाभकर है।
४४. बैंगन से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	सफ़ेद सरसों का शाक लाभकर है।
४५. मूली से ,, ,, ,,	सफ़ेद सरसों का शाक लाभकर है।
४६. लौकी से ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,
४७. चौलाई से ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,
४८. परवल से ,, ,, ,,	,, ,, ,, ,,
४९. गुड़ से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	ज़िमींकन्द खाना लाभकर है।
५०. आलू से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	चावलों का पानी पीना लाभकर है।
५१. नमक से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	चावलों का पानी पीना लाभकर है।

अजीर्णकारक द्रव्य	अजीर्णनाशक द्रव्य
५२. तैल से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	कांजी पीना लाभकर है।
५३. दूध से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	दही की छाछ पीना लाभकर है।
५४. भैंस के दूध से उत्पन्न हुए ,,	सेन्धा नमक खाना लाभकर है।
५५. भैंस के दही से ,, ,, ,,	शङ्खभस्म खाना लाभकर है।
५६. गन्ने से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	त्रिकटु खाना लाभकर है।
५७. गन्ने के रस से उत्पन्न ,,	अदरक स्वरस या सोंठ का पानी ,,।
५८. खाण्ड से उत्पन्न हुए अजीर्ण में	सोंठ का चूर्ण खाना लाभकर है।
५९. मदिरा से ,, ,, ,,	गेरू और चन्दन घिसकर पीना ,,
६०. शीतवीर्य द्रव्यों से उत्पन्न-अजीर्ण में ...	उष्ण तथा अजीर्ण नाशक द्रव्य लाभकर हैं।
६१. उष्णवीर्य द्रव्यों से उत्पन्न-हुए अजीर्ण में ...	शीत तथा अजीर्णनाशक द्रव्य लाभकर हैं।
६२. लवणरस द्रव्यों से उत्पन्न-हुए अजीर्ण में ...	अम्लरस तथा अजीर्णनाशक द्रव्य लाभकर हैं।
६३. उष्णजल से उत्पन्न-हुए अजीर्ण में ...	मधु और नागरमोथे का प्रयोग लाभकर है।
६४. दुर्जल जनित अजीर्ण में	सोना या चांदी गरम करके पानी में बुझावें उस जल का प्रयोग करना लाभकर है।

मन्दाग्नि (अजीर्ण) रोग में पथ्य।

श्लेष्मके वमनं पूर्वं पैत्तिके मृदुरेचनम्।
वातिके स्वेदनं चाथ यथास्थंतु हितं च तत्॥
नानाप्रकारव्यायामो दीपनानि लघुनि च।
वहुकालसमुत्पन्नाः सूक्ष्माः लोहितशालयः॥
विलेपी लाजमण्डश्च मन्डो मुद्गरसः सुरा।
एणो वर्हि शशो लावः क्षुद्रमत्स्याश्च सर्वशः॥

शालिंच शाकं वेत्राग्रं वास्तुकं बालमूलकम् ।
लशुनं वृद्धकूष्मान्डं नवीनं कदलीफलम् ॥
शोभांजनं पटोलं च वार्ताकं नलदम्बु च ।
कर्कोटकं कारवेल्लं वार्हतं च महार्द्रकम् ॥
प्रसारणी मेषश्रृंगी चांगेरी सुनिषण्णकम् ।
धात्रीफलं नागरंगं दाडिमं यवपर्पटाः ॥
अम्लवेतसजम्बीरमातुलुंगानि माक्षिकम् ।
नवनीतं घृतं तक्रं सौवीरकतुषोदकम् ॥
धान्याम्लं कटुतैलं च रामठं लवणार्द्रकम् ।
यवानी मरिचं मेथी धान्यकं जीरकं दधि ॥
ताम्बूलं तप्तसलिलं कटुतिक्तौ रसावपि ।
मन्दानलेऽप्यजीर्णेपि पथ्यमेतन्नृणां भवेत् ॥

कफ से उत्पन्न मन्दाग्नि, अजीर्ण, अलसक, विसूचिका, भस्मक आदि में वमन करावें, पित्तजन्य में हलका जुलाब करावें और यदि वात जनित होवे तो स्वेद कर्म करना हितकर है, अथवा दोष, देश, काल, अवस्था के अनुसार जो कार्य हितकर हो वह करावें, अनेक प्रकार के व्यायाम अग्नि प्रदीप्त करने वाले हलके अन्नादि भोजन, बहुत दिनों के पुराने और सूक्ष्म (बारीक) लाल चावल, यवागु, खीलों के सत्तू, मूंग का रस, सुरा (मदिरा) हिरण, मोर, खरगोश, तीतर, बटेरादि तथा सब प्रकार की छोटी मछली का मांस अथवा मांस रस, शालीचावल, वेंत की कोंपल, बथुआ, छोटी मूली; लहसन, पुराना पेठा; केले की हरी फली; सुहांजना, परवल; बैंगन; ककौड़ा; करेला, कटेरी के फल; अद्रक; मेढ़ासिंगी; लोभिया; चौपतिया; आंवला; नारंगी; अनार; जौ; अमलवेद; जम्बीरी नीम्बू; बिजौरा-नींबू, शहद, मक्खन; घी; कांजी; तुषोदक; धान की कांजी; सरसों का तैल; हींग; निमक; अद्रक; अजवायन; काली मरिच; मेथी; धनियां, ज़ीरा; दही; पान, गर्मजल; कड़ुए और चर्परे रस वाले सब पदार्थ मन्दाग्नि और अजीर्ण के लिए पथ्य अर्थात् हितकारी हैं; इन पदार्थों को आवश्यकतानुसार देश, काल, पकृति आदि का विचार कर के सेवन करने की आज्ञा दी जा सकती है ।

अजीर्ण रोग में अपथ्य

विरेचनानि विण्मूत्रवायुवेगविधारणम् ।
अध्यशनं समशनं जागरं विषमाशनम् ॥
रक्तस्रुतिं शमीधान्यं मत्स्यं मांसमुपोदिकाम् ।
जलपानं पिष्टकं च जाम्बवं सर्व मांसालुकम् ॥
कूचिकां मोरटं क्षीरं किलाटं च प्रपानकम् ।
तालास्थिसस्यं तद्घालं स्नेहनं दुष्टवारि च ॥
विरुद्धासात्म्यपानान्नं विष्टम्भी गुरुणि च ।
अग्निमान्द्येऽप्यजीर्णे च सर्वाणि परिवर्जयेत् ॥
फलवर्तिं वमिं स्वेदं लंघनं चापतर्पणम् ।
विशेषादलसे कुर्याद्विसूच्यां त्वतिसारवत् ॥
पार्ष्णयोर्दाहोऽति वृद्धायां सम्यग्दीपनपाचनम् ॥

अर्थ—विरेचन (जुलाब), मल मूत्र और वायु आदि वेगों को रोकना, भोजन पर भोजन करना, भोजन के समान भोजन करना अर्थात एक ही प्रकार का पूर्वापर भोजन करना, अधिक जागना; विषम भोज अर्थात् कभी न्यून कभी अधिक भोजन करना, रुधिर निकालना, शमीधान्य अर्थात् मूंग; मोठ; चना आदि सेवन करना; मछली का मांस, पोई का शाक, ठंडा जल पीना अथवा अधिक जल पीना, पीठी के बने हुए पदार्थ खाना, सर्व प्रकार के कमलकन्द; मावे के पदार्थ अथवा घी में बने हुए चावलों के पदार्थ, तत्काल ब्याई हुई गाय का दूध इमली आदि का बना शर्बत तथा अन्य शर्बत, ताड़ के फलों की मींगी, नेत्रवाला, चिकने पदार्थ, विकृतजल, स्वभाव तथा प्रकृति विरुद्ध अन्न व जल, विष्टम्भी (रोकने वाले) सर्व पदार्थ, भारी पदार्थ, यह सब मन्दाग्नि तथा अजीर्ण रोगी के लिये वर्जित हैं। इन में से किसी एक के भी सेवन से रोग बढ़ सकता है। अलसक रोग में फलवर्ति, वमन, पसीना निकालना, लंघन और अपतर्पण आदि कर्म विशेष कर करने चाहियें। विसूचिका रोगमें अतिसार रोगोक्त पथ्यापथ्यके समान जानना; यदि विसूचिका रोग अधिक बढ़ जावे तो रोगी के दोनों पावों की एड़ियों को दाग़ देना चाहिये और भली प्रकार दीपन और पाचन औषधियोंका सेवन करावें।

कृमिरोग चिकित्सा।

आयुर्वेद के सिद्धान्त से मिथ्या आहार विहार द्वारा जंगम तथा स्थावर दोषजनक द्रव्यों के शरीर में प्रवेश होने पर शरीरस्थ धातुरूप दोषों के कुपित होने से धातुओं में एक नवीन रासायनिक परिवर्तन होकर शरीर में दोषभेद से नाना प्रकार की आकृति वाले औपसर्गिक या अनौपसर्गिक रोगोत्पादक कृमि उत्पन्न हो जाते हैं। यह कृमि सृष्टि भेद से दो प्रकार के हैं—

१. स्थूल २. सूक्ष्म।

सूक्ष्म कृमि वह हैं जिन की बनावट केवल एक अणुमात्र है और बिना अणुवीक्षण यंत्र की सहायता के दिखाई नहीं दे सकते। सूक्ष्माणु कृमि जो दोष कुपित होने पर शरीर में उत्पन्न हो दोषसंज्ञा को प्राप्त हो जाते हैं उनको दोषाणु कहते हैं—

जो अनेकाणु कृमि उपरोक्त कारणों से शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं उन को स्थूलकृमि कहा जाता है और इन से ही कृमि रोग होते हैं।

स्थानभेद से कृमियों के भेद

देहस्थ कृमि स्थान भेद से दो प्रकार के हैं—

१. बाह्यकृमि—वह कृमि जो मनुष्य के बाल और वस्त्रों में स्वेद तथा मैल से उत्पन्न हो जाते हैं; जैसे-जूं, लीख आदि।

२. आभ्यन्तर कृमि—जो कृमि उदर आदि शरीर के अवयवों में पैदा हो जाते हैं उन को आभ्यन्तर कृमि कहा जाता है।

आयुर्वेदज्ञ महर्षियों का अनुभव है कि मनुष्य शरीर में आभ्यन्तर कृमि तीन कारणों से उत्पन्न होते हैं—

१. मिथ्याहार विहार द्वारा तथा कफजनक द्रव्यों का प्रयोग करने से उत्पन्न होने वाले कृमि कफाशय, आमाशय तथा श्लेष्मग्रन्थियों मे अपना अधिकार रखते हैं।

२. रक्त प्रकोप जनक कारणों से उत्पन्न होने वाले प्रायः रक्त-शिराओं में रहते हैं।

२. पुरीष के अधिक सड़ने से उत्पन्न होने वाले कृमि प्रायः बड़ी आन्तों तथा गुदा में विशेषतः रहते हैं।

चिकित्सा विधि

स्निग्धस्विन्ने गुड़क्षीर मत्स्याद्यैः कृमिणोदरे।
उत्क्लेशितकृमि क्रफे शर्वरी तां सुरभेषिते॥

कटुतिक्तकषायाणां कषायैः परिषेचनम्।
ऊर्ध्वाधः शोधिते कुर्याद्वस्तिं ततोऽहनि॥

पुरीषजेषु सुतरां दद्याद्वस्तिविरेचने।
शिरोविरेकं वमनं शमनं कफजन्तुषु॥

रक्तजानां प्रतीकारं कुर्यात्कुष्टचिकित्सितात्॥
इन्द्रलुप्तविधिश्चात्र विधेयो रोगभोजिषु॥

जिन रोगियों को स्निग्ध तथा गुरु भोजन आदि के कारण कफज कृमि रोग हो उन को प्रथम एक दिन अनशन तथा शयन करावें; दूसरे दिन प्रातः कटु, तिक्त, कषायरस बहुल द्रव्यों द्वारा निम्न प्रकार चिकित्सा करें—

यदि रोगी के आमाशय में कृमि हों तो वमन करावें; यदि आंतों में हों तो विरेचन द्वारा नष्ट करने का यत्न करें;पुरीषज कृमिरोग में विरेचन देना और वस्ति का प्रयोग उत्तम है।

यहां पर आमाशय, आंत्र, बृहदंत्र, पुरीषाशय तथा गुदा में रहने वाले कृमियों के लिए ही चिकित्सा लिखी गई है; शेष कृमियों की चिकित्सा उन २ स्थानों पर लिखी जावेगी।

मुस्तादि क्वाथ

मुस्ता (नागरमोथा), मूषाकर्णी, त्रिफला; देवदार; सुहांजने की छाल इन द्रव्यों का अर्धावशेष काढ़ा कर वायविडंग चूर्ण २ माशे और पीपल २ रत्ती मिला कर देने से कृमि नष्ट होते हैं। यह क्वाथ चिकित्सा के आरम्भ समय में ही देना चाहिये।

विडङ्गादि चूर्ण

वायविडंग, सेन्धा नमक, हींग भुनी हुई, बड़ी हरड़ का छिलका, निसोत, सौंचर नमक, पीपल । सब द्रव्यों को समान भाग ले चूर्ण बना लें ।

मात्रा--३ माशे ।

अनुपान--गरम जल के साथ देने से कफज कृमि नष्ट होते हैं ।

कृमिघ्न रस

वायविडंग, ढाक के बीज, गिरी नीम, तुलसीपत्र भस्म समान भाग लें चूर्ण बना लें ।

मात्रा—३ माशे ।

अनुपान--गरम पानी से दें ।

यह औषधि आमाशयस्थ कृमियों को नष्ट करती है ।

पलाशबीजादि चूर्ण

ढाक के बीज, इन्द्रजौ, वायविडङ्ग, निम्बछाल, चिरायता समान भाग लेकर चूर्ण बना लें और चूर्ण के समान परिमाण में पुराना गुड़ मिलाकर ३ माशे परिमाण प्रातःसायं जल के साथ सेवन करने से आमाशयस्थ कृमि नष्ट होते हैं ।

पारसीक्यादि चूर्ण

खुरासानी अजवाइन; नागरमोथा, पिप्पली, काकड़ासिङ्गी, वायविडङ्ग; अतीस प्रत्येक समभाग लेकर चूर्ण बना लें ।

मात्रा—१॥ माशा ।

अनुपान—प्रातः सायं शहद में मिलाकर सेवन करावें अथवा ठण्डे जल से । इसके सेवन से भी आमाशयस्थ कृमि शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ।

पारिभद्रावलेह

ढाक के बीज ८ तो०; वायविडङ्ग; इन्द्रजौ; छोटी इलायची; लौंग; दालचीनी; तेजपत्र; सोंठ, सुहागा; काली मरिच, वंशलोचन, पिप्पली,

गजपीपल, चित्रकमूलछाल; नागरमोथा; विड निमक; सेन्धा नमक, रेणुका-बीज; त्रिफला, मुश्कबाला, छैलछरीला, लोह भस्म, वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म, प्रत्येक १ तो०- फरहद का रस २ सेर, गोमूत्र २ सेर। पहिले कूटने वाली चीज़ों का चूर्ण करके दोनों रसों में डालकर मन्दाग्नि पर पकावें। जब लेह के समान हो जावे तो इसमें २ पल मधु मिला दें।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक।

अनुपान—ठण्डे जल के साथ सेवन करने से उदरस्थ कृमि शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

यह लेह सर्व प्रकार के उदरस्थ कृमियों को दूर करने के लिये सेवन करा सकते हैं।

सूचना—इसमें लोहभस्म हिंगुल योग से बनी हुई और वङ्गभस्म हड़ताल योग से बनी हुई होनी चाहिये।

हरिद्रा पारिभद्रावलेह

पारिभद्र (फरहद) स्वरस २ सेर, खांड १ सेर, घी आध सेर, हल्दी आध सेर। हल्दी का चूर्ण बनाकर सब चीज़ों को एकत्र कर पाक करें, जब अच्छी तरह गाढ़ा हो जाय तो इसमें निम्नलिखित वस्तुओं का उत्तम चूर्ण बनाकर मिला दें—

चित्रकमूलछाल, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, काला ज़ीरा; अजवायन देसी; अजमोद, सम्भालूबीज, सेन्धा-लवण, पाठा, अनन्तमूल, बांसामूल, ढाक के बीज, त्रिकुटा, निसोत, दन्तीमूल; रेणुकाबीज, निम्ब-त्वक्, काली ज़ीरी प्रत्येक २ तोला। सब को भली भांति पीस कर महीन चूर्ण करके उपरोक्त लेह में मिला दें, यह हरिद्रा पारिभद्रावलेह कहलाता है, यह सर्व प्रकार के उदरस्थ कृमियों को नाश करने के लिये एक उत्तम औषधि है, इसके सेवन से आमाशय तथा आंतों में रहने वाले कृमि अवश्य नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—३ माशे से ९ माशे तक।

अनुपान—ठण्डे पानी के साथ।

कृमिरोग में रस प्रयोग

पारा, गन्धक, अभ्रक भस्म, लोहभस्म, मनसिल, धायफूल, त्रिफला, लोध, वायविडङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी । प्रत्येक समान भाग लेकर प्रथम पारे गन्धक की यथाविधि कज्जली करें, पश्चात् दूसरी सब चीज़ों का महीन चूर्ण कर कज्जली में मिलाकर बराबर ७ दिन तक अद्रक के रस से खरल करें और आधी रत्ती से १ रत्ती तक गोली बनावें । २ तोला त्रिफला का विधि पूर्वक क्वाथ बना कर उसके साथ प्रातःकाल सेवन करावें । यह रस आमाशयस्थ कृमिरोग में बड़ा लाभ करता है । पुराने कृमिरोग के लिये उत्तम २ रस आगे चलकर वर्णन करेंगे ।

सूचना--इस रस में लोह और अभ्रकभस्म रसेन्द्रसारोक्त शृङ्गवेरादि द्वारा बनी लोह और अर्क दुग्ध द्वारा बनी हुई अभ्रकभस्म डालनी चाहिये ।

कृमि घातिनी वटी

काली ज़ीरी, हल्दी, पिप्पली, कमीला, गेरु, निसोत, हरड़, ढाक के बीज-इन सब को समान भाग लेकर महीन चूर्ण कर लें और एक पहर जल से खरल करके ४ रत्ती से १ माशा की गोली बना लें । यह गोलियां कृमि रोगी को ऐसी दशा में देनी चाहियें, जबकि आमशयस्थ कृमियों के कारण रोगी को अरुचि, ज्वर, प्रतिश्याय, वमन तथा छींक भी आती हों । ऐसी दशा में यह औषधि अत्यन्त लाभ करती है ।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक ।

अनुपान—प्रातः सायं ठण्डे पानी के साथ सेवन करावें ।

कृमिमुद्गर रस

पारा १ तो०, गन्धक २ तो०, देशी अजवायन ३ तो०, वायविडङ्ग ४ तो०, कुचला ५ तो०, ढाक बीज ६ तो० । प्रथम पारे और गन्धक की यथाविधि कज्जली कर लें, पश्चात् सब वस्तुओं को महीन चूर्ण कर कज्जली में मिला दें ।

मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक ।

अनुपान—मधु में गोली बना कर ठण्ढे पानी से अथवा २ तो० मोथा के क्वाथ से सेवन करावें।

इसके सेवन से पुराने से पुराना कृमि रोग तथा उससे पैदा होने वाले उपद्रव अवश्य नष्ट होते हैं। १ सप्ताह यह रस सेवन कराने के बाद अथवा ४ दिन के पश्चात् रोगी को एरण्ड तैल अथवा ७ माशा निशोथ में मधु मिलाकर विरेचन करा देना चाहिये।

विडङ्ग लोह

पारा; गन्धक, काली मरिच, जायफल, लौंग, पिप्पली, शुद्ध हरताल, सोंठ, वङ्गभस्म प्रत्येक १ तो०, लोहभस्म ६ तो०, वायविडङ्ग १८तो० प्रथम पारे और गन्धक की यथाविधि कज्जली करें और बाकी सब चीज़ों को बारीक चूर्ण बनाकर जल के साथ खरल करके २ रत्ती से ४ रत्ती परिमाण की गोली बनावें। यह औषधि ऐसी अवस्था में सेवन करानी चाहिये जब कि कृमिरोग अति पुराना हो कर रोगी को अतिसार भी हो, मुख पर शोथ हो गया हो, शरीर में रक्त की मात्रा बिलकुल कम हो गई हो तथा मन्दाग्नि, अरुचि और अर्शादि उपद्रव भी साथ हों; ऐसी दशा में विडंगादि लोह विशेष लाभ करता है।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक।

अनुपान—तक्र के साथ सेवन करावें।

सूचना—इस रस में लोहभस्म शृंगवेरादि गण द्वारा बनी हुई तथा बंगभस्म हरताल योग से बनी हुई डालनी चाहिये अन्यथा इस से कुछ लाभ नहीं होता।

कृमिकालानल रस

वायविडङ्ग ८ तो०, मीठा तेलिया शुद्ध ४ तोले, लोहसार २ तो०, पारा शुद्ध १ तो०, गन्धक १ तो०। विधि अनुसार बकरी के दूध में रगड़ कर १ माशे की गोली बना लें। यह रस धनियां तथा जीरे का चूर्ण प्रत्येक १ माशे से प्रयोग करने से सर्व प्रकार के कृमि, अर्श, संग्रहणी और मन्दाग्नि नष्ट होते हैं।

विडङ्गादि अवलेह

वायविडङ्ग का चूर्ण ले कर चार गुने शहद में मिला कर अवलेह बना लें।

मात्रा—६ माशे से १ तो० तक।

अनुपान—गरम जल से प्रयोग करावें।

त्रिफलादि चूर्ण

त्रिफला, वच, जमालघोटे की जड़, निशोथ प्रत्येक १६ तो०, गोमूत्र १६ सेर, गोघृत ४ सेर। सब द्रव्यों को संचय कर घृतपाक की विधि से घृत सिद्ध करें।

मात्रा—६ माशे ।

अनुपान—गरम दूध के साथ दिन में २ बार पिलावें।

कीटमर्दन रस

पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, अजवायन ४ भाग, वायविडङ्ग ८ भाग, कुचला १६ भाग, ढाक के बीज ३२ भाग। सब द्रव्यों को यथा-विधि खरल कर चूर्ण बना लें।

मात्रा—३ माशा ।

अनुपान—यह चूर्ण मधु में मिलाकर चटावें और फिर गरम जल पिला दें। यह योग हमारा सहस्रशः अनुभूत है।

साधारण अनुभूत योग

१. पीपलामूल चूर्ण ६ माशे को बकरी के २० तोले मूत्र के साथ १ सप्ताह सेवन करने से सब प्रकार के आन्तरिक कृमि शान्त होते हैं।

२. ४ तो० नीम के पत्ते १ सप्ताह तक जल के साथ घोंट कर पीने से कृमि नष्ट होते हैं, यह औषधि रक्तज कृमियों के लिये भी अति लाभकर है।

३. खजूर के पत्तों का काढ़ा २४ घण्टे रखने के बाद बासी होने पर १ सप्ताह तक पिलाने से आन्तरिक कृमि नष्ट होते हैं।

४. वायविडंग, करंजुए की गिरी, पित्तपापड़े के बीज, जीरा काला, अजवायन। सब द्रव्य समान भाग ले चूर्ण बना गुड़ में ३ माशे की गोली बना लें। यह गोली गरम पानी से दें; पहिले रोगी को ३ दिन तक यह औषधि सेवन करावें, चौथे दिन रोगी को ४ तोले एरण्डतैल दे कर विरेचन करावें, इस के वाद फिर चूर्ण सेवन करावें तथा विरेचन देवें। आवश्यकतानुसार तीन चार बार इसी प्रकार करावें और कोष्ठ शुद्ध हो जाने पर वायविडंग चूर्ण १॥ माशा मधु से रोगी को ११ दिन तक सेवन करावें; इस प्रकार औषधि देने से उदरस्थ कृमि नष्ट होते हैं।

५. रोगी को रात्रि के समय पेट भर कर मीठा पुलाव खिलावें, अगले दिन प्रातः एक तोला कबीला दही में मिला कर पिला दें। तीसरे चौथे दिन एरण्डतैल तथा १० बूंद तारपीन का तैल दूध में डाल कर रोगी को सेवन करावें, इस के प्रयोग से सब प्रकार के उदरस्थ कृमि नष्ट हो जाते हैं।

६. ककरोन्दे के रस में फोया भिगो कर गुदा में रखने से बालक के चुनचुने नष्ट हो जाते हैं।

७. चाकसू १ माशा, वायविडंग ३ माशे, हींग भुनी १ माशा, कबीला ३ माशे, ढाक के बीज ३ माशे, काली मरिच ३ माशे। सब द्रव्यों का चूर्ण कर ककरोन्दे के रस में खरल कर के उड़द के बराबर गोली बना लें।

मात्रा—१ गोली दोनों समय माता के दूध के साथ बालक को सेवन करावें।

८. एरण्ड की कोपलों के रस में फोया भिगो कर बालक की गुदा में रखने से चुनचुने नष्ट होते हैं, इसी प्रकार धतूरे के रस के प्रयोग से चुनचुने नष्ट होते हैं।

बाह्यकृमि चिकित्सा

१. मूली या पान के अर्क में पारा खरल करके प्रयोग करने से जूंएं नष्ट होती हैं।

२. फिनाइल १ भाग, जल ४ भाग दोनों को एकत्र कर जूंओं के स्थान पर दो तीन वार लगाने से जूं अवश्य नष्ट होती हैं।

३. शिलारस को गोमूत्र में पीस कर सिर में मलने से जूं नष्ट होती हैं।

वायविडंगादि तैल

वायविडंग, गन्धक, मैनसिल प्रत्येक ५ तोले, गोमूत्र ४ सेर, सरसों का तेल ३ पाव सब द्रव्यों को एकत्रित कर यथाविधि तैलपाक कर लें। यह विडंगादि तैल मलने से जूं, जमजूं आदि नष्ट होते हैं। हमारा सहस्रशः अनुभूत है।

कृमिरोग में पथ्य

आस्थापनं कायशिरोविरेचनं धूमाः कफघ्नानि शरीर शोधनम्।
चिरन्तनाः वैणवरक्तशालयः पटोलवेत्राग्ररसोनवास्तुकम् ॥
हुताशमन्दारदलानिसर्षपाः नवीनमोचं बृहतीफलान्यपि ।
तिक्तानि नालीतदलानि मौषिकं मांसं विडङ्गं पिचुमर्दपल्लवम् ॥
पथ्या च तैलं तिलसर्षपोद्भव सौवीरशुक्तं च तुषोदकं मधुः।
पचेलिमं तालमरुष्करं गवां मूत्रं च ताम्बूलसुरामृगानुजम् ॥
औष्ट्राणि मूत्राज्यपयांसि रामठं क्षाराजमोदाखदिराश्च वत्सकम्।
जम्बीरनीरं सुषवी सारा सुराह्वागरुशींशपोद्भवाः ॥
तिक्तं कषायः कटुको रसोऽप्ययं वर्गो नराणां कृमिरोगिणां सुखः॥

अर्थ--वस्तिकर्म, विरेचन, शिरोविरेचन, धूमपान (हुक्का पीना) कफनाशक पदार्थ, शरीर को शुद्ध और स्वच्छ करने वाले सकल पदार्थ, पुराने बांस के बीज, पुराने लाल चावल, परवल, बेंत की कोंपल, लहसन, बथुए का शाक, चित्रक, मदार के पत्ते, सरसों नवीनकला की फली का शाक, कटेरी फल, सब कडुए द्रव्य, तालीसपत्र, ताड़ के पत्ते, वायविडङ्ग, नीम के पत्ते, हरड़, तिल वा सरसों का तेल, सौबीर, शुक्त, तुषोदक, मधु, तालफल, भिलावां, गोमूत्रपान, मदिरा, कस्तूरी, ऊंट का मूत्र, घी, दूध, हींग, यवक्षार, अजमोद, खैरसार, कुड़े की छाल, जम्बीरी निम्बू का रस, कलौंजी, अजवाइन, देवदार का सार, अगर का सार, शीशम का सार और कडुए, कसैले, चरपरे-यह तीनों प्रकार के रस। यह वर्ग कृमिरोग वाले रोगियों के लिये पथ्य अर्थात् सेवनयोग्य अथवा सुखकारी है।

कृमि रोग में अपथ्य

छर्दिं च तद्वेगविधारणं च, विरुद्ध पानाशनमान्हि निद्राम् ।
द्रवं च पिष्टान्नमजीर्णतां च, घृतानि माषान् दधिपत्रशाकम् ॥
मांसं पयोऽम्लं मधुरं रसं च, कृमीन् जघांसुः परिवर्जयेताम् ।

वमन कर्म अर्थात् कै कराना, अथवा स्वयं आती हुई कै के वेग को औषधि आदि से रोकना, प्रकृति, दोष, तथा स्वभाव विरुद्ध अन्नपान करना अधिक जल पीना, दिन में सोना, शर्बतादि पतले पदार्थ और कचौरी, भल्ले, अमृती आदि पीठी के पदार्थ, अजीर्ण में भोजन करना, अधिक घी खाना, उड़द, दही और पत्तों वाले शाक खाना, मांस, दूध, खट्टे पदार्थ तथा मीठे रस युक्त सकल पदार्थ कृमि रोगी के लिए अपथ्य अर्थात् अहितकर हैं, कृमि रोगी को इन्हें कदापि सेवन नहीं करना चाहिये ।

पाण्डु रोग

कारण भेद से आयुर्वेद में पाण्डु रोग के नीचे लिखे ५ भेद माने जाते हैं-

१. वातज ३. कफज ५. मिट्टी खाने से होने वाला

२. पित्तज ४. सन्निपातज

पाण्डु रोग के कारण

व्यनायमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमतीव तीक्ष्णम् ॥
निषेव्यमाणस्य विदूष्य रक्तं दोषास्त्वचं पाण्डुरतां नयन्ति ॥
त्वङ्मूत्रनयनादीनां रूक्षकृष्णारुणाभता ॥
वातपांडूवामये कम्पस्तोदाहानाहभ्रमादयः ॥

अधिक लवण पदार्थ, अधिक मैथुन, अधिक शराब, अधिक दिन में सोने तथा मिट्टी आदि खाने से रुधिर दूषित हो जाता और शरीरस्थ दोष रोगी की त्वचा को पीला कर देते हैं। इस रोग के प्रारम्भ में मुख में अधिक थूक आना, ग्लानि, नेत्रों और गालों आदि पर सूजन के लक्षण होने लगते हैं।

अन्य रोगों के समान वात, पित्त आदि दोष अलग २ और मिल कर पाण्डु रोग पैदा करते हैं, जिनमें दोषों के अनुसार भिन्न २ लक्षण होते हैं, परन्तु मिट्टी खाने से जो पाण्डु रोग होता है उसका विशेष वर्णन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

मृद्भक्षण से होनेवाले पाण्डु के लक्षण

मृद्भक्षणाद्भवेत्पाण्डुस्तन्द्रालस्यनिपीड़ितः ।
सकासश्वासशूलार्तः सदारुचिसमन्विनः ॥
शूनाक्षिकूटगण्डभ्रूः शूनपान्नाभिमेहतः ।
कृमिकोष्ठोऽतिसार्येत मलं सासृक्कफान्वितम् ॥

जिस मनुष्य को मिट्टी खाने की आदत होती है, उसके तीनों दोषों में से कोई दोष कुपित हो जाता है। कसैली मट्टी से वायु कुपित होता और

खारी मट्टी से पित्त का प्रकोप हो जाता है । यह मट्टी अपनी रूक्षता से खाये हुए अन्न तथा रस आदि को दूषित कर यकृत और प्लीहा को विकृत कर देती है, जिससे यह रस सम्पूर्ण शारीरिक स्रोतों को रोक देते हैं. जिस से शरीर की अग्नि, वर्ण तथा बलादि मन्द होकर पाण्डुरोग हो जाता है, जिससे अनेक लक्षण होने लगते हैं।

मिट्टी खाने से उत्पन्न हुए पाण्डुरोग में खांसी, तन्द्रा, श्वास, आलस्य तथा अरुचि आदि लक्षण होते हैं; पेट में कीड़े हो जाते और आंख मुख, गाल आदि पर सूजन हो जाती है; इन लक्षणों के साथ रोगी को कफ तथा रुधिर से मिले हुए दस्त होने लगते हैं।

पाण्डुरोग के असाध्य लक्षण

ज्वरारोचकहृल्लासश्छर्दितृष्णाक्लमान्वितः ।
पाण्डुरोगी त्रिभिर्दोषैस्त्याज्यः क्षीणो हतेन्द्रियः ॥
पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नः खरीभूतो न सिद्ध्यति ।
कालप्रकर्षाच्छूनांगो यो वा पीतानि पश्यति ॥
बद्धाल्पविट् सहरितं सकफं योऽतिसार्यते ।
दीनः स्वेदातिदिग्धांगश्छर्दिमूर्छातृषान्वितः ॥

ज्वर; अरुचि, छर्दि, तृष्णा, भ्रम आदि लक्षण युक्त, इन्द्रियों की निर्बलता वाले तथा त्रिदोषज पाण्डुरोग को असाध्य समझना चाहिये । जो पाण्डुरोग बहुत पुराना हो, जिस रोगी की समस्त धातुओं में रूक्षता हो, जिस रोगी के शरीर में शोथ हो तथा जिसे सब द्रव्य पीले दिखलाई देते हों उस रोगी को असाध्य समझें।

जिस पाण्डुरोगी को हरे रङ्ग का पीला तथा बन्धा हुआ दस्त होता हो, मल थोड़ा २ उतरता हो, दीनता हो, पसीना अधिक आवे, वमन, मूर्छा, तृषा, भ्रम तथा व्याकुलता आदि लक्षण हों, उसको भी असाध्य जानें। जिस रोगी के हाथ और पैरों में शोथ हो किन्तु उदर में शोथ न हो, जिसके उदर में शोथ हो पर हाथ पैर में सूजन न हो तथा गुदा, मुख, लिङ्ग और अण्डकोष आदि में शोथ हो, जिसे अतिसार हो, ज्वर तथा अचेतनता हो, उस रोगी को असाध्य समझना चाहिये।

पाण्डुरोग चिकित्सा विधि

यदि प्लीहा तथा यकृत् यथावत् ठीक प्रकार कार्य करते हों तो शरीर में उस हालत में ही शुद्ध, लाल रङ्ग का रक्त उत्पन्न होता है। जब कभी मिथ्या आहार, विहार, अति मैथुन, अम्ल तथा तीक्ष्ण पदार्थ सिरका, राई, मदिरा आदि लवण, मरिच आदि के अधिक उपयोग, दिन में सोने आदि कारणों से शरीरस्थ वातादि दोष कुपित होने पर यकृत् में विकार होने से प्लीहा और यकृत् अपना रक्तरंजन कार्य ठीक नहीं करते तथा यकृत् में पित्त अधिक उत्पन्न होता है; उस समय पाण्डुरोग उत्पन्न हो जाता है।

पाण्डुरोग की समस्त दशाओं में यकृत् में पित्त अधिक मात्रा में उत्पन्न होता है, परन्तु रक्तरंजक शक्ति यथावत् नहीं रहती। रसरंजक पित्त अपना कार्य करते हुए रस को लाल रङ्ग नहीं देता, किन्तु पित्त मिला हुआ पीला रङ्ग देता है, इसी कारण भ्राजक पित्त में पीलापन होने से रोगी की त्वचा, नेत्र, तथा नखादि का रङ्ग पीला (पाण्डुवर्ण) हो जाता है, इसीलिये इस रोग को पाण्डु कहा जाता है। इस रोग की चिकित्सा में पित्त को प्रधान मानकर दोषानुसार चिकित्साक्रम की व्यवस्था करनी चाहिये, शरीरस्थ दूषित रक्त से पित्त को शमन करने और निकालने के लिये रक्तपोषक लोह-मण्डूर आदि द्रव्यों द्वारा यकृत् तथा: प्लीहा के कार्य को ठीक करने और रंजकपित्त की शक्ति को बढ़ाने के लिये यत्न करना उचित है।

विधिः स्निग्धस्तु वातोत्थे तिक्तशीतस्तु पैत्तिके।
श्लैष्मिके कटुरूक्षोष्णः कार्यो मिश्रस्तु मिश्रके॥

यदि वातज पाण्डु रोग हो तो स्निग्ध क्रिया करनी चाहिये; पित्तज पाण्डुरोग में तिक्त तथा ठण्डे और श्लेष्मिक में कटु, रूक्ष, तथा उष्ण पदार्थों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये। यदि वातादि दोष मिलित हों, तो मिलित चिकित्सा करनी चाहिये, जैसा कि वात-पित्त जनित में स्निग्ध-तिक्त अथच शीतल और कफ पित्त में रूक्ष, उष्ण और शीतल क्रिया करनी चाहिये। शास्त्र में लिखा है कि पाण्डु रोगी को प्रति दिन हरड़ चूर्ण में गुड़ मिलाकर सेवन कराने से यकृत् तथा प्लीहा के दोष दूर होते हैं।

मात्रा— ४ माशे से ६ माशे तक।

अनुपान—उत्तम हरड़ चूर्ण में समान भाग गुड़ मिला कर रात्त को सोते समय ठण्डे पानी के साथ सेवन कराना चाहिये।

नवायस चूर्ण

सोंठ, मरिच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, नागरमोथा, वायविडंग, चित्रकमूलछाल प्रत्येक १ तो०, उत्तम लोह भस्म ८ तो०। प्रथम सब चीज़ों को बारीक पीस लें, पश्चात् इसमें लोहभस्म मिला दें। इसमें से २ रत्ती की मात्रा, १ माशा घृत और ३ तो० मधु में मिला कर रोगी को सेवन करावें और क्रमशः २ रत्ती नित्य प्रति बढ़ाते जावें, जब १८ रत्ती तक पहुंच जावे तो दो २ रत्ती घटाते जावें। इस क्रम से २ या ३ बार करने से वात प्रधान पाण्डुरोग नष्ट हो जाता है, स्मरण रहे कि चूर्ण की मात्रा के साथ २ घृत और मधु की मात्रा भी बढ़ाते जाना चाहिये।

सूचना—नवायस चूर्ण में पड़ने वाली लोहभस्म गोमूत्र और त्रिफला के योग से बनी हुई होनी चाहिये अन्यथा यह चूर्ण लाभ नहीं करता।

पुनर्नवादि मण्डूर

पुनर्नवा (विसखपरा या इटसिट), निशोथ त्रिकटु, वायविडंग, देवदारु, चित्रकमूलछाल, हल्दी, कूठ, त्रिफला, जमालघोटे की जड़, पिप्पलामूल, इन्द्रजौ, कुटकी, नागरमोथा, काकड़ासिंगी, ज़ीरा श्वेत, अजवायन, कायफल प्रत्येक समानं भाग ले चूर्ण बना लें, इस चूर्ण से दोगुनी मण्डूरभस्म डाल गोमूत्र मिलाकर पकाते २ गाढ़ा करें और एक २ माशे की गोली बना लें।

मात्रा—१ गोली से ४ गोली तक।

अनुपान—तक्र के साथ इसका सेवन करने से पाण्डुरोग, कमलवाय, प्लीहा, यकृत्, उदर, श्वास, कास तथा क्षय रोग शान्त होता है।

सूचना—इस योग में पड़ने वाली मण्डूरभस्म गोमूत्र, त्रिफला, और पुनर्नवा के रस की भावना से बनी हुई होनी चाहिये।

पाण्डुपंचानन रस

लोहसार, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म—प्रत्येक ८ तो०, त्रिकटु, त्रिफला, जमालघोटे की जड़, काला ज़ीरा, चीते की जड़ की छाल, दारुहल्दी, हल्दी निशोथ, इन्द्रजौ, कुटकी, देवदारु, वच, नागरमोथा-प्रत्येक २तोला तथा सब द्रव्यों से दोगुनी मण्डूरभस्म मिला दें। मण्डूर से आठगुणा गोमूत्र डाल मन्दाग्नि द्वारा पकाकर गाढ़ा करने के बाद चार २ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—१ गोली प्रातः और एक सायं।

अनुपान—जल के साथ।

सूचना—इस योग में पड़ने वाली लोहभस्म त्रिफलारस, अभ्रकभस्म शोरा और केले के रस और मण्डूरभस्म त्रिफला तथा गोमूत्र द्वारा भावित होनी चाहिये।

पंचामृत लोहमण्डूर

कृष्णाभ्रकभस्म, शुद्ध पारद, सोंठ, मरिच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नागरमोथा, वायविडंग, चित्रकमूलछाल, चिरायता, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, पोहकरमूल, अजवायन, ज़ीरा श्वेत, काला ज़ीरा, कचूर, धनियां, पिप्पला मूल—प्रत्येक एक एक तो०, मण्डूरभस्म १२॥ तो०, गोमूत्र ४० तो०, पुनर्नवा का कषाय १। सेर। सब द्रव्य लेकर एक लोहे की कड़ाही में आग पर चढ़ा दें, गरम होते २ गाढ़ा होने पर आग से उतार लें और ठण्डा होने पर ८ तो० मधु मिला दें।

मात्रा—४ रत्ती से १ माशा।

अनुपान—तालमखाने के चूर्ण के साथ प्रयोग कराने से सब प्रकार का पाण्डुरोग शान्त होता है। यह कफ पित्त जनित पाण्डुरोग को विशेष औषधि है।

सूचना—इस में पड़नेवाली अभ्रकभस्म शोरा और केलारस योग से और मण्डूरभस्म त्रिफला योग से बनी हुई होनी चाहिये।

पंचानन वटी

पारा शुद्ध, गन्धक आंवलेसार शुद्ध, ताम्रभस्म, जयपालबीज, गूगल शुद्ध सम भाग। प्रथम पारे गन्धक की कज्जली करें और फिर इसमें शेष द्रव्य

बारीक रगड़ कर मिला दें और थोड़ा घी मिलाकर खरल में इतना घोटें कि गोली बनाने लायक़ हो जावे और अब इसकी १ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—एक गोली।

अनुपान—प्रतिदिन ताज़े पानी से सेवन कराने से सब प्रकार का पाण्डु नष्ट होता है, जिस समय रोगी को बद्धकोष्ठ हो उस हालत में इस का प्रयोग करने से लाभ होता है।

सूचना—इसमें पड़ने वाली ताम्रभस्म गन्धक, पारा, तथा बांसे के रस मे भावित होनी चाहियें।

प्राणवल्लभ रस

हिंगुल से निकाला हुआ पारा, शुद्ध गन्धक, केसर, लोहभस्म, ताम्र-भस्म, वराट भस्म, तुत्थभस्म, हींग भुनी हुई, त्रिफला, थोहरमूल. जवा-खार; शुद्ध जयपाल, सुहागाखील, त्रिवृत श्वेत-प्रत्येक १ तो०। सब द्रव्यों को बारीक पीस कर निरन्तर चार दिन बकरी के दूध में खरल करें और एक२ रत्ती की गोली बना लें यह योग कफजन्य पाण्डुरोग का उत्तम औषधि है।

मात्रा—१ गोली।

अनुपान—ताज़े जल से व्यवहार करें।

सूचना—इस रस में लोहादि भस्म उपरोक्त प्रकार से बनी हुई डालनी चाहिये।

चन्द्रसूर्यान्तक रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म—प्रत्येक ८ तोला, शङ्खभस्म, शुक्तिभस्म, सुहागाखील प्रत्येक ४ तो०, गोखरू ८ तोले। पहिले पारे और गन्धक की कज्जली कर लें तथा शेष द्रव्य बारीक पीसकर इसमें मिला दें, इनको पटोलपत्र, भारंगी मूल, मकोय, बांस, कासनी, भांगरा, गोमा तथा इन्द्रायण रस से एक २ दिन खरल करके २ रत्ती से ४ रत्ती तक गोली बना लें।

मात्रा—१ गोली प्रातः तथा एक सायं।

अनुपान—बकरी के दूध से सेवन करावें।

सूचना—इस रस में पड़ने वाली लोहादि भस्में उपरोक्त प्रकार से बनी हुई होनी चाहिये तथा शुक्ति और शङ्ख भस्में घीक्वार के रस से भावित होनी चाहिये।

कामला, हलीमक आदि

कामला तथा हलीमक रोग भी पाण्डु रोग के भेद ही माने जाते हैं क्योंकि जब पाण्डुरोगी अधिक पित्तकारी पदार्थों का सेवन करता है अथवा अन्य कारणों से शरीर का पित्त कुपित हो जाता है तो रंजक पित्त रुधिर और मांस को दूषित करके रोगी के नेत्र तथा नख इत्यादि को पीला रंग देता है जिस से रोगी सब वस्तुओं को पीला ही देखता है।

कामला के लक्षण

हारिद्रनेत्रः सुभृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः ।
पीतरक्तशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रियः ॥
दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः ॥

कामला रोग में रोगी की आंख, नख, त्वचा तथा मुख आदि का रंग हल्दी के समान पीला हो जाता है, मल तथा मूत्र का रंग भी लाल अथवा पीला होता है। रोगी का शरीर निर्बल तथा शिथिल हो जाता, अग्नि मन्द होकर भोजन नहीं पचता तथा कभी २ मलबन्ध आदि के लक्षण भी होते हैं।

कामला रोग के दो भेद समझे जाते हैं। प्रथम भेद में रोगी के हाथ, पैर तथा बाहु आदि में रोग का प्रभाव अधिक दिखता है जिस से यह अंग अधिकतर हल्दी के रंग के हो जाते हैं। दूसरे भेद को कुम्भकामला कहा जाता है क्योंकि इस रोग में कामला अथवा पाण्डु रोग अधिक पुराना होकर जठराग्नि को रोक देता है जिससे रोगी का पेट दिनों दिन बढ़ने लगता और दूसरे अंग हाथ, बाहु तथा पैर आदि हीन होने लगते हैं तथा रोगी का पेट बढ़कर घड़े के समान हो जाते हैं।

कामला के असाध्य लक्षण

कृष्णपीतशकृन्मूत्रो भृशं शूनश्च मानवः ।
सरक्ताक्षिमुखश्छर्दिविण्मूत्रो यश्च ताम्यति ॥

दाहारुचितृषानाहतन्द्रामोहसमन्वितः ।
नष्टाग्निसंज्ञः क्षिप्रं हि कामलवान् विपद्यते ॥

जिस कामला वाले रोगी का मल मूत्र हरे, पीले तथा काले रंग का हों, आंखें, मुख तथा गाल अधिक लाल रंग की हों, वमन तथा मूत्र का रंग लाल हो, सारे शरीर पर सूजन हो जावे तथा दाह, अरुचि, अफारा और मन्दाग्नि हो तथा रोगी बेहोश हो जावे तो उस रोगी को असाध्य समझना चाहिये ।

हलीमक रोग

यदा तु पाण्डोर्वर्णः स्याद्धरितश्यावपीतकः ।
बलोत्साहक्षयस्तन्द्रामन्दाग्नित्वं मृदुज्वरः ॥

कहा जा चुका है कि पाण्डु तथा कामला रोग में पित्त का प्रकोप होता है तथा वही रंजक पित्त रुधिर में जा कर रोगी का रंग हल्दी के समान पीला कर देता है परन्तु इस हलीमक रोग में पित्त के साथ वात भी दूषित होता है जिस से रोगी में रूक्षता, बलक्षय, मन्दाग्नि तथा तन्द्रा आदि लक्षण प्रकट होते हैं, रोगी को हलका २ ज्वर रहने लगता और उस का रंग पीला, हरा अथवा काला हो जाता है । इस रोग में श्वास, तृषा तथा अंगों में पीड़ा आदि लक्षण भी अन्य लक्षणों के अतिरिक्त प्रमुख रूप में स्पष्ट होते हैं । यह रोग वात तथा पित्त के प्रकोप से उत्पन्न होते हैं ।

कामला तथा हलीमक चिकित्सा

अष्टादशांग लोह

चिरायता, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, नागरमोथा, कुटकी, पटोलपत्र, जवासा, पित्तपापड़ा, निम्ब बीज की गिरी, त्रिकटु, चित्रकमूलछाल, हरड़, बहेड़ा का छिलका, वायविडंग सब औषधियां सम भाग लें और सबके समान लोहभस्म मिला दें । इसका घृत तथा मधु से मोदक बनालें इसके

सेवन कराने से सब प्रकार का पाण्डु, कामला, हलीमक आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१ से २ माशे तक प्रतिदिन।

अनुपान—छाछ के साथ सेवन करावें।

सूचना—इसमें पड़ने वाली लोहभस्म त्रिफला रस से भावित होनी चाहिये।

पुनर्नवाष्टक क्वाथ

पुनर्नवा (विसखपरा या इटसिट), निम्बछाल, पेटालपत्र, कुटकी, सोंठ, हरड़ का छिलका, गिलोय, देवदारु–प्रत्येक द्रव्य ३ माशा लें और १॥ पाव पानी में डालकर विधिवत् क्वाथ बनावें। आध पाव शेष रहने पर उतार कर छान लें और रोगी को पिलावें, इसे देने से पूर्व ३ माशे मधु मिला लें। यह क्वाथ कामला, हलीमक, पाण्डु, तथा शोथ रोगों की अनुभूत औषधि है, इससे शीघ्र लाभ होता है।

आमलक्यावलेह

हरे आंवलों का २५ सेर रस लेकर एक लोहे की कढ़ाही में डाल मन्द २ अग्नि पर १ सेर पीपली चूर्ण तथा १ सेर किशमिश मिला दें, मुलहठी चूर्ण ८ तो०, सोंठ ८ तो०, वंशलोचन १ सेर, खाण्ड ५ सेर मिला कर इतना पकावें कि गाढ़ा हो जावें और अब उतार कर ठण्डा कर लें। ठण्डा होने पर १ सेर शहद मिला दें और प्रतिदिन १ तो० से २ तो० तक गरम पानी के साथ प्रयोग करावें, इससे अवश्य लाभ होता है।

धात्री अरिष्ट

दो हज़ार हरे आमलों का रस निकाल कर इसमें १६ तो० पीपल चूर्ण तथा ५ सेर खांड मिला कर पका लें और चिकनी मट्टी के बर्तन या शीशे के मर्तबान में डालकर भूसे में दवा दें, १५ दिन बाद निकालकर छान लें। यह धात्री अरिष्ट १। तो०से २॥ तो० तक सुबह वा शाम को समान पानी मिला कर देने से कामला और हलीमक रोग शान्त होते हैं। यह अरिष्ट रोग की ऐसी दशा में सेवन कराना चाहिये, जबकि रोगी को शरीर में पित्त की अत्यधिकता के कारण दस्त भी आते हों।

योगराज

त्रिफला ३ भाग, त्रिकटु ३ भाग, चित्रकछाल १ भाग, वायविडङ्ग, १ भाग, शिलाजीत ५ भाग, रौप्यमाक्षिकभस्म ५ भाग, सोनामारकी भस्म ५ भाग, लोहभस्म ५ भाग, मिश्री ८ भाग । सब द्रव्य लेकर इनको बारीक कर लें और सब से दोगुना शहद मिला कर रख छोड़ें ।

मात्रा—४ रत्ती की मात्रा ।

अनुपान—यह गरम दूध के साथ प्रयोग करने से पाण्डुरोग में अमृत के समान गुण करती है । इसके प्रयोग के समय कत्था, कबूतर का मांस सर्वथा नहीं खाना चाहिये ।

कामलान्तक लोह

लोहभस्म १६ तो०, कृष्णाभ्रकभस्म ८ तो०, मण्डूरभस्म ४ तो०, वङ्गभस्म ४ तो०, जीरा, सोंठ, पीपल, पिप्पलामूल, गजपीपल, तेजपत्र, दारुहल्दी, चव्य (अभाव में पिप्पलामूल), अजवायन, चित्रकमूलछाल, कायफल, रास्ना, देवदारु, त्रिफला, रसौंत-प्रत्येक १ तो० । पहिले काष्ठौषधियों को कूटकर बारीक कर लें और उपरोक्त भस्में मिलाकर भांगरे के रस से निरन्तर ३ दिन खरल करें तथा ब्राह्मी और कालीजीरी के कषाय की भावना देकर २ रत्ती से ४ रत्ती तक गोली बना लें । इस योग को शहद के साथ प्रयोग करने से सब प्रकार का कामला, पाण्डु, तथा हलीमक आदि रोग शान्त होते हैं ।

मात्रा—१ गोली प्रातः, एक सायं ।

अनुपान--ठण्डे पानी के साथ ।

सूचना—इसमें पड़नेवाली लोहभस्म, त्रिफलारस, मण्डूर, त्रिफला, और गोमूत्र, अभ्रक, शोरा और केला रस, वङ्ग भस्म घीक्वार के योग से बनी हुई डालनी चाहिये ।

हरिद्रादि घृत

भैंस का घी ४ सेर, दूध १६ सेर, पानी १६ सेर तथा त्रिफला,

नीमछाल, मुलहठी–प्रत्येक चूर्ण २० तोले। सब को कड़ाही में आग पर चढ़ा दूध और पानी बिल्कुल जला दें, फिर छान लें।

मात्रा—१ तोला।

यह घृत ऐसी दशा में सेवन कराना चाहिये, जबकि रोग पुराना होने पर अति रूक्षता के कारण रोगी के शरीर पर खुजली होती हो।

पर्पटाद्यरिष्ट

पित्तपापड़ा ५ सेर को १२८ सेर पानी में पकावें, जब चतुर्थांश जल शेष रह जावे तो शीतल होने पर मल कर छान लें, अब इसमें १० सेर गुड़ और निम्न लिखित चीज़ों का चूर्ण मिला दें।

नागरमोथा, गिलोय, हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु, कण्टकारी जवासा, चव्य, चित्र-मूलछाल, वायविडङ्ग, त्रिकुटा–प्रत्येक ४ तो०। इनका चूर्ण मिलाने के बाद ३ पाव धाय के फूल डालकर पात्र का मुख बन्द कर दें। यदि शीतकाल हो तो १ मास और उष्णकाल हो, तो १५ दिन के पश्चात् पात्र का मुख खोलकर देखें। यदि अच्छी तरह नितर गया हो, तो इसको छानकर बोतलों में भर लें।

मात्रा—१। तोले से २॥ तोले तक।

यह अरिष्ट रोगी को ऐसी दशा में सेवन कराना चाहिये जब कि, पित्त की अधिकता के कारण रोगी को वमन भी होती हो तथा यकृत् और प्लीहा अधिक बढ़े हुए हों।

कुमार्यासव

अति उत्तम पुराने पके हुए घीक्वार का रस, १६ सेर, पुराना गुड़ ५ सेर, मधु २॥ सेर, उत्तम लोहचूर्ण २॥ सेर। इनको किसी चिकने मिट्टी के पात्र में डाल दें और सोंठ, काली मिरच, पीपल, लौंग, दालचीनी, तेज-पत्र, इलायची, नागकेसर, चित्रक, पिप्पलामूल, वायविडंग, गजपीपल, चव्य, हाऊबेर, धनियां, सुपारी, कुटकी, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आमला, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, प्रसारणी, दन्ती, पोहकरमूल, खरैंटी, नागबाला, कौंचबीज, गोखरू, सौंफ, हिंगुपत्री, अकरकरा, उटंगन बीज,

विसखपरा (पुनर्नवा), लाल मांठी, लोध, स्वर्णमाक्षिक–प्रत्येक २ तो०। सब का महीन चूर्ण करके उपरोक्त द्रव्य में मिला दें और आधा सेर धाय के फूल डालकर पात्र का मुख बन्द कर दें। यदि शीतकाल हो, तो १ मास और उष्णकाल हो, १५ दिन के पश्चात् खोल कर देखें, यदि आसव भली प्रकार नितर गया हो, तो छानकर बोतलों में भर दें।

मात्रा––१। तो० से २॥ तो० तक।

दोनों काल भोजनोत्तर थोड़ा पानी मिला कर सेवन करावें। इसके सेवन से पुराने से पुराना पाण्डु, कामला नष्ट होता है, तथा दूषित हुए यकृत् और प्लीहा ठीक हो जाते हैं। यक्ष्मा और अन्य दीर्घ रोगों से उत्पन्न हुई दुर्बलता नष्ट होती तथा शरीर में रक्त की मात्रा पूर्ण हो जाती है। यह उत्तम योग प्रत्येक वैद्य के चिकित्सालय में हर समय तय्यार रहना चाहिये। यह हमारा सहस्रों बार का अनुभूत है।

मूर्वादि घृत

मरोड़फली, कुटकी, हल्दी, धमासा, पीपल, लाल चन्दन, चिरायता इन्द्रजौ, जवासा, पटोलपत्र, नागरमोथा, देवदारू, त्रायमाण प्रत्येक २तोला सब का चूर्ण बना लें।

घी १ सेर, दूध ८ सेर तथा पानी ६४ सेर ले कर उपरोक्त चूर्णों के साथ घृतपाक की विधि से घी बना कर छान लें।

मात्रा––यह मूर्वादि घृत ६ माशे से १ तोले तक प्रयोग करने से पाण्डु, कामला तथा कुम्भ कामला आदि रोग शान्त हो जाते हैं।

पाण्डु तथा कामला में नस्य अंजन

१. श्वेत प्याज़ का रस, गुड़ तथा हल्दी इन पदार्थों की नस्य लेने से कामला तथा पाण्डु रोग नष्ट होता है।

२. गेरु, हल्दी तथा आमले का रस इन में से किसी एक चीज का अंजन आंखों में लगाने से कामला हट जाता है।

३. देवदाली के फूलों का रस सूंघने से कामला जाता रहता है, यह हमारा अनुभूत प्रयोग है।

४. निम्बू का रस दो तीन बूंद आंख में डालने से कामला नष्ट होता है।

५. कड़वी तोरी का रस निकाल दो तीन बूंद नाक में टपकाने से कामला शान्त रहता है।

६ द्रोणपुष्पी (गोमा बूटी) के रस की तीन चार बून्दें नाक में टपकाने से कामला नष्ट होता है।

७. घीक्वार का रस सूंघने से आंखों का पीलापन नष्ट होता है।

पाण्डु, कामला में पथ्य

चावल, जौ, गेहूं, जंगली जानवरों का मांस, यूष आदि कामला में दे सकते हैं; लोहे की कड़ाही में पकाया दूध पिलावें; मूंग, मसूर, तोरी आदि पथ्य हैं।

अपथ्य

पाण्डु रोग में शीतल पानी से स्नान हानिकर है, गरम पानी में तौलिया निचोड़ कर उस से शरीर को पोंछना चाहिये जिस से शरीर शुद्ध होता रहे।

पेट भर कर खाना, भूख अधिक होने पर थोड़ा खाना, शराब आदि गरम पदार्थ, तैल और लाल मरिच, अधिक खारी तथा तीक्ष्ण पदार्थ।

पाण्डु, कामला, हलीमक आदि के लिए उत्तम योग

१. हल्दी, त्रिकटु, त्रिफला, वायविडंग, मण्डूरभस्म सब द्रव्य समान भाग ले कर बारीक कर लें और सब से चौथाई गाय का घी मिला दें, अब सम्पूर्ण से दोगुना शहद मिला लें।

मात्रा--१ माशा से ३ माशा तक।

प्रातः सायं ताज़े पानी से प्रयोग करें, इस से कामला को लाभ होता है।

२. मण्डूरभस्म, हल्दी, त्रिफला, दारु हल्दी, कुटकी समभाग ले चौथाई भाग घी और दोगुना मधु मिला लें।

मात्रा—१ माशा से ३ माशा तक ।

अनुपान—ताजे पानी के साथ प्रयोग कराने से पाण्डु, कामला आदि नष्ट होते हैं ।

३. त्रिफला के रस २ तोले में ६ माशे गाय का घी और २ तोला शहद मिला कर कुछ दिन प्रयोग करने से पाण्डु कामला तथा कुम्भकामला आदि रोग शान्त होते हैं ।

४. कच्ची हल्दी का रस २ तोला, घी २ माशा तथा मधु १ तोला या ६ माशे मिला कर दोनों समय देने से पाण्डु में शीघ्र लाभ होता है ।

५. बबूल की गोंद में समान भाग मिश्री मिला कर चूर्ण बना लें । यह चूर्ण प्रातः सायं दो माशे की मात्रा में पानी के साथ उपयोग करने से कामला पाण्डु आदि नष्ट होते हैं ।

६. रीठे का छिलका १॥ तोला गाजवां १ तोला को रात १ पाव पानी में भिगो दें प्रातः काल मसल कर छान लें और पी लेवें, इस औषधि को केवल ७ दिन प्रयोग करने से कामला, पाण्डु आदि रोग शान्त होते हैं ।

७. कसौंदी के फूल तथा काली मरिच दोनों को पीस कर ताजे पानी के साथ रोगी को प्रातः सायं उपयोग कराने से कामला, पाण्डु को लाभ होता है ।

८. गाय के दूध में सोंठ का चूर्ण मिला कर इसे गरम करके रोगी को देने से लाभ हो जाता है ।

९. दही ८ तोला में एक तोला हल्दी का चूर्ण मिला कर कुछ रोज़ प्रयोग कराने से रोगी को आराम होता है ।

१०. कुटकी ३ माशा कूज़े की मिश्री १ तोला, दोनों का चूर्ण बनालें इस चूर्ण को दोनों समय ताजे पानी से प्रयोग कराने से लाभ होता है; यह योग अनुभूत है ।

११. एक पाव पानी में २ तोला त्रिफला मिला कर पकावें, पानी आधा रह जाने पर छान लें और मिश्री मिला कर देवें । इससे कामला नष्ट होता है ।

१२. बिनौले की गिरी रात को पानी में भिगो दें, अगले दिन प्रातः सरदाई की तरह रोगी को दें, कुछ दिन यह प्रयोग करने से लाभ होता है।

पाण्डुरोग में पथ्य

छर्दिर्विरेचनं जीर्णयव गोधूम शालयः।
मुद्गाडकी मसूराणां यूषा जांगलजा रसाः॥
पटोलं वृद्धकूष्मांडं तरुणं कदलीफलं।
जीवनी क्षुद्रमत्स्याद्धि गुडुचितण्डुलीयकम्॥
पुनर्नवा द्रोण पुष्पीवार्ताकुं लशुन द्वयम्।
पक्वाम्रमभया बिंबी शृंगी मत्स्या गवाम जलम्।
धात्री तक्रं घृतं तैलं सौवीरकतुषोदके।
नवनीतं गंध सारो हरिद्रा नागकेसरम्॥
यवक्षारो लोहभस्म कषायाणी च कुंकुमम्।
दाहश्चरणयोः सन्धौः नाभेश्च द्वयुंगलादधः॥
मस्तकेहस्तयोर्मूले मध्य च स्तनकक्षयोः।
यथा दोषं मिदं पथ्यं पाण्डुरोगवतां नृणाम्॥

वमन (कै कराना), विरेचन (जुलाब देना), पुराने जौ, गेहूं, चावल, मूंग, अरहर, मसूर आदि अन्न, जङ्गली जीवों के मांस का रस, परवल, पुराना पेठा, केले की हरी फली, जीवन्ती, मछेछी, गिलोय, चौलाई आदि का शाक, सांठी, गोमा, दोनों प्रकार का लहसन, पका हुआ आमफल हरड़, कन्दूरी फल, सींग वाली मछली, गोमूत्र; आंवला; छाछ; घृत, तैल; कांजी; तुषोदक; मक्खन, मलयागिरी चन्दन, हलदी; नागकेसर; जौखार; लोहभस्म, कसैले रस और पैरों की सन्धि में नाभी से २ अंगुल नीचे, माथे पर, हाथों के मूल में और स्तन तथा काख के बीच में अग्नि से दाग़ देना; यह सब पाण्डु रोग में दोषों के अनुसार हितकर हैं।

पाण्डुरोग में अपथ्य

रक्तस्रुतिर्धूम्र पानं वमिवेग विधारणम् ।
स्वेदनं मैथुनं शिम्बीपत्र शाकानि रामठम् ॥
माषोऽम्बुपानं पिण्याकस्तांबूलं सर्षपंसुरा ।
मृद्भक्षणं दिवा स्वप्नं तीक्ष्णानि लवणानि च ॥
सह्यविन्ध्याद्रि जातानां नदीनां सलिलानि च ।
सर्वाण्यमूलानि दुष्टाम्बू विरुद्धान्यशनानि च ॥
गुर्वन्नं च विदाहीनि पाण्डुरोगवतां विषम् ॥

रुधिर निकलवाना, धूम्र पान (हुक्का पीना), वमन तथा मल मूत्रादि वगों को रोकना, स्वेदकर्म (पसीना निकालना), स्त्री प्रसंग, सेमकी फली, पत्तों का शाक, हींग, उड़द, अधिक जल पीना, सरसों, मिट्टी, सुरा, दिन में सोना, जिनमें अधिक तीक्ष्ण लवण पड़ा हो-ऐसे पदार्थ का खाना, सह्यादि (दक्षिण में एक पर्वत है) तथा विन्ध्याचल से निकली हुई कृष्णा, नर्मदा, ताप्ती आदि नदियों का जल पीना सब प्रकार की खटाई,दूषित जल, विरुद्ध भोजन, भारी अन्न और दाह उत्पन्न करनेवाला अन्न । यह सब वस्तुयें पाण्डुरोगी को विष के समान हैं । इनको सेवन करने से रोग की वृद्धि होती है ।

रक्तपित्त रोग

घर्मव्यायामशोकाध्व व्यवायैरतिसेवितैः ।

तीक्ष्णोष्णक्षारलवणैरम्लैः कुटिभिरेव च ॥

पित्तं विदग्धं स्वगुणैर्विदहत्याशुशोणितम् ।

रक्तपित्त रोग में मुख, नासिका तथा गुदा आदि किसी मार्ग से भी रक्त शरीर से निकलने लगता है। अधिक धूप, शोक, व्यायाम आदि से तथा तीक्ष्ण गुण, उष्ण, क्षार, लवण तथा खट्टे पदार्थों के अधिक सेवन करने से पित्त प्रकुपित हो जाता है तथा समान गुण होने के कारण यह रक्त को भी दूषित कर देता है, यह दूषित पित्त तथा रक्त ही भिन्न २ मार्गों से शरीर से बाहिर निकलते हैं। इस रोग में पित्त तथा रक्त दोनों के दुष्ट हो जाने के कारण इस रोग को रक्तपित्त कहा जाता है।

रक्त पित्त होने से पहिले वमन, गले में धुंएं के समान गन्ध तथा श्वास आदि का वेग बढ़ जाता है, कभी २ क्षय होने से पहिले भी रक्तपित्त हो जाता है और यही रोग धीरे २ बढ़कर राजयक्ष्मा का कारण बन जाता है। यह कहा जा चुका है कि रक्त पित्त में पित्त प्रधानतया दुष्ट होता है, परन्तु वायु अथवा कफ भी किसी मात्रा तक दुष्ट हो सकते हैं।

कफज रक्तपित्त में निकलने वाला रुधिर गाढ़ा, चिकना, तथा पाण्डु-रङ्ग का होता है; वातज रक्तपित्त का रक्त लाल, काला पतला, रूक्ष, तथा झाग से मिला होता है; पित्तज रक्तपित्त का लहू काला तथा गोमूत्र के समान गन्धवाला होता है। इस प्रकार रुधिर को देखते हुए भी रक्तपित्त का कारण जाना जा सकता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि रक्तपित्त में निकलने वाला रुधिर अनेक मार्गों से आ सकता है, परन्तु साधारणतः कफज रक्तपित का रक्त मुख, नासिका आदि ऊर्ध्वमार्गों से आता है, वातज रक्तपित्त से निकलने वाला रुधिर गुदा तथा मूत्रमार्गादि अधोमार्गों से निकलता है, इसी प्रकार इन दोनों के प्रकोप से उत्पन्न रक्तपित्त में रुधिर दोनों मार्गों से आता है।

रक्तपित्त के उपद्रव

दौर्बल्यं श्वासकासज्वरवमथुमदाः पाण्डुता दाहमूर्च्छा ।
भुक्ते घोरो निदाहस्त्वधृतिरपि सदाहश्चतुल्या च पीड़ा ॥
तृष्णा कोष्ठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूयनिष्ठीवनञ्च ।
द्वेषो भुक्तेऽविपाको विकृतिरपि भवेद्रक्तपित्तोपसर्गात् ॥

पाण्डुता, मद, श्वास, खांसी, दुर्बलता, ज्वर, वमन, दाह, मूर्च्छा, प्यास, हृदय में अशान्ति, दस्त होना, थूक में दुर्गन्धि, शिरमें दर्द, भोजन न पचना, अन्न की अनिच्छा तथा मस्तिष्क में भ्रम आदि रक्तपित्त के उपद्रव होते हैं।

रक्तपित्त में साध्यासाध्य

एकदोषानुगं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते ।
यत् त्रिदोषमसाध्यं स्यान्मन्दाग्नेरतिवेगवत् ॥
एकमार्गं बलवतो नातिवेगं नवास्थितम् ।
रक्तपित्तं सुखे काले साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ॥
मांस प्रक्षालनाभं क्वथितमपि च यत्कर्दमाम्भोनिभं वा ।
मेदः पूयास्रकल्पं यकृदिव यदि पक्वजम्बूफलाभम् ॥
पश्येद् दृश्य वियच्चापि तदसाध्यमसंशयम् ॥

एक दोषज रक्तपित्त साध्य समझना चाहिये, २ दोषों से उत्पन्न होनेवाला याप्य तथा त्रिदोषज मन्दाग्नि वाले मनुष्य को होने वाला तथा अत्यन्त वेगवाला रक्तपित्त असाध्य समझना चाहिये। ऊर्ध्वमार्गसे निकलने वाला साध्य, अधोमार्ग से बहनेवाला याप्य तथा दोनों मार्गों से यदि रुधिर बहता हो और रोगी क्षीण हो गया हो, तो उसको असाध्य समझना चाहिये, हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में बलवान रोगी को हुआ रक्तपित्त भी साध्य ही समझा जाता है।

यदि रक्तपित्त में निकलने वाला रुधिर मांस के धोवन के समान रङ्ग वाला, कीचड़ के पानी के समान, यकृत् रङ्ग के समान, काला या नीला अथवा भिन्न २ अनेक रङ्गोंवाला हो, तो उस रोगी को असाध्य समझना चाहिये।

यदि रक्तपित्त वाला रोगी अदृश्य पदार्थों को भी दृश्य समझे तथा भ्रम आदि से पीड़ित हो, तो उसको असाध्य समझकर त्याग देवें।

रक्तपित्त में अरिष्ट लक्षण

लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः।
लोहितोद्गारदर्शी च मृयते रक्तपैत्तिकः॥

इत्यरिष्टम्

यदि रक्तपित्त वाले रोगी को बार २ रुधिर की ही वमन होती है, डकार में भी रुधिर ही आता हो और आंखें लाल हो गई हों, तो उस रोगी का बचना कठिन होता है।

रक्तपित्त की चिकित्सा

यदि रोगी बलवान हो और अधिक निर्बल न हो तो रक्तपित्त में निकलने वाले रुधिर को रोकना नहीं चाहिये, क्योंकि दूषित हुए पित्त तथा रुधिर को शरीर से प्रकृति स्वयं ही निकालती है, रोग आरम्भ में रक्त को रोकने के लिये स्तम्भन औषधियों का प्रयोग करने से रोगी को पाण्डु, संग्रहणी तथा अन्य अनेक रोग होने का भय रहता है। यदि रोगी निर्बल अधिक हो और चिकित्सक का विचार हो कि अधिक रक्त जाने से उस के जीवन का भय है, तो उस अवस्था में स्तम्भक औषधियों का प्रयोग किया जा सकता है।

धान्यकादि हिम

धनियां, आंवले सूखे, बांसे के पत्ते, दाख तथा पित्तपापड़ा प्रत्येक

औषधि ४ माशे ले कर रात्रि को डेढ पाव पानी में भिगो दें और सवेरे मल कर छान लें और मिश्री तथा मधु मिलाकर आधा प्रातः और आधा शाम को पिला दें। इस के सेवन से तीव्र रक्तस्राव भी एकदम रुक जाता है। यदि रक्त अधिक वेग से आता हो तो यही हिम की औषधियें अधिक प्रमाण में भिगोकर दिन में कई बार सेवन करा सकते हैं; यह योग हमारा सहस्रों बार का अनुभूत है।

प्रियंगु क्वाथ

प्रियंगु, बांसा २ तो० प्रत्येक लेकर १॥ पाव पानी में उबालें, अब रसौंत, लोध पठानी, कमीला इनका चूर्ण बनाकर ३ माशे फक्का दें और ऊपर से पहिले बनाया हुआ क्वाथ पिला दें।

ह्रीवेरादि क्वाथ

सुगन्धबाला, कमलफूल, ख़स, बांसे के पत्ते, गिलोय, मुलहठी, नागरमोथा, लालचन्दन, धनियां सब औषधियां २ तो० लेकर क्वाथ की विधि से काढ़ा बनाकर ठण्डा कर लें और शहद तथा मिश्री मिला कर रोगी को पिलावें। इस के कुछ दिन प्रयोग करने से रक्तपित्त नष्ट होता है।

आटरूषादि क्वाथ

बांसा फूल, किशमिश, हरड़ का छिलका--सब द्रव्य २ तो० लेकर क्वाथ की विधि से कषाय बना लें और ठण्डा कर मिश्री मिला कर रोगी को देवें। इसके कुछ दिन प्रयोग करने से रक्तपित्त नष्ट हो जाता है।

खण्डकूष्माण्डावलेह

उत्तम पका हुआ पेठा लेकर इसको छील लें और बीज निकाल दें, इसको कद्दूकस करके ४ सेर लेवें और इसे किसी पात्र में डाल कर आग पर चढ़ा दें, पेठे के गल जाने पर इसे आग से उतार कर निचोड़ लें। अब १ सेर गाय के घी में भूनें, अब इसमें उपरोक्त निचोड़ा हुआ पानी डाल कर ४ सेर मिश्री मिलाकर अवलेह के समान पाक करें और लेह के 'समान बन जाने पर पीपल, सोंठ--प्रत्येक ८ तो०, ज़ीरा, धनियां, तेजपात, इलायची

के दाने, काली मरिच तथा दालचीनी प्रत्येक का चूर्ण २ तो७ मिला ३२तो० शहद मिलाकर " खण्ड कूष्माण्ड " लेह तय्यार कर लें तथा एक शुद्ध और स्वच्छ बर्तन में रख लेवें।

मात्रा—६ माशे से १ तो० ।

अनुपान—इसे बकरी के दूध के साथ प्रयोग करने से रक्तपित्त, प्रदर तृषा, दाह और क्षय आदि रोग नष्ट होते हैं।

यह अवलेह रोगी को ऐसी दशा में देना चाहिये जब कि उपरोक्त कषायादिकों से रक्तस्राव बन्द हो चुका हो, परन्तु रक्त के अधिक स्राव के कारण रोगी दुर्बल हो गया हो और साथ ही रोगी को सूखी खांसी आती हो, ऐसी दशा में यह अवलेह अति लाभ करता है।

वासाकूष्माण्डावलेह

वांसे की जड़ की छाल २६४ तो० लेकर ६४ सेर पानी में पकावें, १६ सेर पानी शेष रहने पर इसको उतार कर छान लें औ कद्दूकस किया हुआ ५ सेर पेठा मिला कर पकावें, पेठे के भली प्रकार पक जाने पर इसे निचोड़ कर १ सेर गाय के घी में भूनें। अब पेठे तथा कषाय में ५ सेर खांड मिलाकर इसको आग पर चढ़ा दें, अवलेह के समान होने पर इसमें वंशलोचन १ तो०, नागरमोथा, भारङ्गी, तेजपत्र, इलायची, प्रत्येक १ तो०, बालछड़, सोंठ, धनियां, काली मरिच—प्रत्येक ४ तोला, पीपल चूर्ण १६तो० मिला दें और आग से उतार लें। ठण्डा होने पर ३२ तोले मधु मिलाकर सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—रोगी की अवस्थानुसार ३ माशे से १ तोला तक।

अनुपान—दोनों समय बकरी के दूध से प्रयोग करावें, इसके प्रयोग से रक्तपित्त, कास तथा राजयक्ष्मा नष्ट होते हैं।

बृहत्कूष्माण्डावलेह

पके हुए पेठे को कद्दूकस करके ५ सेर लें और ५ सेर गाय का दूध मिलाकर हलकी आग पर चढ़ा दें, पेठे के गल जाने पर इसमें ७॥ सेर खाण्ड और १सेर गाय का घी मिलाकर चलाते रहें, जब दूध का मावा बन जावे और

पेठा लाल होकर घी छोड़ने लगे, तो इसमें १६ तो० नारियल की गिरी, ४ तो० चिरौंजी, ४ तोले वंशलोचन मिला दें, ठण्डा होने पर ३२ तोले मधु मिला कर निम्नलिखित औषधि में मिलाकर उत्तम पात्र में रक्खें—

सौंफ १ तोला, अजवायन २ तोले, गोखुर २ तोले, तालमखाना, हरड़ का छिलका, कौंचबीज, दालचीनी प्रत्येक २ तोले, धनियां, पीपल, नागरमोथा, अश्वगन्धा, शतावर, काली मूसली, कंघी बूटी, सुगन्धबाला, तेजपत्र, कचूर, जायफल, लौंग, इलायची, पित्तपापड़ा प्रत्येक ४ तोले, श्वेत चन्दन, सोंठ, आमला, कसेरू प्रत्येक ५ तोला, खस ८ तोले, कमलडोडा, काली मरिच प्रत्येक ८ तोला ले कर चूर्ण कर उपरोक्त अवलेह में मिला दें

मात्रा—३ माशे से १ तोले तक।

अनुपान—बकरी के दूध के साथ प्रयोग करावें, इस से रक्तपित्त तथा क्षय आदि नष्ट होते हैं, इस के सेवन से बूढे भी जवान हो जाते हैं। यह रक्तपित्त की अत्यन्त निर्बलता को दूर करता तथा रक्तस्राव को शीघ्र बन्द करता है।

शतावरी घृत

शतावरी का रस ८ तोले, गाय का दूध ३२ तोले, गाय का घी ३२ तोले, मिश्री ८ तोले इन सब को एक स्वच्छ पात्र में हलकी २ आग पर चढ़ा दें जब दूध आदि जल जावे और केवल घी रह जावे तो उतार कर छान लें।

मात्रा—यह शतावरी घृत १ से २ तोले तक।

अनुपान—गाय या बकरी के दूध के साथ प्रयोग करने से रक्तपित्त आदि रोग नष्ट होते हैं।

वांसा घृत

वांसापंचांग ८ सेर को कूट कर ६४ सेर पानी में डाल खूब पकावें, १६ सेर शेष रहने पर मल कर छान लें, १६ तो० वांसे के फूल, ५ सेर गाय का घी ले कर उपरोक्त कषाय में मिला कर पकावें जब पानी जल जावे

और घी ही शेष रह जावे तो आग से उतार कर ठण्डा होने पर छान लें और चौथाई भाग शहद मिला दें, इस को वांसाघृत कहा जाता है ।

मात्रा—३ माशे से १ तोले तक।

अनुपान—इसे बकरी के दूध के साथ सेवन कराने से रक्तपित्त नष्ट हो जाता है।

महावांसा घृत

बांसे का रस १६ सेर, गाय का दूध ४ सेर, गोघृत ४ सेर, बांसा के पत्ते, चिरायता, कुड़ा की छाल, नागरमोथा, मुलहठी, श्वेत चन्दन, खस, महुए के फूल, उशबा, कमलफूल, पद्माख, बुनफशा, कुमुदिनी, मरोड़फली, मोतिया, प्रत्येक ५ तोले इनको बारीक पीस कर बांसे के रस में मिला दूध तथा घी भी इसी में मिला हलकी आग पर पकावें। सारा पानी तथा दूध जलने पर घी ही शेष रहने पर आग से उतार ठण्डा होने दें और घी को छान घी से चौथाई मधु मिला रख लें ।

मात्रा—यह घृत ६ माशे से २ तोले तक।

अनुपान—बकरी के दूध से प्रयोग करने से रक्तपित्त शान्त होता है।

दूर्वादि घृत

श्वेत दूब, कमल फूल, कमल केसर, मजीठ, आंवला, लोध्र पठानी, खस, नागरमोथा, श्वेत चन्दन, पद्माख, किशमिश, मुलहठी, गम्भारी, लाल-चन्दन प्रत्येक १ तोला इन को बकरी के दूध में पीस कर पिष्टी बना लें, पुराने चावल १ पाव को १ सेर पानी में एक दिन तथा रात भीगा रहने दें और पानी नितार दें। बकरी का दूध ४ सेर और गाय या बकरी का घी १ सेर—इन सब को बर्तन में डाल पकावें, केवल घी रहने पर छान कर रख लें।

मात्रा—यह दूर्वादि घृत ६ माशे से १ तोला तक प्रयोग करें।

इस के प्रयोग से सब प्रकार का रक्तपित्त नष्ट होता है, यदि आंख, नाक, कान से रक्त आता हो तो इस घी को अंजन तथा नस्य के समान भी प्रयोग करें। यह योग सब प्रकार के रक्तपित्त को नष्ट करता है। यह अनुभूत है।

सुधानिधि रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सुवर्ण माक्षिकभस्म, लोहभस्म-प्रत्येक २ तोला, पारे गन्धक की कज्जली करके शेष औषधियां मिलाकर लोहे की कड़ाही में डालें और २० तो० त्रिफला कषाय मिलाकर हलकी आग पर चढ़ा दें, जब पानी सूख जावे; उस समय उतार लें और औषधि को सुरक्षित रखें।

मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक।

अनुपान—इस रस को बकरी के दूध के साथ सेवन कराने से हर प्रकार का रक्तपित्त शान्त होता है।

सूचना—इस रस में पड़ने वाली लोहभस्म चिरायतादिगण तथा वङ्गभस्म और स्वर्ण माक्षिक भी इसी प्रकार से बनी हुई डालनी चाहिये।
[देखो रसेन्द्रसारसंग्रह]

मर्केश्वर रस

ताम्रभस्म, पारद शुद्ध, वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म, सोनामाखीभस्म—प्रत्येक औषधि सम भाग ले गिलोय के रस में एक २ दिन खरल करें और गोली बनाकर गजपुट दे दें, शीतल होने पर पीसकर रख लें।

मात्रा—इस रस की १ रत्ती से २ रत्ती की मात्रा है।

अनुपान—चावलों के पानी के साथ प्रातः सायं सेवन कराने से कुछ दिनों में रक्तपित्त नष्ट होता है।

सूचना—इसमें पड़नेवाली समस्त भस्में उपरोक्त किरातादि गण द्वारा भावित होनी चाहिये, अन्यथा इस से कोई लाभ नहीं होता।

आमलक्यादि लोह

आंवले तथा मुलहठी चूर्ण समभाग लेकर दोनों के बराबर लोह भस्म मिलावें, इस सारी औषधि के बराबर मिश्री मिला कर चूर्ण कर लें।

मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक।

अनुपान—बकरी के दूध से प्रातः सायं सेवन कराने से कुछ दिनों में रक्त पित्त नष्ट होता है।

यह योग पित्त की अधिकता में सेवन कराना चाहिये।

सूचना—इसमें पड़नेवाली लोहभस्म भी रसेन्द्रसारोक्त त्रिफला और किरातादि गण द्वारा भावित होनी चाहिये।

शतमूल्यादि लोह

शतावरी, धनियां, नागकेसर, श्वेत चन्दन, त्रिकटु, त्रिफला, दाल, चीनी, इलायची, तेजपत्र प्रत्येक समभाग लें सब के समान लोहभस्म मिलावें और पीसकर महीन चूर्ण बना लें।

मात्रा—१ रत्ती से ४ रत्ती तक।

अनुपान—बकरी के दूध के साथ कूष्माण्ड अथवा वांसावलेह में मिलाकर देनी चाहिये या चावलों का धोवन या बांसेके पत्तों के रस के साथ सेवन करावें। यह दवाई अति उत्तम है, इसको पित्तपापड़े के पानी के साथ भी दे सकते हैं।

सूचना—इसमें पड़ने वाली भस्म भी पूर्वोक्तविधि से बनी हुई होनी चाहिये।

रक्तपित्तान्तक रस

अभ्रकभस्म, लोहभस्म, सुवर्ण माक्षिकभस्म, पारा शुद्ध, हरताल शुद्ध, शुद्ध गन्धक। पहिलें पारे और गन्धक की कज्जली करें और शेष औषधियां इस में मिलाकर गिलोय के रस, द्राक्षाक्वाथ तथा भारंगी क्वाथ में एक २ दिन खरल करके दो २ रत्ती की गोलियां बना लें।

अनुपान—इसको शहद अथवा मिश्री के साथ प्रयोग कराने से सब प्रकार का रक्तपित्त शान्त होता है।

यह रस पुराने रक्तपित्त में विशेष कर ऐसे रोगी को लाभ करता है, जिसकी आयु ४० वर्ष से ऊपर हो और अति दुर्बल हो गया हो।

सूचना—इसमें पड़ने वाली भस्में भी उपरोक्त प्रकार से बनी हुई होनी चाहियें।

रसामृत रस

पारा शुद्ध १ भाग, गन्धक शुद्ध, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शिलाजीत,

लाल चन्दन, सत गिलोय, किशमिश, महुए के फूल, धनियां, इन्द्रजौ, कुटज छाल, धायफूल, नीमपत्र, मुलहठी, मिश्री, शहद–प्रत्येक २ तो०। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली करके शेष औषधियां इसमें मिला दें।

मात्रा—१ माशे से २ माशे तक।

अनुपान—इसे बकरी के दूध के साथ सेवन कराने से रक्तपित्त नष्ट होता है। यह योग कफ प्रधान रक्तपित्त में सेवन कराना चाहिये।

कपर्दक रस

पारदभस्म या रससिन्दूर को कपास के फूलों के रस में एक दिन तक खरल करें और पीली कौड़ियों में भरकर इन कौड़ियों को मिट्टी के सकोरों में रख कपड़मिट्टी करें और १० सेर उपलों की आग दे दें; शीतल होने पर निकाल कर चूर्ण करके २ भाग मरिच चूर्ण मिला लें। यह कपर्दक रस है।

मात्रा—इसकी २ रत्ती की मात्रा है।

अनुपान—इसको ६ माशे शहद और ३ माशे घी के साथ प्रयोग कराने से रक्तपित्त रोग नष्ट हो जाता है। यह रस भी कफ प्रधान अवस्था में ही सेवन कराना चाहिये।

रक्तपित्तकालकुठार रस

पारा शुद्ध, शुद्ध गन्धक, प्रवालभस्म, सुवर्णमाक्षिकभस्म, बङ्गभस्म, तथा सीसकभस्म–प्रत्येक समान भाग लें। पारे गन्धक की कज्जली करके शेष औषधि मिला निम्न औषधियों के रस में तीन २ दिन खरल कर लें—

श्वेत चन्दन का कषाय, कमल का रस, मालतीरस, वांसारस, धनियें का रस, शतावरीस्वरस, सिम्बल रस, गिलोयस्वरस–इन रसों में खरल कर दो २ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—१ गोली सुबह व शाम।

अनुपान—इसको वांसारस २ तो०, शहद ६ माशे के साथ सेवन

कराने से सब प्रकार का रक्तपित्त शान्त हो जाता है। यह रस पुराने रक्त-पित्त में विशेष लाभ करता है।

सूचना– इसमें पड़नेवाली भस्में भी उपरोक्त प्रकार से बनी हुई होनी चाहियें।

उशीरासव

खस, नेत्रबाला, लालकमल, गम्भारी, नीलाकमल, प्रियंगु, पद्माख, लोध, मजीठ, धमासा, पाढल, चिरायता, कुटकी, गूलर की छाल, वड की छाल, कचूर, पित्तपापड़ा, कमलडोडे, पटोलपत्र, कचनार की छाल जामुन की छाल और सेमल की गोंद–प्रत्येक औषधि एक पल, दाख २० पल, खाण्ड १० सेर, मधु ५ सेर; धायफूल १६ पल। इनका चूर्णकर ४८ सेर पानी में डाल और किसी मिट्टी के वर्तन में भर दें। वर्तन का चौथा हिस्सा खाली रहना चाहिये; इसको गर्मी के दिनों में १५ दिन, और सर्दी के दिनों में १ मास पड़ा रहने दें। आसव तय्यार होने पर छान कर बोतलों में भर लें।

मात्रा—१ तो० से २ तो० तक।

अनुपान—इसको प्रातः तथा सायं भोजनोत्तर पिलावें।

यह रक्तपित्त की अचूक औषधि है, कुछ दिन सेवन कराने से सब प्रकार का रक्तपित्त रुक जाता है। हमारा सैंकड़ों बार का अनुभूत है।

विरेचक प्रयोग

सूखे आंवले २ तो० लेकर इनको १॥ पाव पानी में पकावें, आध पाव पानी रहने पर उतार कर उसे मल कर छान लें, अब ४ तो० अमल-तास का गूदा इसमें मिलाकर फिर छान लें।

अनुपान —इसमें ३ तो० मिश्री मिला रोगी को पिलावें। इससे खुलकर दस्त हो जाते हैं, दस्त होने के बाद शेष औषधियां सेवन करावें। यह रोगी को ऐसी दशा में सेवन कराना चाहिये, जबकि बद्ध कोष्ट हो।

वमन के लिये योग

-नागरमोथा, इन्द्रजौ मीठे, मुलहठी प्रत्येक ६ माशे, मदनफल १तो०

आध सेर पानी में पकावें, आध पाव पानी रह जाने पर इसे उतार कर छान लें, हलका गरम रहने पर २ तो० मिश्री मिला रोगी को पिला दें, इससे वमन होकर रोगी की तबियत साफ हो जाती है।

रक्तपित्त के लिये फुटकल अनुभूत योग

१, भुनी हुई फिटकरी को कुछ दिन बकरी के दूध के साथ प्रयोग करने से मुख द्वारा आने वाला रक्त बन्द हो जाता है।

२. श्वेत दूब का रस १ तो०, अनार के फूलों का रस ६ माशा, घोड़े की लीद का रस ६ माशा। सब मिलाकर मिश्री डालकर पिलाने से रक्तपित्त शान्त होता है।

३. गाय के गोबर का रस सूँघने या इसकी नस्य लेने से नाक से आने वाला रक्त बन्द हो जाता है।

४. बकरी के दूध में घी मिलाकर पीने से नाक से आने वाला रक्त बन्द हो जाता है।

५. धारोष्ण बकरी का दूध मिश्री मिलाकर सुबह या शाम पिलाने से किसी अन्य दवाई से न रुकने वाली नकसीर बन्द हो जाती है।

६ सौबार धोये हुए माखन में कपूर मिलाकर छाती पर लेप करने से नकसीर आना तथा मुख द्वारा रक्त आना बन्द हो जाता है।

७ शीतल जल की धारा सिर पर डालने से नाक से आनेवाला रक्त रुक जाता है।

८ गधे की लीद की राख को नस्य के समान प्रयोग करने से नकसीर या नाक से आने वाला रक्त रुक जाता है।

९. घोंघा, बकरी का सींग, गाय का सींग। तीनों को जला कर इन की राख की नस्य लेने से नकसीर बन्द हो जाती है।

१०. कहरवा शमई अति बारीक पीस कर अर्क बेदमुश्क में ३-४ दिन खरल करें और छाया में सुखा लें।

मात्रा--४ रत्ती से १ माशे तक।

अनुपान--बकरी के दूध से प्रयोग करावें, इससे हर प्रकार का रक्तपित्त शान्त होता है।

११. बांसा के पत्तों का रस ४ तो०, बकरी का दूध २० तो०, उत्तम शहद १ तोला मिलाकर प्रातःकाल रोगी को पिलावें, इससे बढ़ा हुआ रक्तपित्त भी शान्त होता है।

१२. बकरी के दूध में लाख का चूर्ण १ तो० मिलाकर प्रातःकाल पीने से हर प्रकार का रक्तपित्त शान्त होता है।

१३. छोटे बच्चों को एक रत्ती रसौंत प्रतिदिन सेवन कराने से उन का रक्तपित्त नष्ट हो जाता है।

१४. बालू रेत जिसमें मिट्टी ज़रा न हो—को इतना खरल करें कि अति बारीक हो जावे, इसमें समान मिश्री मिला लें।

मात्रा—३ माशे तक।

अनुपान—इसको दिन में मधु से मिलाकर या बकरी के दूध के साथ देने से रक्तपित्त हट जाता है।

१५. बड़ की कोंपल २ तो० लेकर इसको बकरी के दूध में सरदाई के समान रगड़ कर पिलाने से रक्तपित्त शान्त हो जाता है।

१६. हल्दी का चूर्ण ४ रत्ती बकरी के दूध के साथ प्रयोग करने से रक्तपित्त शान्त हो जाता है।

रक्तपित्त में पथ्य

अधोगते छर्दनमूर्ध्वनिर्गमे विरेचनं स्यादुभयत्र लंघनम्।
पुरातनः षष्टिकशालिकोद्भव प्रियंगुनीवार यवप्रसातिकाः॥
मुद्गाः मसूराश्चणकास्तुवर्यो मकुष्टकाश्चिङ्गटवर्भिमत्स्याः।
शशः कपोतो हरिणैकलावशरालिपारावतवर्तकाश्च॥
वका उभ्राश्च सकलपुच्छा कपिंजलाश्चापि कषायवर्गः।
गवामजायाश्च पयोघृतं च घृतंमहिष्याः पनसं प्रियालन्॥
रम्भाफलं कंचट तण्डुलीयं पटोल वेत्राग्र महार्द्रकानि।
पुराण कूष्माण्डफलं च पक्कं तालानि तद्बीज जलानि वासाः॥
स्वादूनि बिम्बानि च दाड़िमानि खर्जूर धात्री भिशि नारिकेलम्।

कसेरु भृंगाट परुषकराणि कपित्थ शालूक परुषकाणि ।।
भूनिम्ब शाकं पिचुमर्द पत्रं तुम्बी कलिंगानि च लाजसक्तुः ।
द्राक्षासितामाक्षिक मिक्षवश्च शीतोदकं चोदभिद वारि चापि ॥
सेकोऽवगाहः शत धौतसर्पिरभ्यंगयोगः शिशिरप्रदेहः ।
हिमानिलाश्चन्दन मिन्दुपादाः कथा विचित्राश्च मनोनुकूलाः ॥
धारा गृहं भूमि गृहं सुशीतं वैदूर्यमुक्तामणि धारणं च ।
रम्भोत्पलाम्भोरुह पत्रशय्या क्षौमाम्बरं चोपवनं सुशीतम् ॥
प्रियंगुकाचन्दन भूषिताना मालिंगनं चापि वरांगनानाम् ।
पद्माकराणां सरितां ह्रदानाम् चन्द्रोदयानां हिमिशोककराणाम् ॥
सुशीतलानां गिरिनिर्झराणां स्तुतिः प्रशस्तानि च कीर्तितानि ।
प्रणीर नीरं हिमवालुका च मित्रं नृणां शोणित पित्तरोगे ॥

अधोगत अर्थात् गुदा, लिङ्ग द्वारा जाने वाले रक्तपित्त में रोगी को वमन कराना और ऊपर के अङ्गों, मुख नासा, आंखि आदि से बहनेवाले रक्तपित्त में विरेचन कराना अर्थात् जुलाब देना और उभय अर्थात् नीचे ऊपर दोनों भागों से रक्तस्राव होता हो, तो लङ्घन कराना चाहिये यथा पुराने साठी चावल, कोदो, कङ्गनी, जौ, मसूर; चना, अरहर और मोठ इनमें कोई अन्न, तथा चिंगट और वर्मी यह दो जाति की मछली, शशक (खरगोश) कपोत (पिडुकिया) हिरण, काला हिरण, लवा; सेह; बटेर, बगुला; भेंडा, दुम्बा; सफेद तीतर में से यथारुचि अथवा यथोचित किसी एक का मांस; सब प्रकार के कसैले रस युक्त पदार्थ, गाय, तथा बकरी का दूध, और घी; भैंस का घी, कटहल; चिरौंजी; केले की गहर, ठण्डा जल; चौलाई, का शाक तथा परवल, बेंत की कोंपल, अदरक, पुराना पका हुआ पेठा, ताड़ के फल में से कोई एक शाक, अडूसा, कुन्दरु, अनार, खजूर, आंवला, नारियल, सिंघाड़ा, कसेरु, कैथ, कमलकन्द, फालसा आदि फल, चिरायता, नीम के पत्ते, तोम्बी, तरबूज, इन्द्रजों, धान की खीलों के सत्तु, दाख, मिश्री, शहद, ईख, शीतल जल अथवा झरने का शीतल जल, ठण्डे पानी से अवगाहन करना और ठण्डे पानी में तैरना; १०० बार धोये हुए मक्खन की मालिश, ठण्डी चन्दनादि चीजों का उबटना मलना, चांद की चांदनी में

बैठना व सोना, विचित्र कथा और मनोहर बातों का सुनना, फव्वारे वाले घर का वास, अथवा तहख़ाने (ज़मीन के अन्दर कुटि) में वास करना, सुन्दर मणि मोतियों का पहिनना, केले के नरम पत्ते अथवा कमल के पत्तों की शय्या बिछाकर उस पर आराम करना, श्वेत रंग के सुन्दर स्वच्छ वस्त्र धारण करना, सुखदायक सुन्दर फुलवाड़ी में बैठना, प्रियंगू चन्दनादि सुगन्धित पदार्थों से अनुलेपित स्त्री से आलिंगन करना, जिस जल में कमल खिल रहे हों, उसमें नहाना, चन्द्रमा की शीतल चांदनी, ठण्डे पर्वत का वास, सुन्दर झरने का पानी, कपूर । यह सब वस्तुएं रक्तपित्त रोगी के लिये पथ्य अर्थात् हितकारी हैं । इनमें से देश, काल, बल तथा प्रकृति के अनुकूल सेवन कराने से रोगी को कोई हानि नहीं होती, किन्तु लाभ ही होता है ।

रक्तपित्तरोग में अपथ्य

व्यायामाध्व निषेवणं रवि करस्तीक्ष्णानि कर्माणि च ।
क्षोभो वेग विधारणं चपलता हस्त्यश्व यानानि च ॥
स्वेदास्र स्रुति धूम्रपान सुरतक्रोधाः कलत्थो गुडो ।
वार्ताकं तिल माष सर्षप दधि, क्षीराणि कौपं पयः ॥
ताम्बूलं नलदम्बू मद्य लशुनं शिम्बी विरुधाशनं ।
कट्वमलं लवणं विदाहि च गणास्त्याज्योऽस्रपित्ते नृणाम् ॥

अर्थ-व्यायाम, कसरत, कुश्ती आदि करना, पैदल सफर करना, अथवा धूप में अधिक चलना फिरना, करूर कर्म करना अर्थात् रस्सा खींचना, उल्टे सीधे होना, मल मूत्रादि वेगों का रोकना, चञ्चलता व चपलता करना, हाथी और घोड़े की सवारी करना, स्वेदकर्म (पसीना निकलना), फसद खोलना अर्थात् खून निकलवाना, धूम्रपान (हुक्का पीना), स्त्री से सम्भोग करना, क्रोध करना, कुलथी गुड़, बेंगन, तिल, उड़द, सरसों, दही, पान, शराब, प्याज़, लसन, सेम की फली, विरुद्ध भोजन (प्रकृति विरुद्ध भोजन) चरपरे खट्टे, तेज, मसालेदार, दाह करने वाले सकल द्रव्य । यह सब रक्तपित्त रोगी के लिये अपथ्य अर्थात् हानिकर हैं, इसलिये इनमें से किसी को भूलकर भी सेवन नहीं कराना चाहिये ।

अम्लपित्त रोग

विरुद्धदुष्टाम्लविदाही पित्तप्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम् ।
पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः ॥

जब मनुष्य बिरुद्ध भोजन (संयोग विरुद्ध भोजन जैसे दूध और मछली), बिगड़े हुए बासी भोजन तथा अम्लरस, उष्णवीर्य, दाहकर और पित्तप्रकोपी भोजन करता है उससे पित्तअम्लपाक हो जाता है। यह पित्त गरम, खुश्क तथा पित्तकारक औषधियों या अन्य द्रव्यों से कुपित हो जाता है और अम्लपित्त रोग को पैदा कर देता है । इस रोग के कारणों में उड़द आदि गरिष्ठ, विदाही भोजन तथा मदिरा आदि तीक्ष्ण पदार्थ प्रधान समझने चाहियें ।

अम्लपित्त के भेद

अम्लपित्तं द्विधा प्रोक्तमधोगं च तथोर्ध्वगम् ।
वान्तं हरितपीतमनीलकृष्णमारक्तरक्ताममतीव चाच्छम् ॥
तृड्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारी मदात्ययो वा विविधप्रकारम् ।

मार्गभेद से अम्लपित्त २ प्रकार का माना जाता है—

१. ऊर्ध्वग अम्लपित्त में हरे, पीले, कुछ लाल, काले रंग के, पिच्छिल, चिकने तथा तीक्ष्ण, कटुरस और कफ से मिले हुए पित्त की वमन हो तो इसको प्रायः ऊर्ध्व अम्लपित्त (ऊपर की ओर गतिवाला) कहा जाता है ।

२ अधोग अम्लपित्त में दुष्ट पित्त गुदा के रास्ते से निकलता है, शरीर में रहने पर यही पित्त तृषा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, मन्दाग्नि, रोमांच, होना तथा शरीर का पीलापन इत्यादि लक्षण पैदा करता है । इसको अधोग अम्लपित्त (नीचे की ओर गतिवाला) कहते हैं ।

अम्लपित्त के लक्षण

अविपाकः क्लमोत्क्लेशस्तिक्ताम्लोद्गार गौरवैः ।
हृत्कण्ठदाहरुचिभिरम्लपित्तं वदेत् भिषक् ॥

भुक्ते विदग्धेऽप्यथवाप्य भुक्ते करोति तिक्ताम्लवमिं कदाचित्।
जनपति कण्डूमण्डल पिड़िकाशत निचित रोगचयम् ॥

अम्ल का न पचना, भोजन की अनिच्छा, सदा वमन की इच्छा बनी रहनी, शरीर में भारीपन, खट्टी डकारों का आना, अरुचि तथा हृदय और गले में दाह आदि लक्षण अम्लपित्त में होते हैं।

इस रोग में किये हुए भोजन का भली प्रकार पाक न होकर विदाह होता है और कभी २ विना भोजन किये ही कड़वी और खट्टी डकारें आती हैं और इसी प्रकार के पित्त की वमन होती है। इन लक्षणों के सिवाय शिर में दर्द, हाथ पैर में दाह, अरुचि तथा हलका २ ज्वर इत्यादि भी लक्षण होने लगते हैं, ध्यान रहे यदि अम्लपित्त रोग के प्रारम्भ में ध्यान पूर्वक चिकित्सा न की जावे, तो अधिक भयङ्कर लक्षण भी हो सकते हैं।

अम्लपित्त में दोष

कम्प प्रलापमूर्छाश्चिमिचिमि गात्रावसाद शूलानि।
तमसो दर्शनविभ्रमप्रमोह हर्षास्तथानिलेन ॥
कफनिष्ठीवन गौरव जड़तारुचि शीतसादवमिलेषाः ॥
दहनबलहानि कण्डूनिद्रा चिन्हं कफानुगे भवति ॥

अम्लपित्त में पित्त के साथ वात या कफ दोनों में से कोई दोष प्रधान होता है और उस अवस्था में दोष के अनुसार लक्षण भी भिन्न २ होते हैं—

कम्प, मूर्च्छा, बकवास, सारे शरीर में झनझनाहट, वमन, शूल, अन्धेरा नजर आना तथा मरह आदि होने पर वातज अम्लपित्त जानना चाहिये।

थूक में कफ आना, शरीर भारी होना, अरुचि, सर्दी लगना, वमन, में चिपचिपा लेसदार कफ आना, मन्दाग्नि, कण्डू तथा निद्रा आदि लक्षण होने पर कफज अम्लपित्त समझना चाहिये।

साध्यासाध्य

रोगोऽयमम्लपित्ताख्यो यत्नात् संसाध्यते नवः।
चिरोत्थितो भवेद्याप्यः कृच्छ्रसाध्यः स कस्यचित् ॥

यदि अम्लपित्त रोग के प्रारम्भ होते ही ध्यान पूर्वक चिकित्सा की जावे, तो यह रोग साध्य है, यदि रोग कुछ पुराना हो जावे, तो उसको याप्य समझना चाहिये तथा जो रोगी भोजन, आहार, विहार आदि में रोग के विरुद्ध आचरण करता हो, उसका रोग कष्टसाध्य है।

कफपित्त के लक्षण

तमोमुर्छारुचिश्छर्दिरालस्यं च शिरोरुजा ।
प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् ॥

आंखों के सामने अन्धकार नज़र आना, वमन, आलस्य, सिर में दर्द, मुख से लार गिरना, मुख मीठा रहना तथा अरुचि आदि कफपित्त के लक्षण समझने चाहियें।

अम्लपित्त की चिकित्सा

कहा जा चुका है कि ऊर्ध्वग और अधोग भेद से अम्लपित्त रोग के दो भेद हैं; इनमें ऊर्ध्वग अम्लपित्त की चिकित्सा में पटोल, नीम, वांसा, तथा मदनफल के काढ़े से प्रथम वमन करा देना आवश्यक है और अधोग अम्लपित्त की चिकित्सा में पहिले विरेचन देकर अन्य चिकित्सा करनी चाहिये। चिकित्सा में सहायता के लिये नीचे कुछ योग लिखे जाते हैं—

अविपत्तिकर चूर्ण

त्रिफला, त्रिकुटा, नागरमोथा, वायविडंग, विड लवण, छोटी-इलायची के दाने, तेजपत्र—प्रत्येक औषधि समान भाग लें और प्रत्येक एक २ तो०हो, लौंग १६ तो., श्वेत त्रिवृत ४४ तो०, मिश्री ६६ तो०। सब को बारीक पीसकर चूर्ण बना लें।

मात्रा—१ माशे से ४ माशे तक।

अनुपान—इस चूर्ण को ताजे जल के साथ भोजन के २ घण्टे पश्चात् अथवा भोजन के साथ सेवन करने से अम्लपित्त शान्त हो जाता है।

रसायन योग

त्रिफला, त्रिकटु, वायविडंग, चित्रकमूल छाल, नागरमोथा—प्रत्येक ४ तो०, घृत दुग्ध से गन्धक शुद्ध २ तो०, पारा शोधित १ तो०। प्रथम

पारे गन्धक की कज्जली करें और शेष औषधियों का चूर्ण कर इसमें मिला लें

मात्रा--१ माशा से ४ माशे तक।

अनुपान—यह रसायन योग शहद या घी में मिलाकर प्रयोग करानी चाहिये, यदि रोगी को ३ माशे औषधि देनी हो, तो इसमें ३ मा० ही घी मिलावें और ६ मा० शहद मिला दें। इस औषधि के बाद गाय या बकरी का कोसा दूध पिलाना चाहिये। अम्लपित्त के लिये यह औषधि अति उत्तम है, हमारी सैकड़ों बार की अनुभूत है।

रसामृतचूर्ण

त्रिफला, त्रिकटु, वायविडंग, नागरमोथा, तेजपत्र-प्रत्येक ४ तो०, गन्धक शुद्ध २ तो०, पारा शुद्ध १ तो०। पारे गन्धक की कज्जली कर इसमें शेष औषधियों को बारीक चूर्ण करके मिला दें।

मात्रा—१॥ माशे से ३ माशे तक।

अनुपान—इसे घी, शहद या गाय के दूध के साथ प्रातः सायं प्रयोग करावें। यह योग अम्लपित्त के लिये अति श्रेष्ठ औषधि है, हमारी अनेक बार की अनुभूत है।

ध्यान रहे कि जहां भी औषधि घी तथा मधु में मिलाकर देने का विधान है, वहां घी तथा मधु की मात्रा समान नहीं होनी चाहिये; शहद की मात्रा सदा घी की अपेक्षा दोगुनी होनी चाहिये।

नारिकेल खण्ड

नारियल की गिरी १६ तो० लेकर नारियल के रस अथवा गाय के दूध में पकावें, जब पकते २ गाढ़ा हो जावे, तो इसमें धनियां, पीपल, नागरमोथा, दालचीनी, इलायची, नागकेसर, तेजपत्र प्रत्येक औषधि का चूर्ण ४-४ माशा मिलावें। यह औषधियां ठण्डा होने पर ही पिलानी चाहियें।

मात्रा—१ तो० से २ तो० तक।

अनुपान--यह पाक दोनों समय बकरी के दूध के साथ प्रयोग कराने से अम्लपित्त, अजीर्ण, खांसी, श्वास आदि रोग नष्ट होते हैं।

शुण्ठीखण्ड

सोंठ का चूर्ण २० तो०, खाण्ड १ सेर, घी आध सेर, गाय का दूध ४ सेर। सब द्रव्य मिलाकर लोहे की कड़ाही में हल्की २ आग पर चढ़ा दें, जब पानी उड़ जावे और यह गाढ़ा हो जावे, तो धनियां, आंवला, नागरमोथा, जीरा श्वेत, हरड़ का छिलका—प्रत्येक का चूर्ण ६ माशा, मरिच-चूर्ण ४॥ मा०, नागकेसर ४॥ मा० । इन सब औषधियों का चूर्ण मिला दें । ठण्डी हो जाने पर इसमें ८ तो० मधु मिलावें ।

मात्रा—६ माशे से १ तो० तक ।

अनुपान—इस शुण्ठीखण्ड को बकरी के दूध के साथ प्रयोग कराने से अम्लपित्त रोग नष्ट हो जाता है ।

सितामण्डूर

मण्डूर भस्म ४ तो०, मिश्री २० तो०, पुराना घी ३२ तोले (घी कम से कम १ वर्ष का पुराना होना चाहिये), गाय का दूध ६४ तो० । इन द्रव्यों को लोहे की कड़ाही में डाल हल्की अग्नि पर चढ़ा दें, जब गाढ़ा हो जावे, उस समय त्रिकटु, मुलहठी, जवासा, वायविडङ्ग, त्रिफला, मीठा कुष्ठ, इलायची के दाने, लौंग—प्रत्येक २ तोले मिलाकर आग पर से उतार लेवें और ठण्डा होने पर ८ तो० शहद मिलावें ।

मात्रा—३ मा० से ६ माशे तक ।

अनुपान—सितामण्डूर दोनों समय गाय के दूध के साथ प्रयोग कराने से अम्लपित्त रोग शान्त हो जाता है ।

सूचना—मण्डूर भस्म त्रिफला योग द्वारा बनी होनी चाहिये ।

क्षुधावती गुटिका

पारा शुद्ध, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, लोहभस्म, त्रिकटु, त्रिफला, अजवायन, सौंफ, चव्य, (न मिले तो पीपलामूल), ज़ीरा श्वेत, काला जीरा प्रत्येक १ तो०, पुनर्नवा, मानकन्द, पीपलामूल, इन्द्रजौ, जलभांगरा, सुदर्शन बूटी, कमलफूल, त्रिवृत् श्वेत, सूर्यमुखी का मूल, चन्दन लाल, अपामार्गमूल, ब्राह्मी बूटी—प्रत्येक ४ तो० । पारे गन्धक की कज्जली करके शेष औषधियों का चूर्ण इसमें मिला कर ३ दिन तक अदरक के रस में खरल कर जङ्गली बेर के समान गोली बना लेवें ।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक।

अनुपान—ताज़े पानी के साथ दोनों समय प्रयोग करने से अम्ल-पित्तरोग में अति लाभ होता है।

सूचना—इस योग में अभ्रकभस्म किराताादिगण द्वारा बनी हुई और लोहभस्म मुस्तादि गण द्वारा बनी हुई डालनी चाहिये।

अम्लपित्तान्तक लोह

रस सिन्दूर, ताम्रभस्म, लोहभस्म—प्रत्येक ६ तो०, हरीतकी चूर्ण १८ तो०। सब औषधियों को मिलाकर सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—४ रत्ती से १ मा० तक।

अनुपान—इस रस को शहद में मिला कर चटाने से अम्लपित्त रोग नष्ट होता है।

सूचना—इसमें ताम्रभस्म वांसा रस से भावित और लोहभस्म मुस्तादि गण द्वारा भावित होनी चाहिये।

पानीयभक्त वटी

त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोथा, तृवृत, चित्रकमूलछाल—प्रत्येक १तो० वायविडङ्ग २ तो०; पारा शुद्ध, शुद्ध गन्धक प्रत्येक ३ माशा, लोहभस्म, २ तो०, कृष्णाभ्रक भस्म २ तो०। पारे गन्धक की कज्जली करके शेष औषधियों का चूर्ण मिलावें और ३ दिन तक निरन्तर त्रिफला कषाय में खरल करके २ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—१ गोली।

अनुपान—प्रातः सायं कांजी के साथ प्रयोग करें, यह अम्लपित्त रोग की अति उत्तम और हमारी अनुभूत औषधि है।

सूचना—इसमें लोहभस्म मुस्तादि गण द्वारा बनी हुई और अभ्रक-भस्में किरातादि गण द्वारा बनी हुई होनी चाहियें।

लीलाविलास रस

शुद्ध पारा, गन्धक शुद्ध, ताम्रभस्म, लोहभस्म, प्रत्येक ६ माशे, प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली करके शेष औषधियां मिलाकर आमले और वांसे के रस में ३-३ दिन खरल करके २-२ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक।

अनुपान--बकरी के दूध, आमलास्वरस आदि में से किसी के साथ प्रयोग कराने से अम्लपित्त रोग शान्त होता है।

सूचना--इसमें पड़ने वाली भस्में उपरोक्त प्रकार से बनी हुई होनी चाहियें ।

पंचानन गुटिका

शुद्ध पारा, गन्धक शुद्ध प्रत्येक ४ तो० । दोनों की कज्जली करके थोड़ा पानी मिलाकर लेई सी बना लें और ८ सेर शुद्ध ताम्बे के पत्रों पर लेप करें। एक मिट्टी के शकोरे में नमक भर कर ऊपर यह पत्रे रख दें और नमक भरकर शकोरे का मुख बन्द करके कपड़मिट्टी कर गजपुट की आग दे दें, इसी प्रकार ८ आग दें। प्रत्येक बारी में पारे गन्धक की कज्जली और नमक नवीन इसी मात्रा में डालें। आठ आग देने के बाद इस ताम्र-भस्म में शुद्ध पारा, गन्धक शुद्ध, लोहभस्म, कृष्णाभ्रकभस्म प्रत्येक ८ तो० अजवायन, सौंफ, त्रिकटु, त्रिवृत श्वेत, चव्य, जयपालवीज, अपामार्गमूल, ज़ीरा श्वेत, कृष्ण ज़ीरा प्रत्येक ८ तो०; हारसिंगार के बीज, मानकन्द; पिप्पलामूल, चित्रकमूलछाल प्रत्येक ८ तो० । पारे गन्धक की कज्जली करके अन्य द्रव्यों को अति सूक्ष्म चूर्ण करके मिलावें और अदरक के रस में ४ दिन खरल करके ३ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक।

अनुपान--इस रस को ताज़े पानी के साथ कुछ दिन प्रयोग करने से अम्लपित्त अजीर्ण आदि रोग शान्त होते हैं । हमारा शतशः अनुभूत है ।

सूचना--इसमें पड़नेवाली अभ्रक लोहादि भस्में उपरोक्त विधि से बनी हुई होनी चाहियें।

अम्लपित्त के लिये अन्य योग

१. गिलोय हरी; नीम के पत्ते, पटोलपत्र प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर इसका चूर्ण तय्यार कर लें और मधु मिला लें।

मात्रा—६ माशा से १ तो० तक।

अनुपान—इसको खिलाकर ऊपर से ताज़ा पानी पिलावें।

यह अम्लपित्त की श्रेष्ठ औषधि है और हमारी अनुभूत है।

२. आंवलों की भाजी बनाकर खाने से सब प्रकार का अम्लपित्त शान्त होता है।

३. हरी गिलोय, मुलहठी; दारुहल्दी, खिरनी बीज प्रत्येक ५ तो० इनको १॥ पाव पानी रहने पर उतार कर ठण्डा कर लें।

मात्रा—१ तोला।

अनुपान—इसमें शहद मिला कर रोगी को पिलावें इसके प्रयोग से अम्लपित्त नष्ट होता है॥

४. गिलोय, नीमछाल, भोजपत्र, त्रिफला प्रत्येक ६ माशा। इनको कषाय की विधि से पाक करें और शीतल होने पर मधु मिलाकर रोगी को पिलावें; इससे अत्यन्त बढ़ा हुआ भी अम्लपित्त, अजीर्ण, खट्टे डकार आदि शान्त होते हैं।

५. वासापत्र, छोटी कण्टकारी के फल, हरी गिलोय प्रत्येक २ तो०, को विधि पूर्वक कषाय बनाकर ठण्डा होने पर मधु मिलाकर रोगी को पिलावें इससे अम्लपित्त रोग नष्ट होता है।

६. सूखा धनियां १ तो०; सोंठ १ तो०। दोनों को यथाविधि कषाय बना ठण्डा होने पर शहद मिलाकर रोगी को कुछ दिन प्रयोग कराने से अम्लपित्त रोग शान्त हो जाता है।

७. किशमिश, धनियां, जवासा, काली हरड़, का छिलका, मिश्री सम भाग लेकर इनका चूर्ण बना दोगुना शहद मिलाकर अवलेह बनालें, इस अवलेह को ६ मासा से १ तोला तक प्रतिदिन जल के साथ प्रयोग कराने से हर प्रकार का अम्लपित्त रोग नष्ट हो जाता है। यह उत्तम योग है।

श्लेष्मपित्त की चिकित्सा

१. काकड़ासिंगी, ६ माशा, पटोलपत्र ६ माशा, दोनों को एक पाव पानी में पकावे और एक छटांक पानी रहने पर छान कर ठण्डा कर लें, इस के प्रयोग से कफपित्त नष्ट हो जाता है और हमारा अनुभूत है ।

२. हरड़ का छिलका, द्राक्षा, धनियां, खण्ड, जवासा, इन का चूर्ण बना कर थोड़े गर्म पानी के साथ कुछ दिन प्रयोग कराने से कफपित्त शान्त हो जाता है ।

३. मरिच ६ माशा, हरड का छिलका ६ माशा, खाण्ड ६ माशे, प्रथम पहिली दो चीजें का चूर्ण बना कर खाण्ड मिलावें इस चूर्ण को जल के साथ एक सप्ताह सेवन करने से श्लेष्मपित्त नष्ट हो होता है ।

४. पटोलपत्र, इन्द्रजौ, धनियां, सूखे आंवले, पीपल प्रत्येक ६ माशे लेकर यथाविधि क्वाथ बना कर पिलाने से कफपित्त नष्ट होता है ।

५. सोंठ, पटोलपत्र दोनों २ तोला ले विधि अनुसार क्वाथ बना कर पिलाने से कफपित्त शान्त हो जाता है ।

अम्लपित्त रोग में पथ्य

ऊर्ध्वगे वमनं पूर्वमधोगे तु विरेचनम् ।
द्वयोरन्नाशनं पश्चान्निरूहश्चापि शालयः ॥
यवगोधूममुद्गाश्च पुराणाः जांगला रसाः ।
जलानि तप्तशीतानि शर्करा मधुसक्तुवः ॥
कर्कोटकं कारवेलं पटोलं च हिमोचिका ।
वेत्राग्रं वृद्ध कूष्माण्डं रम्भापुष्पं च वास्तुकम् ॥
कपित्थं दाड़िमं धात्री तिक्तानि सकलान्यपि ॥
पानन्नानि समस्तानि कफपित्तहराणि च ।
अम्लपित्तामये नित्यं सेवितव्यानि मानवैः ॥

अर्थ—ऊर्ध्वगामी अर्थात् ऊपर के मार्ग से गमन करने वाले अम्ल-पित्त रोग में चिकित्सक को चाहिये कि सर्व प्रथम रोगी को वमन करावे, अधोगत अम्लपित्त रोग में विरेचन अर्थात् दस्त, करावे, और उभयगामी

अर्थात् दोनों मार्गों द्वारा गमन करने वाले अम्लपित्त रोग में प्रथम दोष शमन कारक भोजन करा के पश्चात् निरूहण वस्ति कर्म कराना चाहिये, शालि चावल, जौ, गेहूं, मूंग आदि अन्न जो रोगी को खाने को देने हों, वह पुराने होने चाहियें। मांसाहारी रोगियों को बटेर, तित्तरादि जङ्गली जीवों का मांस रस देना चाहिये, पीने के लिये औटाया हुआ ठण्डा करके जल देना चाहिये, खांड, मधु, जौ के सत्तू, ककौड़ा, करेला, परवल, बेंत की कोंपल, पुराना पेठा, केले का फूल, बथुआ—इनमें से यथोचित तथा यथारुचि शाक दे सकते हैं। कैथ, अनार तथा आंवला सम्पूर्ण कफ-पित्त नाशक कड़वे रस और अन्न। वह सब अम्लपित्त रोग में पथ्य अर्थात् हितकारी हैं, देश, काल, बल तथा दोष का विचार करके इनहीं में से उचित वस्तुएं देना चाहियें।

अम्लपित्त रोग में अपथ्य

नवान्नानि विरुद्धानि पित्तकोपिकराणि च।
वेगरोधं तिलान्माषान् कुलत्थास्तैल भक्षणं॥
अजादुग्धं च धान्याम्लं लवणाम्ल कटुनि च॥
गुर्वन्नं दधि मद्यं च वर्जयेदम्ल पित्तवान्॥

अर्थ—नवीन अनाज, स्वभाव से विपरीत अन्न तथा पित्त को कुपित करने वाला अन्न, मल, मूत्रादि वेगों को रोकना, तिल, उड़द, कुलथी, तेल या और तेल के बने हुए पदार्थों का सेवन, बकरी भेड़ का दूध, धान्य की बनी हुई कांजी, तीव्र खट्टी चीज़ें, अधिक लवण या जिनमें अधिक लवण पड़ा हो, ऐसे पदार्थ, लाल मरिच आदि तीखे पदार्थ, भारी अन्न अर्थात् मिठाई आदि, दही, शराब—यह सब अम्लपित्त रोगी के लिये अपथ्य अर्थात् हानिकर हैं, इसलिये चिकित्सक को चाहिये, कि यह सब वस्तुएं अम्लपित्ती को वर्जित कर दे।

राजयक्ष्मा रोग

निदान

वेगरोधात्क्षयाच्चैव साहसात् विषमाशनात् ।
त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुश्चतुष्टयम् ॥

अर्थात् मल, मूत्र आदि वेगों के रोकने से, क्षय अथवा "क्षीयन्ते धातवः तथा शुष्यति मानवः" साहस अर्थात् अपनी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति से अधिक कार्य करने, भार उठाने तथा अपने से बलवान् पुरुष के साथ युद्ध आदि करने से, विषम आसन पर बैठने तथा विषम भोजन आदि करने से पुरुष के तीनों दोष कुपित होकर यक्ष्मा अथवा क्षय रोग को उत्पन्न करते हैं।

सम्प्राप्ति

कफ प्रधानैर्दोषस्तु रुद्धेषु रसवर्त्मसु ।
अतिव्यवायिनो वापि क्षीणे रेतस्यनन्तरा: ॥

आचार्यों ने यक्ष्मा की सम्प्राप्ति के विषय में कफ को प्रधान दोष माना है और कफ विकृत होने पर वायु, पित्त दोनों ही इसके अनुगामी बन कर रस वाहिनी नाड़ियों को रुद्ध कर देते हैं, उस दशा में जब कि रस—जिस से शरीर का पालन होता था—रुक जाता है, तो शेष धातुओं की उत्पत्ति ही बन्द हो जाती है या इतनी न्यून उत्पन्न होती है कि शरीर के पोषण के लिये पर्याप्त नहीं होती, अतः मनुष्य दिन प्रति दिन क्षीण होता जाता है। इसके अतिरिक्त शास्त्रकारों ने क्षय की सम्प्राप्ति के विषय में जो दूसरा कारण कहा है, वह स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। आज कलियुग में जब कि मनुष्य गृहस्थ के सम्बन्ध में किंचित् भी ज्ञान नहीं रखता, वह अति व्यवाय अर्थात् मैथुन आदि में लगकर अपना वीर्य क्षय कर देता है। यह बड़ा कारण न केवल भारत में अपितु सारे संसार में आज व्यापक है और इसीलिये इस काल में क्षयरोग अपने भयङ्कर रूप में दिखाई दे रहा है। यद्यपि संसारमात्र के विज्ञानवेत्ता विशेषतः आयुर्वेद से सम्बन्ध रखने वाले

इनके कारण तथा चिकित्सा के लिये भरसक यत्न कर रहे हैं तथापि यह असली कारण के न जानने से सफलता को प्राप्त नहीं होते। प्राचीन ऋषियों ने समस्त रोगों के नाश के लिये एकही साधन बताया है, यदि उसका पालन किया जावे, तो न केवल यक्ष्मा अपितु कोई भी रोग नहीं रह सकता, वह बतलाते हैं—

संक्षेपतः क्रियायोगो निदान परिवर्जनम् ॥

अर्थात् किसी भी रोग की चिकित्सा के लिये निदान का परिवर्जन एक ही उत्तम औषधि है और जब तक लोग इस ऋषि वाक्य पर ध्यान न देंगे, तब तक रोगों से मुक्त होना कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव है।

क्षय का पूर्व रूप

श्वासाङ्गसादकफसंस्रवतालुशोषवम्याग्निसादमदपीनसकासनिद्राः;
शोषे भविष्यन्ति भवन्ति स चापि जन्तोः,
शुक्लेक्षणो भवति मांसपरो रिरंसुः।

श्वास, अङ्गों का टूटना, परिश्रम, मुख तथा नासिका द्वारा श्लेष्मा निकलते रहना, गला सूखना, मन्दाग्नि, प्रतिश्याय, कास, निद्रा की अधिकता, विषय वासना अर्थात् मैथुन की अधिक इच्छा, मांस भोजन की इच्छा, नेत्रों का वर्ण श्वेत होना, स्वप्न में अपने को गीध, बन्दर, कौवा, तोता आदि पक्षियों पर सवार देखना अथवा अग्नि, आंधी, धूम्र से जले हुए वृक्षों को देखना आदि क्षय के पूर्वरूप समझने चाहियें।

क्षय के लक्षण

प्रारम्भावस्था—जब मनुष्य को यक्ष्मा अभी प्रारम्भ ही होता है, तो उसको साधारणतः भाषा में "पहिले दर्जे" के नाम से पुकारा जाता है और उस समय "अंसपार्श्वाभितापश्च सन्तापः कर पादयोः" अर्थात् हाथ, पैर में जलन, कन्धों और पसलियों में पीड़ा, ज्वर का निरन्तर विद्यमान रहना इत्यादि लक्षण होते हैं।

द्वितीयावस्था—अरुचि, ज्वर का हर समय बने रहना,

कास, कफ के साथ रक्त का आना, स्वरभेद, श्वास इत्यादि छः लक्षण होते हैं।

साध्यासाध्य विचार

दीर्घदर्शी ऋषियों ने चिकित्सक की सुविधा के लिये कुछ ऐसे लक्षण वर्णन किये हैं, जिनको यहां देना आवश्यक है।

यदि चिकित्सक क्षयरोगी की चिकित्सा करने से पूर्व इन पर विचार करे, तो जहां वह रोगी के लिये उपयोगी हो सकता है, वहां अपनी प्रसिद्धि तथा यश भी प्राप्त कर सकता है।

साध्य रोगी

ज्वरानुबन्ध रहितं बलवन्तं क्रियासहम्।
उपक्रमेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नरम्॥

जिस रोगी को ज्वर हर समय निरन्तर न रहता हो, रोगी बलवान हो, शोधन-शमन आदि क्रियाओं को सह सकता हो, जिसकी जठराग्नि तीव्र हो, रोगी कृश न हो, उस रोगी को साध्य समझना चाहिये और उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

असाध्य लक्षण

जिस रोगी को ज्वर निरन्तर रहता हो। श्वास, कास, कन्धों और पसलियों में दर्द, दाह, स्वरभङ्ग, अरुचि आदि लक्षणों के अतिरिक्त शोष हो अर्थात् शरीर का मांस सूख गया हो, उस रोगी को असाध्य समझकर चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि ऐसे रोगी की चिकित्सा से चिकित्सक को यश प्राप्ति की कभी सम्भावना नहीं होती।

चिकित्सक के लिये उपयोगी बातें

यद्यपि यक्ष्मारोग भयङ्कर व्याधि है और शास्त्रकारों ने यह कहा है, कि रोगी का जीवन अवधि एक हज़ार दिन तक है तथापि यदि वैद्य इस व्याधि की चिकित्सा करते समय इन बातों का ध्यान रक्खे, तो यक्ष्मा जैसे रोग को निर्मूल करने में सफल हो सकता है। प्रायः चिकित्सक लोग

इस व्याधि के शमनार्थ ज्वर तथा कास के लिये बड़े २ रस रसायन आदि प्रयोग करते हैं और वह सफल नहीं होते, इसका कारण यह है कि वह रोग के प्रधान कारण को भूल जाते हैं। पहिले कहा जा चुका है कि यह रोग दोषों के दूषित होने पर रसादि धातुओं के क्षय होने के कारण होता है, और जब तक धातुओं की पूर्ति का यत्न न किया जावे, उस समय तक चिकित्सा में सफलता नहीं हो सकती। पाठकों के लाभार्थ यहां धातुक्षय के लक्षण वर्णन करने आवश्यक हैं—

रसक्षय के लक्षण

रूक्षता, मन्दाग्नि, क्षुधानाश, शरीर में झनझनाहट, शिरःशूल, हृत्पीड़ा, उदासीनता, शिरोभ्रम आदि लक्षण रस धातु के क्षय होने से प्रकट होते हैं जिस रोगी में रस क्षय के लक्षण पाये जावें, उसके लिये निम्न उपाय करना आवश्यक है—

जङ्गली जानवरों के मांस का रस, गिलोय या गुडूचीसत्व, वंश-लोचन, छोटी इलायची, पिप्पली, सौंफ, अदरक आदि पदार्थों का प्रयोग कराना चाहिये।

१. गुडूचीसत्व १मा०, अदरक रस ३मा०, मिश्री या शहद ३ मा०, मिला कर दिन में २-३ बार सेवन कराने से रसक्षय की पूर्ति होती है।

२. गाय अथवा बकरी का दूध १ सेर, काली मरिच १००, पिप्पली २ नग। इनको ३—४ उबाले देकर छान लें और २ तो० घृत मिलाकर इस में से आवश्यकता के अनुसार मिश्री मिला कर रोगी को थोड़ा २ पिलावें; इस से रसक्षय नष्ट होता है।

३. हरी गिलोय २ तो०, पिप्पली २ नग को यवकुट कर आध सेर पानी में पकावें, चतुर्थांश शेष रहने पर २ तो० मिश्री मिला दिन में २—३ बार पिलाने से रसक्षय की पूर्ति होती है।

४. हरी गिलोय १ तो०, देसी अजवाइन ४ माशा, पिप्पली छोटी २ से ४ नग, इनको एक मट्टी के सिकोरे में १॥ पाव पानी डालकर भिगो दें, सारा दिन धूप में पड़ा रहे और रात्री को चन्द्रमा की चान्दनी में, प्रातः सरदाई की तरह घोट कर इसमें १ माशा काला नमक मिला कर छान कर रोगी को पिला दें; इससे रसक्षय की पूर्ति होकर ज्वरादि शान्त हो जाते हैं।

रक्तक्षय के लक्षण

शरीर का वर्ण फीका या पीला होना, किसी भी कार्य में अनिच्छा, श्वास, मुख से लाल स्राव, मन्दाग्नि और शरीर में कृशता आदि लक्षण होते हैं।

रक्तक्षय की चिकित्सा

१. गौ या बकरी का दूध १ पाव, घी १ तो० दोनों को खूब गरम कर इसमें ६ माशे मधु और १ तो० मिश्री तथा २० दाने मरिच मिला दें और सब को एकत्र गरम कर रोगी को दिन में २–३ बार पिलावें। इस से रक्तक्षय का नाश होता है।

मांसक्षय के लक्षण

रोगी का मांस क्षय होने पर रोगी का शरीर सहसा सूख जाता, हर काम में अनिच्छा रहती, निद्रा सर्वथा नहीं आती और किसी २ रोगी को मांसक्षय की अवस्था में इतनी नींद आती है, कि वह हर समय सोया ही रहता है और स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है।

मांसक्षय की पूर्ति के उपाय

चरक आदि प्राचीन शास्त्रकारों ने मांसक्षय की पूर्ति का एक ही उपाय कहा है कि रोगी को नाना प्रकार के मांसरस सेवन करावें। हमारा अनुभव है कि इस अवस्था में बकरे के मांस का रस सेवन कराने से मांसक्षय की शीघ्र पूर्ति हो सकती है; इस रोगी को सदा प्रसन्न रहना चाहिये।

मेद के क्षय होने के लक्षण

शरीर में थकावट, दिल में घबराहट, उदासीनता, अङ्गों का टूटना, श्वास, कास, अरुचि, तथा कृशता आदि लक्षण होते हैं।

मेदक्षय की चिकित्सा

शूकर आदि पशुओं का मांस, बकरी का दूध, सुरा तथा उत्तम भोजन और हर समय रोगी को प्रसन्न रखना मेदोपूर्ति के उपाय हैं।

अस्थिक्षय के लक्षण तथा चिकित्सा

अस्थिक्षय का अभिप्राय यह है कि अस्थियों का पोषक पदार्थ क्षीण होना आरम्भ हो जाता है, जिससे अस्थि सूखने लगती, शरीर कांपने लगता, मन उदास रहता, किसी कार्य में भी इच्छा नहीं होती, वीर्य न्यून हो जाता, मोटे से मोटा शरीर भी सूख कर कांटा हो जाता या शरीर पर शोथ होने लगता, त्वचा रूक्ष और खुर्दरी होने लगती और रोगी क्षीण हो जाता है।

अस्थिक्षय की पूर्ति के लिये घी, दूध, मांसरस तथा हर प्रकार के मधुर पदार्थों का सेवन कराना आवश्यक हैं।

शुक्रक्षय लक्षण तथा चिकित्सा

श्रम, उदासीनता, शोक, धैर्य का नाश, निराशा, हाथ पैर तथा मुख पर शोथ, अनिद्रा, दाह, मन में घबराहट, शरीर में कम्प, क्रोध, स्त्रीसङ्ग में अनिच्छा तथा त्वचा रूक्ष हो जाती है। इसकी चिकित्सा के लिये निम्न प्रयोग करें—

१. एक सेर गोदुग्ध में १ तो० शतावर तथा असगन्ध मिलाकर उबालें और मिश्री मिला कर रोगी को दिन में कई बार पिलावें।

२. किसी पशु बकरे आदि का वीर्य अथवा कुक्कुटाण्ड दूध में मिला कर दें।

३. शतावर, अतिबला (कङ्घी), असगन्ध समभाग लेकर चूर्ण बना लें और सब के समान मिश्री मिला लेवें।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक।

अनुपान—दिन में २-३ बार दूध के साथ दें।

क्षयरोग की चिकित्सा

प्राचीन चिकित्सा विषयक अनेक पुस्तकें विद्यमान हैं, किंतु चिकित्सा के सम्बन्ध में जो गौरव चरक को प्राप्त है, वह किसी अन्य को नहीं, जैसा कहा है—

निदाने माधव श्रेष्ठः सूत्रस्थाने तु वाग्भटः।
शारीरे सुश्रुतः प्रोक्तः चरकस्तु चिकित्सिते॥

प्राचीन ग्रन्थकारों ने भी चरक को चिकित्सा के लिये सर्व श्रेष्ठ

माना है और हमारा अनुभव है कि यदि यक्ष्मारोगी की चरकोक्त चिकित्सा की जावे, तो रोगी को यथोचित लाभ हो सकता है ।

चरक का चिकित्साप्रकार

पाठक यह जान कर आश्चर्यान्वित होंगे, कि आज जिस हाइड्रोपेथी (जल चिकित्सा) को जर्मनी के " लूई कोनी साहिब " ने अपना नवीन आविष्कार बताया है, वह चरक में सहस्रों वर्ष पूर्व विस्तार से वर्णन किया जा चुका है, जैसे चरक चिकित्सा स्थान में ऋषि राजयक्ष्मा की चिकित्सा आरम्भ ही इस प्रकार करते हैं जिस को लूई कोनी साहिब अपना आविष्कार बताते हैं, देखिये—

स्नेहाभ्यङ्ग धूम्रलेपनानि च, परिषेकावगाहांश्च ॥

अर्थात् यक्ष्मारोगी को चिकित्सा स्वेद, अभ्यङ्ग, धूम्र, लेप, परिषेक तथा अवगाहन आदि कर्मों से ही आरम्भ करनी चाहिये, और देखिये चरक ने इस विषय को कितना स्पष्ट किया है—

स्नेहे क्षीरेऽम्बुकोष्ठे तं स्वभ्यक्तमवगाहयेत् ।
स्रोत विवन्ध मोक्षार्थं वलपुष्ट्यर्थं मेववा ॥
उत्तीर्णं मिश्रकैः स्नेहैः पुनरुक्तैः सुखै करैः ।

अर्थात् यक्ष्मारोगी का स्नेह, (चिकनाई, घृत, तैल, चर्बी आदि) दूध अथवा जल की कोष्ठी (टब या चबच्चा) में बिठला कर भली प्रकार अवगाहन अर्थात् मल मल कर स्नान करावे, इससे रोगी के दोषों से रुके हुए स्रोत खुलकर उसको बल तथा पुष्टि प्राप्त होगी । आगे चलकर " चरक ऋषि " बतलाते हैं कि अवगाहन से निपट कर रोगी सुख से बैठ कर निम्नौषधियों का उबटना करे—

जीवन्ती, शतावरी, मजीठ, पुनर्नवा, असगन्ध, अपामार्ग, अरनी, खिरैंटी, भूमि कूष्माण्ड (विदारी कन्द), सफेद सरसों, कूठ, चावल, अलसी, उड़द, तिल, सुरावीज । इन सब को बारीक चूर्ण करके, इससे तिगुना जव का आटा, दही तथा शहद मिलाकर उबटना मलें । यह उत्सादन (उबटना) यक्ष्मारोगी को पुष्टि, बल और वर्ण देता है ।

उपरोक्त श्लोक में चरक महाराज ने किस उत्तमता से अवगाहनादि कर्मों का विधान किया है। लोई कोनी साहिब ने चरक की नकल तो की है, परन्तु वह भी अधूरी। इसका कारण यह है कि वह बेचारा आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त वात, पित्त कफ से नितान्त अनभिज्ञ था, इसीलिये उसने यक्ष्मा रोगी तथा अन्य जीर्ण रोगियों को जल चिकित्सा का आदेश करते हुए केवल जल की कोष्ठी या टब में बैठकर अवगाहन करना ही बतलाया है। परन्तु इस चिकित्सा के आविष्कारक चरक भगवान् ने दोष, देश, काल, प्रकृति तथा रोगी के बलादि का ध्यान करते हुए तीन चीजों के टब में अर्थात् घृत, तैलादि चिकनाई का, वात प्रधान रूक्ष, प्रकृति यक्ष्मा रोगियों के लिये; दूध का पित्त प्रधान, और सुखोष्ण जल अथवा श्लेष्मघ्न औषधियों से मिश्रित जल का, श्लेष्म प्रकृति प्रधान पुरुषों के लिये विधान किया है। हमारा अनुभव है कि यदि अवस्था विशेष में यक्ष्मारोगी को चरक के इस सिद्धान्तानुसार अवगाहनादि की चिकित्सा की जावे और उसको खाने के लिये नित्य मांस रस, विशेषकर बकरे के सीने का मांस दिया जावे तो रोगी को अवश्य लाभ होता है, इस विषय में चरक भगवान् भी स्पष्ट आज्ञा देते हैं, देखिये—

मांसमेवाश्नतः शोषे माध्वीकं पिबतोऽपि च।
नियतानल्पचित्तस्य चिरं काये न तिष्ठति॥
वारुणी मण्ड नितस्य वहिमार्जन सेविनः।
अविधारित वेगस्य यक्ष्मानलभतेऽन्तरम्॥
प्रसन्नां वारुणीं शीधुमरिष्टानासवान्मधु।
यथार्हमनुपानार्थं पिबेन्मांसानि भक्षयेत्॥
मद्यं तीक्ष्णोष्ण वैशद्य सूक्ष्मत्वात्स्रोतसामुखम्।
प्रमथ्यविवृणोत्याशु तन्मोक्षात्सप्त धातवः॥
पुष्यन्ति धातु पोषाच्च शीघ्रं शोषः प्रशाम्यति।
मांसादमांस स्वरसे सिद्धम् सर्पि प्रयोजयेत्॥
सक्षौद्रं पयसा सिद्धं सर्पिर्दश गुणेनवा। आदि...

[चरक० चि० अ० ८, श० १०६ से ११५

अर्थ—यदि यक्ष्मा रोगी विश्वास के साथ केवल मांस भोजन और मधु से बनी हुई सुरा का ही सेवन करे, तो यक्ष्मा उसके शरीर में अधिक काल तक नहीं रह सकता ॥१॥

वारुणी मण्ड पांवे और इसी का वहिर्मार्जन करे और मल मूत्रादि वेगों को कभी धारण न करे, तो यक्ष्मा रोग ऐसे पुरुष के शरीर में वास नहीं कर सकता ॥२॥

यक्ष्मारोग में निरन्तर मांस भोजन करे तथा मधु से बनी हुई प्रसन्ना, वारुणी, शीधु तथा आसव और अरिष्टों का सेवन करे ॥३॥

यक्ष्मा रोगी के समस्त स्रोत रुक जाते हैं, इसीलिये रोगी के सातों धातु पुष्ट नहीं हो पाते, किन्तु सुरा और आसवादि व्यावायी पदार्थ होने तथा तीक्ष्ण, उष्ण, अपिच्छल और सूक्ष्म होने के कारण सब स्रोतों के मुख को प्रमन्थन पूर्वक तत्काल खोल देते हैं। जहां इस क्रिया से छिद्रों के मुख खुले, फिर शीघ्रही सातों धातु पुष्ट होने लगते हैं और धातुओं के पुष्ट होने से यक्ष्मा रोगी शीघ्र ही रोग से मुक्त हो जाता है ॥४॥

यक्ष्मा रोग में मांसाहारी शेर, चीते, भेड़ियादि जीवों के मांस रस से सिद्ध किये हुए घृत का सेवन भी रोगी को बड़ा ही लाभ करता है ॥५॥

जो लोग कारणवश मांस रस अथवा मांस रस से सिद्ध किये हुए घृतादि का सेवन न कर सकते हों, उनको दशगुणे गौ अथवा बकरी के दूध के साथ पकाए हुए घृत में मधु मिलाकर सेवन कराना चाहिये ॥६॥

मधुरगण का कल्क; दशमूल का क्वाथ, दूध और मांसरस के साथ सिद्ध किया हुआ घृत अत्यन्त यक्ष्मा नाशक है।

राजयक्ष्मा चिकित्सा विधि

दोषाधिकानां वमनं शस्यते सविरेचनम्।
स्नेह स्वेदोपपन्नानां स स्नेहयन्त्रकर्षणम् ॥

जिन यक्ष्मा रोगियों में दोषों की अधिकता हो, उनको प्रथम स्नेह तथा स्वेद कर्म करके यथादोष वमन और हलका विरेचन करावें। स्मरण

रहे कि रोगी को वमन और विरेचन इतना ही देना चाहिये, जिससे रोगी क्षीण न होने पावे और यदि रोगी को पहिले ही अतिसार हो, तो विरेचन कदापि न करावें, कहा भी है--

बालिनो बहुदोषस्य पंचकर्माणि कारयेत् ।
यक्ष्मिणः क्षीण देहस्य तत्कृतं स्याद्विषोपमम् ॥

अर्थ--बलवान् तथा बहुदोष युक्त यक्ष्मा रोगी को ही स्नेह, स्वेद, वमन, विरेचन तथा वस्ती आदि पंचकर्म कराने चाहियें ।

जिस यक्ष्मा रोगी का शरीर रोग से क्षीण हो गया हो, उसके लिये यह पंचकर्म विष के समान हैं, इसलिये चिकित्सक को चाहिये कि यक्ष्मा की चिकित्सा करते समय रोगी के बल आदि का ध्यान पूर्वक विचार करके पंच-कर्म अथवा पांचों कर्मों में से कोई एक कर्म (वमन, विरेचनादि) आवश्यकता हो, तो करावे । कहा भी है--

मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तं हि जीवनम् ।
तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणो मल रेतसी ॥

अर्थ—पुरुषों का मल ही बल है और शुक्र अर्थात् वीर्य्य ही जीवन है, इसलिये चिकित्सक को यत्न पूर्वक रोगी के मल और वीर्य्य की रक्षा करनी चाहिये । यक्ष्मारोगी के लिये जब कि उसका शरीर रोग से क्षीण हो गया हो, कभी भूल कर भी विरेचन नहीं देना चाहिये और न ही उसको स्त्री-प्रसङ्ग की आज्ञा देनी चाहिये बल्कि जब तक भली प्रकार रोग मुक्त न हो जावे, मल और वीर्य्य की रक्षा करना ही यक्ष्मा रोगी के जीवन के लिये अत्यन्त लाभकारी है ।

यक्ष्मा की आरम्भावस्था के लिये सिद्धयोग

―――― ०:※:० ――――

सितोपलादि लेह

उत्तम मिश्री १६ तो०, वंश लोचन ८ तो०, पिप्पली छोटी ४ तो०, इलायची छोटी २ तो०, दारचीनी १ तो० । इन सबको बारीक पीसकर सारे चूर्ण में १० तो० उत्तम गो घृत, और सबसे दुगुना मधु मिलाकर अवलेह बना लें ।

मात्रा—१ तो० से २ तो० तक ।

अनुपान—दिन में कई बार चटावें ।

इस से यक्ष्मारोगी को विशेष लाभ होता है, श्वास, कास, पीनस, मन्दाग्नि और मन्दज्वर शान्त हो जाता है, भूख लगती और बल बढ़ता है । यह योग यक्ष्मा की पूर्वावस्था में विशेष लाभ करता है ।

"तालीसादि मोदक"

तालीसपत्र १ तो०, काली मरिच २ तो०, सोंठ ३ तो०, पिप्पली ४ तो०, दालचीनी ६ माशा, इलायची छोटी ६ माशा, मिश्री ३२ तो० । भली-प्रकार कूट पीस कर इसमें प्रमाण से मधु मिलावें, कि गोली बनाने योग्य हो जावे, इसकी एक २ माशे की गोली बना लें ।

मात्रा—दिन में आठ से दस गोली तक ।

यह वात और पित्त की प्रधानता में अधिक लाभ करता है, इसके सेवन से खांसी, श्वास, अरुचि और हृदय की घबराहटादि को विशेष लाभ होता है ।

वासावलेह

वांसे के हरे पत्तों का रस २ सेर, इसमें आध सेर खाण्ड मिला कर पाक करें, जब चाशनी पक्की हो जाये, तो इसमें ८ तो० घृत और पिप्पली ४ तो०, वंशलोचन २ तो०, इलायची १ तो० मिला कर अग्नि पर से उतार

लें और ठण्डा होने पर इसमें १६ तो० मधु मिला दें। यह भी यक्ष्मा रक्त-पित्त की आरम्भावस्था के लिये उत्तम योग है।

मात्रा—६ माशा से १ तो० तक।

अनुपान—दिन में ३–४ बार प्रयोग करावें। यह योग कफ प्रधानावस्था में अच्छा लाभ करता है।

वृहद्वासावलेहः

वांसे की जड़ की छाल १० सेर, जल ४० सेर किसी उत्तम कली किये हुए पात्र में पकावें, जब जल चतुर्थांश शेष रह जावे, तो इसको ठण्डा करके भली प्रकार मल कर छान लें, फिर इसमें १० सेर उत्तम खांड मिलाकर पकावें। जब चाशनी तय्यार हो जावे, तो इसमें निम्नलिखित वस्तुओं का महीन चूर्ण कर प्रक्षेप दें—

त्रिकुटा २ तो०, दारचीनी २ तो०, छोटी इलायची २ तो०, तेजपत्र २ तो०, कटफल २ तो०, नागरमोथा २ तो०, जीरा श्वेत २ तो०, काला जीरा २ तो०, पिपलामूल २ तो०, चव्य २ तो०, हरड़ २ तो०, तालीसपत्र २ तो०, धनियां २ तो०, निसोत २ तो०। सब को बारीक पीस कर उपरोक्त अवलेह में मिला दें, और अग्नि पर से उतार कर ठण्डा होने पर इसमें आध सेर मधु मिलावें।

मात्रा—१ तो० से २ तो० तक।

अनुपान—दिन में २–३ वार उष्ण जल के साथ देवें।

यह अवलेह भी यक्ष्मा की आरम्भावस्था में विशेष कर जहां कफ प्रधान हो, अति लाभ करता है।

च्यवनप्राशावलेह

बिल्व छाल, अरनी, श्योनाक, गम्भारी, पांढल, वला, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पिप्पली, गोखरू, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, काकड़ा सिङ्गी, भूमि आंमला, द्राक्ष, जीवन्ती, पोहकरमूल, अगर, हरड़, गिलोय, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, कचूर, मोथा, पुनर्नवा, मेदा, छोटी इलायची, नीलोफर, लालचन्दन, विदारीकन्द, वांसामूल, काकोली, काकजङ्घा—प्रत्येक ४ तोला तथा ५०० उत्तम पके हुए पहाड़ी आंवले, जिनका वज़न लगभग ५–६ सेर हो, इन को उत्तम स्वच्छ खद्दर के वस्त्र में पोटली बांधकर पूर्वोक्त औषधियों को एक बड़ी देग में डालकर ३२ सेर

पानी डाल दें और आग पर चढ़ा कर आंवलों वाली पोटली भी देग में छोड़ दें और मन्दाग्नि पर पकावें, जब आंवले भली प्रकार नरम हो जावें, तो आंवलों को निकाल कर ठण्डा करके गुठली निकाल दें और किसी स्वच्छ वस्त्र में डाल २ कर हाथ से छान लें। तत्पश्चात् २४ तो० तिल तैल और २४ तो० उत्तम गोघृत को ताम्बे के कलईदार बरतन अथवा मिट्टी के पात्र में डालकर अग्नि पर चढ़ावें, जब तैल और घृत लाल हो जावे, तो इसमें आंवलों को डाल कर भून लें। भली प्रकार भुन जाने पर अग्नि पर से उतार लें और उपरोक्त चतुर्थांश रहे क्वाथ को छान कर इसमें २॥ सेर उत्तम खांड डाल कर चाशनी तय्यार करें, जब चाशनी पक्की तार की हो जावे, तो इसमें पूर्वोक्त भुने हुए आंवले छोड़ कर थोड़ी देर अग्नि पर खुब चलाते रहें. जब एक रस हो जावे, तो अग्नि पर से उतार कर इसमें निम्नलिखित औषधियों का उत्तम चूर्ण बना कर मिला दें—

(चूर्ण द्रव्य) वंश लोचन १६ तो०, पिपली ८ तो०, दारचीनी ४ तो०, छोटी इलायची ४ तो०, तेजपत्र १ तो०, नागकेसर १ तो०। इन सब का चूर्ण बनाकर अवलेह में मिला दें और ठण्डा होने पर इसमें २४ तो० उत्तम मधु मिला कर किसी चिकने पात्र में रक्खें।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे पर्यन्त।

अनुपान—बकरी के दूध के साथ प्रातः सायं सेवन करावें, यह यक्ष्मा रोगी के लिये उत्तम पौष्टिक रसायन है।

इसके सेवन से श्वास, कास, तथा क्षीणता को अति लाभ होता है, यह अवलेह रोग की मध्यावस्था तक लाभ करता देखा गया है, पूर्वावस्था में तो यदि यह अकेला ही सेवन कराया जावे और रोगी को खाने के लिये बकरे का मांस-रस, बकरी का दूध, बकरी का घृत दिया जावे और रोगी को बकरियों के रेवड़ में ही दिन रात रक्खा जावे, तो यक्ष्मा रोगी, इस भयङ्कर रोग से अवश्य मुक्त हो सकता है। शास्त्र में कहा भी है—

छाग मांसं पयश्छागं छागं सर्पि सनागरम्।
छागोपसेवा शयनं छाग मध्ये तु यक्ष्मनुत्॥

अर्थात् यक्ष्मा रोगी बकरे का मांस अथवा मांस रस, बकरी का दूध, तथा बकरी का घृत शुण्ठी मिला कर सेवन करे और बकरियों की सेवा करे, तथा रात दिन बकरियों के बीच में ही वास करे, तो यक्ष्मा रोग से मुक्त हो सकता है।

च्यवनप्राश के सम्बन्ध में आवश्यक वक्तव्य

आधुनिक युग में प्राचीन वैदिक चिकित्सा पद्धति का प्रचार कम हो जाने और नवीन विज्ञान की चकाचौंध ने हमारे कुछ भाइयों को कई रसायन औषधियों के निर्माण सम्बन्ध में भूल भुलइयां में डाल रक्खा है। विशेष कर "च्यवनप्राश रसायन" के निर्माण में कई वैद्य बन्धुओं का मत भेद है। यही कारण है कि च्यवनप्राश का योग एक होते हुए भी, २० वैद्यों का बनाया हुआ च्यवन प्राश एक दूसरे से नहीं मिलता और न ही एक फार्मेसी का दूसरी फार्मेसी से टक्कर खाता है, किसी का स्वाद यदि अति अम्ल है, तो किसी का अति मीठा, किसी का वर्ण लालिमा लिये श्याम है, तो किसी का बिल्ली की विष्टा से भी अधिक काला, जिसको देखते ही रोगी को घृणा उत्पन्न हो जाती है।

पाठक प्रश्न कर सकते हैं कि यदि च्यवनप्राश का योग एक ही है, तो भिन्न २ कार्यालयों तथा वैद्यों के बने हुए च्यवन प्राश में ऐसी भिन्नता क्यों?

इसका उत्तर यह है कि च्यवन प्राश चरक का योग है और चरक की रचना पंचनद मध्य पंजाब प्रान्त के किसी पर्वतीय स्थान पर हुई है और इसमें जिन ५०० आंवलों का वर्णन किया गया है, वह पहाड़ी आंवले ही हो सकते हैं, जिनके तौल के सम्बन्ध में हमारा अनुभव है, कि वह यदि कांगड़ा प्रान्त के लिये जावें, तो ५०० आंवले का वजन ५ सेर अथवा ५॥ सेर पक्का होता है और यदि जम्मू और स्यालकोट प्रान्त के पहाड़ी आंवले गिनती में ५०० लिये जावें, तो उनका तौल ६,६। सेर से अधिक नहीं होता, यदि इन दोनों प्रकार के आंवलों में से किसी एक प्रकार का च्यवनप्राश यथाविधि तय्यार किया जावे, तो शत प्रतिशत बनाने वालों के च्यवनप्राश का स्वाद तथा वर्ण एकही होगा।

स्वाद और वर्ण में भेद का कारण

च्यवनप्राश के स्वाद और वर्ण में भेद का मूल कारण देश में विविध जाति के कलमी (पेवन्दी) आंवले हैं। कोई वैद्य बनारसी आंवले व्यवहार में लाते हैं, तो कोई बरेली के, जिनका वज़न यदि ५०० आंवले तौले जावें, तो पहाड़ी आंवलों से ४–५ गुणा अधिक होता है, अब कई भोले भाई बनारस के ३–४ तोले वज़न के पांच सौ आंवले डाल कर खांड का वही चरकोक्त वज़न डाल देते हैं, जिससे उनका च्यवनप्राश इतना खट्टा होता है, जिसको रोगी तो क्या चङ्गा भला मनुष्य भी नहीं खा सकता। स्वाद के अतिरिक्त ऐसा च्यवनप्राश लाभ के स्थान में जब रोगी के लिये हानिकर सिद्ध होता है, तो वैद्य महाशय की चरक और च्यवनप्राश रसायन से श्रद्धा उठ जाती है। कई एक बुद्धिमान वैद्यों ने अपनी सम्मति से मीठे का तोल इतना अधिक कर दिया है, कि उससे च्यवनप्राश रसायन की वास्तविकता ही नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार वर्ण का हाल है। चरक में जहां च्यवनप्राशादि रसायन निर्माण का वर्णन आता है, वहां स्पष्ट लिखा है, कि ऐसे रसायनों के लिये स्वर्ण, रौप्य, अथवा मिट्टी के पात्र में बनाना चाहिये। परन्तु हमारे भाई लोहे की कड़ाही में तय्यार करते हैं, जिससे औषधि का रूप-रङ्ग घृणित हो जाता है। च्यवनप्राशादि रसायनों के सम्बन्ध में मेरा अनुभव है, कि इनको यथोचित मात्रा में मिट्टी अथवा कलई किये हुए ताम्र के पात्र में बनाया जावे, तो यह जहां सुन्दर वर्ण तय्यार होते हैं, वहां इनके गुणों में भी किंचित अन्तर नहीं आता। अतः वैद्य बन्धुओं से हमारी प्रार्थना है, कि वह रसायनौषधियां बनाते समय इन में किसी प्रकार से हस्तक्षेप न करें।

राजयक्ष्मा में घृत प्रयोग

पहले कह चुके हैं कि राजयक्ष्मा की चिकित्सा "संक्षेपतः क्रिया योगो निदान परिवर्तनम्" इस ऋषि वाक्यानुसार, क्षय रोगी के 'क्षीयन्ते धातवः' क्षय हुए धातुओं की पूर्ति करना ही वास्तविक चिकित्सा है और धातुओं की पूर्ति के लिये मांसरस तथा घृतादि पदार्थ ही सब से उत्तम वस्तुएं हैं। शास्त्र में कहा भी है--

"घृतेन वर्द्धते आयुः, दुग्धेन वर्द्धते वीर्य्यं" अर्थात् घी से मनुष्य की आयु बढ़ती है और दूध से वीर्य्य । घृत आयु के लिये कितना उपयोगी पदार्थ है--इस विषय में "वेद भगवान्" का कथन है—

"घृतं हि आयुर्बलम्" अर्थात् घी ही वास्तव में आयु और बल है । इसी आधार पर चरकादि महर्षियों ने जीवनीय गणादि जीवनदाता औषधियों के संयोग से घृत सिद्ध करने के कई एक प्रयोगों का वर्णन किया है, जिनमें से निम्न लिखित प्रयोग हमारे अनुभव में आ चुके हैं, जोकि यक्ष्मा रोगी को सेवन कराये जावें, तो इनसे आशातीत लाभ होता है । इन प्रयोगों को यथाविधि तय्यार करके यक्ष्मा रोगियों को धातु पूर्ति के लिये रोग की पूर्व तथा मध्यावस्था में ही लाभ होता है, रोग की बढ़ी हुई अवस्था में इन धातु वर्धक पदार्थों के साथ २ अगले पृष्ठों में कहे हुए रसों का प्रयोग करना लाभप्रद होता है ।

अमृतादि घृत

गिलोय, अनन्तमूल, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, गोखरू, छोटी कण्टकारी, बिलछाल, खरैंटी, बांसे के पत्ते—प्रत्येक ४० तो० लें, इनसे चारगुणा पानी मिला कषाय तय्यार करें और चौथा भाग पानी रह जाने पर उसे मल कर छान लें । अब पानी से चौथाई भाग गाय का घी लेकर आग पर चढ़ावें और उसी में छना हुआ कषाय भी मिलावें तथा निम्न औषधियों का कल्क डालें—

पीपल, लाल चन्दन, लोध पठानी, सुगन्धबाला, खस, पर्पटक, पाढल, चिरायता, मुलहठी, त्रायमाण, नीलोत्पल, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सोंठ, मरिच, धमासा, दालचीनी, तेजपत्र, बांसापत्र—प्रत्येक २ तो०, बकरी का दूध १ सेर । जब दूध तथा पानी आदि जल जाने पर केवल घी ही रह जावे, तो आग से उतार कर शीतल होने पर छान लें । यह घृत यक्ष्मा की उत्तम औषधि है ।

मात्रा—३ माशे से १ तोला तक ।

अनुपान—यह घृत बकरी के हलके गरम दूध के साथ रोगी को प्रातः सायं खिलाने से यक्ष्मा में अति लाभ करता है ।

यह वात, पित्त प्रधानावस्था में सेवन कराना चाहिये, च्यवनप्राशावलेह सेवन कराते समय अजा दूध में यदि इस घृत को मिला लिया जावे, तो रोगी को बहुत लाभ करता है ।

वासादि घृत

वासापत्र, गिलोय, नीमछाल, लघुकण्टकारी, असगन्धनागौरी, कङ्घी तथा अर्जुनछाल प्रत्येक ४० तोले लें सब को आठगुणे पानी में पकावें, चौथाई जल रहने पर बकरी का दूध १ सेर तथा बकरी का घी १ सेर मिला कर हलकी आंच पर पकावें, जब सारा पानी जल जावे और केवल घी ही शेष रह जावे, तो आग से उतार कर ठण्डा होने पर छान लें ।

मात्रा—३ माशे से १ तो० तक ।

अनुपान—बकरी के दूध के साथ सेवन करावें ।

इस के प्रयोग से कास, श्वास तथा यक्ष्मा नष्ट होता है । यह घृत रोगी को ऐसी अवस्था में विशेष लाभ करता है, जब कि कफ के साथ रुधिर भी आता हो और खांसी की अधिकता हो ।

श्वदंष्ट्रादि घृत

गोखुरु, धमासा, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, खरैंटी, पित्तपापड़ा प्रत्येक ४ तोला, पानी ८गुना में मिला कर उबालें जब चौथाई जल रहे तो खूब मल कर छान लें और निम्न औषधियों का कल्क बना कर इस में डालें ।

कचूर, पोहकर मूल, पीपल, त्रायमाण, आमले, चिरायता, कटुकी, इन्द्रजौ, अनन्त मूल प्रत्येक २ तोला, बकरी का घी १ सेर, बकरी का दूध २ सेर । जब पकते २ पानी जल जावे और घी ही शेष रह जावे तो इस को आग से उतार कर शीतल होने पर छान लें ।

मात्रा—३ से ६ माशे तक ।

अनुपान—बकरी के दूध के साथ प्रातः सायं प्रयोग करने से यक्ष्मा कास तथा निर्बलता आदि दूर होते हैं, यह घृत यक्ष्मा की उत्तम औषधि है

विशेष कर रोग की ऐसी अवस्था में सेवन कराना चाहिये जब कि पित्त प्रधान हो और ज्वर १०३ से १०५ तक पहुंचता हो।

छागलाद्य घृत

बकरे का मांस ५ सेर ले १६ सेर पानी में पकावें जब पकते २ पानी चौथाई रह जावे तो अच्छी तरह मल कर छान लें तथा निम्न औषधियों का कल्क डालें—

विदारी कन्द, बाराही कन्द, असगन्ध नागौरी, शकाकल, बहमनलाल, बहमन श्वेत, सालबमिश्री, सतावर, दोनों मूसली प्रत्येक ४ तोले ले कर सूक्ष्म चूर्ण कर लें और थोड़ा जल मिला कर कल्क बना लें तथा उपरोक्त कषाय में मिला कर बकरी का दूध ४ सेर और बकरी का घी १ सेर मिला कर नरम २ आग पर पकावें। घृतपाक विधि से पाक कर के घृत ही शेष रहने पर आग से उतार कर छानें और ठण्डा होने पर २२ तोले मिश्री तथा १६ तोले शहद मिला देवें।

मात्रा—६ माशे से २ तोले तक।

अनुपान—बकरी के दूध के साथ रोगी को दोनों समय सेवन करानी चाहिये।

जब रोगी का शरीर सूख गया हो, वीर्य क्षीण हो तथा अतिनिर्बलता हो उस समय इस घृत के कुछ दिनों के ही प्रयोग से शरीर सुवर्ण के समान कान्तिमान हो जाता है। यह मांस क्षय के लिए विशेष लाभ करता है।

जीवन्तयादि घृत

जीवन्ती, मुलठी, द्राक्षा, इन्द्रजौ, सोंठ, पोहकरमूल, कटेरी, गोखरू, खरैंटी, नीलोत्पल, आमले, त्रायमाण, धमासा, पीपल, मजीठ प्रत्येक ४ तोला, पानी १६ सेर, पहले सब वस्तुओं को कूट लें फिर पानी में डाल कर पकावें, चतुर्थांश रहने पर छान लें, इस में गो घृत २ सेर, बकरी का दूध ८ सेर मिला कर मन्दाग्नि पर पाक करें, जब जल और दूध जल कर केवल घृत रह जावे तो अग्नि पर से उतार लें और ठण्डा होने पर छान कर उत्तम पात्र में रख लें।

मात्रा—३ माशे से १ तोला तक।

अनुपान—बकरी के दूध के साथ सेवन करावें।

इस के सेवन से बढ़ा हुआ राजयक्ष्मा रोग नष्ट हो जाता है, यह घृत रोग की अति बढ़ी हुई अवस्था में मृगांक पोटली रस के साथ सेवन कराने से विशेष लाभ करता है।

बलागर्भ घृत

दशमूल की दशों औषधियें ४० तोला ८ सेर पानी में पकावें चौथा भाग रहने पर अग्नि पर से उतार कर छान लें, उत्तम बकरे का सीने का मांस १ सेर चार सेर पानी में पकावें जब चतुर्थांश जल रह जावे तो मल कर छान लें, दशमूल का कषाय और मांस रस दोनों को मिला दें इस में १ सेर उत्तम बकरी अथवा गो घृत डाल कर मन्दाग्नि पर पाक करें जब पानी जल जावे और केवल घृत शेष रह जावे तो ठण्डा होने पर छान लें।

मात्रा—३ माशे से १ तोला तक।

अनुपान—बकरी के दूध में मिला कर सेवन करावें।

यह घृत अभिघातज अर्थात् चोट लगने से हुई यक्ष्मा में विशेष लाभ करता है, इस के साथ यदि महामृगांक रस का प्रयोग कराया जाय तो विशेष लाभ होता है।

कुङ्कमाद्यं घृतम्

मुलठी ४ सेर, जल ३२ सेर, मुलठी को कूट कर पानी में पकावें जब चौथाई मात्र शेष रह जाय तो मल कर छान लें, चीर काकोली ४ सेर कूट कर ३२ सेर जल में पकावें चौथाई रहने पर छान लें, इसी प्रकार दशमूल की दशों औषधियें ४ सेर, ३२ सेर पानी में पकावें; चौथाई भाग शेष रहने पर छान लें, छोटी कटेरी ४ सेर, पानी ३२ सेर अवशिष्ट ८ सेर, बकरी का दूध १२ सेर और केसर से मूर्छित गो घृत ३ सेर, तथा निम्न औषधियों का कल्क बना कर सब को एक उत्तम ताम्बे के पात्र में मन्दाग्नि पर पकावें,

कल्कार्थ पदार्थ—लौंग, नागरमोथा, वच, केसर, जीवनीयगण, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, चीर काकोली, मुलेठी,

माषपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवन्ती, बला, त्रिकुटा, नीलोत्पल, रेणुका, पृष्टपर्णी, वाराहीकन्द, गिलोय, वंशलोचन, एलुवालक, प्रयंगू, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, आंवला, मालती पुष्प, हाऊबेर, चव्य, तेजपत्र, तालीस पत्र, नागकेसर, असगन्ध, जीराश्वेत, अजवाइनदेशी, प्रत्येक १ तोला, इन को बकरी के दूध में भांग की तरह घोंट कर लुगदा सा बना लें, इस की कल्क संज्ञा होती है, सब को मिला कर पाक करें जब घृत मात्र रह जावे तो ठण्डा कर के छान लें।

मात्रा—३ माशे से १ तोला तक।

अनुपान—बकरी के दूध में मिला कर सेवन करने से यक्ष्मा रोग की असाध्यावस्था में भी लाभ होता देखा गया है, यह घृत रोगी की सर्व धातुओं की पूर्ति के लिए एक अनुपम औषधि है, इस के सेवन से श्वास, कास तथा रक्तपित्तादि यक्ष्मा रोग के सर्व उपद्रवों की शान्ति होती है, इस घृत के साथ २ यदि रत्नगर्भ पोटली रस का सेवन कराया जावे तो सोने पर सुहागे का काम देता है।

अजापंच घृत

बकरी का घृत ४ सेर, बकरी की मैंगनों का रस ४ सेर, बकरी का मूत्र ४ सेर, बकरी का दूध चार सेर; बकरी के दूध का दही ४ सेर। इन सब को ताम्बे के उत्तम पात्र में डाल कर मन्द अग्नि पर पकावें, जब घृत सिद्ध हो जावे तो छान कर इसमें १ सेर उत्तम यवक्षार का प्रक्षेप दें और चिकने पात्र में रक्खें।

मात्रा—३ माशे से १ तोला तक।

अनुपान—बकरी के दूध के साथ सेवन करने से यक्ष्मा रोग तथा उससे उत्पन्न होने वाले सब ही उपद्रव शान्त होते हैं।

यह यक्ष्मा रोग की एक अव्यर्थ औषधि है, इसे यक्ष्मा की सबही अवस्थाओं में सेवन करा सकते हैं।

यक्ष्मारोग में तैल प्रयोग

यक्ष्मा रोगी के क्षय हुए रसादि धातुओं की पूर्ति के लिये शास्त्रों में जहां घृत, मांस रस, अवलेहादि पौष्टिक पदार्थ अन्तरीय सेवन के लिये कथन किये हैं, वहां रोगी के रुद्ध हुए स्रोतों को अवगाहन-उबटन द्वारा खोल कर त्वचा द्वारा पौष्टिक; रोग नाशक तथा शान्ति दायक और ऊष्मा-हर पदार्थों से सिद्ध तैलों का वाह्य उपचार करने का आदेश भी किया हैं, इनके प्रयोग से जहां युद्ध करने वाले पहलवालों की तरह त्वचा द्वारा रोगी के अंग प्रत्यंगों की पुष्टि होती है, वहां नाना रोग नाशक औषधियों द्वारा सिद्ध होने से इन तैलों के मर्दन से रोग कारक दोष भी शमन होते हैं। अतः चिकित्सक सज्जनों को चाहिये कि यक्ष्मा रोगी की चिकित्सा करते समय अन्य अन्तरीय पौष्टिक औषधियों के प्रयोग के साथ २ ही निम्नलिखित अनुभूत तैलों में से यथोचित किसी एक तैल की नित्य मालिश भी कराते रहें—

स्वल्प चन्दनादि तैल

तिल तैल ४ सेर, भारंगी, कटेरी, गिलोय, वला-प्रत्येक ४ सेर को एक २ द्रोण (१६ सेर) जल में पकावें, चौथाई शेष रहने पर मल कर छान लें और निम्नलिखित औषधियों का कल्क बनाकर सबको एक ताम्र पात्र में डालकर मन्दाग्नि पर पकावें, जब तैल मात्र शेष रह जावे, तो अग्नि पर से उतार कर ठण्डा होने पर छान लें। (कल्कद्रव्य) श्वेत चन्दन, अगर; तालीसपत्र, मजीठ, नली, पद्माख, नागरमोथा, कचूर, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, लाल चन्दन-प्रत्येक ४ तो० हो।

इस तैल की नित्य मालिश करने से रोगी को विशेष लाभ होता है, इस तैल को रोग की आरम्भावस्था में ही काम में लाना चाहिये। बढ़ी हुई दशा के लिये आगे और तैल के प्रयोग दिये गये हैं।

लाक्षादि तैल

१ सेर पीपल की लाख को ४ सेर पानी में डाल कर उबालें; जब लाख सब गल जावे और पानी १ सेर रह जावे तो आग से उतार कर छान

लें अब सौंफ, असगन्ध, मुलहठी, देवदारू, सम्भालु के बीज, कुटकी मरोड़फली, कुड़ा, हल्दी, नागरमोथा, लालचन्दन, रास्ना, कमलफूल, मजीठ प्रत्येक १ तोला सब को रगड़ें और थोड़ा २ पानी मिला कर कल्क बनावें। अब तिलतैल १ सेर, दही का तोड़ ४ सेर तथा उपरोक्त कल्क और कषाय को एक ताम्बे के पात्र में डाल हलकी २ आग पर पकावें तथा घृतपाक के समान ही पाक कर लें जब पानी जल जावे और तेल ही शेष रहे तो उसे उतार कर छान लें। यही लाक्षादि तैल है, इस तैल के छाती पर मालिश करने से क्षय, कास तथा ज्वर आदि शान्त होते हैं।

यदि रोगी को ज्वर अधिक हो, उष्णता के कारण विकलता हो तो इस तैल के शरीर पर मर्दन करने से ज्वर अति न्यून हो जाता है। क्षय रोगी की छाती पर इस के मर्दन से रोगी के वक्षस् तथा फेफड़ों में होने वाली पीड़ा तथा शूल आदि लक्षण शान्त हो जाते हैं तथा उरःक्षत आदि रोगों को लाभ होता है, कास का अति वेग न्यून हो जाता है और कफ सरलता पूर्वक निकलने लगता है। हमारा अनुभव है कि यदि यक्ष्मा रोगी को अन्य आन्तरिक औषधियों के साथ २ इस तैल का मर्दन भी किया जावे तो उसे बहुत शीघ्र लाभ होता है।

चन्दनादि तैल

श्वेत चन्दन, सुगन्धवाला, नख, कुठ, मुलहठी, बालछड़, छैल छरीला, पद्माख, मजीठ, देवदारू, कायफल, जौ, कस्तूरी, नागरमोथा, केसर, तेजपत्र, इलायची, कपूर कचरी, सर्दचीनी, जीरा, नागकेसर, हल्दी, दारहल्दी, अनन्तमूल; कुटकी, लौंग; दालचीनी; संभालु बीज प्रत्येक ३ माशा ले कल्क बनावें। १ सेर पीपल की लाख को १६ सेर पानी में उबालें। चार सेर पानी रहने पर उतार कर छानें तथा इस कषाय में ४ सेर दही का पानी ४ सेर तिल तैल और उपरोक्त कल्क डाल कर पका लें, यह चन्दनादि तैल है

इस तेल के मर्दन से क्षय, कास; श्वास; शिरःशूल, पार्श्वशूल, अन्य शूल आदि को लाभ होता है; यह सब प्रकार के जीर्ण ज्वरों के लिए उत्तम तथा अनुभूत औषधि समझनी चाहिये।

महालाक्षादि तैल

पपिल की लाख ४ सेर जल ३२ सेर, शेष ८ सेर, हल्दी, मजीठ, रीठा, मलेठी, खरैंटी, खस, चन्दन, गेरु नीलकमल प्रत्येक १ सेर, जल आठ सेर प्रत्येक वस्तु में आठ२सेर जल डाल कर पकावें और चौथाई शेष रहने पर छान लें; सब को एक ताम्बे के पात्र में डाल कर उत्तम तिलों का तैल भी २ सेर इस में मिला दें और निम्न लिखित कल्क द्रव्यों का कल्क बना कर इस में मिला दें और मन्दाग्नि पर पका लें जब तैल मात्र रह जावे तो छान कर बोतलों में भर लें।

कल्क द्रव्य--रेणुका, पद्माख, असगन्ध, वेत, कुठ, देवदारु, नख दालचीनी, सौंफ, बालछड़, मलेठी, प्रत्येक २ तोला, दही का पानी ४ सेर; गौ दुग्ध ४ सेर, कांजी ४ सेर सब को मिला कर तेल पाक करें, इस की नित्य मालिश से, यक्ष्मा रोगी को विशेष लाभ होता है, यह तैल रोग की मध्यावस्था में अति लाभ करता है।

यक्ष्मा रोग के लिए अनुभूत रस रसायन

यक्ष्मा रोग की विशेष अवस्थाओं में निम्न लिखित रस हमारे अनुभूत हैं, यदि इन को यथा विधि तय्यार करके व्यवहार किया जावे तो प्रायः लाभ कारी सिद्ध होते हैं, चिकित्सक सज्जनों को अपने २ चिकित्सालयों में अवश्य तय्यार करके रखने चाहियें, यह चमत्कारक सद्य फलप्रद और यक्ष्मा नाशक हैं।

मृगाङ्क चूर्णम्

प्रवालभस्म, मुक्ताभस्म, शंखभस्म, वंगभस्म, प्रत्येक १ तोला सब को निम्ब की छाल के क्वाथ में, तीन दिन खरल करके टिकिया बना लें और छाया में सुखा कर पांच सेर बन कण्डों की आग में फूंक दें. शीतल होने पर निकाल कर खरल कर के इस में बराबर वज़न वंशलोचन का चूर्ण और वंशलोचन से १६ वां भाग शिंगरफ मिला दें और भली प्रकार खरल कर के सावधानी से रखें।

मात्रा--१ रत्ती से २॥ रत्ती तक।

अनुपान--२ रत्ती पिपली चूर्ण मिला कर १ तोला मधु के साथ सेवन करावें।

इसके सेवन से यक्ष्मा और तद्जन्य कासादि विकार शान्त होते हैं, यदि यक्ष्मा रोगी को खांसी के साथ कफ में किञ्चित रक्त आता हो, तो इस रस को वांसावलेह के साथ प्रयोग कराना चाहिये अथवा च्यवनप्राश में मिला कर सेवन कराने से विशेष लाभ करता है।

सूचना—इस रस में पड़नेवाली प्रवाल, मुक्ता और शङ्खादि भस्में खेंरैटी पञ्चांग की लुगदी में रख कर हलकी पुट में फूंकनी चाहियें और वङ्गभस्म सम भाग पारद के मेल से घीक्वार से मर्दन कर न्यून से न्यून १४ पुटें देनी चाहियें।

रास्नादि लोह

रास्ना, असगन्ध नागौरी, कपूर, मण्डूकपर्णी, ब्राह्मी, शिलाजीत हरड़ का छिलका, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मरिच, पीपल, चित्रक, नागरमोथा, वायविडङ्ग प्रत्येक १ तो०। इन सब का अति सूक्ष्म चूर्ण कर के सब औषधियों से आधी लोहभस्म मिलावें।

मात्रा—४ रत्ती से ६ रत्ती तक।

अनुपान—इसको मधु, शर्बत बनफ़शा, शर्बत अनार में से किसी के साथ प्रयोग करें। दोनों समय औषधि खिला कर ऊपर से बकरी का दूध पिला दें।

यह क्षयरोग की उत्तम औषधि है। इसके प्रयोग से क्षय, कास, श्वास तथा सब प्रकार के कफरोग नष्ट होते, भूख खूब लगती तथा शरीर पुष्ट हो जाता है।

सूचना—इसमें जो लोहभस्म वर्णित है, वह रसेन्द्रसारोक्त त्रिफलादि गण द्वारा सिद्ध की हुई होनी चाहिये। रास्नादि लोह यक्ष्मारोग की आरम्भावस्था में प्रयोग कराना चाहिये।

राजमृगांक रस

रस सिन्दूर ३ भाग, सुवर्ण भस्म १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग, मैनसिल, गन्धक, हरताल प्रत्येक २ भाग। इन औषधियों का चूर्ण कर बड़ी पीली कौड़ी में भरें और बकरी के दूध में सुहागा पीस कर उससे कौड़ी

का मुख बन्द कर दें। इस कौड़ी को एक मट्टी के बर्तन में रखकर कपरौटी कर के गजपुट दें। शीतल होने पर निकाल कर कौड़ियों सहित सूक्ष्म चूर्ण कर लें।

मात्रा—आधी रत्ती से २ रत्ती तक।

अनुपान—इस रस को ४ रत्ती मरिच चूर्ण, २ रत्ती, पिप्पली, १ माशा गोघृत तथा ३ माशे मधु मिलाकर चटाने के बाद ऊपर से बकरी का दूध पिलावें।

इस रस के प्रयोग से राजयक्ष्मा; कास; स्वरभङ्ग, श्वास का नाश हो कर, शरीर बलवान होता है; यह उत्तम रस सब वैद्यों को सदा अपने पास तय्यार रखना चाहिये।

सूचना—इसमें रस सिन्दूर षड् गुण जारित और स्वर्ण पारद गन्धक योग तथा काञ्चनार योग से बनी हुई और ताम्रभस्म पारद गन्धक तथा वांसे के रस से भावित डालनी चाहिये। यह रस भी यक्ष्मा की आरम्भावस्था में ही गुण करता है।

मृगाङ्क रस

शुद्ध पारा १ भाग, सुवर्ण भस्म १ भाग, मुक्ता भस्म २ भाग, गन्धक २ भाग, श्वेत सुहागा १ भाग। इन औषधियों को भली प्रकार खरल कर के काञ्जी से इनकी टिकिया बना लें। अब एक सेर सैन्धव नमक का अति सूक्ष्म चूर्ण करके एक मट्टी के शकोरे में आधा नमक भरें और उस पर टिकिया रख कर ऊपर से शेष नमक भी डाल दें तथा सम्पुट करके गजपुट दें और शीतल होने पर रस निकाल कर चूर्ण कर लें।

मात्रा—२ चावल से १ रत्ती तक।

अनुपान—यह मृगाङ्क रस १० मरिचों के चूर्ण तथा मधु से प्रातः सायं सेवन कराना चाहिये, तत्पश्चात् रोगी को बकरी का दूध पिला दें।

यह अति उत्तम रस है, इसके सेवन से यक्ष्मा, खांसी, श्वास, मन्दाग्नि, शरीर की कृशता आदि सब लक्षण शान्त होते हैं। यह हमारा सैकड़ों बार का अनुभूत है।

सूचना—इसमें पड़ने वाली स्वर्णभस्म उपरोक्त विधि से और

मुक्ता भस्म खरेंटी की लुगदी में बनी हुई डालनी चाहिये। यह रस यक्ष्मा की मध्यावस्था में अति लाभ करता है, इसके साथ च्यवनप्राशावलेह और बलागर्भघृत सेवन कराना चाहिये।

रत्नगर्भपोटली रस

पारा शुद्ध, हीरा भस्म, सुवर्ण भस्म, रौप्यभस्म, नागभस्म, लोह-भस्म, ताम्रभस्म, काली मरिच, प्रवालभस्म, सुवर्णमाक्षिकभस्म, मुक्ताभस्म, शङ्खभस्म, तुत्थ समान भाग लेकर ७ दिन चित्रकरस या कषाय में खरल कर सुखा लें और उत्तम बड़ी पीली कौड़ियों में भर दें और आक के दूध से सुहागा खरल कर उससे कौड़ियों का मुख लेप कर दें और मट्टी के शकोरे में रख कर कपड़ मिट्टी करने के बाद गजपुट देवें और ठण्डा होने पर रस निकाल लें। यह रत्नगर्भ पोटली रस है, इसे सम्भालू के पत्तों के रस और अदरकस्वरस की ७ भावना तथा चित्रकमूल स्वरस की ३ भावना दे १ रत्ती की गोली बना लेवें।

मात्रा—एक २ गोली।

अनुपान—प्रातः सायं १ मा० मरिच चूर्ण, ३ मा० घी तथा ६ माशा मधु में मिलाकर रोगी को सेवन कराने से सब प्रकार का क्षय-रोग नष्ट होता है, हमारा हज़ारों बार का अनुभूत है।

यह रस रोग की मध्यमावस्था में और कहीं २ तीसरे दर्जे में भी लाभप्रद है, इसमें पड़ने वाली भस्में इस प्रकार से बनी हुई होनी चाहियें, हीराभस्म, खर मूत्र, स्वर्ण भस्म पारद गन्धक और कांचनार त्वक्, स्वरस अथवा क्वाथ से, रौप्य भस्म ताल योग से, नागभस्म मैनसिल योग से, लोह भस्म रसेन्द्रसारोक्त शृङ्गवेरादि गण द्वारा, ताम्र भस्म पारद, गन्धक और वांसा रस से, स्वर्ण माक्षिक लवण योग से शुद्ध करके, अरिण्ड तैल योग से, मुक्ता खरेंटी की लुगदी में हलकी पुट से, प्रवाल चन्द्रपिष्टी अर्क वेदमुश्क द्वारा भावित, शङ्ख घृत कुमारी स्वरस से, तुत्थ (नीलाथोथा) कबूतर विष्टा में।

कनक सुन्दर रस

पारा शुद्ध ४ भाग, सुवर्ण भस्म १ भाग, मैनसिल, गन्धक, तुत्थ-भस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, हरताल शुद्ध, शुद्ध मीठा तेलिया, सुहागा प्रत्येक ४ भाग लेकर सब औषधियों को भांगरास्वरस, पाठारस, चित्रकमूल रस अदरक स्वरस सब से ३-३ दिन खरल करने के बाद सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—आधा रत्ती से १ रत्ती तक।

अनुपान—इस रस को काली मरिच और मधु के साथ प्रयोग करावें, यह यक्ष्मा की श्रेष्ठ औषधि है।

सूचना—यह योग कफ प्रधान अवस्था में ही सेवन कराना चाहिये। अन्यथा हानि करता है। इस में पड़ने वाली भस्में उपरोक्त प्रकार से बनी होनी चाहियें।

हेमगर्भपोटली रस

रस सिन्दूर ३ भाग, सुवर्णभस्म १ भाग, ताम्रभस्म १भाग, गन्धक शुद्ध १ भाग। सब को चित्रकरस से २ पहर तक खरल कर एक पीली कौड़ी में भर दें और कौड़ी का मुख बकरी के दूध से पीस कर सुहागे से बन्द कर इस कौड़ी को मट्टी के शकोरे में रख कर कपड़मिट्टी करके गजपुट में फूंक दें और शीतल होने पर कौड़ी सहित पीस लें।

मात्रा—आधी रत्ती से १ रत्ती तक।

अनुपान—इस रस को मरिचचूर्ण तथा ३ माशा मधु के साथ खिला कर रोगी को बकरी का दूध पिलावें। इस रस के प्रयोग से क्षय तथा इस रोग के अन्य उपद्रव भी शान्त होते हैं।

सूचना—इसमें पड़ने वाली भस्में भी रत्नगर्भ पोटली रस की भान्ति ही बनी होनी चाहियें, यह रोग की मध्यमावस्था में विशेष लाभ करता है।

सर्वाङ्गसुन्दर रस

शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक शुद्ध २ भाग, मोती भस्म, प्रवालभस्म, शङ्खभस्म, सुवर्णभस्म प्रत्येक आधा भाग। सब द्रव्यों को नींबू का रस डाल

कर खरल करें और टिकिया बना मिट्टी के शकोरे में रख कर कपड़मिट्टी कर गजपुट देवें । शीतल होने पर निकाल कर खरल करने के उपरान्त इस में सुवर्ण के समान लोहभस्म तथा लोह से आधा शिङ्गरफ मिलावें ।

मात्रा – आधी रत्ती से १ रत्ती तक ।

अनुपान—इस रस को मधु और मरिचचूर्ण के साथ प्रयोग करावें, इसके प्रयोग से क्षय, कास, श्वास, तथा निर्बलता आदि लक्षण नष्ट होते हैं । यह रस भी रोग की मध्यावस्था अर्थात् दूसरे दर्जे में और कहीं २ आरम्भ तीसरे दर्जे में भी लाभ करता है ।

सूचना—इसमें पड़ने वाली समस्त भस्में रत्नगर्भ पोटली रस की भांति बनी होनी चाहियें ।

लोकेश्वर रस

वराट् भस्म ४ तो०, पारा शुद्ध २ तो०, गन्धक १तो०, सुहागा भुना हुआ २ तो०, इन सब औषधियों को खरल करके निम्बुरस की १ दिन तक भावना देवें । और टिकिया बना लें, फिर छाया में सुखा कर एक शरावे में रख गजपुट दें और शीतल होने पर निकाल कर खरल कर लें ।

मात्रा—१ रत्ती से ३ रत्ती तक ।

अनुपान—मधु तथा काली मारिच के चूर्ण के साथ प्रयोग करने से यक्ष्मारोग नष्ट होता है । इस रस के साथ रोगी को मांसरस सेवन कराना चाहिये ।

सूचना—इसमें पड़ने वाली नागभस्म मैन्सल योग शार्ङ्गधरोक्त ६० पुटी होनी चाहियें ।

स्वल्प मृगाङ्क रस

रस सिन्दूर १ तो०, सुवर्णभस्म १ तो० । दोनों को मिलाकर खूब खरल कर लें । यही 'मृगांकरस" है ।

मात्रा—½ रत्ती से १ रत्ती तक ।

अनुपान—इसको गोघृत ३ माशा, मधु ६ माशा में मिला कर व्यवहार करें और ऊपर से बकरी का दूध पिलावें और मांसरस खूब दें, यह

योग रोग की तीनों दशाओं में दे सकते हैं । इस रस को सेवन कराने से यक्ष्मारोग नष्ट होता है ।

सूचना--इसमें पड़ने वाली स्वर्णभस्म पारद गन्धक और कांचनार रस से बनी, और रस सिन्दूर षड्गुण गन्धक जारित होना चाहिये ।

कांचनाभ्र

अभ्रकभस्म, लोहभस्म, प्रवालभस्म, मुक्ताभस्म, रससिन्दूर, रौप्य-भस्म, हरड़ का छिलका, शुद्ध मैनसिल, कस्तूरी । सब द्रव्य समभाग लेकर पानी से खरल कर के गोलियां बना लें ।

मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक ।

अनुपान--योग्य अनुपान के साथ क्षयरोगी को सेवन कराने से क्षय तथा उससे उत्पन्न होने वाले अन्य रोग शीघ्र ही शान्त होते हैं । यदि कफ प्रधान हो, तो त्रिकुट तथा मधु से, पित्त में पित्तपापड़ा तथा वांसारस के साथ तथा वायु की प्रधानता में घी तथा मधु से सेवन कराना चाहिये, इसी प्रकार दोषों का विचार करके भिन्न २ अनुपानों का प्रयोग करने से यह रस राजयक्ष्मा के लिये अमृत के समान है, हमारा हज़ारों बार का अनुभूत है ।

सूचना—इसमें पड़ने वाली भस्में रत्नगर्भ पोटली रसोक्त प्रकार से बनी होनी चाहियें और अभ्रकभस्म विशेष कर रसेन्द्र सारोक्त सहस्र पुटी काम में लावें ।

शिलाजत्वादि लोह

सत्व शिलाजतु, मुलहठी, त्रिकटु, सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रत्येक समभाग और लोहभस्म सब के समान मिलावें और भली प्रकार खरल कर लें ।

मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक ।

अनुपान - गाय या बकरी के दूध के साथ उपयोग कराने से सब प्रकार का क्षयरोग नष्ट होता है । यह रस शुक्रक्षय के कारण होनेवाले यक्ष्मा रोग में व्यवहार करना चाहिये ।

सूचना—इसमें पड़ने वाली स्वर्णमाक्षिक भस्म एरण्डतैल द्वारा सिद्ध और लोहभस्म रसेन्द्र सारोक्त हिंगुलयोग से घृतकुमारी रस में भावित डालनी चाहिये।

यक्ष्माकेसरी रस

त्रिफला, त्रिकटु, छोटी इलायची के दाने, जायफल, लौंग प्रत्येक १ भाग, लोह भस्म ८ भाग, रस सिन्दूर ९ भाग, चन्द्रोदय ८ भाग। सब द्रव्यों को खरल कर लें।

मात्रा=१ रत्ती से २ रत्ती तक।

अनुपान—यह रस ३ माशे मधु से प्रयोग करावें और बकरी का दूध दें। इस के प्रयोग से राजयक्ष्मा नष्ट होता है।

यह योग रोग की मध्यावस्था में देना चाहिये।

सूचना—इसमें पड़नेवाली लोहभस्म उपरोक्त हिंगुल योग से बनी हुई और रससिन्दूर तथा चन्द्रोदय षड्गुण गन्धक जारित होने चाहिये।

वृहत्कांचनाभ्र

सुवर्णभस्म, रससिन्दूर, मुक्ताभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, प्रवाल-भस्म, रौप्यभस्म, ताम्रभस्म, हीरकभस्म, कस्तूरी, लौंग, जावित्री, एलुआ, सुहागा। सब द्रव्य समभाग लेकर ३ दिन घीक्वार के रस और ३ दिन ककरौन्दे (कुकड़ाविद्दी) के रस में खरल करने के बाद बकरी के दूध की ७ भावना दे सुखा लें।

मात्रा—आधी रत्ती से १ रत्ती तक।

अनुपान—मधु के अनुपान के साथ रोगी को सेवन कराने से क्षय-कास, श्वास आदि नष्ट हो जाते हैं। यह रोग की प्रत्येक दशा में लाभ करता है।

सूचना—इसमें पड़नेवाली समस्त भस्में उपरोक्त विधियों से बनी हुई होनी चाहिये।

कुमुदेश्वर रस

सुवर्णभस्म, रससिन्दूर, शुद्ध गन्धक, मुक्ताभस्म, पाराशुद्ध, रौप्य-

भस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म। सब द्रव्य सम भाग लेकर कांजी से खरल कर टिकिया बनावें और छाया में सुखा एक शराव में रख कर गजपुट दें, शीतल होने पर निकाल कर खरल कर लें।

मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक।

अनुपान—यह रस मरिचचूर्ण तथा मधु के साथ सेवन कराने के बाद गाय या बकरी का दूध पिलावें; इसके प्रयोग से राजयक्ष्मा तथा उस से उत्पन्न होने वाले दूसरे रोग शान्त होते हैं। यह रस भी रोग की मध्यावस्था में लाभ करता है।

सूचना—इसकी समस्त भस्में भी उपरोक्त विधि से बनी होनी चाहियें।

बृहत् चन्द्रामृतरस

पारा, गन्धक शुद्ध, अभ्रकभस्म प्रत्येक २ तो०, कपूर ४ माशे, ताम्रभस्म, सुवर्णभस्म, लोहभस्म, विधाराबीज, जीरा काला, विदारीकन्द, शतावर, तालमखाना, खरैंटी, कांचबीज, कङ्घी, जायफल, जावित्री, लवङ्ग, भांगबीज, राल श्वेत प्रत्येक ४ माशा। पारे गन्धक की कज्जली कर के शेष औषधियों का अति सूक्ष्म चूर्ण मिला कर रगड़ें और थोड़ा मधु मिला कर २ रत्ती से ४ रत्ती तक गोली बनावें।

मात्रा—एक गोली प्रातः और १ गोली शाम।

अनुपान—मरिचचूर्ण तथा मधु के साथ प्रयोग कराने से यह रस यक्ष्मा तथा उससे उत्पन्न होने वाले दूसरे रोग को शान्त करता है। यह रस भी शुक्र क्षय से होने वाले यक्ष्मा में विशेष लाभ करता है।

सूचना—इसमें पड़नेवाली अभ्रकभस्म सहस्रपुटी और अन्य भस्म उपरोक्त प्रकार से बनी होनी चाहियें।

महामृगाङ्करस

सुवर्णभस्म १ तो०, रस सिन्दूर २ तो०, मुक्ताभस्म ३ तो०, शुद्ध गन्धक ४ तो०, सुवर्णमाक्षिकभस्म ५ तो०, रौप्यभस्म ४ तो०, प्रवाल भस्म ७ तो०, सुहागा २ तो०। सब औषधियों को नींबू के रस में खरल

करके टिकिया बना एक शराव में रख सम्पुट करें। अब एक बड़ी हाण्डी आधी नमक से भर दें; और उस पर शराव को रख कर शेष नमक से हाण्डी को भर कर इस हाण्डी को आग पर चढ़ा ८ पहर की तीव्र अग्नि दें और फिर आग देनी बन्द करके स्वांग शीतल होने पर सम्पुट निकालें और औषधि को खरल कर लें। अब सम्पूर्ण औषधियों का छठे भाग हीरा भस्म इस रस में मिला लें।

मात्रा— आधी रत्ती से १ रत्ती तक।

अनुपान—इस रस को मरिचचूर्ण, पिप्पली चूर्ण, अथवा मधु के साथ सेवन कराने से सब प्रकार का क्षयरोग नष्ट होता है, इस रस के प्रयोग करने के समय रोगी को पौष्टिक पदार्थों का सेवन कराना चाहिये। विशेष कर बकरे का मांस-रस अति लाभ करता है।

सूचना—इसमें पड़ने वाली समस्त भस्में रत्नगर्भ पोटली तथा हेमगर्भ पोटली की भांति बनी होनी चाहियें।

क्षयकेसरी रस

कृष्णाभ्रकभस्म, रससिन्दूर, लोहभस्म, ताम्रभस्म, सीसक भस्म, वङ्गभस्म, मण्डूरभस्म, हीराभस्म, सुवर्णमाक्षिकभस्म, कांस्यभस्म, खर्पर-भस्म, हड़ताल शुद्ध, शंखभस्म, सुहागा शुद्ध, सुवर्णभस्म, मुक्ताभस्म, प्रवालभस्म, वराटभस्म, सब औषधियां समान भाग लेकर अर्क दुग्ध तथा चित्रकरस की ३—३ दिन भावना दे कर गजपुट देवें; शीतल होने पर रस को निकाल कर एक लोहे की खरल में डालें और बिजौरा नीबू, भांगरा, तथा अदरक के रसों की सात २ भावना दें। ध्यान रहे कि इन भावनाओं के देने के समय लोहखरल को आग पर रक्खें।

मात्रा—२ चावलों से ४ चावलों तक।

अनुपान—इस रस को मरिच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण या सितोपलादि चूर्ण के साथ प्रयोग कराना चाहिये। मुलहठी तथा अदरक के रस के साथ भी इसे प्रयोग कर सकते हैं। यह रस यक्ष्मारोग के नाश के लिये अति श्रेष्ठ है। और यक्ष्मा की तीनों दशाओं में लाभ करता है।

सूचना—इसमें कृष्णाभ्रक भस्म सहस्रपुटी और अन्य भस्में उप-रोक्त रसों की भान्ति बनी हुई डालनी चाहियें।

लोकनाथ रस

पारा शुद्ध, शोधित गन्धक, सम भाग ले, दोनों को अच्छी तरह खरल करें और पारे से चारगुनी कौड़ियों में भर दें, इन कौड़ियों के मुख पर गाय के दूध में पिसे हुए सुहागे का लेप करने के बाद कौड़ियों से द्गुनी शङ्खभस्म लेकर एक शराव में आधी भस्म नीचे और आधी ऊपर रख बीच में पीली कौड़ियों को रख शराव को सम्पुट करें और गजपुट देवें और शीतल होने पर निकाल कर खरल कर लेवें।

मात्रा--१ रत्ती से ३ रत्ती तक।

अनुपान—इस रस को पिप्पली चूर्ण तथा मधु के साथ सेवन कराने से हर प्रकार के क्षय का नाश होता है; इस रस के प्रयोग के बाद कुछ देर तक रोगी को सर्वथा विश्राम करना चाहियें।

यह रस हमारा अनेकों बार का अनुभूत हैं।

नोट-इस रस को सेवन कराते समय यदि प्रति मात्रा ½ रत्ती उत्तम षड्गुण गन्धक जारित चन्द्रोदय रस डाल दिया जावे, तो अति लाभ करता है, यह रस प्रायः रोग की आरम्भ और मध्यावस्था में ही प्रयोग कराना चाहिये।

मृगाङ्कपोटली रस

सुवर्णपत्र, पारा शुद्ध प्रत्येक १ भाग लेकर अच्छी तरह खरल करें और अब सुहागा ½ भाग, मोती २ भाग, तथा सब के समान गंधक मिला कर कांचनार के रस में खरल करने के बाद टिकिया बना लें और छोटी २ मट्टी की प्यालियों में रख कर भली प्रकार कपरौटी करें, अब एक हांडी लें कर इसमें आधे में नमक भर कर ऊपर यह प्याली का सम्पुट रख शेष हांडी को नमक से भर दें और आग पर चढ़ावें, २४ घण्टे की आग देने के बाद ठण्डा होने पर सम्पुट निकाल लें। दूसरी बार सम्पुट को उसी प्रकार नमक के बीच में रक्खें, ध्यान रहे कि इस बार सम्पुट को पहिले की अपेक्षा उलटा रखें, फिर २४ घण्टे की तीव्र अग्नि दें और इतनी अग्नि देने के बाद आग से उतार शीतल होने पर रस को निकाल कर खरल कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा—आधी रत्ती से १ रत्ती तक।

अनुपान—इस रस को मरिचचूर्ण १ माशा, घी १ माशा तथा मधु ३ माशा मिलाकर रोगी को चटाने से हर प्रकार के क्षयरोग को लाभ होता है। हमारा अनुभूत है। यदि रोगी को कफ के साथ रक्त भी आता हो, तो यह रस वांसावलेह के साथ देने से विशेष लाभ करता है।

अमृतेश्वर रस

रस सिन्दूर, सत गिलोय, लोहभस्म समभाग लेकर खरल कर लें।

मात्रा—१ रत्ती से ३ रत्ती तक।

अनुपान—यह रस सुबह व शाम १ माशा गोघृत तथा ३ माशा मधु में मिला कर रोगी को देने के बाद बकरी का दूध पिलावें। यह रस भी यक्ष्मा, कास, तथा उससे उत्पन्न होनेवाली निर्बलता के लिये एक श्रेष्ठ औषधि है।

सूचना—इसमें पड़नेवाली लोहभस्म हिंगुल योग से बनी हुई होनी चाहिये, यह रस शुक्रक्षय से उत्पन्न यक्ष्मा रोगी को सेवन कराना चाहिये।

यक्ष्मारोग में आसव और अरिष्ट

आसव अरिष्ट और सुरा—यक्ष्मारोगी की प्राणरक्षा के लिये अत्युत्तम औषधियां हैं, आसव और अरिष्ट क्या है ? सख्त से सख्त काष्ठौषधियों और खनिज द्रव्यों के गुणों को रसायनक प्रक्रिया द्वारा सूक्ष्मरूप देकर तरलावस्था में लाना आयुर्वेदिक परिभाषा में "आसव और अरिष्ट" कहलाता है, और इन्हीं आसव और अरिष्टों को यदि नालिका यन्त्र द्वारा खैंच लिया जाय, तो उसकी मद्य अथवा सुरा संज्ञा हो जाती है। एलोपैथी में टिञ्चर क्या है !, आयुर्वेद के आसवारिष्टों की केवल नकलमात्र है। आसव और अरिष्ट तथा टिञ्चर में भेद अथवा अन्तर केवल इतना ही है, कि टिञ्चर सुरा में विविध औषाधियों के सम्मिलान से तय्यार होते हैं और आसव तथा अरिष्टों में तय्यारी के समय सुरा उत्पन्न हो जाती है और सच पूछो, तो वह सुरा ही किसी औषधि अथवा औषधियों के सूक्ष्म गुणों को रोगी के रुग्ण अवयव तथा अङ्ग प्रत्यङ्गों तक शीघ्रातिशीघ्र पहुंचाने के लिये एक श्रेष्ठ साधन है, यद्यपि सुरा को वर्त्तमान् और अतीतकाल के बहुत से लोगों ने एक निन्दक और घृणित पदार्थ कहा है और धार्मिक दृष्टि से भी इसकी बहुत कुछ निन्दा की गई हैं, परन्तु हम यहां पर सुरा तथा आसवारिष्ट को शारीरिक धर्म दृष्टि से वर्णन कर रहे हैं, हमारे इस वर्णन से कोई यह न समझ लें कि हम सुरा-प्रचारक हैं अथवा सुरा के ठेकेदारों से हमारी कुछ साज़-बाज़ है, किन्तु हम बतला देना चाहते हैं कि मानवी देह की रक्षार्थ हम किसी उत्तम सद्यः फलप्रद औषधि के विधान से केवल इस लिये नहीं रुक सकते कि उसको धार्मिक समाज अथवा पन्थाई लोग घृणित समझ रहे हैं, जिस प्रकार आयुर्वेद शास्त्रों के रचयिता चरकादि महर्षियों ने प्राणधारियों में सर्व श्रेष्ठ मनुष्य को रोग से मुक्त करने के लिये धार्मिक समाज में समझे हुए अभक्ष्य और अपेय (मांस तथा सुरा) आदि पदार्थों का निर्भयता से आदेश किया है, उसी प्रकार चिकित्सा पद्धति का लेखक भी चूंकि शरीर धर्म पर लिख रहा है और उसका मुख्योद्देश्य रोगी को रोग से मुक्त कराना ही है, इसलिये वह शरीर धर्म से अतिरिक्त किसी भी धर्मावलम्बी

तथा पन्थाई से डर कर सत्य को छिपा नहीं सकता, विशेष कर ऐसी अवस्था में जब कि उसकी पुष्टि के लिये चरकादि प्राचीन आयुर्वैदिक ग्रन्थों में इस विषय के प्रबल प्रमाण मौजूद हों।

पाठक ! देखिये—भगवान् चरक इस विषय में कितना स्पष्ट कह रहे हैं—

मांसमेवाश्नतः शोषे माध्वीकं पिबतोऽपि च।
नियतानल्प चितस्य चिरं कामेन तिष्ठति ॥
वारुणी मण्ड नित्यस्य बहिर्मार्जन सेविनः।
अविधारित वेगस्य यक्ष्मान लभतेऽन्तरम् ॥
प्रसन्ना वारुणी शीधुमरिष्टानासवान्मधु।
यथार्ह मनुपानार्थं पिबेन्मांसानि भक्षयेत् ॥
मद्यं तीक्ष्णोष्ण वैशद्य सूक्ष्मत्वात्स्रोतसामुखम्।
प्रमथ्या विवृणोत्याशु तन्मोक्षात्सप्त धातवः ॥
पुष्यन्ती धातु पोषा च शीघ्रं शोषः प्रशाम्यति।

[चरक० चि० अ० ८, श्लोक १०६ से ११५.

अर्थ—यदि यक्ष्मारोगी विश्वास के साथ मांस भोजन और मधु से बनी हुई सुरा का ही सेवन करे, तो यक्ष्मा उसके शरीर में अधिक काल तक नहीं ठहर सकता। वारुणी मण्ड पीवे और इसी का बहिर्मार्जन करे और मल मूत्रादि वेगों को कभी धारण न करे तो यक्ष्मा रोग ऐसे मनुष्य के शरीर में वास नहीं कर सकता।

यक्ष्मारोग में निरन्तर मांस भोजन करे तथा मधु से बनी हुई प्रसन्ना वारुणी, शीधु नाम की सुरा तथा आसव और अरिष्टों का सेवन करे, चूंकि यक्ष्मा रोगी के समस्त स्रोत रुक जाते हैं और स्रोतों के रुकने से ही रोगी के सातों धातु पुष्ट नहीं होने पाते और सुरा तथा आसवादि व्यवाई पदार्थ होने और तीक्ष्णोष्ण, अपिच्छल तथा सूक्ष्म होने के कारण सब स्रोतों के मुख को प्रमथन पूर्वक तत्काल खोल देते हैं। अतः जहां इस क्रिया से छिद्रों के मुख खुले, फिर सातों धातु शीघ्र ही पुष्ट होने लगते हैं, और धातुओं के

पुष्ट होने से रोगी शीघ्रही यक्ष्मा जैसे भयङ्कर रोग से मुक्त हो जाता है, क्योंकि धातुओं का क्षय ही वास्तव में राजयक्ष्मा रोग है, कहा भी है—

'क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः' ।

द्राक्षारिष्ट

द्राक्ष (मुनक्का) २॥ सेर ३२ सेर पानी में पकावें, जब जल चतुर्थांश रह जावे, तो मल कर छान लें । इस को एक उत्तम मिट्टी के चिकने पात्र में डाल दें, फिर ६। सेर उत्तम गुड़ और निम्नलिखित चीज़ों का चूर्ण डालें—

दालचीनी, इलायची छोटी, तेजपत्र, नागकेसर, फूल प्रियंगू, काली मरिच, पीपल, वायविडङ्ग प्रत्येक ४ तो०, धाय के फूल ४० तो० सब को पात्र में डाल कर अच्छी प्रकार मिला दें और पात्र का मुख बन्द करके यदि शीतकाल हो तो १ मास और ऊष्णकाल हो तो १५ दिन पर्यन्त पड़ा रहने दें, पश्चात् खोल कर नितरे हुए अरिष्ट को भली प्रकार छान कर बोतलों में भर लें ।

मात्रा—१ तो० से ५ तो० तक ।

अनुपान—यक्ष्मा रोगी को अन्य औषधियों के साथ २ सेवन करावें, यह उत्तम द्राक्षारिष्ट राजयक्ष्मा उरः क्षत रोग में अति लाभ करता है, इसे रोग की आरम्भ और मध्यमावस्था में सेवन कराना चाहिये ।

बबूलारिष्ट

बबूल (कीकर) छाल १० सेर, इसे यवकुट कर के २ मन पानी में पकावें, जब पानी चतुर्थांश रह जावे तो अग्नि पर से उतार कर ठण्डा कर के छान लें, इस क्वाथ को उत्तम चिकने मिट्टी अथवा चीनी के पात्र में डाल कर इस में १५ सेर गुड़ मिलावें, और निम्न औषधियों का चूर्ण का प्रक्षेप दें:—

पीपल ८ तो०, जायफल ४ तो०, कंकोल ४ तो०, इलायची ४ तो०, दालचीनी ४ तो०, तेज पत्र ४ तो०, नागकेसर ४ तो०, लौंग ४ तो०, काली मरिच ४ तो०, धाय फूल ३ पाव, सब पात्र में डाल कर भली प्रकार

मुख बन्द कर दें, शीतकाल में १ मास और ऊष्णकाल में १५दिन के पश्चात् खोल कर देखें, यदि अरिष्ट भली प्रकार नितर गया हो तो इस को छान कर बोतलों में भर लें, यह यक्ष्मा रोगी के लिये अत्युत्तम औषधि है। अन्य रस रसायनों के साथ यदि इस का व्यवहार कराया जावे तो रोगी को बड़ा ही लाभ होता है।

मात्रा – १ तो० से ५ तो० तक।

अनुपान—दिन में दो-तीन बार सेवन करावें, यह अरिष्ट कफ प्रधान यक्ष्मा रोग में अति लाभ करता है।

दशमूलारिष्ट

शालपर्णी, पृष्टपर्णी, गोखरु, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, बिल्वमूलछाल, अरनीमूलछाल, अरलूमूलछाल, पाटलामूलछाल, गम्भारीमूलछाल, प्रत्येक २० तो०, चित्रकमूल छाल १। सेर, पोहकरमूल १। सेर, लोधपठानी १ सेर, गिलोय १ सेर, आमले ३ पाव ४ तो०, जवांसा २॥ पाव, खैरछाल, विजयसार, हरड़छाल, प्रत्येक ३२ तो०, कुठ ८ तो०, मजीठ ८ तो०, देवदारु ८ तो०, वायविडंग ८ तो०, मुलहठी ८ तो०, भारंगी ८ तो०, कैथ ८ तो०, बहेड़ाछाल ८ तो०, पुनर्नवा ८ तो०, चव्य ८ तो०, जटामासी ८ तो०, प्रयंगू ८ तो०, सारिवा ८ तो०, कालाजीरा ८ तो०, निसोत ८ तो०, रेणुकाबीज ८ तो०, रास्ना ८ तो०, पीपल ८ तो०, सुपारी ८ तो०, कचूर ८ तो०, हल्दी ८ तो०, सौंफ ८ तो०, पद्माख ८ तो०, नागकेसर ८ तो०, नागरमोथा ८ तो०, इन्द्रजौ ८ तो०, काकड़ासिंगी ८ तो०, जीवक ८ तो०, ऋषभक ८ तो०, (दोनों न मिलें तो विदारी कन्द) मेदा ८ तो०, महामेदा ८ तो० (दोनों के अभाव में मलहठी) काकोली ८ तो०, क्षीर काकोली ८ तो० (दोनों के अभाव में असगंध) ऋद्धि ८ तो० वृद्धि ८तो०(इन के अभाव में वाराही कन्द) इन सब औषधियों को यवपुट कर के आठ गुणे जल में पकावें और चौथा भाग शेष रहने पर मलकर छान लें, और किसी चिकने पात्र में भर दें, पश्चात् ६सेर द्राक्ष(मुनक्का) लेकर इस में २४सेर पानी डालकर पकावें जब एक भाग पानी जल जावे और तीन भाग शेष रह जावे तो उतारकर मलकर छान लें, और इस को भी उसी क्वाथ में मिला दें, तत्पश्चात् ५ सेर गुड़ और १ सेर १०छटांक मधु इन दोनों को पात्र में डालकर भली प्रकार मिलादें, फिर निम्न औषधियों को कूट कर प्रक्षेप दें, धायफूल १॥से.

कंकोल,मुश्कवाला, चन्दन, जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेसर, पीपल, प्रत्येक ८ तो०, इनका चूर्ण बनाकर पात्र में डाल दें और अच्छी तरह से मिलाकर पात्र का मुख बन्द करदें। शीतकाल में एक मास और उष्णकाल में १५ दिन के बाद खोलकर देखें, यदि अरिष्ट अच्छी तरह नितर गया हो तो, इस को छान लें, और इसमें ४ माशे कस्तूरी मिलाकर बोतलों में भर लें, यह भी यक्ष्मा रोगी के लिये अति लाभकारी अरिष्ट है।

मात्रा—१। तो० से २॥ तो० तक।

अनुपान—दिन में दो-तीन बार थोड़ा पानी मिला कर सेवन कराना चाहिये। यह अरिष्ट रोगी की अति क्षीण अवस्था में भी लाभ करता है, जहां यक्ष्मारोगी को वात प्रधान हो और रोग शुक्र क्षय के कारण हुआ हो ऐसी दशा में इस अरिष्ट का व्यवहार कराना चाहिये, अन्यथा पित्त प्रधानावस्था में इस का प्रयोग लाभ के स्थान में हानि करता है, अतः इसे वात तथा कफ प्रधानावस्था में ही सेवन करानः चाहिये।

'पिप्पल्यासव'

पीपल, काली मरिच, चव्य, हल्दी, चित्रकमूलछाल, नागरमोथा, वायविडङ्ग, सुपारी, लोध, पाठा, आंवला, आलुबालु, खस, चन्दन, कुठ, लौंग, तगर, जटामासी, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, प्रयंगू, नागकेसर, प्रत्येक २ तो०, सब को बारीक चूर्ण कर के एक चिकने मिट्टी अथवा चीनी के पात्र में डालें और ऊपर से ३२ सेर पानी में १५ सेर गुड़ घोल कर डाल दें, पश्चात् इस में मुनक्का (द्राक्ष) ३ सेर और धायफूल २॥ पाव कूट कर मिला कर पात्र का मुख बन्द कर दें, शीतकाल हो तो एक मास और ऊष्णकाल हो तो १५ दिन पश्चात् पात्र का मुख खोल कर देखें, यदि भली प्रकार आसव नितर गया हो तो सावधानी से छान कर बोतलों में भर लें, यह यक्ष्मा रोगी को अन्य औषधियों के साथ २ सेवन कराने से विशेष लाभ करता है।

मात्रा—१। तो० से ५ तो० तक।

अनुपान—दिन में दो-तीन बार थोड़ा जल मिला कर पिलाना चाहिये। यह आसव कफ प्रधानावस्था में ही प्रयोग कराना चाहिये।

सुरा अथवा मद्य

पहिले कह चुके हैं कि सुरा, मद्य तथा आसव और अरिष्ट यक्ष्मारोगी के लिये अति लाभकारी हैं, इस भयङ्कर रोग में जो २ आसव तथा अरिष्ट हमारे अनुभव में आये हैं, उनके प्रयोग ऊपर दे दिये गये हैं, परन्तु दुःख की बात है, कि एक रोग के लिये विशेष कर एक ऐसे मारक रोग के लिये सद्यः फलप्रद होते हुए भी हम यहां सुरा अथवा मद्य के प्रयोग देने में असमर्थ हैं—

कारण कि इसके खींचने के लिये राज्य की ओर से आज्ञा नहीं। महकमा आबकारी का डण्डा सामने दिखाई देता है, जो सज्जन राज्य आज्ञा लेकर निकालना चाहें अथवा जो स्टेट निवासी होने से सुरा खैंचने में समर्थ हों, उनके ज्ञानार्थ यहां सुरा के भेद और उसकी तय्यारी के मूल सिद्धान्तों पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है—

" सुराभेद "

आयुर्वेद शास्त्रों में सुरा के निम्नलिखित ४ भेद वर्णन किये हैं—

गौडी माध्वी तथा पैष्टी निर्यासा कथिता परा।
इति चतुर्विधाः ज्ञेया सुरस्तासां प्रभेदकाः ॥

(१) अन्य औषधियों के अतिरिक्त मीठे के स्थान में गुड़ डाल कर जो सुरा तय्यार की जावे, उसको " गौड़ी " कहते हैं।

(२) जो सुरा अन्य औषधियों के अतिरिक्त मधु अथवा महुए के फूल मीठे के स्थान में डाल कर तय्यार की जावे, उसको " माध्वी " सुरा अर्थात् मधु से बनी हुई कहते हैं।

(३) जौ आदि अन्न को भिगोकर उसको पीठी और मीठे के स्थानमें खाण्ड डालकर जो सुरा तय्यार की जावे, उसको " पैष्टी " अर्थात् पीठी द्वारा प्रस्तुत कहते हैं।

नोट—पैष्टिका सुरा में यद्यपि खांड का वर्णन नहीं, परन्तु यव चूंकि शीत वीर्य्य, मूत्रल और पुष्टीकारक हैं, और यह पित्त प्रकृति के लोगों अथवा

पित्त प्रधान रोगियों के सेवनार्थ बनाई जाती है। इसलिये इस सुरा में सदैव खांड का ही व्यवहार करना चाहिये, गुड़ अथवा मधु कभी भी प्रयोग में लाना नहीं चाहिये।

(४) ताड़ी, खजूर आदि वृक्षों अथवा अन्य किन्हीं चीज़ों में से निचोड़ कर रस निकाल कर जो सुरा तय्यार होती है, उसको "निर्यासा" कहते हैं।

'दोषानुसार सुरा साधन'

चिकित्सक को चाहिये, कि सुरा प्रस्तुत करते समय रोगी के बल, अवस्था, देशकाल, और दोषादि को ध्यान में रखते हुए अपनी बुद्धि अनुसार सुरा का प्रयोग निश्चित करे।

वात प्रधान

यदि वात प्रधान हो, तो दशमूलादि औषधियों के साथ मीठे के स्थान में गुड़ का प्रयोग करें और सुरा की विधि से खैंच लें।

पित्त प्रधान

पित्त प्रधानावस्था में गुडुचि, पित्तपापड़ा, वांसादि औषधियों और मीठे के स्थान में खांड का व्यवहार करें और विधिपूर्वक खैंच लें।

कफ प्रधान

राजयक्ष्मा यद्यपि एक कफप्रधान रोग है, परन्तु फिर भी रोगी की प्रकृति अवस्थादि के भेद से प्रायःभिन्न२ रोगियों में कफके साथ वात और पित्त प्रधान देखे गये हैं इसलिये जहां वात तथा पित्त प्रधान हों, वहां सुरा तय्यार करते समय सदा गुड़ और खाण्ड ही काम में लाने चाहियें और जहां कफ अति बढ़ा हुआ हो, वहां सुरा प्रस्तुत करते समय शुण्ठी, मरिच, पिप्पली आदि कफनाशक औषधियों के साथ मीठे के स्थान में मधु (शहद) ही डालना चाहिये।

विशेष सूचना—यक्ष्मा रोगी के लिये सुरा प्रस्तुत करते समय इस बात को कभी नहीं भूलना चाहिये, कि क्षय रोग में चूंकि धातु क्षय ही मुख्य कारण होता है, अतः प्रत्येक सुरा के प्रयोग में मेदा, महामेदा, काकोली,

क्षीर काकोली; जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि आदि अष्टवर्ग की जीवनीय गणोक्त औषधियें अवश्य डालनी चाहियें ।

सुरा की मात्रा—चरकादि प्राचीन ग्रन्थकारों ने आसव, अरिष्ट, तथा सुरादि की १ पल से २ पल मात्रा विधान की है, परन्तु चरक काल के मनुष्यों के बल, वीर्य्य और वर्तमान काल के मनुष्यों के बल वीर्य्य में आकाश और पाताल का अन्तर है । अतः आज कल सुरा की मात्रा इस प्रकार होनी चाहिये ।

मात्रा—१॥ तो० से २॥ तो० तक अथवा बलाबल का ध्यान करते हुए इस से भी कम मात्रा में अर्थात् ६—७ माशा ही सेवन करानी चाहिये ।

राजयक्ष्मा रोग में पथ्य

मद्यानि जांगलं पक्षि मृगमांसं विशष्यताम् ।
मुद्ग षैष्टिक गोधूम यवशाल्यादयो हिताः ॥

दोषाधिकस्य बलिनो मृदुशुद्धिरग्रे गोधूम मुद्ग चणकारुण शालयश्च ॥
छागानि मांस नवनीत पयो घृतानि क्रव्याद मांस मयि जांगलजारसाश्च ।
मार्तण्ड चण्ड किरणैः परिशोषितानि लेह्यान्य पक्वपललानि सुचूर्णतानि ॥
रागाः सकांवलि खाण्ड वेसवारा भक्ष्याः शशांक किरण मधुरो रसश्च ।
पक्वानि मोचपनसाम्रु फलानि धात्री खर्जूर पौष्कर परुष नारि केलम् ॥
शोभांजनं चकुलकं नवतालसस्य द्राक्षा फलानि मिशयोपि च माणिमन्थम् ।
सिंहास्य पत्रमपि गो महिषि घृतं च छागाश्रयश्च तदवस्करमूत्रलेपः ॥
मत्स्यांडिका शिखरिणी मादिरा रसाला कर्पूरकं मृगमदः सितचन्दनं च ।
अभ्याज्जनानि सुरभीरायनुलेपानि स्नानानि वष रचनान्यवगाहनानि ॥
हर्म्यं स्त्रजं स्मरकथा मृदुगन्धवाहो गीतानि लास्यमपि चन्द्र रुचो विपंची ।
सन्दर्शनं मृगद्रशामपि हेमचूर्णं मुक्तामणि प्रचुर भूषण धारणं च ॥
होय प्रदानममर द्विज पूजनानि हृद्यान्न पानमपि पथ्यगणः क्षयेषु ।

अर्थ—उचितमात्रा में मदिरा जङ्गली जानवरों (सिंह, चीता, बन्दरादि) का सूखा मांस अथवा मांसचूर्ण, मूंग, सांठी चावल, जौ, गेहूं। यह सब यक्ष्मा रोगी के लिये पथ्य अर्थात् सेवन योग्य हैं और यदि रोगी बलवान होने के साथ ही अधिक दोषों से युक्त हो, तो उसको चिकित्सा आरम्भ करने से पूर्व हलके जुलाब से शुद्ध कर लें और गेहूं, मूंग, चना, लालचावल, बकरे का मांस, मक्खन, घी, दूध, कच्चा मांस खाने वाले, शेर, चीतादि जङ्गली जानवरों का मांस, अथवा मांसरस, सूर्य्य की प्रचण्ड किरणों से तपे हुए और चन्द्रमा की शीतल किरणों से शीतल हुए लेह चटनी आदि औषधियें सूखे मांस का चूर्ण, कोवलिराग, खाण्डवादिराग, (यह विशेष प्रकार से औषधियों के मूलफल के काढ़े में स्वादु पदार्थ डाल कर बनते हैं), उत्तम गरम और रुचिकर मसाले, सुन्दर रोचक मिठाइयां, चन्द्रमा की शीतल किरण, सर्व मधुर रस, केलें की पकी हुई गहर, पका हुआ कटहर, पक्का आम्रफल, आंवले, खजूर, छुहारे, पोहकर मूल, पके हुए फालसे, नारियल, सुहांजने की फली, ताल के नवीनफल, दाख, सौंफ, सेन्धानमक, अडूसा के पत्ते, गौ अथवा भैंस का घी, बकरियों में रहना, मिश्री, शिखरन, मदिरा, रसाला, (कच्चे दूध में मिश्री, जल, काली मिरचादि डाल कर बनाया जाता है) कपूर, कस्तूरी, श्वेतचन्दन, उबटना, सुगन्धित वस्तुओं के लेप, स्नान, उत्तम वस्त्र धारण करना, जल में क्रीडा करना, मनोहर स्थानों में निवास करना, फूलों की माला धारण करना तथा कामोद्दीपन करने वाली बात सुनना, स्वर्ण भस्म, मोतीचूर्ण, मणि, मुक्ता, हीरा आदि के आभूषण धारण करना, कोमल सुगन्धित पवन, चन्द्रमा की शीतल चान्दनी में हिरण के समान नेत्रों वाली युवती का नाच और गान, सच्चे ब्राह्मण, साधु महात्मा लोगोंका दर्शन पूजन और सत्कार और चित्त को हर समय प्रसन्न करने वाले सब व्यवहार यह सब यक्ष्मारोगी के लिये पथ्य अर्थात् हितकारी हैं। इन्हीं में से आवश्यकतानुसार व्यवहार करना उत्तम तथा बुद्धिमान वैद्य का कर्तव्य है।

———

राजयक्ष्मा रोग में अपथ्य

विरेचनं वेग विधारणं च श्रमं स्त्रियं स्वेदन्मजनं च।
पुजागरं साहस कर्म सेवा रुक्षान्न पानं विषमाशनं च॥
ताम्बूल कालिन्द कुलत्थमाषा रसोन वशांकुर रामठानि।
अम्लानि तिक्तानि कषायकाणि कटुनि सर्वानि च पत्र शाकम्।
क्षारान विरुद्धान्यशनानि विम्बी कर्कोटकं चापि विदाहसर्वम्।
कठिल्लकं कृष्णमपि क्षयेषु विवर्जयेत्सन्ततम प्रमतः॥

अर्थ—विरेचन अर्थात् जुलाब देना, मल मूत्रादि वेगों का धारण, परिश्रम, स्त्रीप्रसंग मैथुनादि व्यवहार, पसीना निकालना, नेत्रों में किसी प्रकार का अंजन लगाना, रात को जागना, साहस कर्म अर्थात् सामर्थ्य से अधिक काम में प्रवृत्त होना, रूखे सूखे अन्न का भोजन, पान खाना, विषम भोजन अर्थात् पहिला भोजन अभी पचा नहीं, ऊपर से और खा लेना, कुलथी, उड़द, लहसन, वांस की कोंपल, हींग, सकल खट्टे पदार्थ, कड़ुवे, कसैले, चरपरे, तीक्ष्णपत्तों वाले शाक, खारी चीज़ें, स्वभाव विरुद्ध पदार्थ, कुन्दू, सेमफली, करेला और सब प्रकार के दाहकारी पदार्थ। यह सब निरन्तर राजयक्ष्मा रोग में अपथ्य अर्थात् अहितकारी हैं, अतः चिकित्सक को चाहिये कि इन चीजों के लिये वर्जित कर दें।

राजयक्ष्मा रोगी के लिये वस्त्र

भिन्न २ ऋतु तथा रोगों में भिन्न२ वस्त्रों का प्रयोग करने के लिये शास्त्र में विधान है। जैसे ग्रीष्म ऋतु में वस्त्र ऐसे होने चाहियें, जिनमें वायु संचार भली प्रकार हो सके और शरीर से निकलने वाले पसीने से गीले होने पर जल्दी सूख भी जावें। इसी प्रकार शरद् ऋतु के वस्त्र ऐसे होने चाहियें जिनसे बाहर की सर्दी अन्दर न आ सके तथा शरीर की गर्मी बाहिर न निकले। भिन्न २ ऋतुओं में इसी प्रकार के भिन्न २ वस्त्रों का प्रयोग कराना चाहिये।

अनेक रोगों में भी विशेष प्रकार के वस्त्रों का प्रभाव देखा गया है। हमारा अनुभव है कि राजयक्ष्मा रोग से ग्रस्त रोगी के लिये अन्य शुद्ध वस्त्रों के साथ उसके शरीर से सीधे सम्बन्ध में आने वाले वस्त्र गेरुए रंग के होने चाहियें, जोकि अन्य वस्त्रों के नीचे रहते हुए शरीर से लगे हुए हों और प्रति तीसरे दिन बदल दिये जावें। यदि दो तीन जोड़े ऐसे वस्त्रों के बने हों, तो एक को बदल कर धोया जा सकता और उसकी जगह दूसरे का प्रयोग हो सकता है। इन वस्त्रों को बदलने के बाद धो दें और फिर गेरुए रंग में रंग दें। इस प्रकार वस्त्रों से भी रोगनाशमें किसी सीमा तक उचित सहायता मिलती है।

कासाधिकार

आयुर्वेद शास्त्र में कासरोग ५ प्रकार का माना गया है -

१. वातज ३. श्लेष्मज ५. क्षयजन्य
२. पित्तज ४. क्षतज

निदान---

धूमोपघाताद्रजसस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च ।
विमार्गगत्वादपि भोजनस्य वेगावरोधात्क्षवथोस्तथैव ॥
प्राणो ह्युदानानुगतः प्रदुष्टः संभिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः ।
निरेति वक्त्रात्सहसा सदोषो मनीषिभिः कास इति प्रदिष्टः ॥

मुख और नासिका में धूआं लगने, धूल पड़ने, अति व्यायाम, रूक्ष पदार्थ तथा रूक्ष भोजन के सेवन से, भोजन करते समय भोजन का नासिका तथा श्वासप्रणाली आदि में जाने, वेगरोध तथा छींक को रोकने से प्राण तथा उदान वायु विकृत हो जाते हैं और मुख से वेग पूर्वक निकलते हैं जिस से शब्द होता है । यह रोग कासरोग कहा जाता है । इस में वायु के मुख से निकलते समय फूटे हुए कांसी के बर्तन के समान शब्द होता है, यह रोग का विशेष चिन्ह है ।

वातज कास के लक्षण

हृच्छंखमूर्द्धोदरपार्श्वशूली क्षामाननः क्षीणबलस्वरौजः ।
प्रसक्तवेगस्तु समीरणेन भिन्नस्वरः कासति शुष्कमेव ॥

वातज कास में हृदय, शंखदेश (कनपटी), शिर, माथा, उदर तथा पसलियों में पीड़ा होती, मुख मलिन तथा क्षीण होता, शारीरिक बल हीन हो जाता तथा स्वर निर्बल हो जाता है । इस में रोगी को खांसी सूखी होती, स्वरभेद होता तथा कास का वेग बराबर होता है ।

वातज कास चिकित्सा

वातजन्य खांसी में पहिले रोगी को स्नेहपान आदि उपचार करने चाहियें। स्नेह में घृतपान, पेया, दूध, यूष तथा मांस-रस आदि प्रयोग करने चाहियें।

पञ्चमूली क्वाथ

शालपर्णी, पृष्टपर्णी, गोखरू, कण्टकारी छोटी तथा बड़ी कण्टकारी प्रत्येक ४ माशे ले ३२ तोले जल में पकावें, चतुर्थांश रहने पर मल कर छान लें। इस में ४ रत्ती से १ माशा पिप्पली चूर्ण और १॥ माशा यवक्षार मिला कर दिन में २-३ वार पिलाने से शुष्क कास शान्त होता है। यह योग वातज कास के प्रारम्भ में ही सेवन कराना लाभप्रद है।

२. कचूर काकड़ासिंगी, पीपल, भारंगी, नागरमोथा, वांसा प्रत्येक १ तो० को भली भांति चूर्ण बनाकर इसमें २॥ तो० बादाम का तैल मिला लें और सब औषधियों से चारगुना गुड़ थोड़े से पानी में चासनी बना कर इस में मिला दें। इस अवलेह की १ तोला से २ तोले तक मात्रा दिन में २-३ वार वातज कासरोग में सेवन कराने से लाभ होता है।

३. भारंगी, द्राक्ष, कचूर, काकड़ासिंगी, पीपल, सोंठ, प्रत्येक १ तो० का सूक्ष्म चूर्ण करलें तथा २½ तोले बादामरोगन और सब औषधियों से ४ गुणा गुड़ मिला कर उपरोक्त विधि से अवलेह बना कर ऊपर लिखे प्रयोग के समान सेवन कराने से रोगी को लाभ होता है।

४, सोंठ, धमासा, काकड़ासिंगी, द्राक्ष, कचूर, प्रत्येक १ तो०, बादामतैल २॥ तो०। अब औषधियों से ४ गुनी मिश्री मिलाकर उपरोक्त विधि से अवलेह बना सेवन करावें।

चित्रकाद्यवलेह

चित्रकमूलछाल, पिप्पलामूल, नागरमोथा, त्रिकटु, धमासा, कचूर, पोहकरमूल, गजपीपल, तुलसीपत्र, वच, भांरङ्गी, गिलोय, रास्ना, काकड़ासिंगी प्रत्येक १ तो० लेकर इनको यवकुट कर २॥ सेर कटेरी छोटी के क्वाथ में पकावें। इस छोटी कटेरी का क्वाथ बनाने के लिये ८ छटांक कण्टकारी

को ५ सेर जल में पकावें और २॥ सेर शेष रहने पर मल कर छान लें और उपरोक्त औषधियां डाल कर पकावें, जब चतुर्थांश रह जावे, तो मल कर छान लें। इसमें १ सेर मिश्री, १६ तो. घी डाल कर पकावें और लेह के समान पाक होने पर इसमें १६तो० मधु, ८तो० पीपल का चूर्ण और ८ तो० वंशलोचन मिला कर रक्खें।

मात्रा—१ तो० से २ तोले तक इसे दिन में २–३ बार दें।

यह वातज कास की अति प्रकोप की हालत में सेवन कराना चाहिये।

रास्नादि घृत

रास्ना ४ तो०, विल्व, श्योनाक, गम्भारी, पाढ़ल, गोखरू, कण्टकारी छोटी, कण्टकारी बड़ी; शालपर्णी, पृष्टपर्णी प्रत्येक ४ तो०; शतावर ४ तो०, कुलथी जङ्गली शुष्क बेर, जौ प्रत्येक ३पाव; उड़द (राजमाष या लोभिया) २॥ सेर। सब को एकत्र कर १६ सेर पानी में पकावें और चतुर्थांश रहने पर छान लें। अब घी ४ सेर और गोदुग्ध ४ सेर मिला काकोली, क्षीर काकोली, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि प्रत्येक ४ तो० को दूध में पीस कर उपरोक्त क्वाथ आदि में मिला मन्दाग्नि पर पाक करें घृतमात्र शेष रहने पर छानें।

मात्रा - ६ माशे से १ तो० तक।

अनुपान – गाय के गरम दूध में मिला कर दिन में २-३ बार पिला दें। यह अति प्रबल वातकास के लिये अमृत के समान है।

अमृतार्णव रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, सुहागा खील, रास्ना, वायविडङ्ग, त्रिफला, देवदारु; चित्रकमूलछाल, गिलोय, पद्माख, शुद्ध विष समान भाग लें। प्रथम पारे गन्धक की उत्तम कज्जली कर शेष औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण कर मिलावें और इसमें इस परिमाण में मधु डालें कि गोली बनाने योग्य हो जावे और दो २ रत्ती की गोली बना लें।

प्रातः सायं गोदुग्ध के साथ।

अनुपान—प्रातः सायं गर्म गोदुग्ध से दें। इसके प्रयोग से वातज कास शान्त होता है।

सूचना—इस प्रयोग में पड़ने वाली लोहभस्म शार्ङ्गधरोक्त मनःशिलाः के योग से न्यून से न्यून ६० पुटी होनी चाहिये।

बृहद्रसेन्द्र गुटिका

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, वज्राभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म, शुद्ध विष, शुद्ध मनसिल, यवक्षार, सर्जक्षार, सुहागा, धत्तूरबीज, मरिच प्रत्येक समभाग। पारे गन्धक की उत्तम कज्जली कर शेष औषधियों का बारीक चूर्ण कर उसमें मिलाने के बाद निम्न हरी बनस्पतियां के रस २-२ तोले में खरल कर एक २ रत्ती की गोली बनावें।

चित्रक, मानकन्द, मण्डूकपर्णी, भांग, भांगरा, कुक्कुटभङ्गरा (कुक्कड़-घिद्दी) अदरक, सम्भलु।

मात्रा— १ से २ गोली तक।

अनुपान—६ माशे अदरक रस में मिला प्रातः सायं सेवन करने से वातज कास प्रबलवेग होने पर भी शान्त होता है।

सूचना— इसमें प्रयुक्त होने वाली अभ्रकभस्म रसेन्द्रसारोक्त शृङ्गेरादि गण, ताम्रभस्म, पारद गन्धक तथा बांसा रस के योग से बनी हुई, लोहभस्म मनासिल योग से बनी प्रयुक्त करनी चाहिये। इसमें मनसिल आर्द्रकरस से शुद्ध की हुई तथा हरताल तिल तैल, गोमूत्र तथा कुलथी के कषाय में शुद्ध की हुई प्रयुक्त होनी चाहियें।

वातजकास में रोगी के लिये भोजन के बाद दोनों समय राजयक्ष्मा में कहा गया द्राक्षारिष्ट २॥ तो० सेवन कराने से लाभप्रद सिद्ध होता है।

वातजकास में पथ्य

वास्तुको वायसी शाकं मूलकं सुनिषण्णकम्।
स्नेहास्तैलादयो भक्ष्याः क्षीरेक्षुरसगौडिका॥

दध्यारनालाम्रफलं प्रसन्नापानमेव च ।
शस्यते वातकासे तु स्वाद्वम्ललवणानि च ।
ग्राम्यानूपोदकैः शालियवगोधूमषष्टिकान् ।
रसैर्माषात्मगुप्तानां यूषैर्वा भोजयेद्धितान् ॥

वातजकास रोग में वथुआ, मकोय, कच्ची मूली, चौपातिया, घृत, तैल आदि स्नेह, दूध, गन्ने का रस, खाण्ड, दही, कांजी, खट्टे फल, शराब, मधुर-अम्ल तथा लवण रसयुक्त पदार्थ पथ्य हैं। ग्राम्य, आनूप तथा जल जन्तुओं का मांस, यूष, उड़द तथा जौ गेहूं और साठी के चावल पथ्य के तौर पर प्रयोग करने उचित हैं।

पित्तजकास निदान

उरोविदाहज्वरवक्त्र शोषैरभ्यर्दितस्तिक्त मुखस्तृषार्त्तः ।
पित्तेन पीतानि वमेत्कटूनि कासेत्सपाण्डुः परिदह्यमानः ॥

पित्तजन्य खांसी में शरीर तथा छाती में जलन, ज्वर, मुख का सूखना, मुख का स्वाद कड़वा रहना, प्यास लगना, खांसते समय थूक के साथ पीली और कड़वी श्लेष्मा निकलना, रोगी का रङ्ग पीला होना तथा दाह आदि होते हैं।

पित्तजकास चिकित्सा

द्राक्षाद्यवलेह

१. द्राक्ष, मुलहठी, खजूर, पीपल, मरिच प्रत्येक १ तो०, गोघृत २॥ तो० मिला सब औषधियों से चार गुना मधु मिलाकर अवलेह बना लें। इस अवलेह के प्रयोग से पित्तजकास में लाभ होता है।

२. काकोली, बड़ी कटेरी, मेदा, महामेदा, वांसा, सोंठ प्रत्येक ४ माशा लें ८ छटांक पानी में पकावें, चतुर्थांश रहने पर छान कर इसमें १ पाव गोदुग्ध मिला कर पाक करें। दुग्धमात्र रह जाने पर इसमें आवश्यकतानुसार मिश्री मिला कर प्रातः सायं सेवन करावें।

३. खरैंटी, कटेरी छोटी, कटेरी बड़ी, द्राक्ष, बांसा प्रत्येक ५ माशे लें ३२ तो० पानी में पका चतुर्थांश रहने पर मिश्री मिला प्रातः सायं पिलावें।

४. तृणपंचमूल, पीपल, द्राक्ष सब मिलित २॥ तो० लें ८ छटांक गाय या बकरी के दूध में औटा कर छान लें और १ तो० मधु तथा २ तो० मिश्री मिला प्रातः सायं रोगी को पिलाने से पित्तजकास शान्त होती है।

५. कचूर, सुगन्धबाला, बड़ी कटेरी, सोंठ प्रत्येक ६ माशे को ८ छ० जल में पकावें, चौथाई रहने पर मल कर छान लें और २ तो० गोघृत पतीली में डाल कर अग्नि पर रक्खें, लाल होने पर क्वाथ डालकर छोंक दें। इसे उतार २॥तो. मिश्री मिलाकर रोगीको प्रातः सायं सेवन कराने से प्रबल पित्तकास में लाभ होता है।

नोट—यह पांचों योग पित्तजकास की प्रारम्भ अवस्था में जब खांसी हुए अभी ८-१० दिन ही हुए हों, सेवन कराने से शीघ्र लाभ होता है।

षट्प्रस्थ घृत

भैंस, बकरी, भेड़, गौ प्रत्येक का दूध १-१ सेर, आमलेकी रस १ सेर, गोघृत १ सेर मिला मन्दाग्नि पर पाक करें, घृतमात्र अवशिष्ट रहने पर उतार लें।

मात्रा—६ माशे से १ तोला तक।

अनुपान—४ छटांक गोदुग्ध में मिला कर मिश्री मिला कर पीने से अति बढ़ा हुआ पित्तकास शान्त होता है।

क्षीरघृत

बड़, गूलर, पीपल, पारस पीपल और पाखर के कोमल अंकुर २०-२० तो०, गोदुग्ध ५ सेर मिला कर इनका पाक करें। इसी में १ सेर गोघृत और १ पाव द्राक्ष का कल्क मिला दें। घृतपाक की तरह पाक कर छान लें।

मात्रा—६ माशे से १ तो० तक।

अनुपान—इसे पाव भर गोदुग्ध में मिश्री मिला प्रातः सायं सेवन करावें।

पित्तकासान्तक रस

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, कृष्णाभ्रकभस्म समान भाग लेकर कसौंदी, अगस्तिया और अमलवेद के रस में तीन २ दिन खरल करके १ रत्ती से २ रत्ती की गोली वना लें।

मात्रा एक २ गोली प्रातः सायं।

अनुपान—इसको ३ माशे मिश्री और २ छोटी इलायची के चूर्ण से गोदुग्ध या बकरी के दूध में सेवन कराने से पित्तजकास नष्ट होती है।

सूचना—इस रस में प्रयुक्त होने वाली ताम्रभस्म पारद-गन्धक और वांसा रस से तथा अभ्रकभस्म रसेन्द्रसारोक्त किरातादिगण द्वारा बनी हुई तथा रससिन्दूर द्विगुण गन्धक जारित प्रयोग करना चाहिये।

लक्ष्मीविलास रस

शुद्ध पारा १ पल, हरताल शुद्ध १ पल, खर्पर आधा पल, वङ्गभस्म, ताम्रभस्म, नागरमोथा, लोहभस्म, कांस्यभस्म, शुद्ध गंधक प्रत्येक १-१पल लें। पारे गन्धक की कज्जली कर शेष औषधियों का बारीक चूर्ण मिलावें और कुक्कुडछिद्दी के रस में ३ दिन, एला, जायफल, तेजपत्र, लौंग, श्वेत-जीरा, देसी अजवायन, त्रिफला, त्रिकटु समान लेकर कषाय बना निरन्तर ७ दिन खरल करने के बाद एक २ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—एक २ गोली। इसे प्रातः सायं ठण्डे पानी अथवा बकरी के धारोष्ण दूध के साथ सेवन करने से अति प्रबल पितजन्य कास शान्त होती है।

सूचना—इसमें प्रयुक्त होने वाली वङ्गभस्म खरैंटी तथा घीकार के योग से बनी, ताम्रभस्म तथा कांस्यभस्म पारद-गन्धक तथा वांसारस के योग से बनी, लोहभस्म मनःशिला योग से तय्यार की हुई प्रयुक्त होनी चाहिये।

शृङ्गाराभ्र

कृष्णाभ्रकभस्म ८ तो०, कपूर, जावित्री, सुगन्धबाला, गजपीपल, तेजपत्र, लौंग, बालछड़, तालीशपत्र, नागकेसर, दारचीनी, कूठ मीठी, धाय के फूल—प्रत्येक ४ माशे, सोंठ, मरिच, पीपल, बहेड़ा, आमला, हरड़ प्रत्येक ३ माशे, छोटी एला ८ माशे, जायफल ८ मा०; गोघृत तथा बकरी के दूध में शोधित गन्धक १ तो०, शुद्ध पारा ४ मा० लें। प्रथम पारे गन्धक की कज्जली कर शेष औषधियों का अति सूक्ष्म चूर्ण कर उसमें मिलावें और ताज़े जल से भली प्रकार खरल कर एक रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—एक २ गोली।

अनुपान—इसको प्रातः सायं धारोष्ण बकरी के दूध से सेवन करावें। यह योग प्रबल पित्तजकास की उत्तम औषधि है।

सूचना—इसमें कृष्णाभ्रकभस्म रसेन्द्रसारोक्त किरातादिगण द्वारा सिद्ध की हुई प्रयोग करनी चाहिये।

लवङ्गादि वटी

लौंग १ तो०, मरिच १ तो०, बहेड़े का छिलका १ तो० कत्था श्वेत १तो०को बारीक पीसकर बबूल की छाल के कषाय में ४ रोज़ खरल करें और १ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—दिन में ३–४ गोली तक।

अनुपान—इसको मिश्री के साथ चूसते रहने से पित्तजकास में शीघ्र लाभ होता है।

मरिचादि वटी

मरिच, पिप्पली, यवक्षार प्रत्येक १ तो०, अनारदाना २ तो० को बारीक पीस कर इसमें इतना दो साल का पुराना गुड़ मिलावें कि गोली बांधने लायक़ हो जावे।

मात्रा—इसकी २ रत्ती की ३–४ गोली दिन में मुख में रख कर चूसने से पित्तजकास को शीघ्र नाश करती है।

मधुयष्ट्यादि वटी

मुलहठी का चूर्ण ५ तो०, कतीरा गोंद २ तो०, गोंद कीकर २ तो०, छोटी एला १ तो०, द्राक्ष ४ तो०, मिश्री ५ तो० । सब को बकरी के दूध में खरल कर ४ रत्ती की गोली बना लें ।

मात्रा--४-५ गोली तक दिन में मुख में रख कर चूसनेसे पित्तकास शान्त होती है ।

वासासव

वांसापत्रस्वरस १ सेर, मृतसंजीवनी सुरा १ सेर । दोनों को मिला कर १५ दिन किसी उत्तम कांच के पात्र में बन्द कर रखें, १५ दिन बाद खोलकर नितरा हुआ आसव छान कर शीशी में रक्खें ।

मात्रा--१ मा० से ३ मा० तक ।

अनुपान--इसको मिश्री मिले बकरी के दूध में दिन में दो बार प्रातः सायं सेवन कराने से पित्तकास का नाश होता है ।

कफकास निदान

प्रलिप्यमानेन मुखेन सीदन् शिरोरुजातः कफपूर्ण देहः ।
अभुक्तरुग्गौरवसादयुक्तः कासेद्भृशं सान्द्रकफः कफेन ।

श्लेष्मजन्य कास में रोगी का मुख कफ से लिप्त रहता, शिरोवेदना होती, शरीर में कफ का प्रकोप होता, भूख का नाश होता, शरीर भारी रहता तथा खांसी के साथ गाढ़ा श्लेष्म बार २ थूका जाता है ।

कफकास चिकित्सा

कफजे छर्दनं कार्यमामे लङ्घनमेव च ।
शस्तं यवान्न विकृति यूषांश्च कुटतिक्तकान् ॥

कफकास में प्रथम वमन करावे, यदि कफ आम हो, कच्चा हो, तो

लंघन श्रेष्ठ है, जौ का आटा तथा कटु-तिक्त रस यूष का सेवन कराना चाहिये और कफ के नाश करनेवाले अन्य उपचार करने चाहिये।

कट्फलादि क्वाथ

कायफल, सुगन्धवाला, भारंगी, नागरमोथा, धनिया, खरैटी, हरड़, सोंठ, पित्तपापड़ा, काकड़ासिंगी सब मिला कर २ तोले को आध सेर पानी में पका चौथाई रहने पर इस में २ तोला भुनी हींग मिला कर देने से श्लेष्म कास का लोप होता है।

लवंगादि सम शर्कर चूर्ण

लौंग, जायफल, पिप्पली प्रत्येक २ तोलें, मरिच ६ माशे, सोंठ १६ तोले सब को बारीक पीस सब के बराबर मिश्री मिला लें।

मात्रा— एक माशे से ३ माशे तक दिन में २-३ वार मधु में मिला कर चटाने से पित्तजकास में लाभ होता है।

३. अदरकरस २ तो., मधु १ तो. दोनों को मिलाकर दिन में २-३ वार चाटने से कफजकास शान्त होती है।

४ पोहकरमूल, कायफल, भारंगी, सोंठ, पीपल, प्रत्येक ४ माशे को ८ छटांक जल में पका चतुर्थांश रहने पर छान कर रस में २ तो मधु मिला कर प्रातः सायं पिलाने से कफ जन्य खांसी शान्त होती है।

श्री चन्द्रामृत लोह

त्रिकटु, त्रिफला, धनियां, चव्य, कालाजीरा, सेन्धा नमक प्रत्येक १ तो०, मनसिल द्वारा भस्म किया हुआ लोह १० तो० इन सब को जल से खरल कर के ४ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा-२-३ गोली दिन में मुख में रख कर चूसने को कहें।

श्रीचन्द्रामृत लोह कफज कास रोग में ऐसी अवस्था में सेवन करावें, जब कफ के साथ वातांश के कारण कफ शुष्क होकर रुका हुआ हो। यह श्लेष्मा को पतला कर निकालने के लिये रामबाण है।

श्री चन्द्रामृत रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, मनसिल द्वारा भस्म किया लोह प्रत्येक

१ तो०, सुहागा की खील ४ तो०, मरिच २ तो०; त्रिफला; त्रिकटु, चव्य; धनियां; काला जीरा; सेन्धा नमक प्रत्येक १ तो० । प्रथम पारे गन्धक की कज्जली कर शेष औषधियों का चूर्ण कर मिलावें और बकरी के दूध में खरल कर ३ रत्ती की गोली बना कर रख लें ।

मात्रा—२-३ गोली चूसने को दें ।

श्लेष्मजन्य कास के लिये कुछ सिद्ध योग

१. सौंचल नमक ४ छटांक ले बारीक पीसें; एक हांडी में १ सेर अर्कदुग्ध और पिसा हुआ नमक डालकर भली प्रकार कमरौटी कर गजपुट में फूँक दें । शीतल होने पर निकाल कर पीसने के बाद सुरक्षित रख लें ।

मात्रा—१ रत्ती से ४ रत्ती तक ।

अनुपान—इसको भोजन के १ घण्टा बाद गरम पानी से दें ।

२. मदार का पंचांग लेकर उसको सुखाकर जला डालें, जो राख बने, उसको ८ गुने पानी में घोल डालें और कभी २ हिला दें । यह राख ३-४ दिन पानी में भीगी रहने के बाद उसमें से पानी नितार लें । इस नितरे हुए पानी को कड़ाही में डाल कर हल्की २ आग पर पानी को उड़ा डालें, कड़ाही के तल भाग पर जो नमक सा रह जावेगा, उसे सुरक्षित रक्खें ।

मात्रा—२-३ रत्ती तक ।

अनुपान—दिन में २ बार प्रातः सायं गरम पानी के साथ दें ।

इसके प्रयोग से दमा और खांसी को शीघ्र लाभ होता है ।

३. अजवायन १ सेर को समान अर्कदुग्ध में भिगो दें और दूसरे दिन दोनों को मट्टी के शकोरे में बन्द कर तीव्र अग्नि दें, ठण्डा होने पर औषधि निकाल कर सुरक्षित रख लें ।

मात्रा—१ रत्ती से ३ रत्ती तक ।

अनुपान—प्रातः सायं मधु या गरम पानी से खिलावें ।

इस औषधि के प्रयोग से प्रबल श्लेष्मकास शान्त होती है ।

४. घी में भुना हुआ शुद्ध कुचला चूर्ण तथा पिप्पली चूर्ण सम-भाग मिला कर रक्खें ।

मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक।

अनुपान—मधु अथवा पान के रस के साथ खिलावें अथवा पान में रख कर भोजन के बाद खिला दें।

इस औषधि के प्रयोगसे श्लेष्मजन्य कास तथा श्वास शीघ्र नष्ट होते हैं।

५. हरड़ का छिलका, बहेड़े की बकली, काकड़ासिंगी, भारङ्गी, दारचीनी, भुनी हुई फंटकरी, सुहागा शुद्ध, चित्रकमूलछाल, लौंग, नमक तथा मरिच सब औषधियां समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर खरल में डाल पानी के साथ रगड़ें और बेर के बराबर गोली बना लें।

मात्रा—३-४ गोली तक।

अनुपान—गरम पानी के साथ सेवन करावें।

इससे श्लेष्मज खांसी शान्त होती है।

६. मनःशिला का सूक्ष्म चूर्ण ले पानी मिला लेप सा बना लें और बेरी के पत्तों पर लेप कर इनको छाया में सुखा लें। इनमें से ३-४ पत्ते चिलम में रखकर रोगी को धूम्रपान कराने से श्लेष्मकास का वेग तथा श्वास नष्ट होते हैं।

७. हालों के बीज १ माशा ले उनको ६ माशे मधु में मिला कर कुछ दिन प्रयोग कराने से कफकास शान्त होती है।

८. अपामार्ग को जला कर उसी की राखमें से क्षार की विधि से क्षार तय्यार कर लें।

यह क्षार २-३ रत्ती की मात्रा में कुछ दिन रोगी को सेवन कराने से कफकास रोगी को लाभ होता है।

मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक।

क्षतजकास रोग निदान

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजनिग्रहैः।
रूक्षस्योरः क्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमावहेत्।
सपूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठीवेत्सशोणितम्।
कण्ठेन रुजतात्यर्थं विभिन्नेनैव चोरसा।

सूचिभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना ।
दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीड़ाभितापिना ॥
पर्वभेदज्वरश्वास तृष्णावैस्वर्यपीड़ितः ।
पारावत इवाकूजन् कासवेगात् क्षतो भवेत् ॥

अत्यन्त मैथुन, अधिक भार उठाना, अधिक शक्ति का कार्य्य करना अधिक मार्ग चलने तथा अन्य कारणों से रूक्ष मनुष्यों की छाती में व्रण हो जाता और वायु का वेग होने से कास हो जाती है। इसमें प्रथम सूखी खांसी आती और फिर रुधिर आने लगता है, साथ ही कण्ठदेश तथा छाती में असह्य पीड़ा होती है। शरीर की सन्धियों में पीड़ा, ज्वर, श्वास, प्यास, स्वरभेद तथा अन्य लक्षण होते हैं और रोगी के गले का स्वर भिन्न होता है। यह लक्षण क्षतकास के समझने चाहियें।

क्षतकास चिकित्सा

कासे तु क्षतजे बल्यैर्जीवनीयैर्घृतैरपि ।
शमनैः पित्तकासघ्नैरन्यैश्च मधुरौषधैः ॥

क्षतजन्य कास में बलकारक, जीवकऋषभकादि अष्टवर्ग तथा जीवनीय गण द्वारा सिद्धघृत तथा अन्य औषधियों से तथा पित्तहर और कासहर मधुर शमन औषधियों से चिकित्सा करनी उचित है।

इक्ष्वाद्यवलेह

ईख, इक्षुबालिका, पद्म (कमल), नीलकमल, चन्दन, मुलहठी, पिप्पली, द्राक्षा, पिप्पलकी लाख, काकड़ासिंगी, शतावरी एक २ भाग तथा वंशलोचन २ भाग का चूर्ण कर ४ गुनी मिश्री की चासनी बना लें। संपूर्ण चूर्ण से चतुर्थांश घी मिलाकर लेह तय्यार करें; ठण्डा होने पर इसमें ½ भाग मधु मिला दें।

मात्रा—१ तो० से २ तो० तक।

अनुपान—इसे बकरी के दूध के साथ पिलावें।

वासाकूष्माण्डावलेह

उत्तम पेठा ले उसे भली प्रकार छील कर कद्दूकस कर लें और उसके अपने ही पानी में उबालें। यदि पेठा २॥ सेर हो तो उसमें आधा सेर घी डालकर भूनें और उत्तम ४ सेर खांड को ४ सेर पानी में चाशनी बनावें तथा उसमें भुना हुआ पेठा और निम्नौषधियों का बारीक चूर्ण मिलावें—

वंशलोचन, आंवला, नागरमोथा, भारङ्गी, दालचीनी; इलायची, तेजपत्र प्रत्येक २ तो०, पिप्पली चूर्ण ८ तो०, मधु ८ छटांक।

मात्रा—१ तो० से २ तो० तक।

अनुपान—इसे बकरी के दूध के साथ सेवन करावें।

यह क्षतजकास की श्रेष्ठ औषधि है।

३. मजीठ, मूर्वा, तगर, चित्रकमूलछाल, पाढल, पीपल, हल्दी, समभाग का बारीक चूर्ण कर इसमें सम्पूर्ण चूर्ण से आधा घी मिलावें और चारगुना शहद डालें।

मात्रा—१ तो० से २ तो० तक।

अनुपान—बकरी के दूध से सेवन करावें।

क्षतजकास रोग में दूध

ईख, खस, कमलफूल, कमलनाल, कुमोदिनी, चन्दनश्वेत प्रत्येक ४ माशा को ८ छटांक पानी में पकावें और चौथाई रहने पर छान कर आध सेर बकरी का दूध मिलावें और फिर पकाकर दूधमात्र रहने पर इसमें २ तो० मधु और मिश्री मिलाकर रोगी को पीने को दें। क्षतजकास रोगी के लिये यह दूध अतिश्रेष्ठ है, इससे रोगी की शारीरिक शक्ति में वृद्धि होती तथा कास के मूल कारण क्षत को भी लाभ होता है।

नोट—उपरोक्त योग क्षतजकास की सामान्य अवस्था में लाभकर है विशेष अवस्था में अर्थात् रोग बढ़ने पर जब श्लेष्मा के साथ रक्त भी आता हो, रोगी को राजयक्ष्मा में कहे वासावलेह, वासाघृत, कूष्माण्डावलेह और निम्न रसों में से कोई रस भी सेवन कराने चाहियें।

१. मुक्ता ३ माशा, सुवर्णभस्म १॥ माशा, प्रवाल ६ माशा, मुक्ताशुक्तीभस्म ६ माशा। सब को वासारस में ७ दिन खरल करके टिकिया बनावें और वासापत्तों की लुगदी में सम्पुट कर ५ सेर बनकण्डों की आग दें। जब कंडे निर्धूम हो जावें, उस समय सम्पुट इन अङ्गारों में रखें, स्वाङ्गशीत होने पर टिकिया निकाल कर पीस लें।

मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक।

अनुपान—प्रातः सायं वासाकूष्माण्डावलेह में मिला कर चटावें, और औषधि खाने के १ घण्टा बाद उबाल कर ठण्डा किया बकरी का दूध पिलावें।

२. सङ्गज़राहत ५ तो० को पेंठे के रस में निरन्तर ४ दिन खरल कर टिकिया बना लें और मिट्टी के शकोरे में बन्द कर ५सेर कण्डों की आग देवें। स्वांगशीत होने पर निकालकर फिर इसी प्रकार कूष्माण्डरस में खरल करने के बाद आग दें, इसी प्रकार ७ आग देने के बाद उत्तम हीरा दोखी (खूनस्यावशां) २ तो० पीसकर इसमें मिला देवें।

मात्रा—४ रत्ती प्रातः ४ रत्ती सायं।

अनुपान—इसे वासावलेह या कूष्माण्डावलेह में देवें, इसके १ घण्टा बाद बकरी का दूध पिलावें।

३. उत्तम बालू रेत, जिसमें मिट्टी का कण भी न हो, को निरन्तर ३ दिन सूखा खरल करें और फिर २१ दिन लोहिता अजा (लाही बकरी) के दूध में खरल करें टिकिया बनावें और मिट्टी के शकोरे में रख २० सेर उपलों की आग देवें, शीतल होने पर निकाल कर पीसें और समानभाग, गेरू सूक्ष्म कर मिला देवें।

मात्रा—४ रत्ती से १ माशा तक।

अनुपान—प्रातः सायं बकरी के दूध के साथ देवें॥

४. श्वेत सुरमा ५ तोले को यवकुट कर एक पोटली में बांधकर पीपल वृक्ष के स्वरस या क्वाथ में ७ दिन तक दोलायन्त्र करें और निकाल कर बारीक पीस लें, इसमें समान भाग पीपल की लाख का चूर्ण मिला दें,

मात्रा—४ रत्ती से १ माशा तक।

अनुपान—प्रातः सायं बकरी के दूध से सेवन कराने से क्षतज-कास शान्त होता है।

रक्तपित्ताधिकार में कहा गया उशीरासव भी अन्य औषधियों के साथ १॥ तो० से २ तो० की मात्रा में दोनों समय सेवन कराना चाहिये।

क्षयजकास निदान

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायातिप्रजागरैः ।
घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः ॥
कुपिताः क्षयजं कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् ।
सगात्रशूलज्वरदाहमोहान् प्राणक्षयं चोपलभेन कासी ॥
शुष्कं च निष्ठीवति दुर्बलश्च प्रक्षीणमांसो रुधिरं सपूयम् ।
इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देह नाशनः ॥
साध्यो वा बलवतां स्याद्याप्यस्त्वेवं क्षतोत्थितः ।
नवौ कदाचित्सिध्येतामपि पादगुणान्वितौ ।
स्थविराणां जराकासः सर्वो याप्यः प्रकीर्तितः ॥
त्रीन् पूर्वान्साधयेन्साध्यान् पथ्यैर्पाण्यांस्तु यापयेत् ।

विषम तथा रुचि के विरुद्ध भोजन, विषम आचार व्यवहार, अधिक मैथुन, अधिक रात्रि में जागना, अधिक चिन्ता आदि कारणों से निर्बल मनुष्यों के तीनों दोष कुपित होकर क्षयकास उत्पन्न कर देते हैं, जिससे शरीर अति कृश हो जाता, शरीर में शूल, ज्वर, जलन, तथा मोह आदि लक्षण होकर धीरे २ क्षयकास रोगी का अन्त हो जाता है। उपरोक्त लक्षणों के साथ यदि शरीर अति निर्बल हो, रोगी का मांस भी क्षीण हो गया हो, सूखी खांसी के साथ रुधिर तथा पूय आते हों, तो रोगी को असाध्य समझना चाहिये। यह क्षयज कास यदि निर्बल रोगी को हो जावे, तो उसका बचना कठिन है, यदि रोगी बलवान् हो तो लाभ की आशा होती है।

क्षतज तथा क्षयज कास, प्रारम्भिक अवस्था में यदि भली प्रकार चिकित्सा की जावे, तो साध्य भी हैं, परन्तु फिर इनकी चिकित्सा कठिन हो जाती है। इनमें प्रथम वातज, पित्तज तथा कफज कास की चिकित्सा शीघ्र होने पर लाभ हो जाता है और यदि रोग याप्य हो, तो अनुकूल पथ्य देना चाहिये, जिससे रोगी को यथोचित लाभ होता है।

क्षयजकास चिकित्सा विधि

यद्यपि क्षयजकास राजयक्ष्मा के अन्तर्गत ही है, परन्तु प्राचीन वैद्यक ग्रन्थों में इसे कासाधिकार में भी लिखा है, अत इसके शमनार्थ कुछ अनुभूत योग लिखे जाते हैं—

१. पिप्पली, पद्माख, पीपल की लाख, कण्टकारी फल समभाग ले बारीक चूर्ण कर चूर्ण से चौथाई गाय का घी मिला चारगुना मधु मिला अवलेह बना लें।

मात्रा—१ तो० से २ तोले तक प्रातः सायं सेवन करावें।

२. वासापत्र रस १ सेर, एरण्डतैल द्वारा बनी स्वर्णमाक्षिकभस्म ८ तोला, मिश्री ३ पाव, पिप्पली चूर्ण ४ तोला घी २ छटांक, इन सब को उत्तम कलईदार वर्त्तन में डाल कर लेह के समान पाक कर लें।

मात्रा—१ तोला की मात्रा प्रातः सायं सेवन करावें।

अश्वगन्धामृत

उत्तम असगन्ध नागौरी ५ सेर को यवकुट कर २० सेर पानी में पकावें, चतुर्थांश रहने पर मल कर छान डालें। अब बलवान् तथा अक्षत-वीर्य बकरे का १० सेर मांस ले इसे २० सेर पानी में पकावें, जब जल आधा रह जावे और मांस भली प्रकार गल जावे, तो उसे निचोड़ कर इस कषाय को अश्वगन्धों के कषाय में मिला लें। इसमें १। सेर उत्तम गोघृत और ५ सेर गोदुग्ध मिला निम्नौषधियों का सूक्ष्मचूर्ण डालकर मन्दाग्नि पर पाक करें, जब घृतमात्र रह जावे, उस समय नितार कर छान लें।

प्रक्षेपचूर्ण द्रव्य—काकोली, क्षीरकाकोली (अभाव में विदारीकन्द) ऋद्धि, वृद्धि (अभाव में शकाकुल) मेदा, महामेदा (अभाव में बहमन सुर्ख और बहमन श्वेत), जीवक, ऋषभक, (अभाव में मूसली श्वेत और

मूसली काली), बासापत्र, कौंचबीज, छोटी इलायची, मुलहठी, द्राक्ष, जवासा, पिप्पली, गजपीपल, खरैंटी, विदारीकन्द, शतावर प्रत्येक २ तोला।

यह घृत तय्यार होने पर उसमें १६ तो० मधु तथा १६ तो० मिश्री चूर्ण मिला कर रक्खें।

मात्रा—३ माशे से १ तो० तक।

अनुपान—बकरी के दूध के साथ प्रातः सायं सेवन करावें।

कुक्कुटादि घृत

एक बलवान तथा अक्षतवीर्य कुक्कुट (मुर्गा) का मांस २॥ सेर लेकर इसे चारगुना पानी में पकावें, चतुर्थांश रहने पर जब मांस भली प्रकार गल जावे, उस समय निचोड़ कर छान लें कण्टकारी पंचांग ४सेर को १६ सेर पानी में पकावें और चौथाई शेष रहने पर मल कर छान लें, दोनों क्वाथ मिला कर २सेर गोघृत, जवासा, रास्ना, वचं, पिप्पली, गजपीपल, चित्रकमूलछाल, पीप्पलीमूल, सौंचल नमक, मनसिल प्रत्येक ४ तो० मिलाकर गोदुग्ध ४ सेर डालने के बाद मृदु अग्नि पर पाक करें; जब घृतमात्र ही शेष रह जावे, उस समय नितार कर छान लें।

मात्रा—६ माशे से १ तोला तक।

नोट यह घृत श्लेष्म प्रधान होने पर अति लाभ करता है, इससे रोगी का बल बढ़ता, शरीर में कान्ति आती तथा रोग नष्ट होता है।

यह योग सहस्रशः अनुभूत है।

कण्टकारी अवलेह

कण्टकारीपंचांग ५ सेर को कुचल कर २० सेर जल में पकावें, चतुर्थांश रहने पर छानें, अब इसमें धमासा, गिलोय, भारंगी, काकड़ासिंगी, रास्ना, नागरमोथा, कचूर, चव्य, चित्रकमूलछाल, त्रिकटु प्रत्येक ४ तो०, उत्तम खांड २ सेर मिलाकर भली प्रकार पाक करें। लहे के समान होने पर उतार लें और मधु आधा सेर, वंशलोचन ८ तो०, तथा पीपलचूर्ण ४ तोले मिलावें।

मात्रा—१ तोला से २ तो० तक प्रातः सायं सेवन करावें।

इस अवलेह के प्रयोग से हर प्रकार का कासरोग नाश होता, रोगी

का शरीर कांतियुक्त होता और बलवान् होकर रोग का नाश होता है ।

बृहत् कुलत्थ गुड़

शुष्क मूली १६ तो०, सोंठ १६ तो०, उत्तम कुलथी १६ तो०, दशमूल १६ तो० को यवकुट कर १६ सेर जल में पकावें, चतुर्थांश रहने पर आग से उतार कर छान लें। अब इसमें ३२ तो. घृत तथा ३२ तो० तिल-तैल अग्नि पर भली प्रकार तपा कर मिलावें और ५ सेर उत्तम १ वर्ष का पुराना गुड़ डालकर चासनी तय्यार करें, लेह के समान होने पर अग्नि से उतार कर निम्नौषधियों का चूर्ण मिलावें—

ज़ीरा, चव्य, काकड़ासिंगी, भारंगी, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, कायफल, नागरमोथा, अजवायन, कचूर, पोहकरमूल, सोंठ, मरिच, पिप्पली, प्रत्येक २ तो० । यह चूर्ण मिलाने के बाद शीतल होने पर ८ छटांक उत्तम शहद मिलाने के बाद चिकने पात्र में रक्खें।

मात्रा—१ तोला से २ तोले तक दिन में २–३ बार चटावें ।

यह क्षयज कास के लिये एक उत्तम योग है ।

इसके सिवाय क्षयज कास म, राजयक्ष्मा में कहे राजमृगाङ्क रस, मृगांक पोटलीरस, छागलादि घृत, बृहद्वासावलेह आदि योग रोगी के बल, अवस्था, तथा देश, कालानुसार सेवन कराने चाहिये ।

क्षयजकास के लिये कुछ सद्यः फलप्रद योग

१. कुन्दरू १ तोला, गोंद बबूल १ तोला, शिलारस १ तोला, सत मुलहठी १ तोला, अफ़ीम ६ माशे को मुलहठी के क्वाथ में खरल कर एक २ रत्ती की गोली बनावें ।

मात्रा—१ गोली ।

इसके सेवन से अति प्रबल खांसी भी शान्त होती तथा रोगी रात्रि में सुख की नींद सो जाता है । यह औषधि रोगी को रात्री के समय सेवन कराने से विशेष लाभ होता है ।

२. पोस्त डोडा २० नग, लसूड़ियां ३० नग, सौंफ १तोला, ख़तमी १ तो० । सब को आठ छटांक पानी में पकावें, आधा रहने पर इसमें ८ छ० खांड मिलाकर चासनी बनावें और सतमुलहठी ६ माशा, गोंद बबूल ४ मा०

गोंद कतीरा २ माशा पीस कर मिलावें ।

मात्रा—६ माशे से १ तोला तक रात्री को सोते समय सेवन करावें

यह योग भी क्षयजकास में रोगी को निद्रा लाने के लिये उत्तम है ।

३. एक उत्तम पका हुआ शलजम लेकर इसपर कपड़ा लपेटें और कपड़े पर एक अंगुल मोटी मिट्टी चढ़ा देवें, अब इसे उपलों की आग पर रक्खें और ऊपर की मिट्टी लाल होने पर निकाल लें और मिट्टी तथा कपड़ा उतार साफ़ करके निचोड़ डालें। जितना पानी निकले उसके समान मिश्री मिला कर चासनी बनावें।

मात्रा—इसमें से एक २ तोला दिन में ३-४ बार चाटने से क्षयज-कास को अति लाभ होता है ।

४. गेहूं २ तोला को ८ छटांक पानी में पकावें, चतुर्थांश रहने पर इसे मल कर छानें और २ माशा सेन्धा नमक मिलाकर हलका गरम ही चाय की तरह पिला देवें। यह क्वाथ प्रातः सायं पिलाने से क्षयजकास में सद्यः फलप्रद सिद्ध होता है ।

काग गिरने से उत्पन्न होने वाली खांसी की चिकित्सा

प्रायः पित्तप्रकृति, मन्दाग्नि और कोमल प्रकृति के लोगों को अम्ल-पदार्थ अथवा लाल मरिचादि तीक्ष्ण पदार्थ अधिक खाने से काग लटक जाता है और उसके कारण गले में खरखरी बारबार होकर खांसी आने लगती है। श्लेष्म प्रकृतिके लोगों को भी कभी२ अधिक उष्ण वस्तुओंके सेवनसे यह खांसी हो जाती है, यदि उष्ण प्रकृति के लोगों को अधिक ऊष्मा के कारण यह रोग हो, तो जिह्वा, गला, और काग अति लाल हो जाते हैं, नासिका द्वारा गरम श्वास आता है और यदि श्लेष्मा के कारण काग गिरा हो, तो गला और काग श्वेतरंग के हो जाते तथा काग लटक आता है।

चिकित्सा

१. कमलडोडे की गिरी, वंशलोचन, छोटी इलायची; जीरा श्वेत, धनियां, कत्था प्रत्येक समभाग तथा सबके समान मिश्री मिलावें। इनका सूक्ष्म चूर्ण कर लेवें।

मात्रा—२-३ माशे तक।

अनुपान—इसको ३-४ बार ठण्डे पानी या गोजिह्वार्क से देवें।

यह योग उष्ण प्रकृति तथा पित्त प्रधान रोगी को विशेष लाभ करता है।

२. धनियां ६ माशे, कत्था ६ माशे, फिटकिरी श्वेत १ माशा, गेरू ६ माशे, इनको खूब पीसकर मिट्टी के पात्र में १ सेर पानी में भिगो दें, प्रातः मलने के बाद छानें और इससे गरारे (गण्डूष) करा डालें।

३. घी अथवा तैल से गले को किसी योग्य तथा जानकार व्यक्ति से मलाने से भी इस प्रकार उत्पन्न खांसी शान्त होती है।

४. मकोय हरी ३ तोला, हरी कासनी ३ तो० को १सेर पानी में पकावें, आधा रहने पर ठण्डा होने पर छान कर गरारे करावें, यह भी काग गिरने से उत्पन्न हुए कास रोग की विशेष औषधि है।

५. गूदा अमलतास २तो० को आध सेर पानी में पकावें, तृतीयांश रहने पर छानें इस में २ तो० यवासक शर्करा (तुरंजबीन) मिला कर रोगी को पिला दें। यह भी काग गिरने से उत्पन्न कास में उत्तम है।

६. जूफा २ तो० को १ सेर पानी में उबालें, ३ पाव पानी रहने पर मल कर छान लें और गरम २ में ही २ तो० मधु मिला कर रोगी को सेवन करावें। यह श्लेष्म के कारण काग गिरने से उत्पन्न कास के लिए विशेष औषधि है।

बालकों के काग गिरने से उत्पन्न कास।

माता के गर्म वस्तु अधिक सेवन करने, धूप में चलने या अधिक समय आग के समीप बैठने के कारण दूध में ऊष्मता पैदा हो जाती है और जब बालक वह दूध पीता है तब उस का काग लटक जाता है जिस से बालक को प्रतिश्याय और खांसी हो जाती है। इस के अतिरिक्त दान्त निकलने के समय भी बच्चों को यह शिकायत हो जाती, काग लटक आता, आंख दुखने लगतीं, खांसी होती तथा कभी २ ज्वर भी आने लगता है। इस अवस्था में निम्न योग हमारे अनुभूत हैं।

१. माजू ६ माशे को सिरके में घिस कर तालू के स्थान पर सिर मुण्डवा कर लेप करने से काग गिरने से उत्पन्न कास हट जाती है।

२. मुलहठी ४ रत्ती, गुल बुनफशा १ माशा, नीलोफर फूल १ मा., गाजवां १ माशा, लसूड़े २, उन्नाव १ नग को ५ तोला पानी में पकावें और चौथाई रहने पर ज़रा खाण्ड मिला कर बच्चे को पिलाने से इस प्रकार की कास में लाभ होता है।

३. वंशलोचन ६ माशे, कत्था ६ माशे, छोटी इलायची ३ माशे, जीरा श्वेत ३ माशे, कमलडोडे की गिरी ६ माशे बारीक पीस सब के समान मिश्री मिला लें; इस में से चुटकी भर बच्चे के गले में दिन में २-३ बार डालें, इस से भी काग गिरने से उत्पन्न कास में शीघ्र लाभ होता है।

कुक्कुर खांसी या काली खांसी।

इस कास को जनसाधारण काली खांसी और कुत्ता खांसी के नाम

से पुकारते हैं और एलोपैथी में इसे (Whooping Cough) कहा जाता है ।

कारण तथा लक्षण

यह खांसी प्रायः १० वर्ष से कम आयु के बच्चों को होती है, इस रोग के होने पर बच्चा कुत्ते की तरह खांसता है । इस का तीव्र वेग प्रायः ३ सप्ताह तक रहता है; यह रोग बच्चों के लिये इतना कष्टकर है है कि प्रायः खांसते २ बच्चों का मुख और आंखें लाल हो जातीं, गले की धमनियां फूल जातीं, मुख और नेत्रों पर शोथ आ जाती और खाया हुआ अन्न वमन हो जाता है । यदि इस रोग की चिकित्सा में असावधानी हो जावे या निरन्तर कुपथ्य सेवन किया जावे तो प्रायः इस का परिणाम फेफड़ों में घाव होने के कारण यक्ष्मा ही होता है । इस कारण इस रोग की चिकित्सा में भूल कर भी असावधानी तथा विलम्ब न करना चाहिये; यद्यपि यह कास लगभग ४० दिन की अवधि लेती है परन्तु फिर भी निम्न लिखित सिद्ध योग इस के तीव्र वेग को रोकने के लिए पर्याप्त लाभकर सिद्ध हुए हैं:—

१. काले बकरे की तिल्ली ले कर इस में २० नग छोटी पिप्पली गाड़ दें और एक मट्टी के शकोरे में बन्द कर के १० सेर उपलों की आग में फूंक दें, स्वांग शीतल होने पर निकालकर जितनी भस्म निकलें, उसके समान नौशादर का जौहर मिलावें ।

मात्रा—१ रत्ती से ४ रत्ती तक आयु तथा बलानुसार देवें । यह काली खांसी के लिए एक अत्युत्तम योग है ।

२. काकड़ासिंगी, सोंठ, मरिच, पिप्पली, भारंगी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कण्टकारी, पोहकरमूल, समुद्रनमक, सांभरनमक, लाहौरी नमक, जौहर नौशादर, यवक्षार सम भाग ले इन को सूक्ष्म चूर्णकर कपड़ छान कर के रखें ।

मात्रा—४ रत्ती से १॥ माशा तक गरम जल में घोल कर दिन में ३-४ वार दें, ६ मास से एक वर्ष के बच्चों को ४ रत्ती और आगे २॥ मा. तक दे सकते हैं । यह काली खांसी के लिए रामबाण औषधि है ।

यदि बालक की प्रकृति अति ऊष्ण हो तो प्रातः सायं काली बकरी का धारोष्ण दूध काली खांसी में अति लाभ करता है ।

४. गाय का दूध १ पाव, गाय का घी ६ माशे, पानी २ छटांक को मिला कर पकावें, जब दूध ही शेष रह जावे इस में २ तो० मिश्री मिला थोड़ा थोड़ा पीने को दें । इस से भी काली खांसी शीघ्र नष्ट होती है ।

५ सुहागा श्वेत ५तोले, संखिया श्वेत १। तो०को घीक्वार के रस में ३ दिन खरल कर टिकिया बना लें, इस टिकिया को सुखा कर मिट्टी के शकोरे में रख गजपुट की आग दें । स्वांग शीतल होने पर इस में १० तो० कूजे की मिश्री मिलावें ।

मात्रा—१ रत्ती को दिन में ३-४ बार माता के दूध में दें ।
यह इस रोग के लिए अनुभूत औषधि है ।

कासरोग में पथ्य

स्वेदो विरेचनं छर्दिधूम्रपानं समाशिता ।
शालिषष्टिकगोधूमश्यामाकवयवकोद्रवाः ॥
आत्मगुप्तामाषमुद्ग कुलत्थानां रसाः पृथक् ।
ग्राम्यौदकानूपधन्वमांसानि विविधान्यपि ॥
सुरा पुरातनं सर्पिश्छागं चापि पयो घृतम् ।
वास्तूकं वायसीशाकं वार्ताकुं बालमूलकम् ॥
लाजा दिवस'नद्रा च लघून्यन्नानि यानि च ।
पथ्यमेतद्यथादोषमुक्तं कासागदातुरे ॥

स्वेदन, विरेचन, वमन, धूम्रपान, नियमित आहार, साठी चावल, गेहूं, जौ, कोदों, कौंच के बीज, माष (उड़द), मूंग, कुलथी का रस, ग्राम्य (बकरा आदि), औदक [मछली आदि], मृग आदि का मांस मदिरा, पुराना घी, बकरी का दूध, बथुआ, मकोय, बैंगन; गरम मूली, कण्टकारी, कसौंदी, चौपतिया, बिजौरा नीबू, दाख, बांसा, छोटी इलायची, गोमूत्र, लहसन, हरड़, त्रिकटु, गरम जल, शहद, धान की खील, दिन में सोना, हल्के पदार्थ तथा रोग के कारणीभूत दोष के नाशक पदार्थ कासरोगी के लिए पथ्य हैं ।

कास में अपथ्य

वस्तिं नस्यमसृङ्मोक्षं व्यायामं दन्तघर्षणम् ।
आतपं दुष्टपवनं रजोमार्गं निषेवणम् ॥
विष्टम्भीनि विदाहीनि रूक्षाणि विविधानि च ।
शकृन्मूत्रोद्गारकासवामिवेग विधारणम् ॥
मत्स्यं कन्दं सर्षपं च तुम्बीफलमुपोदिकाम् ।
दुष्टाम्बु चान्नपानं च विरुद्धान्यशनानि च ॥
गुरु शीतं चान्नपानं कासरोगी परित्यजेत् ।

कासरोगी वस्ति, नसवार (नस्य), फस्त खुलवाना, व्यायाम, दातुन करना, अधिक धूप, धूल तथा धुएं वाली वायु, विदाही तथा भारी भोजन रूक्ष पदार्थ, मल-मूत्र-हिचकी-वमन तथा खांसी के वेग को रोकना, बड़ी मछली, सरसों, तुम्बी, चौलाई, दूषित जल, विरुद्ध आहार विहार, गुरु शीतल तथा भारी भोजन आदि का परित्याग करे क्यों कि यह पदार्थ कास-रोगी के लिए अपथ्य हैं ।

प्रतिश्यायरोग

(जुकाम, नज़ला)

आयुर्वैदिक आचार्यों ने प्रतिश्याय को एक भयंकर रोग माना है क्योंकि यही एक ऐसी व्याधि है जिस में किंचित् असावधानी करने से खांसी और राजयक्ष्मा जैसे भयंकर तथा संघातक रोग हो सकते हैं; जैसे कहा भी है:—

प्रतिश्यायाज्जायते कासः कासात्संजायते क्षयः ॥

अर्थात् प्रतिश्याय बिगड़ कर कास और कास से राजयक्ष्मा हो जाता है ।

कारण तथा लक्षण

वैदिक शास्त्रों में प्रतिश्याय के दो भेद माने गये हैं—

१. सद्यः जनित २ चय आदि क्रम से उत्पन्न

१. सद्यः जनित प्रतिश्याय के कारण—

१. सद्यः जनित प्रतिश्याय मल, मूत्र आदि वेगों का रोकना ।
२. अजीर्ण
३. नासिका द्वारा धूल, धूआं आदि जाना ।
४. अधिक बोलना या अधिक ऊंचे स्वर से बोलना ।
५. क्रोध करना ।
६. ऋतु के विपरीत व्यवहार जैसे खाना, पीना, सोना, मैथुन आदि
७. रात्रि को अधिक जागना.
८. दिन में अधिक सोना.
९. अधिक समय तक जलक्रीड़ा करना, तैरना, तथा जलमें बैठना
१०. शीतकाल में ठण्डे स्थान पर अधिक काल काम करना.
११. अति मैथुन.
११. अधिक रोना.
१३. अधिक चिन्ता तथा शोक.

चय आदि क्रम से उत्पन्न प्रतिश्याय के कारण--

वात, पित्त,कफ के अलग २ विकृत होने या एक साथ ही बिगड़ने

से जब प्रतिश्याय होता है, तो इसमें निम्न लक्षण होते हैं——

१. अधिक छींक आना, २. सिर का भारी होना, ३. शरीर का भारीपन तथा अंगों का टूटना, ४. रोमांच (रोंगटे खड़े होना), ५. नासिका द्वारा धूएं के समान वायु निकलना, ६. गले और तालु में खरखरी होना, ७. नाक और मुख से पतला तथा कच्चा बलग़म निकलना।

प्रतिश्याय के भेद

आयुर्वैदिक शास्त्र में प्रतिश्याय के ६ भेद लिखे हैं—

१. वातज	२. पित्तज	३. श्लेष्मज
४. सन्निपातज	५. दुष्ट प्रतिश्याय	६. रक्तज

प्रतिश्याय में असावधानी

पहिले कह चुके हैं कि प्रतिश्याय को सामान्य रोग समझकर उपेक्षा न करना चाहिये, क्योंकि इसका परिणाम भयङ्कर होता है, जैसा कहा है—

सर्व एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः ।
दुष्टतां यान्ति कोलन तथासाध्याः भवन्ति च ॥

जो प्रतिश्याय रोगी अपने रोग की उपेक्षा के कारण उसकी चिकित्सा समय पर नहीं करता, उसका रोग भयानक हो जाता और फिर शनैः २ असाध्य हो जाता है।

प्रतिश्याय और कीटाणु

पाठक ! कीटाणु का नाम सुनकर हैरान न हों, आयुर्वैदिक शास्त्र में प्रतिश्याय के बिगड़ने से श्लेष्मा में क्रमियों की उत्पत्ति वर्णन की गई है जैसे—

मूर्छन्ति क्रमयश्चात्र वेश्ताः स्निग्धास्तथाणवः ।
क्रमिजो ये शिरोरोगास्तुल्यं तेनात्र लक्षणम् ॥

प्रतिश्याय भिन्न २ दोषों से होने पर भी श्लेष्मप्रधान ही माना जाता है और इसमें कफ से उत्पन्न होने वाले श्वेत तथा स्निग्ध क्रमि उत्पन्न हो जाते हैं।

प्रतिश्याय के उपद्रव

बाधिर्भयान्ध्यमघ्रत्वं घोरांश्च नयनामयान् ।
शोषाग्निमांद्या कासांश्च वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः ॥

प्रतिश्याय की चिकित्सा में असावधानी और उपेक्षा से राजयक्ष्मा के अतिरिक्त निम्न विकार भी पैदा हो सकते हैं—

१ बधिरता (बहिरापन, कानों का बहरा हो जाना)
२. अन्धता
३. घ्राणशक्ति का नाश होना.
४. नेत्रों के भिन्न २ रोग.
५. शोष.
६. अजीर्ण
७. खांसी.

चिकित्सक के लिये स्मरणीय

१. प्रतिश्याय के प्रारम्भ में ही तीव्र स्तम्भक अर्थात् श्लेष्मा के रोध करने वाली तीव्र औषधियें भूल कर भी नहीं सेवन करानी चाहिये ।

२. दो तीन दिन उपवास करावें ।

३. पीने के लिये गरम पानी देवें क्योंकि कहा है—

पार्श्वशूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे ।
आध्यानेस्तिमिते कोष्ठौ सद्यः शुद्धौ नवज्वरे ॥
अरुचिग्रहणी गुल्मश्वासकासेषु च विद्रधौ ।
हिक्कायां स्नेहपाने च शीताम्बु परिवर्जयेत् ॥

अर्थात् पसली का दर्द (पार्श्वशूल), प्रतिश्याय (जुकाम), वातरोग, गुल्म, आध्मान (अफारा), बद्धकोष्ठ (कब्ज़), विरेचन के बाद, नवीन ज्वर, अरुचि, अजीर्ण, ग्रहणी, गले के रोग, श्वास, कास, हिचकी, विद्रधि तथा स्नेहपान के बाद ठण्डा पानी भूलकर भी न पीना चाहिये ।

प्रतिश्याय चिकित्सा

प्रतिश्यायेषु सर्वेषु गृहं वातविवर्जितम् ।
वस्त्रेण गुरुणोष्णेन शिरसो वेष्टनं हितम् ॥

सब प्रकार के प्रतिश्याय रोग में रोगी को प्रथम वातरहित मकान में रक्खें और उसके शिर पर गरम कपड़े की पगड़ी बन्धवा दें, जिससे रोगी के सिर को हवा न लगे।

इस रोग के आरम्भ में ३ दिन तक उपवास कराने से रोगी को पित्त तथा कफ जनित प्रतिश्याय में विशेष लाभ होता है।

कफकेतु रस

सुहागा, पीपल, शङ्खभस्म तथा मीठा तेलिया प्रत्येक समभाग लेकर ३ दिन तक अदरक के रस में खरल कर एक २ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—एक से २ गोली तक।

यदि प्रतिश्याय में पित्तप्रधान हो, तो इसमें सितोपलादि चूर्ण ४ रत्ती से १ माशा तक मिलाकर मधु से दिन में ३-४ बार सेवन करावें। यदि कफ प्रधान हो तो ४ रत्ती से एक माशा तक तालीशादि चूर्ण मिला कर मधु और अदरक के रस में दिन में ३-४ बार खिलावें। वातप्रधान प्रतिश्याय में केवल मधु में तथा पानस्वरस में मिलाकर प्रयोग करें और गरम जल पिलावें। इस प्रकार से सेवन कराने से प्रतिश्याय एक-दो दिन में ही शान्त हो जाता है। यदि प्रतिश्याय त्रिदोषजनित हो, तो केवल अदरक के ६माशा रस में दो २ गोली पीस कर दिनमें ३—४ बार देने से आराम हो जाता है।

कफचिन्तामणि रस

शुद्ध हिंगुल, इन्द्रजौ, सुहागा, भांग बीज, मरिच प्रत्येक १ तोला, द्विगुण गन्धक जारित रस सिन्दूर ३ तोला। इनको अदरक के रस में ३ प्रहर खरल करके दो २ रत्ती की गोली बना लें।

यह योग प्रतिश्याय के चौथे या पांचवें दिन सेवन करावें, जबकि कफ पर्याप्त मात्रा में नासिका द्वारा निकल चुका हो और उसे रोकना अभिप्रेत हो।

मात्रा—एक दो गोली दिन में २ बार योग्य अनुपान से।

३. विष शुद्ध, मरिच, पिप्पली, जीरा काला, शुद्ध गन्धक, सुहागा श्वेत प्रत्येक १ तोला, शुद्ध शिंगरफ़ २ तो०, सब को बारीक चूर्णकर अदरक के रस में ३ दिन खरल करें और मूंग के समान गोली बना लें।

मात्रा-- एक से २ गोली तक।

अनुपान—दिन में ३ बार गरम जल से सेवन कराने से श्लेष्मज प्रतिश्याय नष्ट होता है।

४. धतूराबीज २ तो०, सोंठ १ तो०, रेवन्दचीनी १ तोला, गोन्द बबूल १ तोला को सूक्ष्म चूर्ण कर २-३ पानस्वरस में रगड़ गोली बना लें: यह प्रतिश्याय की निवृत्त अवस्था में जब नासा द्वारा कफ बहुत निकलता हो, गरम पानी से दिन में ३-४ बार एक दो गोली तक सेवन कराने से एक ही दिन में प्रतिश्याय शान्त होता है।

५ बुनफ़शा ६ माशे, गाज़वां ३ माशे, उन्नाव ५ दानें, लसूड़ियां ७ दाने, मुलहठी ३ माशे, मुनक्का ५ दाने, सौंफ ३ माशा को आध सेर पानी में पका चतुर्थांश रहने पर मल कर छान लें और इसमें मिश्री मिला कर दिन में २ बार प्रातः सायं पिलावें।

यह योग प्रतिश्याय की उस अवस्था में जब वात प्रधान हो और मलबन्ध भी हो तथा वायु की अधिकता से श्लेष्म अवरुद्ध हो गया हो, अति लाभ करता है।

६. मरिच ११ नग, पिप्पली ४ नग को यवकुट कर १॥ पाव पानी में पकावें और चौथाई रहने पर गरम में ही मिश्री मिलाकर रोगी को पिला दें, यह क्वाथ रात्रि को सोने के समय पिलाने से वात तथा कफजनित प्रतिश्याय में विशेष लाभ करता है और जब श्लेष्मा वात के कारण रुका हो और गाढ़ा होने से कठिनता से निकलता हो, उस अवस्था में यह कषाय श्लेष्मा के निकालने में सहायता करता है।

७. बादाम गिरी ७ नग, ख़सख़स ६ माशे, इलायची ५ नग, काली मरिच ७ नग को सरदाई की तरह रगड़ कर पाव-भर पानी में मिला कर छानें और मिश्री मिला प्रातः सायं खाली पेट ही पिलावें। इस प्रयोग से तीव्र पित्तजनित प्रतिश्याय प्रथम दिन ही शान्त हो जाता है।

८. बादाम की गिरी २ तो०, धनियां २तो०, सौंफ १तो०, ख़सखस

६ माशा, वीदानां ३ माशा, गोंद बबूल ६ माशा को बारीक पिसवा कर सब के समान मिश्री डालें।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक।

अनुपान—दिन में २-३ बार सेवन करने से वात तथा पित्तज प्रतिश्याय नष्ट होता है।

४. घी में भुना कुचला२तो., मरिच २तो०, सङ्खिया श्वेत (भैंस के दूध में ७ दिन तक दोलायन्त्र द्वारा सिद्ध किया हुआ) २ माशा, धत्तूरबीज १तो० को बारीक पीसकर १ दिन धतूरपत्ररस और एक दिन अदरक रस में खरल कर मूली के बीज के समान गोली बना लें।

मात्रा—दाना समय एक२ गोली।

अनुपान—भोजन के बाद गरम पानी से देवें। पान में रख कर सेवन कराने से पुराना और प्रबल प्रतिश्याय नष्ट होता है।

प्रतिश्याय में सूंघनेके लिये कुछ योग।

१. चावल ५ तोला को १० तोले मदार के दूध में भिगो दें, सूख जाने पर फिर इतना ही दूध डाल दें और भली प्रकार सूख जाने पर बारीक पीस कर नस्य बना लें। जब वात तथा कफ की प्रबलता से श्लेष्मा रुद्ध हो, छींक न आती हो और तीव्र शिरः शूल हो तो इस में १ चावल के समान औषधि की नस्य लेने से अवरुद्ध श्लेष्मा निकल जाती और शिर का भारीपन हट जाता है।

२. नकछिकनी १ तो० रीठे का छिलका १ तोला, काश्मीरी पत्र १ तो., काली मरिच १ तो० को बारीक पीस कर सूक्ष्म नस्य बना लें। यह नस्य भी रुद्ध श्लेष्मा को निकालने तथा शिरः शूल शान्त करने के लिए अति उत्तम योग है।

३. चूना श्वेत ४ तो, नौशादर ४ तो० को पीस कर शीशे की कार्क वाली बोतल में बन्द कर खूब हिला दें। प्रतिश्याय रोगी की श्लेष्मा का अवरोध होने से यदि श्वास कठिनता से आता हो तो इसे सुंघाने से नासिका खुल कर श्वास भली प्रकार आने लगता है।

पीनस रोग

प्रतिश्याय की उपेक्षा करने से विकृत हुए श्लेष्म तथा पित्त के कारण ही पीनस रोग उत्पन्न हो जाता है । जब यह रोग पुराना हो जाता है तो नासारन्ध्र में रसौली हो जाती है जो केवल औषधियों के प्रयोग से शान्त नहीं हो सकती और शल्यकर्म ही उस की एक मात्र चिकित्सा है ।

पीनस चिकित्सा

यद्यपि प्रतिश्याय में कहे प्रयोग पीनस रोग में भी लाभकर सिद्ध होते हैं परन्तु हम यहां पीनस रोग के लिए अपने अनुभूत योग लिखते हैं:-

१. कायफल, पोहकरमूल, काकड़ासिंगी; सोंठ, मरिच, पीपल, जवासा, अजवायन देसी का सूक्ष्म चूर्ण बना लें ।

मात्रा—एक माशा से ३ माशा तक ।

अनुपान—अदरक रस तथा मधु से चाटने से पीनस रोग को लाभ होता है

व्योषादि वटी

सोंठ, मरिच, पिप्पली, चित्रकमूल छाल, तालीशपत्र, तिन्तड़ीक, (समाकदाना), अम्लवेद, चव्य, कालाजीरा प्रत्येक १ तो०, छोटी इलायची, तेजपत्र, दालचीनी प्रत्येक ३ माशा का सूक्ष्म चूर्ण कर दो वर्ष के पुराने गुड़ में ४ रत्ती की गोली बना लें ।

भोजन के बाद दोनों समय एक से दो गोली तक मुख में रख कर चूसने से पीनस रोग में अवश्य लाभ होता है ।

महालक्ष्मी विलास

शृंगवेरादिगण द्वारा बनी कृष्णाभ्रकभस्म ४ तो., शुद्ध गन्धक (अदरक रस में शोधित) २ तोले, तालयोग से बनी वंगभस्म १ तो. शुद्ध पारद ६मा., हरताल शोधित ९ माशा, पारद तथा गन्धक के योग से वासारस भावित ताम्रभस्म ३ माशा, कपूर ६ माशे, जायफल ६ माशे, जावित्री ६ मा.; धतूर-बीज १ तो०, विधाराबीज १ तो., पारद गन्धक के योग से कांचनारत्वक

कषाय से भावित स्वर्णभस्म ४ माशे। प्रथम पारे गन्धक की उत्तम कज्जली कर शेष औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण कर उस में मिला दें और जल में खरल कर २ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—एक गोली प्रातः सायं बकरी या गाय के गर्म दूध के साथ सेवन कराने से पुराने से पुराना प्रतिश्याय तथा पीनस रोग अवश्य नष्ट हो जाता है।

नोट—९ तोले गूगल तथा २ तोले घी को कूट कर लेह के समान बना लें; इस में से २-३ माशा औषधि दहकते हुए कोयलों पर डाल कर नासा द्वारा धूआं खींचें और मुख द्वारा निकाल दें। महालक्ष्मीविलास रस के साथ इस का नित्य प्रयोग करने से रोगी को शल्प क्रिया से बचाया जा सकता है। यह हमारा सहस्त्रशः अनुभूत है।

चित्रक हरीतकी

गुड़ ५ सेर, चित्रकमूलछाल २॥ सेर, जल २० सेर शेष ५ सेर आंवले का रस ५ सेर, गिलोय का क्वाथ ५ सेर, दशमूल क्वाथ ५ सेर को एकत्र कर इस में प्रथमोक्त गुड़ को घोल दें और मन्द २ अग्नि पर पकावें, जब कुछ गाढ़ा हो जावे उस समय इस में उत्तम हरड़ों का २ सेर चूर्ण मिला दें; लेह के समान पाक होने पर इस में सोंठ, पिप्पली, मरिच, दालचीनी, तेजपत्र; छोटी इलायची प्रत्येक ८ तो., यवक्षार ४ तो. का चूर्ण मिलावें। शीतल होने पर इस लेह में एक सेर मधु मिला कर रख छोड़ें।

मात्रा—३ मा. से ६ मा. तक प्रातः सायं गर्म जल के साथ।

पीनसरोग के लिये कुछ तैल

व्याघ्री तैल

कण्टकारी मूल दन्तीमूल, वच, सुहांजना, तुलसी, त्रिकटु, सेन्धा-नमक प्रत्येक ४ तो० का चूर्ण करें, इस चूर्ण से ४ गुना तिलतैल तथा तैल से ४ गुना जल मिलाकर मन्द २ अग्नि पर तैल पाक की विधि से पाक करें और तैलमात्र शेष रहने पर उतार कर छान लें।

इस तैल की नस्य दिन में ३-४ बार प्रयोग करने से पुराना प्रति-श्याय तथा अति प्रबल पीनस और नासार्श का नाश होता है।

करवीरादि तैल

तिल तैल १ सेर, लाल कनेर के फूल; चमेली के फूल, पीतशाल के फूल, मोतिया के फूल प्रत्येक २ तो० का कल्क कर लें, जल ४ सेर मिला कर तैल पाक कर लें, तैल शेष रहने पर उतार कर छान लें।

इस तैल की नस्य से पीनस तथा नासार्शसू नष्ट होते हैं।

शिखरी तैल

तिल तैल १ सेर, गृहधूम, पिप्पली, देवदारू, यवक्षार, करञ्जबीज, सेन्धा नमक, अपामार्गबीज प्रत्येक ४ तोला का चूर्ण कर ४ सेर जल मिला कर तैलपाक करलें।

यह तैल पीनस तथा नासार्श में नस्य के स्थान पर प्रयोग करने से यह रोग शीघ्र नष्ट होते हैं।

प्रतिश्याय तथा पीनस में पथ्य

स्नेहः स्वेदः शिरोऽभ्यङ्गः पुराणाः यवशालयः।
कुलत्थमुद्गयोर्यूषः ग्राम्या जांगलजाः रसाः ॥
वार्ताकं कुलकं शिग्रु कर्कोटं बालमूलकम्।
लशुनं दधि तप्ताम्बु वारुणी च कटुत्रयम् ॥
कट्वम्ललवणं स्निग्धमुष्णचं लघुभोजनम्।
नासारोगे पीनसादौ सेव्यमेतद्यथा बलम्।

प्रतिश्याय तथा पीनस रोग में स्नेहन, स्वेदन, शिर पर तैल की मालिश, पुराने जौ तथा चावल, कुलत्थ, और मूंग का यूष, ग्राम्य, तथा जांगल पशु एवं पक्षियों का मांसरस, बैंगन, परवल, ककोड़ा, कच्ची, मूली, दही, लहसन, गरम पानी, त्रिकटु, वारुणी, कटु-अम्ल एवं लवण द्रव्य, स्निग्ध तथा हलका भोजन पथ्य हैं, रोगी बलानुसार इनका सेवन करें।

अपथ्य

स्नानं क्रोधं शकृन्मूत्रवात वेगान् शुचं द्रवम्।
भूमिशय्यां च यत्नेन नासारोगे परित्यजेत् ॥

स्नान, क्रोध, मल-मूत्र एवं वातवेगों का रोकना, शोक, द्रव भोजन भूमि पर सोना तथा गुरु भोजनोंको पीनस तथा प्रतिश्याय रोगी कदापि सेवन न करें।

हिक्कारोगाधिकार

आयुर्वेद के सम्पूर्ण ग्रन्थों में प्रायः हिक्कारोग की स्वतन्त्र रोग के रूप में गणना की गई है तथा स्वतन्त्र रोग मानने के कारण निदान आदि भी विस्तार पूर्वक लिखे हैं—

विदाही गुरुविष्टम्भिरूक्षा भिष्यन्दिभोजनैः
शीतपानाशनस्नान रजोधूमातपानलैः ॥
व्यायामकर्म्मभाराध्वने माघातापतर्पणैः ।
हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ।

यदि मनुष्य विदाही, भारी, विष्टम्भकर भोजन करता रहे, शीतल पेय जल तथा शीतल जल में स्नान करे, धूंआं या मट्टी आदि वाले मार्ग तथा स्थान में अधिक रहे, तो धूल आदि उसके अन्दर जाने से, अधिक धूप गर्मी, अपनी शक्ति से अधिक कर्म करे, मल-मूत्रादि के वेगों को रोके, तो उसे हिक्कारोग तथा कास-श्वास आदि अन्य रोग हो सकते हैं।

हिक्का के भेद

अन्नजां यमलां क्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा ।
वायुः कफनानुगतः पंच हिक्काः करोति च ॥

वायु तथा कफ मिलकर पांच प्रकार की हिचकी उत्पन्न करते हैं—

१. अन्नजा २. यमला, ३. क्षुद्रा,
४. गम्भीरा, ५. महती ।

हिक्का के असाध्य लक्षण

आप्यन्यते हिक्कतो यस्य देहो दृष्टिश्चोर्ध्वं भ्राम्यते यस्य नित्यम् ।
क्षीणोऽन्नद्विट् क्षौति यश्चातिमात्रं तौ द्वौ चान्त्यौ वर्जयेद्धिक्कमानौ ॥

जिस हिक्कारोगी का हिचकी के साथ शरीर तन जाता हो, आंख फैल जातीं और दृष्टि ऊपर की ओर रहती हो, जिसे भ्रम हो जाता हो, क्षीण हो, भूख न लगती हो तथा बार २ हिचकी आती हो, उसे असाध्य समझना चाहिये तथा गम्भीरा और महती हिक्का से ग्रस्त रोगी को असाध्य समझें।

साध्य हिक्का की परीक्षा

अक्षीणश्चाप्य दनिश्च स्थिरधात्विन्द्रियश्च यः।
तस्य साधयितुं शक्यापषिका हन्त्यन्यथा ॥
आसां क्षुद्रान्तजा साध्या शेषाः प्राणहराः मताः ॥

जो हिक्कारोगी बलवान हो, जिसकी इन्द्रियां बलवान् तथा धातु क्षीण न हों, उसरोगी का हिक्कारोग साध्य है तथा उपरोक्त भेदों में से क्षुद्रा तथा अन्नजा भी सुखसाध्य समझनी चाहियें।

हिक्का रोग की चिकित्सा

१. यदि किसी पुरुष को सामान्य हिचकी आने लगे, तो कोई भय-जनक बात सुनाकर भयभीत करें।

२ प्राणायाम करावें अर्थात् उसे श्वास रोकने को कहें।

३. शरीर पर ठण्डे जल के छींटें दें।

अन्नजा की चिकित्सा

हिक्का की चिकित्सा के समय यह कभी न भूलें, कि यह एक भयङ्कर रोग है, अतः इसकी चिकित्सा शीघ्रही सावधानी से करनी चाहिये, कहा है—

कामं प्राणहरा रोगाः बहवो ना तु ते तथा।
यथा श्वासश्च हिक्का च हरति प्राणमाशु हि ॥

अर्थात् प्राणों को हरनेवाले अर्थात् मारक रोग अनेक हैं, परन्तु हिक्का और श्वास जितनी शीघ्रता से प्राणों का हरण करते है, उतना और कोई रोग शीघ्रघाती नहीं है।

यथाग्निरिश्चोः पवनानुवृद्धो वज्रं यथा वा सुरराजमुक्तम् ।
रोगास्तथैते खलु दुर्निवाराः श्वासः सहिक्काच विलम्बिका च ॥

जिस प्रकार वायु की सहायता से बढ़ती हुई ईख की अग्नि नहीं रुकती, अपितु शीघ्र उसका नाश कर देती है, उसी प्रकार हिक्का श्वास और विलम्बिका रोग भी रोगी के शीघ्र प्राण हर सकते हैं ।

अन्नजा हिक्का अधिक अन्न खाने से होती है, अतः सबसे पूर्व इस रोगी को ६ से ९ माशे तक मैनफल का चूर्ण गरम पानी से सेवन करावें, जिससे आमाशय शुद्ध होकर प्रायः अन्नजा हिक्का रुक जाती है । यदि खाया हुआ अन्न पक्वाशय में पहुंच गया हो, तो ७ माशे निशोथ का चूर्ण अथवा कोई अन्य तीव्र विरेचन देवें, जिससे अन्नजा हिक्का शान्त होती है । यदि वमन और विरेचन के बाद भी हिचकी आनी बन्द न हों, तो निम्न में से कोई उपाय करें —

१. हींग, हल्दी, उड़द, घी समभाग लेकर सुलगते कोयलों पर डालें, इसका धूम्र रोगी मुख के रास्ते अन्दर ले जावे अथवा इन्हीं औषधियों को चिलम में डाल कर पिलावें ।

२. निम्बू का रस २ तो०, शहद ६ मा०, काला नमक ३ माशा को मिलाकर सेवन कराने से अन्नजा हिक्का शान्त होती है ।

३. १ माशा हींग घी में भून कर गरम जल से सेवन कराने से अन्नजा शीघ्र नष्ट होती है ।

४. संजीवनी सुरा अथवा ब्रांडी आदि कोई उत्तम सुरा १। तोले, से २॥ तो० तक देने से अन्नजा शीघ्र हट जाती है ।

५. राई चूर्ण ४ तो० को १ सेर पानी में पकावें, चतुर्थांश रहने पर छान लें और इसमें से थोड़ा २ रोगी को पिलावें, इसके सेवन से अन्नजा का नाश होता है ।

६. सज्जीखार १॥ माशा, बिजौरे नींबू का रस २ तोला, शहद ६ माशा को मिलाकर चाटने से अति बढ़ी हुई अन्नजा शान्त होती है ।

७. बड़ी इलायची का दाना ३ माशे, छोटी पिप्पली १ माशा, दोनों को पीसकर मधु और पान के रस में मिला कर चटाने से अन्नजा हिक्का का वेग रुक जाता है ।

यमला की चिकित्सा

चन्द्रशूर रस

१० तो० हालों को ८ गुना पानी में पकावें, जब पानी गाढ़ा हो जावे और हालों (चन्द्रशूर) के बीज भी नरम हो जावें, तो इसे छान लें।

मात्रा—इसमें से २ से ४ तोले की मात्रा में २-३ बार पिलाने से अति बढ़ी हुई यमला शान्त होती है।

पिप्पल्यादि लोह

पिप्पली, आमला, द्राक्ष, बेर की गुठली, मधु, मिश्री, विडङ्ग, कुष्ठ; पोहकरमूल प्रत्येक १ तो०, शार्ङ्गधरोक्त मनःशिला योग से बनी ६० पुटी लोहभस्म ८ तोला का लेकर काष्ठौषधियों का सूक्ष्मचूर्ण कर लोहभस्म मिला देवें।

मात्र – २ रत्ती से ४ रत्ती तक।

अनुपान—यह औषधि मधु में मिलाकर दिन में २-३ बार सेवन कराने से यमला-हिक्का अति शीघ्र रुक जाती है।

ताम्रपर्पटी

शुद्ध पारा २ तो०, शुद्ध गन्धक २ तो०, पारद तथा गन्धक के योग से बनी तथा वांसारस से भावित ताम्रभस्म १ तो० को ३ पहर तक खरल करें और फिर इनको लोहे की कड़छी में डाल कर हलकी आग पर रक्खें, जब पतला द्रव सा हो जावे, तो भूमि पर गोबर विछाकर उस पर केले का पत्र बिछाकर औषधि डालें और ऊपर से दूसरे केले के पत्र से दबा देवें; जिससे पपड़ी सी बन जावेगी, यही ताम्रपर्पटी है।

मात्रा—१ रत्ती।

अनुपान—मधु से प्रयोग कराने से यमला हिक्का का वेग हटता है।

४. पान की जड़ का चूर्ण ३ माशा, मधु में मिला कर २-३ बार चाटने से तीव्र हिक्का का वेग शीघ्र शान्त हो जाता है।

सर्व प्रकार की हिक्का के लिये कुछ अनुभूत योग

१. प्रवालभस्म, शङ्खभस्म, हरड़ चूर्ण, बहेड़े का छिलका, आमलकी चूर्ण, पिप्पली समान भाग को बारीक चूर्ण कर लें।

मात्रा--१ माशा से ३ माशा तक।

अनुपान--इसको ३ माशे घी और २ तो० मधु में मिला कर चटाने से हिचकी शान्त होती है।

२. मोरपङ्ख की राख ४ रत्ती, पिप्पली चूर्ण ४ रत्ती को २ तोला मधु में मिलाकर चाटने से सब प्रकार की हिचकी का वेग नष्ट होता है।

३. गेरू ३ मा०, कुटकी ३ मा० को पीसकर २ तो० मधु में मिला कर चटाने से सब प्रकार की हिचकी को आराम होता है।

४. बहेड़े का चूर्ण ४ मा० ले २ तो० मधु में मिलाकर रोगी को चटाने से हर तरह की हिचकी का वेग शान्त होता है।

५. बबूल के कांटे २ तोला को १॥ पाव पानी में पकावें, चौथाई शेष रहने पर २ तो० मधु मिला कर पिलाने से हिचकी नष्ट होती है।

६. ५ से १० तो० गोघृत, २१ काली मरिच चबा कर पीने से वात-जनित हिक्का शान्त होती है।

७. कलौंजी का चूर्ण ३ माशे को २ तो० गाय के माखन में मिला कर रोगी को सेवन कराने से वातजहिक्का नष्ट होती है।

हिक्का दूर करनेवाले धूम्र तथा नस्य

१. मुलहठी के चूर्ण को मधु में मिला कर नस्य लेने से हिचकी हटती है।

२. पिप्पलीका चूर्ण मधुमें मिलाकर सूँघनेसे हिचकी रुक जाती है।

३. मैनसिल और गाय के सींग का बुरादा समभाग लेकर चिलम में रखकर पीने से अति प्रबल हिक्का का वेग भी शीघ्र शान्त हो जाता है।

४. कुठ का चूर्ण ५ माशे ले चिलम में रख कर पीने से हिचकी नष्ट होती है।

५. लहसन को स्त्री के दूध में घिसकर सूँघने से हिचकी का वेग रुकता है।

६. देसी अजवायन का चूर्ण दहकते कायलों पर डालकर उसका धूम्र सूँघने से हिचकी शीघ्र नष्ट हो जाती है।

७. आम के सूखे पत्ते चिलम में रखकर पीने से हिचकी रुकती है।

८. मक्खी की विष्टा को स्त्री-दुग्ध में पीस कर सूँघने से हिक्का शान्त होती है।

९. अनार का फूल, तुलसीपत्र, दूब सम भाग लेकर पीसें और कपड़े में से निचोड़ कर इसका पानी निकालें, यह रस नासिका में ५ बून्द डालने से हिक्का दूर होती है।

१०. धतूरपंचांग सुखाकर अति अल्पमात्रा में चिलम में रख कर पीने से हिक्का का वेग शीघ्र शान्त होता है।

हिक्कारोग पर हमारा अनुभव

ज्ञात रहे कि यदि यक्ष्मा, ग्रहणी अथवा किसी अन्य चिरस्थायी रोग के उपद्रव के रूप में रोगी को हिक्का उत्पन्न हुई हो, तो उसकी चिकित्सा भूल कर भी न करें, इससे चिकित्सक को अपयश होने की सम्भावना है। यदि चिकित्सा करनी ही हो, तो रोगी के सम्बन्धियों को सूचित कर दें कि हिक्कारोग की अन्तिमावस्था का उपद्रव है; इस प्रकार सावधान करने से चिकित्सक का अपयश नहीं होता। निम्न-योग हिक्का की असाध्य अवस्था में ही हमारे अनुभव में लाभ कर प्रमाणित हुए हैं।

१. मनसिल १ तो०, शुद्ध पारद १ तो०, शुद्ध गन्धक १ तो०, शुद्ध मीठा तेलिया १ तो०, मरिच ८ तो० ले प्रथम पारे गन्धक की सूक्ष्म कज्जली करें शेष औषधियों का चूर्ण मिलावें और अदरक स्वरस की ८ दिन तक निरन्तर भावना दे २ रत्ती की गोली बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली तक।

अनुपान—२ तो० मधु में मिलाकर दिन में २ बार दें।

इस औषधि के प्रयोग से अति प्रबल हिक्का का वेग भी कुछ समय में शान्त होता है।

२ पान की जड़ ५ तो०, सोंठ, पिप्पली, मरिच प्रत्येक १। तोला का अति सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण बना कर रक्खें।

मात्रा—३ माशा से ६ मा० तक।

अनुपान—दिन में २ बार मधु मिलाकर चटाने से हिक्का का वेग हटता है।

३. मोरपङ्ख को कैंची से काट कर चिलम में डालें और थोड़ा सा आग रखकर पिलावें, इससे हिक्कारोगी के रोग का वेग शीघ्र दूर होता है।

४. एक स्यालकोटी काग़ज़ या कोई भी मोटा काग़ज़ सिगरेट की भांति लपेट कर इसके सिरे को दियासलाई से सुलगाकर रोगी को इसका धूम पिलावें। इसके प्रयोग से हिक्का का प्रबल वेग भी शीघ्र शान्त होता है।

५. लाहौरी नमक ४ रत्ती से १ मा० तक थोड़े से पानी में मिलाकर रोगी के दोनों नासारन्ध्रों में टपकावें, इसके प्रयोग से हिचकी नष्ट होती है।

श्वासरोगाधिकार।

—:०:—

यैरेव कारणैर्हिक्का बहुभिः सम्प्रवर्तते ।
तैरेव कारणैः श्वासः सद्यो भवति देहिनाम् ॥

श्वासरोग से पूर्व हिक्कारोगाधिकार में हिक्का के कारणों पर प्रकाश डाला गया है; जिन २ कारणों से हिक्का होती है प्रायः वही कारण श्वासरोग के भी उत्पादक समझने चाहियें।

श्वास के भेद

महोर्ध्वछिन्न तमकक्षुद्रभेदैस्तु पञ्चधा।
भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥

श्वास एक महाभयानक रोग है और कारण तथा दोषभेद के अनुसार इस के निम्न ५ भेद माने जाते हैं—

१. महाश्वास २. ऊर्ध्वश्वास ३. छिन्नश्वास
४. तमकश्वास ५. क्षुद्रश्वास

श्वासरोग की सम्प्राप्ति

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफमूर्छितः ।
विश्वग् व्रजति संक्रुद्धस्तदा श्वासान् करोति सः ॥

कफ के साथ मिलकर वात प्राणवाही स्रोतों को रोक देता है, जिस से वायु प्रबल होकर सम्पूर्ण शरीर में गति करने लगता है और इस दुष्ट वायु के कारण ही अनेक प्रकार का श्वासरोग उत्पन्न होता है अर्थात् श्वासरोग में प्रधानतः वात तथा श्लेष्मा ही दुष्ट होते हैं।

चिकित्सा विधि

हिक्काश्वासातुरे पूर्वं तलाक्ते स्वेद इष्यते ।
स्निग्धैर्लवणयोगैश्च मृदुवातानुलोमनम् ॥

ऊर्ध्वाधः शोधनं शक्ते दुर्बले शमनं मतम् ।

हिक्का तथा श्वास रोग में प्रथम रोगी की छाती आदि पर तैल की मालिश करावें और मालिश के बाद स्वेद दें। इस क्रिया के पश्चात् स्निग्ध तथा लवणयुक्त पदार्थों से दुष्ट हुए वात का अनुलोमन करें।

यदि रोगी बलवान हो, तो प्रथम वमन तथा विरेचन द्वारा उसके शरीर को शुद्ध करने के बाद शामक औषधि सेवन करावें, परन्तु यदि रोगी अति निर्बल हो, तो उसे वमन आदि देने की आवश्यकता नहीं है, उसे प्रारम्भ में ही शामक औषधि सेवन करावें।

श्वासरोग में चिकित्सक के लिये स्मरणीय

श्वासरोग की चिकित्सा करते समय प्रारम्भ में ही तीव्र रसों का प्रयोग कभी नहीं करना चाहियें, क्योंकि इनसे श्लेष्म रुद्ध होकर रोगी को अतिकष्ट होता है। इस रोग की चिकित्सा के प्रारम्भ में रोगी को स्वच्छ स्थान पर नरम विस्तरा बिछा कर लिटा दें और निम्न-रीति पर चिकित्सा करें—

१. खूब गरम जल में फ़लालैन अथवा कोई अन्य गरम कपड़ा भिगो कर निचोड़ें और गले से छाती तक इससे बार २ सेंक देवें।

२. अलसी १ तोला, गेहूं का चोकर १ तोला को आध सेर पानी में औटावें और चतुर्थांश रहने पर इसे छानें और १ तोला से २ तोला तक बादाम रोग़न और दो तोला मिश्री मिला रोगी को गरम २ ही पिला देवें। इसके सेवन से श्वास के वेग (दौरे) में रोगी को विशेष लाभ होता है।

३. एक सेर जल में ४ तोले गोघृत डाल कर पकावें, आध पाव जल रहने पर इसमें १ तोला मिश्री और १ तो० मधु मिलाकर रोगी को पिलावें। यह भी श्वास के दौरे में अति लाभ करता है।

४. पांच सेर जल को २-३ उबाले देकर सुहाते जल में रोगी के दोनों पैर रखावें, श्वास के वेग में इससे भी विशेष लाभ होता है।

५. द्राक्ष १५ नग को कुचल कर आध पाव पानी और १ पाव दूध

में पकावें, दूधमात्र शेष रहने पर २ तोला मिश्री मिलाकर रोगी को सेवन कराने से रोग के वेग में विशेष लाभ होता है।

६. ५ तोले अंगूर का रस गरम करके रोगी को पिलावें, इससे भी रोग में फ़ायदा होता है ।

७. लाहौरी शीशा नमक अग्नि में तपा २ कर सात बार जल में बुझावें, इस जल के पीने से भी श्वास का वेग रुक जाता है।

८. बादाम की १० गिरी सरदाई की तरह घोंट कर छान लें और एक दो उबाल देकर थोड़ा२ गरम ही २तो० मिश्री मिलाकर रोगी को देने से वेग शान्त होता है।

शास्त्रीय सिद्ध योग

पंचमूली क्षीर

शालपर्णी, पृष्टपर्णी, कण्टकारी छोटी, कण्टकारी बड़ी,गोखरु मिलित २॥ तोले से ५ तोले को ८० तोला पानी में पकावें और चौथाई रहने पर उतार कर छान लें और १ पाव दूध में मिलाकर फिर पकावें, दूधमात्र शेष रहने पर इसमें २ तोला मिश्री और ६ माशा मधु मिला कर पिलाने से रोगी को विशेष लाभ होता है। श्वासरोग में सदा इस प्रकार बने दूध का ही प्रयोग होना चाहिये ।

शृंग्यादि चूर्ण

काकड़ासिंगी, सोंठ, मरिच, पिप्पली, नागरमोथा, पोहकरमूल, कचूर, काला नमक प्रत्येक समभाग लेकर अति सूक्ष्म चूर्ण कर लें।

मात्रा—३ माशा तक।

अनुपान—दिनमें २–३ बार गरम जल के साथ पिलाने से अवरुद्ध श्लेष्मा सुगमता से निकलती और श्वासरोगी को आराम होता है।

विभीतकी अवलेह

६४ तोला बहेड़े के छिलके ले ४ सेर बकरी के मूत्र में पकावें, गाढ़ा होने पर भली प्रकार मल कर छानें और पुनः आग पर रख कर पकावें; लेह

के समान होने पर अग्नि पर से उतारें और ठण्डा होने पर इसमें समान भाग मधु मिला कर रक्खें ।

मात्रा--६ माशे से १ तोला तक ।

अनुपान—गरम पानी से सेवन करावें।

यह योग श्वासरोगी को उस अवस्था में सेवन करावें, जब श्लेष्मा अति प्रचुरमात्रा में निकलती हो।

अकरकरादि वटी

अकरकरा १ तो०, अपामार्गक्षार १ तोला, भुनी हींग एक तोला, पिप्पली १ तोला, भूने चनों की दाल १ तो०, लौंग ६ माशा, अहिफेन ६ माशा को बारीक पीसकर अर्कदुग्ध में कल्क बना लें और इसको थोहर के डण्डे को खोखला कर उसमें भरें और कपरौटी कर इतनी आग दें कि जिससे थोहर का डण्डा न जल जावे । शीतल होने पर निकालें और औषधि को डण्डे से निकाल चने के समान गोली बना लें।

मात्रा—एक गोली प्रातः सायं ।

अनुपान—गरम पानी के साथ सेवन करने से श्वास में कफ का अधिक प्रबल वेग शान्त हो जाता है ।

श्वासकुठार रस

पारा, गन्धक शुद्ध, विष शुद्ध, सुहागे की खील, मनसिल शुद्ध प्रत्येक १ तोला, मरिच ४ तो०, त्रिकटु ३ तो० । प्रथम पारे और गन्धक की उत्तम कज्जली कर शेष औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण मिलावें और अदरक के रस से ३ दिन तक खरल करें ।

मात्र--२ रत्ती से ४ रत्ती तक ।

अनुपान—अदरक स्वरस तथा मधु में मिलाकर खिलाने से अधिक श्लेष्म निकलने वाले श्वास में विशेष लाभ होता है ।

श्वास कासचिन्तामणि

पारा शुद्ध, सुवर्ण माक्षिकभस्म, सुवर्ण भस्म प्रत्येक १ तोला,

मोती ६ माशे, गन्धक २ तोला, वज्राभ्रक भस्म २ तोले, लोहभस्म ४तो०, पारे और गन्धक को विधि पूर्वक कज्जली करें शेष औषधियां मिलावें तथा कण्टकारी रस, अजादुग्ध, मुलहठी रस या कषाय, पानस्वरस में अलग २ सात दिन खरल कर दो रत्ती की गोली बनावें।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक।

अनुपान—४ रत्ती पिप्पलीचूर्ण के साथ मधु में मिला कर सेवन कराने से श्वासरोग में अति लाभ होता है।

सूचना—इस योगमें प्रयुक्त सब भस्में कास रोगोक्त भस्मों के समान विधि से ही बनानी चाहियें।

सूर्यावर्त रस

शुद्ध पारद ४ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तो० की कज्जली बनावें और १ पहर तक कुमारीरस में खरल कर दोनों के समान ताम्बे के पत्रे लेकर उनपर उपरोक्त कज्जली का लेप करें और बालुकायन्त्र में ४ पहर तक अग्नि दें और स्वांगशीत होने पर निकालें और सूक्ष्म चूर्ण कर रख लें।

मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक।

अनुपान—इन्द्रायण मूल, देवदारु, त्रिकटु मिलित ३ तो० को ३२ तो० पानी में पकावें और चौथाई रहने पर छानें और मिश्री मिला कर रोगी को इस कषाय से सेवन करावें।

सूचना—यह योग केवल ऊर्ध्वश्वास रोगियों को ही सेवन कराने चाहियें, इससे रोगी को वमन होकर तत्काल लाभ होता है।

महाश्वासारि लोह

मन:शिला योग से बनी लोहभस्म ४ तो०, कृष्णाभ्रकभस्म १ तो०, खाण्ड ४ तोले त्रिफला, मुलहठी, द्राक्ष, पिप्पली, बेर की गुठली की गिरी, वंशलोचन, तालीशपत्र, विडंग, छोटी एला, पोहकरमूल, नागकेसर प्रत्येक १ तो०, मधु ४ तो० को लोहे के पात्र में लोहे के दण्ड से ४ पहर तक मर्दन करें और ४ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—१ से २ गोली तक ।

अनुपान—इसे मधु से सेवन कराने से पुराना श्वासरोग और श्वासरोग से उत्पन्न दुर्बलता नष्ट होती है ।

कनकासव

धत्तूरपंचांग ३२ तो०, वासामूलछाल ३२ तो०, मुलहठी, पिप्पली, कण्टकारी, नागकेसर, सोंठ, भारंगी, तालीशपत्र प्रत्येक १६ तो०, धातुकीपुष्प १ सेर, द्राक्ष २॥ सेर, जल २५ सेर, खाण्ड २॥ सेर, मधु ६। सेर, इन औषधियों का चूर्ण किसी उत्तम चिकने पात्र में भर कर मुख पर से बन्द कर दें, और ग्रीष्मऋतु में १५ दिन तथा शीतकाल में १ मास बाद मुख खोल कर देखें, यदि आसव भली प्रकार नितर गया हो, तो छानकर बोतलोंमें भर कर रख छोड़ें ।

मात्रा– ३ माशे से १ तोला तक।

अनुपान—समान जल में मिला कर दोनों समय दें ।

यह आसव वृद्धों के लियें विशेष लाभकर है, जिन वृद्ध पुरुषों को श्वास के कारण श्लेष्म अधिक आती हो, उनके लिये रामवाण है ।

यह योग हमारा अनुभूत है ।

श्वासरोग पर हमारे विशेष अनुभूत योग

१. श्वासकुठार रस श्वासरोग के लिये एक उत्तमौषधि है, परन्तु प्रायः देखा जाता है, कि चिकित्सक लोग इसे बिना विचार किये ही मधु अथवा आर्द्रकरस के साथ सेवन कराते हैं । इसमें सन्देह नहीं, कि इस रीति से सेवन कराया श्वासकुठाररस उन रोगियों को अमृत के समान गुण करता है, जिनमें कफ की आधिकता हो, परन्तु जहां रोगी पित्तप्रकृति हो, अथवा वात प्रधान होने से श्लेष्मा सूख गयी हो, वहां पर यही श्वासकुठार रस मधु या अदरक के रस के साथ देने से विष के समान प्रभाव करता है, अतः श्वासकुठार रस सेवन कराते समय निम्न बातों को सदा ध्यान में रखना चाहिये—

(क) यदि रोगी श्लेष्मप्रकृति हो तथा साथ ही रोग का वेग अधिक शीत से हो अथवा शीतकाल में हो, तो उस दशा में श्वासकुठार रस २ रत्ती से ४ रत्ती तक ४ माशे अदरक रस तथा ६ माशे मधु मिलाकर दिन में २-३ बार सेवन कराना उचित है।

(ख) यदि रोगी पित्तप्रधान हो तथा उष्णकाल हो, तो १ रत्ती से २ रत्ती तक श्वासकुठाररस माखन तथा मिश्री में मिलाकर प्रयोग करने से लाभ होता है। पित्तप्रकृति लोगों को श्वासकुठार रस शर्बत बुनफ़शा, शर्बत उन्नाब, अथवा लसूड़ी की चटनी से भी सेवन करा सकते हैं।

(ग) जहां श्वासरोगी वातप्रकृति हो और अधिक वात के कारण शुष्क श्लेष्म सर्वथा निकलता न हो अथवा कठिनाई से निकलता हो, वहां श्वासकुठार रस १ रत्ती से २ रत्ती तक इसको १ तोला बादाम रोग़न तथा १॥ तोला मधु में मिलाकर सेवन कराने से विशेष लाभकर सिद्ध होता है।

कनकक्षार

२. धतूरे के फल लेकर उसमें से बीज निकाल डालें और फलों के खोल में पांचों अजवायन तथा पांचों नमक समभाग ले बारीक पीस कर भर दें। इसे मिट्टी की हाण्डी में बन्द करके आवश्यकतानुसार इतनी आग दें, जिससे औषधि कोयलों के समान काली भस्म हो जावे; अपितु श्वेत श्वेत भस्म न हो जावे। स्वांगशीत होने पर निकाल कर सूक्ष्म करके रक्खें।

मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक।

अनुपान—जो अनुपान "श्वासकुठार रस" के लिये लिखे गये हैं। इस प्रकार सेवन कराने से प्रबल श्वासरोग भी नष्ट होता है।

श्वास के लिये विशेष योग

सङ्खिया श्वेत ५ तोले की डली ले उसे यव के समान टुकड़े कर लें, और एक पोटली में बांध लेवें, १ सेर गोघृत और १० सेर गोदुग्ध एक पात्र में डालकर उपरोक्त पोटली को दोलायन्त्र के समान लटकावें। पोटली दूध से इतनी ऊंची रहे कि उसे केवल वाष्पमात्र ही लगते रहें और अब

चूल्हे में इतनी अग्नि जलावें कि दूध में से वाष्प उत्पन्न होते रहें तथा उबाला न आने पावे। जब दूध सर्वथा खोये के समान गाढ़ा हो जावे उस समय पोटली को निकाल कर खरल कर लें और इस में लशुन के १० सेर पानी की भावना दें। भावना देने के बाद इसे सावधानी से ऐसी जगह रखें जहां इस में धूल न पड़ सकें।

यह औषधि लशुनस्वरस की स्निग्धता से ऐसी बन जाती है कि ६ से ६ मास तक भी कठिनता से सूखती है, इस के सूखने पर पीस कर रखें।

श्वास रोग चाहे कितना ही पुराना हो और पांचों प्रकार में से किसी प्रकार का हो उस अवस्था में यह औषधि रामबाण का काम करती है।

सेवन विधि—श्वास रोगी को ४-५ दिन घृत का स्नेहपान कराने के बाद जयपाल तैल १॥ माशा से ३ माशा तक गो दुग्ध में मिला कर सेवन करावें जिससे प्रबल वमन तथा विरेचन हो दोनों मार्ग शुद्ध हो जाते हैं। इस शोधन के बाद रोगी को ३-४ दिन आराम करावें और फिर उपरोक्त औषधि आधी रत्ती से १ रत्ती तक ५ से १० तोला गोघृत के साथ केवल प्रातः ही सेवन करावें। हमारा अनुभव है कि इस योग के १ सप्ताह तक सेवन कर लेने से भयानक से भयानक श्वास रोग नष्ट हो जाता है।

नोट—एक से २ रत्ती मात्रा देख कर चिकित्सकों को घबराना नहीं चाहिये, इस योग में लशुनस्वरस की भावना देने से प्रायः दो से २॥ गुना भार बढ़ जाता है।

जयपाल तैल की विधि—जयपाल बीज से गिरी निकाल कर केवल श्वेत पित्ता ही निकालना चाहिये अन्य किसी शोधन की आवश्यकता नहीं है, अब इस में समान भाग बादामगिरी मिला कर बादामरोगन वाली मशीन द्वारा तैल निकालना चाहिये। यही तैल अन्य श्लेष्म रोगियों को विरेचन कराने के काम भी आ सकता है।

श्वासदमन धूम्रवर्ती (सिगरेट)

भांग के पत्र १ भाग, धतूर पत्र १ भाग समभाग ले सुखा लें और चतुर्थांश शोरा को थोड़े जल में भिगो दें और शोरा गल जाने पर इस में

उपरोक्त दोनों बूटी के पत्र भिगो दें, इसे धूप में सुखा कर सिगरेट के तमाखू की तरह कैंची से काट लें और उत्तम श्वेत कागज में वर्ती बनावें।

यह चमत्कारी वर्ती उस अवस्था में प्रयुक्त होती है जब श्वास रोगी का वेग के कारण प्राणान्त होना नजर आता हो। इसे दियासलाई लगा कर सिगरेट की भांति पीने से श्वास का वेग तत्क्षण रुक जाता है। यह महौषधि रोग को निर्मूल नहीं करती अपितु दौरे के समय रोगी के प्राण बचा सकती है अतः इसे केवल रोग के वेग (दौरे) के समय ही प्रयुक्त करना चाहिये।

श्वास दमन

फटकरी श्वेत २ सेर, नीला थोथा २ सेर, नौशादर २ छटांक, सुहागा श्वेत ८ छटांक, शोरा ८ छटांक, सज्जी लोटा १ पाव, चूना २छटांक, गन्धक २ छटांक, मैनसिल २ छटांक, संखिया ५ तोला। इन सब औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण कर एक उत्तम मट्टी की हाण्डी में डाल कर उस के ऊपर एक ऐसी हाण्डी का पेन्दा सावधानी से जोड़ें जिसके पेन्दे में २०-२५ छिद्र किये हों और इस हाण्डी के बीच में ३ छोटे २ पत्थर के टुकड़े रख कर इन पर एक इतना बड़ा चीनी का प्याला रखें जिस में ६ सेर पानी आ सकता हो, इस के बाद इस हांडी के मुख पर तीसरी हाण्डी का पेन्दा जोड़ दें और इस में जल भर दें और इस यन्त्र को किसी बड़ी भट्टी पर चढ़ा कर तीव्र अग्नि दें। प्रायः ३ अथवा ४ घण्टे में तेजाब के समान शुद्ध औषधि प्याले में आ जाती है अतः ४ घण्टे के बाद अग्नि देना बन्द करें और शीतल होने पर सम्पुट खोल कर प्याले में एकत्र औषधि किसी शीशी में सावधानी से रख लें।

इस में से एक तोला औषधि किसी शीशी में डालें और १० तोले मधु मिला कर भली प्रकार हिलावें। यही श्वास दमन है।

मात्रा—एक माशे से ३ माशे तक भोजन के बाद दोनों समय सेवन करावें इस रामबाण औषधि के सेवन कराने से अति प्रबल और पुराना श्वास रोग शीघ्र शान्त होता है, हमारा अनेक बार का अनुभूत प्रयोग है।

नोट्—(१) यह औषधि कफप्रधान और बलवान रोगियों को ६ माशे से १ तोला तक भी दी जा सकती है। कहीं २ यह ३ माशा भी अधिक ऊष्मा करती है, अतः उस दशा में इसके साथ अर्क गाज़बां का प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है।

(२) इस औषधि के सेवनकाल में प्रायः रोगी का वर्ण अति श्याम हो जाता है, जिससे घबड़ाना नहीं चाहिये, अपितु सेवनकाल में घी का अधिक व्यवहार करना चाहिये; औषधि सेवन के बाद शारीरिक श्यामता स्वयं दूर हो जाती है।

हिक्काश्वास में पथ्यापथ्य

पथ्य

विरेचनस्वेदनधूमपान प्रच्छर्दनानि स्वपनं दिवा च।
पुरातनाः षष्टिकरक्तशाली कुलत्थगोधूमयवाः प्रशस्ताः॥

शशाहिभुक्तित्तिरलावदत्तशुकादयो धन्वमृगादयश्च।
पुरातनं सर्पिरजाप्रसूतं पयोघृतं चापि सुरामधूनि॥

निदिग्धिकावास्तुकतण्डुलीयकं जीवन्तिकामूलकयोहिकाश्च।
पटोलवार्ताकुरसोनपथ्या जम्बीर बिम्बी फलमातुलुंगम्॥

द्राक्षा त्रुटिः पौष्करमुष्णवारि कटुत्रयं भोजनितं च वारि।
अन्नानि पानानि च भेषजानि कफानि लघ्वानि च यानि यानि॥

वक्षःप्रदेशादपि पार्श्वयुग्मे करस्थयोर्मध्यमयोर्द्वयोश्च।
प्रदीप्तलोहेन च कण्ठकूपे दाहोऽपि च श्वासिनि पथ्यवर्गः॥

विरेचन, स्वेदन, धूम्रपान, वमन, दिन में सोना, पुराने चावल; साठी चावल, कुलथी, गेहूं, यव, खरगोश-मोर-तीतर-मुर्गा आदि पक्षी, आनूपदेश के मृग आदि, पुराना घी, बकरी का दूध और घी, मदिरा, शहद, बथुआ, चौलाई, जीवन्ती, मूली, परवल, बैंगन, लशुन, हरड़,

जम्बारी, नीम्बू बिजौरा, छुहारा; छोटी इलायची, पुष्करमूल, गरमजल, त्रिकटु, गोमूत्र, वातनाशकअन्न, हलके पदार्थ तथा अन्य कफहर पदार्थ हितकारी हैं ।

अपथ्य

मूत्रोद्‌गारछर्दितृट्कासरोधो नस्यं वस्तिर्दन्नकाष्ठं श्रमश्च ।
अध्वाभारो रेणवः सूर्यपादा विष्टम्भीनि ग्राम्यधर्मो विदाही ॥
आनूपानामामिषं तैलभृष्टिं निष्पावं च श्लेष्मकारीणि माषाः ।
रक्तस्रावः पूर्ववातोऽम्बुपानं मेषीसार्पदुग्धमम्भोऽपि दुष्टम् ॥
मत्स्याः कन्दाः सर्षपाश्चान्नपानं रूक्षं शीतं गुर्वपिश्वास्यमित्रम् ।

मूत्र, डकार, वमन, प्यास तथा खांसी का वेग रोकना, नस्य, वस्ति-कर्म, दातुन, परिश्रम करना, मार्ग में भार उठाकर चलना, गले में धूल जाना, धूप में रहना, गुरु पदार्थों का प्रयोग, दाहकारी पदार्थ, आनूप पशु पक्षियों का मांस, तैलपदार्थ, कफकारी पदार्थ, उड़द, रुधिर निकलवाना, अधिक जल पीना, भेड़ का दूध, बिगड़ा हुआ पानी, मछली, सरसों और रूक्ष तथा शीतल अन्नपान इन रोगों में अपथ्य समझना चाहियें ।

स्वरभेदाधिकार

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघात सन्दूषणैः प्रकुपिताः पवनादयस्तु ।
स्रोतस्तु ते स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां हन्युः स्वरं चापि हिषड्विधः सः ॥

ऊंचा बोलने, किन्हीं विशेष विषों के प्रयोग, जोर से पढ़ने तथा गले में चोट आदि लगने के कारण वात, पित्तादि दोष प्रकुपित होकर स्वरवाही स्रोतों को रोक देते हैं, जिससे स्वरभेद हो जाता है । यह रोग ६ प्रकार का माना गया है ।

स्वरभेद के निम्न ६ भेद शास्त्रों में वर्णित हैं—

१. वातज,	२. पित्तज,	३. श्लेष्मज ।
४. सन्निपातज,	५. क्षयज,	६. मेदजन्य ॥

असाध्य लक्षण

क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य चापि चिरोत्थितो यः सहजोऽपि जातः ।
मेदस्विनः सर्वसमुद्भवश्च स्वरामयो यो न स सिद्धिमैति ॥

क्षीण, वृद्ध तथा कृश व्यक्तियों को हुआ स्वरभेद, बहुत देर का स्वरभेद, जन्म से हुआ, मेदज तथा सान्निपातज स्वरभेद को असाध्य समझना चाहिये ।

चिकित्सा विधि

स्निग्धान् परं तापनकृष्यधातुन् संयोजयेद्वमनवस्ति विरेचनैश्च ।
नस्यावपीडमुखधावनधूमलेहैः सम्पादयेत्तु विविधैः कवलग्रहैश्च ॥

स्वरभेद रोगी को प्रथम स्नेहपान करावे और दोषों को क्षीण करने का यत्न करे, तथा वमन, विरेचन, वस्ति, नस्य, धूम्रपान, नाना अवलेह और गण्डूषों द्वारा फिर रोग को नष्ट करने का आयोजन करना उचित है ।

स्वरभङ्गारि वटी

पारद शुद्ध, शोधित गन्धक, विष शुद्ध, सुहागा श्वेत, मरिच, चव्य,

चित्रकमूलछाल प्रत्येक समभाग लेकर प्रथम पारे और गन्धक की विधिपूर्वक कज्जली करें और शेष औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण कर इसमें मिला दें। अब इसको ३ दिन अदरक रस से रगड़ कर २ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—एक गोली प्रातः तथा सायंकाल सेवन करने से श्लेष्मज स्वरभेद शीघ्रही शान्त होता है।

कण्टकारी घृत

रास्ना, खरैंटी, गोखरु, सोंठ, मरिच, पिप्पली प्रत्येक ४ तोला ले सब औषधियों से चारगुना गोघृत और घी से चार गुना छोटी कण्टकारी का रस डालकर मन्द २ अग्नि पर घृतपाक की विधि से पाक करें और घृत शेष रहने पर उतार कर छान लें।

मात्रा—६ माशे से २ तोला तक।

अनुपान—गरम गोदुग्ध में मिलाकर प्रातः सायं पिलाने से वातज एवं श्लेष्मज स्वरभेद शान्त होता है।

मृगनाभ्यादि लेह

कस्तूरी ३ माशा, छोटी एला ३ माशे, लौंग ३ माशे को बारीक पीसकर ६ माशा गोघृत और ४ तो० मधु मिलाकर अवलेह बना लें।

मात्रा—४ रत्ती से १ माशा तक चटाने से वातज एवं क्षयज स्वर-भेद में अति लाभ होता है।

त्रिबङ्ग भस्म

शुद्ध रौप्य ५ तोला, बङ्ग शुद्ध ५ तो०, नाग शुद्ध ५ तोला को अग्नि पर गला कर १५तोले शुद्ध पारे में मिला कर निम्बूरस से १सप्ताह तक खरल करें और फिर धोकर सुखा लें तथा इसमें २०तोले शुद्ध गन्धक डालकर कज्जली बना लें। अब उत्तम सम्पुट की हुई आतशी शीशी में इसे भरकर बालुका-यन्त्र पर विधि पूर्वक १ दिन मन्द, एक दिन मध्य तथा तीसरे दिन तीव्र-अग्नि देकर पाक कर लें। स्वांगशीतल होने पर शीशी को फोड़कर गले में लगे त्रिबङ्ग सिन्दूर और तलभाग में से त्रिबङ्गभस्म ले लें।

मात्रा--१ रत्ती से २ रत्ती तक।

अनुपान—यह त्रिवङ्गसिन्दूर वात तथा कफज स्वरभेद में मधु एवं अदरक रस से दे सकते हैं और त्रिवङ्गभस्म २ तोले वासापत्र कषाय से मिश्री मिलाकर २ रत्ती की मात्रा में देने से पित्तज स्वरभद शान्त होता है।

त्र्यम्बकाभ्र

शतपुटी वज्राभ्रक भस्म ८ तो० (रसेन्द्रसारोक्त) खरल में डालकर निम्नलिखित रसों से खरल करें—

छोटी कण्टकारी रस ८ तो० गोखरुरस ८ तो०, कुमारी रस ८ तो०, पिप्पलीमूल क्राथ ८ तो०, भृङ्गराजरस, वासारस, आमलकीरस, बेरपत्र, तथा हरिद्रारस प्रत्येक ८ तो० से खरल कर १ रत्ती से २ रत्ती तक गोली बना लें।

मात्रा—एक २ गोली प्रातः सायं।

अनुपान--गौ अथवा बकरी के धारोष्ण दूध से सेवन कराने से पित्तज स्वरभेद शान्त होता है।

भृङ्गराजादि घृत

भांगरा, गिलोय, अजमोद, अडूसा, दोनों कण्टकारी, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, गोखरु, बिलछाल, अरणीछाल, पाढल, गम्भारी, श्योनाकछाल, कसौंदी प्रत्येक ५ तोले को यवकुट करें और १६ गुना जल में पकावें; चतुर्थांश रहने पर इसमें १ सेर गोघृत मिलाकर मृदु अग्नि पर इतना पकावें, कि घृत ही शेष रह जावे और अब छान कर रख लें।

मात्रा—एक से २ तो० तक।

अनुपान—दोगुने मधु के साथ सेवन कराने से कफ तथा मेदोजनित स्वरभङ्ग शान्त होता है।

निदिग्धिकावलेह

कण्टकारी १०० पल, पीपलामूल ५० पल, चीता २५ पल और दशमूल की औषधियां २५ पल ले कर इनका १ द्रोण जल में चतुर्थांश

क्वाथ करें, अब छान कर इस में ५० पल पुराना गुड़ डाल कर मन्द २ अग्नि पर पाक करें. जिस से अवलेह के समान बन जावे। सिद्ध होने पर पिपली चूर्ण ८ पल, दाल चीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र का चूर्ण, ४ तो० मरिच चूर्ण १ पल तथा शीतल होने पर १६ तोले मधु मिला कर पात्र में सुरक्षित रखें।

मात्रा—६ माशे से एक तोला तक।

अनुपान—प्रातः सायं बकरी के दूध के साथ सेवन कराने से स्वरभेद तथा प्रतिश्याय आदि शान्त होते हैं।

यह योग मेदोज और श्लेष्मज स्वरभंग में लाभकर सिद्ध होता है।

स्वरभेद के लिए कुछ सुलभ योग

१. उत्तम हरड़ का चूर्ण ६ माशे को धारोष्ण गाय के दूध के साथ सेवन करने से पित्तज स्वरभेद शान्त होता है।

२. आमलकी चूर्ण ६ माशा को धारोष्ण दूध से १ सप्ताह सेवन करने से पित्तज स्वरभंग नष्ट होता है।

३. बहेड़ा, लाहौरी नमक, पिप्पली, समभाग का चूर्ण बनालें। यह चूर्ण ६ माशे ५ तोला गो दधि में मिला कर देने से स्वरभंग शान्त होता है।

४. ब्राह्मी, दोधक, वच, हरड़, वासा, पिप्पली, समभाग लें बारीक पीसें और सारे से चतुर्थांश घी तथा चारगुना जल मिला कर अवलेह बनालें।

५. मरिच, कुलञ्जन, एला बड़ी, मुलहठी समभाग को पानरस में ३ दिन खरल कर जंगली बेर के समान गोली बनालें। इससे स्वरभंग में लाभ होता है।

स्वरभेद में पथ्य

स्वेदो वस्तिर्धूमपानं विरेकः कवलग्रहः।
नस्यं भाले शिरावेधो यवाः लोहितशालयः।

हंसारवीताम्रचूड़केकि मांसरसाः सुराः ।
गोकण्टकः काकमाची जीवन्ती बाल मूलकम् ॥
द्राक्षापथ्यामातुलुंगं लशुनं लवणार्द्रकम् ।
ताम्बूलं मरिचं सर्पिः पथ्यानि स्वरभेदिनाम् ॥

स्वेदन, वस्ति, धूम्रपान, औषधियों का मुख में रखना, नस्य, जौ, लाल चावल, हंस, मुर्गी, मोर आदि का मांसरस, मदिरा, गोखरू, मकोय, जीवन्ती, छोटी मूली, दाख, लहसन, लवण, अदरक, ताम्बूल, मरिच, तथा घी स्वरभेद रोगी के लिए पथ्य समझने चाहियें।

अपथ्य

आम्रं कपित्थं बकुलं शालूकं जाम्ववानिच ।
तिन्दुकानि कषायाणि वमिं स्वप्नं प्रजल्पनम् ॥
अन्नपानं प्रयतोन स्वरभेदी विवर्जयेत् ॥

आम, कैथ, मौलश्री, जामुन, कसैले पदार्थ, वमन, अधिक निद्रा, अधिक बोलना, विरुद्ध आहार विहार यह सब स्वरभेद रोगी के लिए अपथ्य समझना चाहियें।

अरोचकाधिकार

वातादिभिः शोकभयाति लोभ क्रोधैर्मनोघ्नाशन रुप गन्धैः ।
अरोचकाः स्युः परिहृष्टदन्तः कषाय वक्त्रश्च नरोऽनिलेन ॥

वातादि दोष, शोक, भय, अत्यन्त लोभ, क्रोध और मन को बिगाड़ने वाले आहार, रूप और गन्ध को सेवन करने से ५ प्रकार का अरोचक रोग उत्पन्न होता है ।

अरोचक के ५ भेद और लक्षण

१. वातज, २. पित्तज, ३. कफज,
४. सन्निपातज, ५. आगन्तुक ।

१. वात की अरुचिमें मुख का स्वाद कसैला और दांत खट्टे होते हैं ।

२. पित्त की अरुचि में मुख का स्वाद, गरम, नीरस, दुर्गन्धित और नमकीन होता है ।

३. कफ की अरुचि में मुख का स्वाद मीठा, लिबालिबा, भारी, शीतल, बेन्धासा और कफ से लिहसा सा होता है ।

४. सन्निपातज अरुचि रोग में मुख का स्वाद अनेक रसों वाला होता है ।

५. आगन्तुक अर्थात् भय, क्रोध और लोभ के कारण पैदा हुई अरुचि में मुख का स्वाद स्वाभाविक होता है, परन्तु अन्नपानादि से अत्यन्त अरुचि होती है ।

अरोचक चिकित्साविधि

वस्तिः समीरणे पित्ते किरको वमनं कफे ।
कुर्य्याध्दृद्यानुकूलानि हर्षणञ्च मनोघ्नजे ॥

अर्थ--वात की अरुचि में वस्तिकर्म, पित्त की अरुचि में विरेचन,

अर्थात् जुलाब देना, कफ की अरुचि में वमन कराना और मन को बिगाड़ने वाले क्रोध लोभादि में हृदय के अनुकूल और आनन्दजनक पदार्थों को सेवन कराना चाहिये।

अरुचि रोग के लिये सामान्य योग

१. कुठ, काली मिरच, काला नमक, ज़ीरा, विड नमक समान भाग लेकर बारीक पीस लें और इसमें थोड़ा घी मिला कर मुख में कंवल धारण करने से वात से होने वाली अरुचि शान्त होती है।

२. धनियां, इलायची, पद्माख, खस; पीपल; चन्दन, कमल; और खस सब को समान भाग लेकर चूर्ण बनावें और इसमें घृत मिलाकर मुख में कवल धारण करें, इससे पित्तजनित अरुचि शान्त होती है।

३. लोध; तेजबल; हरड़, त्रिकुटा और यवक्षार सबको समान भाग मिलाकर चूर्ण बनावें और इसमें अदरक का रस मिलाकर कवल धारण करने से कफ की अरुचि दूर हो जाती है।

४. अदरक, अनार का रस, ज़ीरा और मिश्री इनको विधिवत् पीसकर कवल धारण करने से त्रिदोषज अरुचि शान्त होती है।

५. क्रोधादि मनो दोषों से होने वाली अरुचि में रोगी को धैर्य्य दें, और क्रोध की शान्ति के लिये साधू पुरुषों का सत्सङ्ग करावें।

लवङ्गादि चूर्ण

लौङ्ग, कङ्कोल, काली मिरच, खस, चन्दन, तगर, कंवलफूल, काला ज़ीरा, मुशकबाला, अगर, तज, नागकेसर, पिप्पली, सोंठ, इलायची, जायफल, कपूर, वंशलोचन सब को समान भाग लेकर चूर्ण बनावें, पश्चात् जितना यह चूर्ण हो, उससे आधा भाग मिश्री पीसकर मिला दें।

मात्रा—१ माशा से ३ माशा तक सेवन करने से वात और पित्त जनित अरुचि को विशेष लाभ होता है।

खाण्डवादि चूर्ण

तालीसपत्र, चव्य, काली मरिच, सोंठ, सेन्धा नमक प्रत्येक १ तो०, पिप्पली, चित्रकमूलछाल, ज़ीरा सफेद, तन्तडीक (समाक़दाना), पिप्पला-

मूल, धनियां प्रत्येक २ तोला, बेर का गुद्दा, अम्लवेद, छोटी इलायची, नागरमोथा, अजवाइनदेशी-प्रत्येक ३ तो०, अनारदाना ४ तो० सबको बारीक पीसकर चूर्ण बना लें और चूर्ण से आधा भाग मिश्री मिलावें।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक।

अनुपान—दिन में २-३ बार मधु में मिलाकर चटाने से सब प्रकार की अरुचि को लाभ होता है, विशेषकर वात, पित्त जनित अरुचि के लिये अत्युत्तमौषधि है।

अरुचि गज केसरी अवलेह

सोंठ, काली मरिच, पिप्पली, अजवाइन देशी, अजमोद, दालचीनी, लौंग, अकरकरा प्रत्येक १ तोला। इन सब को खूब कूट कर चूर्ण बना लें और पश्चात् इसमें सेन्धा निमक ११ तो०, काला नमक ११ तो०; मिश्री ११ तो०, ज़ीरा सफेद भुना हुआ १ तोला, अदरक बारीक टुकड़े ११ तो०, किशमिश ११ तो०, छुहारा ११ तो०। इन सब को एक उत्तम चीनी अथवा शीशे के पात्र में डालकर ऊपर से इतना निम्बू का रस छोड़ें, कि सब वस्तुएं इसमें डूब जावें, फिर पात्र का मुख बन्द करके ११ दिन तक पड़ा रहने दें। पश्चात् मुख खोल देवें।

मात्रा—इस परम रोचक सुस्वादू चटनी को ६ माशे से १ तोला तक की मात्रा में रोगी को सेवन करावें। यह भी सब प्रकार की अरुचि को दूर करने के लिये अत्युत्तम चटनी है।

इमली पानक

इमली पकी हुई नवीन १ पाव २ सेर पानी में भिगो दें, थोड़ी देर के पश्चात् इसको खूब मलकर छान लें और इसमें २ सेर मिश्री मिलाकर शर्बत् की भांति पका लें, जब भली प्रकार गाढ़ा हो जावे; तो इसमें दालचीनी २ तो०, छोटी इलायची २ तो०, लौंग १ तोला, काली मरिच, १ तोला, कपूर ३ माशा महीन पीस कर मिला दें। यह इमली पानक अवलेह पित्त जनित अरुचि को तत्क्षण दूर कर देता है।

दाडिमादि चूर्ण

अनारदाना ८ तो०, खांड १२ तो०, दालचीनी ४ माशे; तेजपत्र ४ माशे, इलायची छोटी ४ माशे सब को बारीक पीस लें।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक दिन में २-३ बार सेवन करने से अरुचि नष्ट होती है।

जम्बीर द्रावक

जम्बीरी निम्बू का रस १ सेर इसको उत्तम चीनी अथवा कलीदार पात्र में डालकर मन्दाग्नि पर पकावें, जब एक भाग जल जाये और तीन भाग रह जाये, तो इसमें ज़ीरा सफ़ेद ६ माशा, काला ज़ीरा २ तो०, देशी अजवाइन १ तो०, काली मिरच २ तो०, धनियां ४ तो०, तेज ६ माशा, तेजजत्र १ तो०, इलायची बड़ी २ तो०, यवक्षार २ तो०, सोंठ २ तो०, सौंचल निमक १० तो०, भुनी हींग १ तो० । इन सब चीज़ों का चूर्ण बन कर निम्बू के रस में मिला दें।

मात्रा- इसमें से ३ मा० से ६ मा० दिन में दो-तीन बार सेवन करने से अरुचि रोग को विशेष लाभ होता है।

सुधानिधि रस

शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग। दोनों को खरल में डाल कर काजल की तरह बना लें, पश्चात् इसमें अदरक का रस डाल २ कर सात दिन तक खरल करें। सात दिन खरल करके इसको सात ही दिन निम्बू का रस डालकर खरल करें। सूखने पर इसमें भुना सुहागा २ भाग, लवङ्ग ५ भाग, मीठा तेलिया शुद्ध पारे से चौथा भाग। सब को भली प्रकार खरल करके शीशी में भर लें।

मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक।

अनुपान—मधु और अदरक के रस के साथ सेवन कराने से सन्निपातज अरुचि शान्त होती है।

यह योग आगन्तुक अरुचि में भी सेवन करा सकते हैं।

सुलोचनाभ्र

वज्राभ्रकभस्म ४ तो०, पिप्पलामूल ४तो०, वेर की गुठली की गिरी ४ तो०, खस ४ तो०, अनारदाना ४ तो०, हरे आंवलों का रस ४ तो०, निम्बू का रस ८ तो० । सबको भलीप्रकार खरल करके शीशी में भर लें ।

मात्रा—४ रत्ती से १ मा० तक ।

अनुपान—दिन में २-३ बार मधु में मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार की अरुचि को लाभ होता है ।

यह रस वात, पित्त, कफ सन्निपात से उत्पन्न होने वाली और मनो विकारादि आगन्तुज अरुचि को भी नाश करता है —

अरुचि नाशक

रससिन्दूर, इमली, गुड़, काली मरिच, किशमिश, भुना ज़ीरा-सफेद, पिप्पली, अम्लवेद प्रत्येक समान भाग लेकर निम्बू के रस के साथ २-३ दिन खरल करके ४ रत्ती प्रमाण गोली बनावें ।

मात्रा—१ से २ गोली तक ।

अनुपान—दिन में २-३ बार सेवन करने से सब प्रकार का अरोचक रोग शान्त होता है ।

कलहंस

सुहांजने के बीज १८ नग, काली मिरच १० नग, पिप्पली २० नग, अदरक ४तो०, गुड़ ४तो० कांजी ३सेर, विडनमक ४तो० सब को एक चिकने पात्र में डालकर अच्छी तरह मिला दें, पश्चात् २ तो० दालचीनी, २ तो० इलायची दाना, २ तो० तेजपत्र; २ तो० नागकेसर मिला दें ।

मात्रा—२ तो० से ५ तो० तक दिन में २-३ बार सेवन करने से सर्व प्रकार का अरोचक रोग नष्ट होता है ।

अरोचक में पथ्य

वस्तिकर्म, विरेचन, वमन, धूम्रपान तथा चरपरी चीज़ों का सेवन, और सुन्दर बाग़ बग़ीचों में भ्रमण, सुरापान, पुराने चावल, मूंग, गेहूं, भोजन समय प्रथम ग्रास लवण और अदरक के साथ लेना सब अरुचि के रोगी के लिये पथ्य अर्थात् हितकारी हैं।

अरोचक रोग में अपथ्य

मल मूत्रादि वेगों का रोकना; प्रकृति विरुद्ध भोजन, रक्तमोक्षण; अर्थात् फसद खुलाना, क्रोध, भय तथा दुर्गन्ध पदार्थों को सूंघना सब अरुचि रोग में अपथ्य अर्थात् अहितकर हैं।

छर्दि रोगाधिकार

आयुर्वेदिक ग्रन्थों में छर्दिरोग पांच प्रकार का वर्णन किया गया है जैसा कि—

दुष्टैर्दोषैः पृथक् सर्वैर्बीभत्सालोकनादिभिः ।
छर्दयः पंच विज्ञेयास्तासां लक्षणमुच्यते ॥

दुष्ट हुए वातादि दोषों से पृथक २ तीन प्रकार का, त्रिदोष से एक, और घृणित पदार्थों के देखने, सूंघने, अथवा भक्षण करने से एक, ऐसे छर्दि अर्थात् वमन रोग पांच प्रकार का होता है ।

कारण व सामान्य लक्षण

अति द्रवैरति स्निग्धैरहृद्यैर्लवणादिभिः ।
अकाले चाति मात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः ॥
श्रमाद्भया तथोद्वेगाद जीर्णात्क्रमि दोषतः ।
नार्य्याश्चापन्न सत्वायास्तथातिद्रुत मश्नतः ॥
बीभत्सैर्हेतुभिष्वान्यर्द्रुत मुत्क्लेशितो बलात् ।
छादयान्नाननं वेगैरर्दयन्नङ्गभंजनैः ॥
निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावति ॥

अत्यन्त पतले, अत्यन्त चिकने, हृदय को अहितकारी और बहुत लवणयुक्त पदार्थों को भक्षण करने से, बिना समय भोजन करने से, अधिक भोजन करने से अथवा स्वभाव से विरुद्ध भोजन करने से, श्रम, भय, उद्वेग, अजीर्ण और कृमिदोष से, गर्भवती स्त्री को गर्भ रहने पर, बिना चबाये शीघ्र भोजन करने से तथा अन्यान्य ग्लानि कारक पदार्थों के सेवन से, वातादि दोष अपने स्थान से भ्रष्ट होकर, शीघ्र बलपूर्वक अपने २ वेगों से उक्लेश उत्पन्न करके अङ्गों को तोड़ते हुए किये हुए भोजनादि को मुख के द्वारा निकालते हैं । यही छर्दि अर्थात् वमन रोग कहलाता है ।

छर्दि रोग के असाध्य लक्षण

क्षीणस्य या छार्दरीति प्रवृता सोपद्रवा शोणितपूययुक्ता ।
सचंद्रिकां तां प्रवदन्त्यसाध्यां चिकित्सदनुपद्रवांच ॥

क्षीण पुरुष के अत्यन्त वेग से बार २ होने वाली रुधिर और पीप युक्त तथा मोर के चन्द्रमा के समान वमन असाध्य जानना, उपद्रव रहित अर्थात् जिस छर्दिरोग में पीप और रुधिरादि न आते हों और अत्यन्त वेग भी न हो, ऐसे छर्दिरोग को साध्य समझना चाहिये और यही चिकित्सा योग्य है ।

छर्दिरोग चिकित्सा विधि

आमाशयात् क्लेश भवाहि सर्वाः स्युश्छर्दयो लंगनमेव तस्मात् ।
प्रकारयेन्मारुतजां विनातु संशोधनं वा कफ पित्त हारि ॥

आमाशय में उत्क्लेश उत्पन्न होने से ही सब प्रकार की वमन होती है; अतः वातज वमन के अतिरिक्त शेष सर्व प्रकार की वमन में लंघन कराना चाहिये, अथवा कफ पित्त नाशक विरेचन (जुलाब) देना चाहिये ।

वातज छर्दि के लिए सिद्ध योग

१. गाय के दूध में तीसरा भाग दही मिला कर थोड़ी देर अग्नि पर रखें, जब दूध फट कर पानी अलग हो जाय तो इस को छान लें, यह नितरा हुआ पानी रोगी को पिलाने से आरम्भिक वातज छर्दि शान्त होती है ।

२. मूंग १ तो., आमला २ तो. दोनों को आध सेर पानी में पकावें चतुर्थांश रहने पर छान लें, फिर इस छने हुए पानी को २ तो. घृत का छौंक लगाकर इस में निमक मिलाकर गरम २ ही रोगी को पिलावें । इसके सेवन से भी वात से उत्पन्न छुर्दि रोग नष्ट होता है ।

३ दशमूल की दशों औषधियें ४ तोला सेर भर पानी में पकावें जब पानी आधा रह जावे तो इसको छान कर इस में मूंग अथवा मूंग की

दाल और चावलों की खिचड़ी पका कर रोगी को खिलावें इस के खाने से भी वातज छर्दि रोग शान्त होता है।

४. जीराकाला, धनियां, हरड़, कटेरी छोटी, त्रिकुटा, रससिन्दूर, सब को समान भाग लेकर निम्बू के रस अथवा जल में खरल करके २ रत्ती से ४ रत्ती प्रमाण की गोली बनावें, अद्रक रस और मधु के साथ दिन में दो तीन गोली सेवन करने से वातज वमन अवश्य शान्त होती है।

५ उत्तम सुरा अथवा बरांडी शराब ५ तो० १० तो० पानी में मिलाकर थोड़ा २ पिलाने से तत्काल वात की वमन शान्त होती हैं।

६. विसूचिका रोगोक्त सञ्जीविनी वटी गरम जल अथवा सुरा मिश्रित जल के साथ दिन में तीन चार गोली देने से वातज वमन का नाश होता है।

पित्त छर्दि चिकित्सा

१. मुशकवाला ६ माशे, गेरू ६ माशे, दोनों को पीस कर हरे आमलों के रस में मिश्री मिलाकर इस के साथ दिन में दो तीन वार सेवन कराने से, पित्तज छर्दि नष्ट होती है।

२. गिलोय, हरड़, बहेड़ा, आमला, नीमछाल, पटोलपत्र प्रत्येक ६ माशे सब को आध सेर पानी में पकावें, जब चतुर्थांश शेष रहे, तो छान कर इसमें थोड़ी मिश्री और मधु मिलाकर सेवन करने से पित्तज छर्दि रोग अवश्य शान्त हो जाता है।

३. पित्तपापड़ा २ तो० आध सेर पानी में पकावें। चतुर्थांश रहने पर छान लें। फिर इस छने हुए पानी में १ तो० धान की खील मिला दें। जब नरम हो जावे, तो इसमें मिश्री और मधु मिलाकर पिलावें, इसके सेवन से पित्त से उत्पन्न छर्दिरोग शान्त होता है।

४. चन्दन श्वेत ६ माशे आध सेर पानी में पकावें, चतुर्थांश रहने पर छान लें और ठण्डा होने पर इसमें मिश्री मिलाकर रोगी को सेवन करावें। यह भी पित्तज वमन के लिये उत्तम योग है।

५. द्राक्ष (मुनक्का) १० नग, अनारदाना १ तो०, ज़ीरा श्वेत भुना

हुआ १॥ माशा। इनको पीसकर थोड़ा मधु मिलावें और इसमें से थोड़ा २ पित्तज वमन रोगी को चटावें, इसके सेवन से भी पित्तज वमन का नाश होता है।

६. उत्तम लोहे के टुकड़े को आग में तपा २ कर २१ बार पानी में बुझावें और ठण्डा होने पर यह नितरा हुआ पानी पित्तज छर्दि वाले को पिलावें, इससे पित्त की वमन अवश्य नष्ट हो जाती है।

७. पीपल की लकड़ी की राख २ तो० आध सेर पानी में घोल दें जब पानी नितर जावे तो इस में से थोड़ा २ रोगी को पिलावें। यह भी पित्तज वमन रोग के लिये उत्तम उपाय है।

८. मीठे अनार का रस १० तो०, खट्टे अनार का रस ५ तो०, मिश्री १० तो० इन को शर्बत की भान्ति पकावें। जब लेह के समान हो जावे तो इस में बंसलोचन ६ मा० छोटी इलायची ३ माशे पिपली १॥ मा० बारीक पीस कर मिलादें, इस में से थोड़ा २ रोगी को चटावें। इस के सेवन से भी पित्तज वमन शान्त हो जाती है।

कफज छर्दि चिकित्सा

१ वायविडंग, सोंठ, त्रिफला, तगर, सम भाग लेकर बारीक पीस लें, और सब से तीन गुणा शहद मिलाकर लेहवत बनावें।

मात्रा—६ मा० दिन में तीन चार बार चाटने से कफ से उत्पन्न हुई वमन दूर होती है।

मनःशिलादिलेह

शुद्ध मनसिल, पीपल, कालीमिरच, समान भाग लेकर बारीक पीस लें, और सब के बराबर धान की खीलें पीस कर मिलावें।

मात्रा—३ मा० से ६ मा० तक।

अनुपान—मधु, निम्बूरस और कैथ का रस मिला कर दिन में २-३ बार सेवन करने से कफ से उत्पन्न छर्दिरोग का नाश होता है।

३. आमले का रस, कैथ का गूदा, पीपल और काली मिरच सब को समान भाग लेकर पीस लें और इसमें तीन गुणा मधु मिलावें।

मात्रा—६ मा० से १ तोला तक दिन में ३-४ बार सेवन करने से कफज छर्दि का नाश होता है ।

४. मूंग की दाल को चौगुणे जल में पकावें और चौथा भाग रहने पर छान लें, फिर इसमें पिप्पली का चूर्ण और मधु मिलाकर सेवन करावें इससे भी कफजकास रोग को आराम होता है ।

५ जामुन, काकड़ासिङ्गी, बेर, नागरमोथा, धमासा समान भाग लेकर बारीक पीस लें ।

मात्रा—३ माशा तक ।

अनुपान—मधु मिला कर ३-४ बार चटाने से कफज वमन रोग शान्त होता है ।

६. बालछड़ ४ मा० सरदाई की तरह पीस कर छान लें और इसमें थोड़ा मधु मिलाकर रोगी को सेवन करावें, इसको २-३ बार सेवन करने से कफज वमन को अवश्य आराम होता है ।

७. मसूर के सत्तुओं में खट्टे अनार का रस और मधु मिलाकर दिन में २-३ बार सेवन करने से कफज वमन का नाश होता है ।

त्रिदोषज छर्दि चिकित्सा

१. आमले, द्राक्ष, खाण्ड इनको सरदाई की तरह पीसकर पावभर पानी मिलाकर छान लें । इसके सेवन से त्रिदोषज छर्दि शान्त होती है ।

२. बेल २ तो० अथवा गिलोय २ तो० का यथा विधि क्वाथ बना कर इसमें मधु मिला कर सेवन करने से त्रिदोषज वमन शान्त होती है ।

३. बेर की गिरी, पीपल, आमले समान भाग लेकर पीस लें और इसमें मधु मिला कर सेवन करावें, यह भी त्रिदोषज वमन के लिये उत्तम योग है ।

मात्रा—६ माशे से १ तोला तक ।

४. धान की खील, सोंठ, त्रिफला समान भाग पीसकर मधु मिलाकर सेवन करने से वमन रोग शान्त होता है ।

मात्रा—१ तो० तक।

५. सारिवा, काला सुरमा, कुलथी, समान भाग पीस लेवें।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक।

अनुपान—मधु में मिलाकर सेवन करने से वमन रोग शान्त होता है।

६. जामुन, आमले के कोमल पत्ते लेकर ठण्डे पानी के साथ सरदाई की तरह पीस लें और इसमें धान की खीलें पीसकर मिलावें, पुनः इसमें मधु मिला कर रोगी को सेवन करावें, इससे उग्र वमन शान्त होती है।

आगन्तुज छर्दि चिकित्सा

वीभत्स जाम वीभत्सैर्हेतुभिः सहरेद्वमिम्।
दौर्हृदोत्थां वमिं हृद्यैः कांक्षितैर्वस्तु भिर्जयेत्॥

ग्लानिकारक पदार्थों अथवा दृश्यों से उत्पन्न हुई छर्दि को उत्तम पवित्र, स्वच्छ, आनन्दजनक और चित्त को प्रसन्न करने वाले पदार्थों से जीते और दोहदजन्य अर्थात् सगर्भा स्त्री की वमन को मनोवांछित पदार्थों तथा हृदय को प्रिय वस्तुओं से दूर करना चाहिये और कहा भी है—

लङ्घनैवर्मवमनैर्वापि सात्म्यैर्वा सात्म्य सम्भवाम्।
कृमि हृद्रोगवच्चापि साधयेत्कृमिजां वमिम्॥

स्वभाव विरुद्ध पदार्थों के खाने से उत्पन्न हुई वमन को लङ्घन, वमन, और स्वभाव अनुकूल पदार्थों से जीतना चाहिये और कृमिजन्य वमन को कृमि और हृदय रोगोक्त चिकित्सा से दूर करना चाहिये।

यथा दोषञ्च वितरेच्छस्तं विधिमनन्तरम्।
पवनघ्नी चिरोत्थासु प्रयोज्या छर्दिषु क्रिया॥

आगन्तुज छर्दिरोग में भी यथा दोषानुसार उपरोक्त वात, पित्तादि, दोषों से उत्पन्न हुई छर्दि चिकित्सा में वर्णित प्रयोगों द्वारा विचार पूर्वक चिकित्सा करनी चाहिये और यदि छर्दिरोग कुछ काल का पुराना हो गया हो, तो ऐसी अवस्था में वात वमन नाशक प्रयोगों से चिकित्सा करनी चाहिये।

छर्दि तृषा चिकित्सा

छर्दिरोग में प्रायः रोगी को प्यास बहुत लगती है, निम्नलिखित प्रयोग तृषा को दूर करने के लिये हमारे अनुभव में आये हैं इनके सेवन से तृषा और वमन दोनों को लाभ होता है—

१. बड़ के अंकुर, मिश्री, लोध, अनारदाना, मलहटी समान भाग लेकर बारीक पीस लें।

मात्रा—३ से ६ माशे तक।

अनुपान—मधु में मिलाकर तण्डलोद, चावलों के जल के साथ सेवन कराने से तृषा और वमन को आराम होता है।

२. आम्रवृक्ष की छाल १ तो०, जामुन की छाल १ तो०, यवकुट कर यथा विधि क्वाथ बनाकर ठण्डा करके मिश्री तथा मधु मिलाकर सेवन करने से छर्दिजन्य तृषा और छर्दि शान्त हो जाती है।

३. लाल चावलों के भात में मधु मिला कर खाने से वमन और वमन के कारण पैदा हुई तृषा शान्त होती है।

छर्दि (वमन) रोग में पथ्य

विरेचन, वमन, लङ्घन, स्नान, खीलों का मंड, पुराने साठी चावल, जौ और मधु, शशा (खरगोश)-मोर-तीतर तथा हिरण का मांस अथवा मांसरस और उत्तम २ अनेक प्रकार के स्वादु अभार आदि फलों का रस, गन्ध, रूप, यूष, मदिरा, वेंत की कोंपल, धनियां, नारियल, जम्बीरी नीम्बू, आमला, आम, अनार, द्राक्ष, कैथ, बेर, यह सब वमन रोगी के लिये पथ्य हैं।

छर्दिरोग में अपथ्य

नस्यकर्म अर्थात् नसवार लेना, वस्तिकर्म (अनीमा), स्वेदकर्म (पसीना निकालना), स्नेहपान (घृत तैलादि पीना), रक्तमोचन (फसद खोलना), दातुन करना, पतले कढ़ी आदि पदार्थों का खाना, भयङ्कर दृश्यों को देखना, या देखने की इच्छा करना, भय, उद्वेग, उष्ण पदार्थों का अधिक सेवन, स्वभाव तथा प्रकृति विरुद्ध पदार्थों का सेवन, सेम, कुन्दरु, घीया, तोरी, महुआ, मजीठ, इलायची, सरसों, देवदारु, व्यायाम, कसरत, अञ्जन – यह सब छर्दि रोग में अपथ्य अर्थात् अहितकर हैं।

मूर्छाधिकार ।

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहार सेविनः ।
वेगाघाताद्धभीघाताद्धीनसत्वस्य वा पुनः ॥१॥
कारणायतने घूम्रां वाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च ।
निवसन्ति यदा दोषास्तदा मूर्च्छन्ति मानवाः ॥२॥
संज्ञावहासु नाड़ीषु पिहिताष्वनिलादिभिः ।
तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत् ॥३॥
सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत ।
मोहो मुर्छेति तामाहुः षड्विधा सा प्रकीर्त्तिता ॥४॥
वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च ।
षट्स्वप्येतासु पित्तं तु प्रभुत्वे नावतिष्ठति ॥५॥

क्षीण मनुष्यों के बहुत दोषों के संचित होने से विरुद्ध आहार करने से, मल मूत्रादि वेगों को रोकने से, लकड़ी आदि की चोट लगने से, और सत्वगुण के नष्ट होने से मनोवाहक वांह्य कर्मेन्द्रिय और अभ्यान्तर ज्ञानेन्द्रिय में जब बढ़े हुए वातादि दोष स्थित होते हैं तब यकायक सुख दुःख के ज्ञान को नष्ट करने वाला तमोगुण उत्पन्न होता है । सुख दुःख के नष्ट होने से मनुष्य काष्ठ के समान गिर पड़ता है । ऐसी अवस्था का नाम मूर्छा अथवा मोह है ।

मूर्च्छा के भेद

१. वातज	२. पित्तज	३. कफज
४. रक्तज	५. मद्य जन्य	६. विषज

इस प्रकार मूर्च्छा रोग के छः भेद हैं ।

सन्यास के लक्षण

आयुर्वेद शास्त्र में उपरोक्त छः प्रकार की मूर्च्छा से अतिरिक्त एक संन्यास नामक सातवीं प्रकार की मूर्छा का भी वर्णन मिलता है। यूनानी में इस मूर्च्छा को सक्ता कहा है। आयुर्वेद में सन्यास के निम्न लिखित लक्षण हैं–

जिस समय हृदय में रहने वाले वातादि दोष अत्यंन्त कुपित होकर प्राणों के स्थान रूपी हृदय में वाणी की, देह की, मनकी चेष्टा को नष्ट करके दुर्बल मनुष्य को बेहोश कर देते हैं उस समय वह मनुष्य मरे हुए के समान भूमी पर गिर जाता है यदि एंसी अवस्था में तत्कालिक सद्यः फलदायक सिद्धौषधि न दी जाय तो रोगी की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है। अतः चिकित्सक को सन्यास रोग की चिकित्सा करते समय सावधान रहना परमावश्यक है।

मूर्च्छा रोग की चिकित्सा

वैद्यों के स्मरण रखने योग्य बातें

१. यदि किसी मनुष्य को सहसा मूर्च्छा हो जाय तो आरम्भ में ही बड़ी २ उग्र औषधियें न देनी चाहियें। आरम्भावस्था में साधारण शीतल जल के मुख और आंखों पर छींटे लगाने चाहियें।

२. श्रम अवस्थामें शरीर पर पुराने घी की मालिश करनी चाहिये।

३. संन्यास अवस्थामें तीव्रांजन नत्रोंमें डालें अथवा किसी उग्र औषधि को सूचिकाभरण यन्त्र (Hypodermic Syringe) द्वारा शरीर के किसी मर्मास्थान में इन्जक्शन करना चाहिये इसी ग्रन्थ में कई स्थानों पर सूचिक भरण रस के प्रयोग दिये गये हैं।

४ यदि किसी मनुष्यको आमाशय अथवा पक्वाशयमें कृमियों के कारण मूर्च्छा होती हो तो कृमि रोगाधिकारोक्त कृमि चिकित्सा करनी चाहिये।

५. रक्तज मूर्च्छा में जहां तक हो सके शीतल तथा शीत वीर्य औषधियों से चिकित्सा करें।

६. मद्य जन्य तथा अधिक सुरापान से होने वाली मूर्च्छा जो प्रायः सुरामद उतरने पर होती है—की चिकित्सा किंचित सुरापान द्वारा करें।

७. साधारण मूर्च्छा अथवा कफज मूर्च्छा को तीव्र नस्य देकर दूर करना चाहिये।

८. यदि नस्य कर्म से कुछ प्रभाव न हो तो वमन कारक (मदन फल, तुत्थ, लाल कसीस) उचित मात्रा में व्यवहार करें।

९ कभी २ अतीव बद्ध कोष्ट (कब्ज) के कारण भी मूर्च्छा होती देखी गई है। ऐसी अवस्था में अरिण्ड तेल और गरम जल से वस्ति कर्म (Enema) करना चाहिये।

१०. इस बात को सर्वदा स्मरण रखना चाहिये कि मूर्च्छा रोग प्रायः पित्ताधिक्य अर्थात् पित्त की प्रधानता से ही होता है। और भ्रम, वात तथा पित्त की अधिकता से। तन्द्रा, कफ और वायु के प्रकोप से। अतः चिकित्सक को चाहिये कि चिकित्सा करते समय वातादि दोषों की न्यूनाधिकता का ध्यान रखते हुए सर्व प्रथम यह निश्चय करें कि रोग मूर्छा, भ्रम, तन्द्रा अथवा सन्यास में से कौन है। हम यहां चिकित्सक महानुभावों की सुविधा के लिये इन चारों के भेद वर्णन करते हैं।

मूर्छा और सन्यास में भेद

वातादि दोषों का प्रकोप स्वयं शान्त होने पर मूर्छा बिना औषधि अथवा शीतल जल सेञ्चनादि साधारण क्रियाओं से भी दूर हो जाती है, परन्तु सन्यास मूर्छा बिना तीव्र औषधियों के सेवन कदापि दूर नहीं हो सकती।

मूर्छा और भ्रम में भेद

वैदिक ग्रन्थों में तन्द्रा, मूर्छा और भ्रम को यद्यपि अलग २ कारणों से माना है और इनके लक्षणों का भी भेद दिखलाया है, तथापि एक सामान्य ज्ञान रखने वाले चिकित्सक अथवा नव-पठित चिकित्सक को भ्रम और मूर्छा में अथवा भ्रम और तन्द्रा में प्रायः भ्रम हो जाता है, अतः हम यहां इनके विशेष लक्षणों से भेद को प्रगट करते हैं। मूर्छावस्था में रोगी बिल्कुल निश्चेष्ट काष्ठवत् पड़ा रहता है, परन्तु भ्रमावस्था में अर्ध

मूर्छावस्था होती है और रोगी अपने सामने पड़ी वस्तुओं को देखता है, और उसको उनका अन्त्र ज्ञान होता हैं, किन्तु वह सर्व दृश्य वस्तुओं को घूमता हुआ देखता है और मुख से कुछ बोल नहीं सकता।

भ्रम और तन्द्रा में भेद

भ्रमावस्था में रोगी अर्द्धमूर्छित होता है और तन्द्रा में अर्द्धनिद्रावस्था होती है। ज्ञान व कर्म इन्द्रियें कभी अपने २ विषय को ग्रहण करती हैं और कभी नहीं।

मूर्छा के लिये तत्कालिक सिद्ध योग

१. पिप्पली चूर्ण १ माशा, मधु ६ माशा, अद्रकरस ३ मा०, तीनों को मिलाकर मूर्छित के मुख में डाल दें और नासिका बन्द कर दें, इस से वात और कफ की मूर्च्छा तत्काल नाश होती है।

२. अत्यन्त ठण्डे जल अथवा बर्फ के जल से मूर्च्छित के मुख और नेत्रों पर ज़ोर से छींटें लगावें।

३. दो तीन काली मिरच तुलसी के पत्तों के रस में पीसकर दोनों नसों में टपकावें, इससे भी मूर्छा तत्काल नष्ट होती है।

४. नौसादर और चूना समान भाग लेकर एक कांचके ढकने वाली शीशी में डालकर खूब हिलावें और कार्क खोलकर मूर्छित के नाक के सामने करें, इससे भी मूर्छा शीघ्र दूर होती है।

५. मुर्ग के कोमल परों को दहकते हुए कोयलों पर डाल कर इसका धूआं मूर्छित की नासिका में पहुंचाये इस से भी मूर्छा दूर हो जाती है।

वातज मूर्छा के लिये सिद्ध योग

१. डेढ़ पाव गाय का दूध, असगन्धनागौरी ६ माशा, गाय का घी २ तोला तीनों को आग पर रख कर दो तीन जोश दें और ठण्डा करके इस में चार तोला उत्तम खांड मिला कर रोगी को पिलावें। इस से वातज मूर्छा नष्ट होती है।

२. रस सिन्दूर २ रत्ती, बादाम तेल ६ माशा, मधु १ तोला। तीनों को मिला कर प्रातः सायं सेवन कराने से वात की मूर्छा नष्ट होती है।

३. सैंधा नमक डेढ़ माशा, गाय का घी चार तो०, काली मिर्च का चूर्ण १ मा०। घी को गरम करके नमक और मिर्च के चूर्ण को इस में मिलाकर वातज मूर्च्छा रोगी को केवल तीन दिन सेवन कराने से मूर्च्छा शान्त होती है ।

४. सतावर का रस चार सेर, अश्वगन्ध चूर्ण १ पाव, गोदुग्ध चार सेर, पुराना गोघृत १ सेर इन सब को मन्दाग्नि पर पकावें, जब घृत-मात्र रह जाय तो नितार कर छान लें ।

मात्रा—१ तो० से २ तो० तक ।

अनुपान—प्रातः सायं १ पाव गर्म दूध में मिलाकर सेवन कराने से वात की मूर्छा नष्ट होती है ।

पित्त की मूर्छा के लिये सिद्ध योग

१. किशमिश ६ माशा, अनारदाना ६ माशा, कमलफूल ३ माशा धान की खील १ तो०, नीला कमल ४ मा० । इन सबको गाय के दही के १॥ पाव पानी में भिगों दें, तीन घण्टे पश्चात् मलकर छान लें ।

अनुपान--इसमें ३ तो० मिश्री मिलाकर रोगी को पिलावें, इसके प्रातः सायं सेवन से पित्तज मूर्छा नष्ट होती है ।

३. सैंधा नमक, कालीमिर्च, मनसल, प्रत्येक एक माशा, तीनों को बारीक पीस कर इस में थोड़ा शहद मिलाकर मूर्च्छा रोगी की आंखों में अंगुली या सलाई के साथ अञ्जन लगाने से कफज मूर्च्छा नाश होती है ।

४. किश्मिश, अनारदाना, धान की खील, कमल फूल, नीला कमल प्रत्येक ६ माशा० इन सब को दही के पानी में रात्री को भिगोकर प्रातः मल छान कर मिश्री मिलाकर पिलाने से पित्तज मूर्च्छा नाश होती है ।

५. हीरा हींग को घी में भून कर दो-तीन रत्ती जल में घोल कर मूर्छित के मुख में डालकर नासिका बन्द करदें इस से वात की मूर्छा तत्काल नाश होती है ।

भ्रम के लिये कुछ सिद्ध योग

१. धमासा १ तो. डेढ़ पाव पानी में पका कर चतुर्थांश रहने पर छान लें और इस में १ तो. गर्म किया हुआ गो घृत मिला कर पिलावें, इस के सेवन से भ्रम नाश होता है ।

२. कपास के बीज २ तो., धव की छाल ६ मा., चावल ४ तो., धनियां ३ मा., हींग १ मा., सोंठ १ मा., जीरा १॥ मा., सेंधा नमक आवश्यकतानुसार उचित मात्रा पानी मिला कर पेया की रीति से पकावें और भ्रम रोगी को सेवन करावें। इस से भी भ्रम का नाश होता है।

भ्रम नाशिनी वटी

पीपल, सतावर, सोंठ, हरड़ प्रत्येक ४ तो., गुड़ २४ तो०। सबको कूट पीस कर जंगली बेर बराबर गोली बना लें। दिन में तीन-चार गोलिया सेवन कराने से भ्रम का नाश होता है।

सुधानिधी रस

रस सिन्दूर १ तो, पिपली १ तो. दोनों को बारीक पीस कर शीशी में रखें।

मात्रा—२ रत्ती से ३ रत्ती तक।

अनुपान—६ मा. मधु में मिला कर दिन में दो-तीन बार सेवन कराने से सब प्रकार की मूर्छा दूर होती है।

मूर्छान्तक रस

रस सिन्दूर, स्वर्ण माक्षिकभस्म, स्वर्णभस्म, शुद्ध शिलाजीत, लोह-भस्म प्रत्येक १ तो० सब को एक खरल में डाल कर बराबर तीन दिन तक सतावर के रस और विदारी कन्द के रस में खरल करें और २ रत्ती प्रमाण गोली बनावें।

मात्रा—१ गोली प्रातः १ गोली सायं धारोष्ण गो दुग्ध के साथ सेवन कराने से सब प्रकार की मूर्छा नाश होती है।

सूचना—इस में पड़ने वाली स्वर्णमाक्षिकभस्म रसेन्द्र सारोक्त लवण और एरिण्ड तैल द्वारा बनी होनी चाहियें और स्वर्णभस्म पारद तथा गन्धक योग से सिद्ध होनी चाहिये। लोहभस्म शार्ङ्गधरोक्त मनसिल योग से बनी होनी चाहिये और रससिन्दूर कम से कम षड्गुण बलिजारित होनी चाहिये।

अश्वगन्धारिष्ट

असगन्धनागौरी २॥सेर, मूसली सफेद १ सेर, मजीठ ½ सेर, हरड़ ½ सेर, हल्दी ½ सेर, दारहल्दी ½ सेर, मुलहठी ½ सेर, रास्ना आध सेर, विदारीकन्द ½ सेर, अर्जुनछाल ½ सेर, नागरमोथा ½ सेर, निसोत ½ सेर, अनन्तमूल ½ सेर, सन्दल सफेद आध सेर, सन्दल सुर्ख आध सेर, वच आध सेर, चित्रकमूल छाल आध सेर, इन सब को यवकुट करके १२॥ मन पानी डाल कर पकावें, और आठवां भाग रहने पर छान लें फिर इस में एक मन उत्तम मधु मिला कर किसी उत्तम चिकने बर्तन में भर कर निम्न औषधियों का चूर्ण डाल दें।

सोंठ ८ तो०, पीपल ८ तो., काली मरिच ८तो., दालचीनी १६ तो., तेजपत्र १६ तो., इलायची १६ तो., प्रयंगू १६ तो , नागकेसर ८ तो., धाय के फूल ३ पाव सब को चूर्ण करके उपरोक्त अरिष्ट के पात्र में डाल कर पात्र का मुख बन्द कर दें, यदि शीतकाल हो तो एक मास के पश्चात् अगर उष्णकाल हो तो १५ दिन के पश्चात् पात्र का मुख खोल कर देखें, यदि भली प्रकार अरिष्ट नितर गया हो तो छान कर बोतलों में भर लें।

मात्रा—१। तो. से २॥ तो. दिन में दो-तीन बार सेवन कराने से सब प्रकार की मूर्छा भ्रम तथा तन्द्रादि नष्ट होते हैं।

तृषारोगाधिकार

निदान

भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयाद्वा उर्ध्वं चितं पित्तविवर्द्धनैश्च ।
पित्तं सवातं कुपितं नराणां तालुप्रसन्नं जनयेत्पिपासाम् ॥

भय तथा परिश्रम से, बल के क्षय से और पित्त प्रकोपी वस्तुओं के अधिक सेवन से सञ्चित हुआ पित्त कुपित होकर वायु के साथ ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता हुआ तालू में शोष उत्पन्न करके तृषा का कारण होता है ।

तृषा के भेद

१. वातज तृषा, २. पित्तज तृषा, ३. कफज तृषा,
४. क्षतज तृषा, ५. क्षायज तृषा, ६. आमज तृषा,
७. अन्नज तृषा ।

इस प्रकार से तृषा के सात भेद शास्त्रकारों ने वर्णन किये हैं । उपसर्गज नामक एक प्रकार की तृषा और भी होती है, जो ज्वरादि रोगों में उपद्रव रूप से उत्पन्न होती है ।

तृषा के उपद्रव

श्वासकास, क्षीणता, ज्वर, जिह्वा का बाहर निकलना, मोह, बधिरता आदि तृषा में उपद्रव रूप से उत्पन्न होते हैं और इनके उत्पन्न होने पर रोग असाध्य अथवा कष्टसाध्य समझना चाहिये ।

तृषा रोग की चिकित्सा

चिकित्सक के स्मरण रखने योग्य बातें

१. क्षयजतृषा रोग को छोड़कर शेष सर्व प्रकार की तृषा में रोगी को सर्व प्रथम मदन फलादि वमन कारक औषाधियों से वमन कराना आवश्यक है।

२. यदि पिपासा की अधिकता से पानी पी पी कर रोगी का पेट फूल गया हो, तो ऐसी अवस्था में एक तो० पीपल यवकुट करके १॥ सेर पानी में पकाकर चतुर्थांश रहने पर छान कर रोगी को पिलावें, इससे तृषा बन्द हो जाती और पेट भी ठीक हो जाता है।

३. ४ तो० मधु को १ सेर ठण्डे पानी में घोलकर रोगी को पिला दें, इससे वमन होकर तृषा बन्द हो जाती है।

वातज तृषा के लिये सिद्ध योग

सोने, चान्दी, लोहे अथवा मिट्टी के ढेले को आग में तपा तपाकर कई बार जल में बुझावें और इस पानी को ठण्डा करके रोगी को पिलावें, इससे वातज तृषा शान्त होती है।

२. हरी गिलोय का स्वरस १ तो० से २ तो. तक दिन में कई बार देने से वातज तृषा दूर होती है।

३ दहीके मट्ठेमें गुड़ मिलाकर खिलाने से वातज तृषा दूर होती है।

४ छुहारे की गुठली मुँह में रखकर चूसने से वातज तृषा रुक जाती है।

५. सूखे आंमले को मुंह में रखकर चूसने से वात की तृषा शान्त होती है।

६. १-२ अन्जीर फल खाने से वात की तृषा बन्द हो जाती है।

७. निम्बू को भूबल में गरम करके काट कर इस पर थोड़ा २ नमक डालकर चूसने से वात की तृषा शान्त होती है।

पित्तज तृषा के लिये सिद्ध योग

१. नीम के पत्र, पटोलपत्र, बांसापत्र प्रत्येक । १ तो० समभाग मधु मिलाकर रोगी को खिला दें और ऊपर से पेट भर ठण्डा पानी पिलावें, इससें वमन होकर पित्तज तृषा शान्त होती है। यदि कारण वश वमन न हो, तो गले में मोरपङ्ख, उङ्गली या दातुन डालकर वमन करा देनी चाहिये।

२. नीमछाल, धनियां, सोंठ, मिश्री प्रत्येक ६ माशा। आध सेर पानी में पकावें, चतुर्थांश रहने पर छानकर रोगी को पिलावें। इससे पित्त की तृषा अवश्य शान्त होती है ।

३. गूलर के पके हुए फलों का रस २ तो० से १०तो० तक पिलाने, से पित्त की तृषा दूर होती है ।

४, कैथ का गुदा ४ तो०,खांड ४ तो०। दोनों को मिलाकर खिलाने से पित्त की तृषा शान्त होती है।

५. नागरमोथा, पित्तपापड़ा, सुश्कबाला, धनियां, खस; चन्दन लाल प्रत्येक ६ माशा यवकुट करके २ सेर पानी में पकावें। जब आधा रह जाय तो छान कर ठण्डा करके इस में से थोड़ी थोड़ी मिश्री मिला कर रोगी को पिलाने से पित्त की तृषा शान्त हो जाती है।

६. गरुभारीकाफल, लाल चन्दन, खस, पद्माख, किश्मिश, मुलहटी, मिश्री, प्रत्येक ६ माशा सब को यवकुट करके किसी मिट्टी के पात्र में डाल कर इस में खौलता हुआ १॥ पाव पानी डाल दें और ठण्डा होने पर छान कर रोगी को पिलावें, इस से पित्त की तृषा शान्त होती है।

७. बढ़ की कोंपल, चन्दन श्वेत, लोध, अनारदाना प्रत्येक ६ मा० इनको सरदाई की तरह घोट कर मिश्री मिलाकर पिलाने से पित्त की तृषा नष्ट हो जाती है।

कफज तृषा के लिये सिद्ध योग

१. नीम की छाल २ तो० यवकुट करके आध सेर पानी में पकावें। आधा रहने पर गरम २ को ही छान लें इसमें २ तो० मधु मिलाकर रोगी को पिलावें। इस से वमन होकर शीघ्र ही कफ की तृषा शान्त होती है।

२. बेलछाल, अरहर के पत्ते, धाय फूल, पिपलामूल, चित्रक-मूल छाल, सोंठ, खस, प्रत्येक ४ माशा यवकुट करके यथा विधि क्वाथ बनाकर रोगी को पिलाने से कफ की तृषा तत्काल शान्त होती है।

३. बेरी के पत्तों का रस ५ तो० पिलाने से कफज तृषा शान्त होती है।

४. बेरों का गुद्दा, कैथ, अनारदाना, समान भाग निम्बू के रसमें पीस कर मस्तक पर लेप करने से कफ की तृषा शान्त होती है।

५. काला ज़ीरा, अद्रक, काला नमक, प्रत्येक १ तो०, २ सेर पानी डालकर पकावें, आधा रहने पर छान कर इस में से थोड़ा २ पिलाने से कफज तृषा शीघ्र शान्त होती है।

६. एक पाव गाय के गरम दूध में ६ माशा काली मिर्चों का चूर्ण मिलाकर पीने से कफ की तृषा शीघ्र शान्त होती है।

७. उत्तम सुरा अथवा ब्रांडी १, ५ तो०, तीन पाव शीतल जल में मिलाकर थोड़ा २ पिलाने से किसी औषधि से भी न रुकने वाली तृषा तथा अन्य प्रकार की तृषा अवश्य शान्त हो जाती है।

सर्व प्रकार की तृषा के लिये सिद्ध योग

१. भीगे हुए कपड़े को बिछा कर सोने से या ओढ़ने से पित्तज तृषा रुक जाती है।

२. गन्ने के रस में समभाग दूध मिलाकर थोड़ा मुलहट्टी चूर्ण मिला कर पीने से पित्त की तृषा शान्त होती है।

३. निम्बू का रस १ तो०, घी १ मा० निमक १ माशा तीनों को मिलाकर चटाने से सब प्रकार की तृषा शान्त होती है।

४. धनियां २ तो० आध सेर पानी में पकावें चतुर्थांश रहने पर छान लें ठण्डा करके मिश्री मिला कर पिलाने से सर्व प्रकार की तृषा शान्त होती है।

५. जंगली उपलों की राख १० तो०। ठण्डे पानी के मटके में घोल कर तृषा से व्याकुल पुरुष की नाभि पर रख दें इस से भी सर्व प्रकार की तृषा शान्त होती है।

६. चावलों की पीछे १० तोले, निम्बू का रस १ तोला दोनों को मिलाकर पिलाने से सब प्रकार की तृषा शीघ्र शान्त होती है।

७. आम के पत्र और जामन के पत्र प्रत्येक २॥ तो० २ सेर पानी में पकावें, आधा रहने पर छान लें, इसमें से ठण्डा करके थोड़ा २ पिलाने से सब प्रकार की तृषा शान्त होती है।

८. धान की खीलें ५ तो० आध सेर पानी में भिगो दें, १ घण्टा के पश्चात् मलकर छान लें और इसमें १ तो० खाण्ड और १ तो० मधु तथा छोटी कंण्डियारी का रस ६ मा० मिला कर पिलाने से सब प्रकार की तृषा शान्त होती है।

कुमुदेश्वर रस

ताम्रभस्म, (बांसारस योगेन) १ भाग, बंगभस्म, (इमली-योगेन) १ भाग। दोनों को मुलट्ठी के क्काथ अथवा रस में खरल करके २ रत्ती से ४ रत्ती की गोली बनावें, इन गोलियों को निम्न लिखित क्काथ के साथ दिन में २ बार सेवन कराने से सब प्रकार की तृषा शान्त होती है।

क्वाथ योग—चन्दन श्वेत, अनन्तमूल, नागरमोथा, छोटी इलायची, नागकेसर प्रत्येक ६ माशा और सब के समान धान की खील इन सबको ६४ तो० पानी में पकावें, आधा रहने पर छान लें और शीतल होने पर इसमें मिश्री मिलाकर उपरोक्त रस के साथ सेवन करावें।

महोदधिरस

बांसा रस योग से बनी हुई ताम्र भस्म, इमली योग से बनी हुई बंग भस्म कूष्माण्ड द्वारा शुद्ध हड़ताल, शुद्ध तूतीया, सब को समान भाग लेकर बड़ के अङ्कुर के रस में सात दिन खरल करके २ रत्ती प्रमाण गोली बनावें। इन गोलियां को आम और जामन की छाल के क्वाथ के साथ प्रातः सायं एक से दो गोली सेवन करने से सर्व प्रकार की तृषा शान्त होती है।

तृषा रोग में पथ्य

संशोधन, वमन, निद्रा, स्नान, कवल धारण, कोदों, शाली चावल, पेठा, धान की खील, जौ के सत्तू, जिह्वा के नीचे की शिराओं को जलती हुई हल्दी से दाग देना, चौदह गुणा पानी में बनाई हुई पीछ, जंगली जीवों का मांस रस, मिश्री, मीठा दही और मिश्री तथा भुनी हुई मूंग, मसूर, व चनों का रस, केलों के फूल की तरकारी, द्राक्ष, पित्त पापड़ा, कैथ, बेर, अनार, कमरख, आमले, ककड़ी, खस का जल, यह सब तृषा रोग में पथ्य अर्थात् हितकारी हैं ।

तृषारोग में अपथ्य

स्नेहकर्म, अञ्जन, स्वेदकर्म (पसीना देना), धूम्रपान (हुक्कापीना), व्यायाम, धूप में फिरना, दातुन करना, भारी अन्न खाना, अधिक नमक वाले रसों का सेवन । यह सब तृषा रोग में अपथ्य अर्थात् अहितकर हैं ।

दाहरोगाधिकार

निदान

त्वचं प्राप्तः स पानोष्मा पित्तरक्ताभि मूर्छितः ।
दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवक्ता भेषजम् ॥१॥

मद्यादि अत्युष्ण पदार्थों के अधिक सेवन से दूषित हुआ पित्तरक्त में ऊष्मा पैदा करता हुआ त्वक्गत अत्यन्त दाह को उत्पन्न करता है। इस रोग को आचार्यों ने "दाह" कहा है।

दाह के भेद

१. पित्तज, २ रुधिरजन्य, ३. पिपासा रोकने से उत्पन्न,
४. रक्तपूर्ण कोष्टज, ५. मद्यजन्य, ६. धातु क्षयज,
७. मर्म अभिघातज।

असाध्य लक्षण

जिस दाह रोगी के शरीर के अन्तरभाग में तो अत्यन्त दाह हो, परन्तु बाहर से त्वचा ठण्डी प्रतीत हो, ऐसे दाहरोगी असाध्य होते हैं।

चिकित्सा विधि और चिकित्सक के स्मरण रखने योग्य बातें।

१ दूध अथवा दूध वाले वृक्षों के तथा श्वेत चन्दनादि, शीत प्रधान वस्तुओंसे बनाए हुए क्वाथ अथवा हिम् दाहरोग में आवश्यकतानुसार लाभकारी होते हैं।

२. दाह रोग में कभी २ त्वचा की ऊष्मा रुकने से रोगी के अन्तरभाग में अति दाह होती है और बाहर से त्वचा ठण्डी प्रतीत होती है, ऐसी अवस्था में अगर आदि उष्ण औषधियों का लेप करके आन्तरीय ऊष्मा को बाहर निकालने का यत्न करना चाहिये।

३. पित्त और रक्तजन्य दाह की चिकित्सा सर्वदा पित्त शामक औषधियों से करनी चाहिये।

४. रक्त की अधिकता से उत्पन्न दाहरोग में बाहुमध्य रक्तवाहिणी शिरा में से रक्त निकलवाना चाहिये, पश्चात् श्वेत सन्दल, कपूर, खस, आदि शीतल वस्तुओं का शरीर पर लेप करना चाहिये।

५. पिपासा रोकने से उत्पन्न होने वाली दाह में रोगी को खूब शीतल जल अथवा चन्दनादि शीत पानक (शर्बत), शीतल जल मिलाकर पिलाने चाहियें या अति ठण्डे जल में स्नान करावें।

६. धातुक्षय से उत्पन्न होने वाले दाहरोग में दूध, माखन, मलाई, चावल, मांस रसादि धातु को बढ़ानेवाले पदार्थ सेवन कराने चाहिये।

दाहरोग के लिये सिद्ध योग

१. गायके माखन को एक-सौ बार पानी से धोकर शरीर पर लगाने से पित्तजन्य दाह शान्त होती है।

२. कांजी अथवा सिर्का को बर्फ से ठण्डा करके इसमें एक खद्दर की चादर को भिगोकर रोगी के शरीर पर लपेट दें। जब गरम हो जाए, तो पुनः भिगोकर लपेट दें। इसी प्रकार ३-४ बार करने से पित्तजन्य दाह को अवश्य लाभ होता है।

३. जौ का बारीक आटा १॥ सेर, कपूर ६ मा०। दोनों को बकरी के दूध में घोटकर शरीर पर लेप करने से दाह शान्त होती है।

४. बेर और आमलों को ठण्डे पानी में घोटकर शरीर पर लेप करने से दाह दूर होती है।

५. मुश्कबाला, श्वेत चन्दन, पद्माख, खस, कमलफूल प्रत्येक ४ तोला। इनको पीसकर १ मन पानी में रात्री के समय भिगो दें, प्रातः इस जल को एक बड़े टबमें भरकर दाह से पीड़ित रोगी को इसमें बिठावें, इससे सर्व प्रकार की दाह शान्त होती है।

६. धनियां २तो, कूटकर १पाव पानी में रात्री को भिगो दें, प्रातः छान कर इसमें मिश्री मिलाकर रोगी को पिलावें, इसी प्रकार सायंकाल भी

सेवन करावें, इस से पित्तजन्य दाह अवश्य शान्त होती है।

७. मंजीठ, धनिया, चन्दन श्वेत, रक्त चन्दन, खस, आमला, मुण्डी, हरड़, प्रत्यक ६ मा० यवकुट करके एक मिट्टी के सिकोरे में सेर भर पानी डालकर रात्री को भिगो दें और अगले दिन इस में से थोड़ा २ छानकर मिश्री मिलाकर रोगी को कई बार पिलाने से रक्तदोष से उत्पन्न हुई दाह शीघ्र शान्त होती है।

चन्दनादि हिम्

चन्दन श्वेत लाल चन्दन, पित्त पापड़ा, मुश्कबाला खस, नागरमोथा, कमलगट्टा, कमलफूल, सौंफ, धनिया पद्माख, आमला प्रत्येक ६ माशा। सब को यवकुट करके रात्री को भिगो दें। अगले दिन इसमें से थोड़ा२ मिश्री मिला कर रोगी को कई बार पिलाने से दाह शांत होती है ।

दाहान्तक हिम्

पित्तपापड़ा, खस, वांसापत्र, नागरमोथा, लालचन्दन, पद्माख, प्रत्येक एक १ तो० यवकुट करके एक सेर जल में रात्री को भिगो दें और अगले दिन थोड़ी २ छान कर मिश्री मिला कर कई बार पिलावें, यह सर्व प्रकार के दाह की शांति के लिये उत्तम योग है ।

तृफलादि क्वाथ

हरड़, बहेड़ा, आमला, गुद्दा अमलतास प्रत्येक २ तो. सब को तीन पाव पानी में रात्री को भिगो रखें प्रातः दो तीन जोश दे कर मलकर छान लें और इस में ४ तो. मिश्री मिला कर पिलावें। इस के सेवन से रक्त पूर्ण कोषटज दाह शान्त होता है।

कांजिक तैल

साढ़े बारह सेर उत्तम कांजी में एक सेर उत्तम तिलों का तैल डाल कर मन्दाग्नि पर पकावें जब तैल मात्र रह जावे तो छान कर बोतलों में भर

लें, इस की नित्य मालिश करने से सर्व प्रकार की दाह शान्त होती है ।

दाह रोग में पथ्य

शालयः षष्टिका मुद्गा मसूराश्चणका यवाः ।
धन्वमां सरसा लाहजमण्डस्तत्सक्तवः सितः ॥
शतधौतं घृतं दुग्धं नवनीतं पचोश्रवम् ।
कूष्माण्डं कर्कटी मोचं पनसं स्वादु दाड़िमम् ॥
पटोलं पर्पटं द्राक्षा धात्री फल परुषकै ।
बिंबी तुम्बीपयः पेटी खर्जूरे धान्यकंमिथिः ॥
वालतालं प्रियालं च श्रृणाटककसेरुकम् ।
मधूकपुष्पं ह्रीवेटं पथ्या तिक्तानि सर्वतः ॥

शाली चावल. सांठी चावल, मूंग, मसूर, चना, जौ, जंगली जीवों का मांस रस, धान की खील की पीछ, जवों के सत्तू, मिश्री, सौ बार धोया हुआ घी, गो दुग्ध, दुग्ध से निकाला हुआ मक्खन, पेठा, ककड़ी, केला की गहर, कटहर, मीठा अनार फल, परवल, पित्तपापड़ा, द्राक्ष, आमले, फालसे, कुन्दरु, तूम्बी, दूध की खुर्चन, खजूर धनिया, सौंफ, ताड़ फल, सिंघाड़े, कसेरु, मौहवे के फूल, मुश्कबाला, हरड़, कुटकी और सब प्रकार के तिक्त पदार्थ शीतल वस्तुओं का शरीर पर लेप, तहखाने में निवास, चन्दनादि शीतल वस्तुओं का बटना, ठण्डे जल में अधिक काल तक स्नान करना, कमल के पत्तों और सुन्दर रेशमी वस्त्रों से आच्छादित शैय्या, शीतल तथा सघन बनस्थान में निवास, मनोहर कथा, वार्ता तथा हृदय को प्रसन्न करने वाले गीत, शीतल वायु, फवारों वाला घर, चन्द्रमा की चांदनी, मुक्तादि मणियों का धारण, सर्व प्रकार के मीठे रसयुक्त पदार्थ, यह सब दाह रोगी के लिये पथ्य अर्थात् हितकारी हैं ।

दाहरोग में अपथ्य

विरुद्धान्यान्नपानानि क्रोधं वेगविधारणम् ।
गजाश्वयानमध्वानां क्षारं पित्त कराणि च ॥
व्यायाममातपं तक्रं ताम्बूलं मधुरामठम् ।
व्यवायं कटुतिक्ष्णोष्णं दाहवान् परिवर्जयेत् ॥

विरुद्ध अन्न पान, क्रोध, मल-मूत्रादि वेगों का रोकना, हाथी और घोड़े की सवारी, पैदल मार्ग चलना, लवण अथवा क्षारयुक्त वस्तुओं का अधिक सेवन, पित्त कारक अत्युष्ण पदार्थों का सेवन, व्यायाम, धूप में चलना, फिरना, छाछ पीना, पान खाना, मधु, हींग, स्त्री प्रसंग, लाल मरिचादि तीक्ष्ण पदार्थों का सेवन यह सब दाह रोगी के लिये अपथ्य अर्थात् अहितकारी हैं ।

उन्मादरोगाधिकार ।

मदयन्त्युद्धता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः ।
मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्त्तितः ॥

वात पित्तादि दोष जब अत्यन्त बढ़ कर विषम गामी होते हुए मनोवह (मन को बहलाने वाली) धमनियों में प्रवेश करके मन में भ्रान्ति उत्पन्न करते हैं इस को उन्माद रोग कहते हैं।

उन्मादरोग के भेद

१. वातज २. पित्तज ३. कफज
४. सन्निपातज ५. मनोदुखजन्य ६. विषजन्य

इस प्रकार उन्माद रोग के छः भेद होते हैं।

असाध्य लक्षण

अवाङ्मुखस्तून्मुखो वा क्षीण मांस बलो नरः ।
जागरूको ह्यसन्देह मुन्मोदन विनश्यति ॥

जो उन्माद रोगी सदैव नीचे अथवा ऊपर ही मुख किये रहता है। तथा जिस का मांस बलक्षीण हो गये हों, निद्रा कभी न आती हो ऐसे उन्माद रोगी को असाध्य जानना चाहिये।

उन्माद चिकित्सा विधि

वातिके स्नेहपानं प्राग्विरेकः पित्तसम्भवे ।
कफजे वमनं कार्य्यं परो चस्तथादिकाः क्रमः ॥

वातज उन्माद रोगी को प्रथम स्नेहपान, पित्तज को विरेचन कफज को वमन और अन्य तीन प्रकार के अर्थात सन्निपातज, मनोदुखजन्य और विषजन्य उन्माद रोगियों की वस्त्यादि पंचकर्म द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये।

उन्माद रोग के लिये सिद्ध योग

१. ब्राह्मी, पेठा, वच, शंखपुष्पी इन सब के स्वरस अथवा किसी एक के ४ तो. स्वरस में एक माशा से तीन माशा कुठ का बारीक चूर्ण मिला

कर केवल तीन दिन तक सेवन करने से वातज उन्माद शान्त होता है ।

२. चंगेरी (खटकल) का रस, कांजी और गुड़ प्रत्येक ४ तो० मिलाकर केवल तीन दिन सेवन करने से वातज उन्माद की शान्ति होती है ।

३. मण्डूकपर्णी का स्वरस ४ तो० धतूरे के पत्तों का स्वरस १तो०, दोनों को मिलाकर सेवन कराने से वात तथा पित्त उन्माद नष्ट होते हैं ।

४, कोयल का मांस खिलाकर रोगी को वात रहित स्थान में रक्खें, इससे १-२ दिन में ही उन्माद नष्ट होगा ।

५- रेवन्द चीनी ३ या ४ तो० लेकर पानी में पीसकर उन्माद रोगी के कन्धे के बीच थोड़े ही दिन में लेप करने से थोड़े ही दिनों में सब प्रकार का उन्माद नष्ट होता है ।

६- चम्पाफूल २ तो० पीसकर शहद मिलावें, इसके कुछ दिन सेवन से सब प्रकार का उन्माद शान्त होता है ।

७- दशमूल की दसों वस्तुयें ४ तो० आध सेर पानी में पकावें, जब, जल आधा रह जाय, तो छानकर इसमें आध सेर गाय का दूध मिला कर पुनः पकावें और दूधमात्र रहने पर २ तो० मधु मिला कर सेवन कराने से थोड़े ही दिनों में कफज उन्माद का नाश होता है ।

८. १० तो० से २० तो० तक गधे का मूत्र प्रातः सायं पिलाने से सब प्रकार का उन्माद विशेषकर कफजन्य उन्माद शीघ्र ही शान्त होता है ।

९. घुघुन्ची लाल २ नग पीसकर आध सेर गाय के दूध के साथ कुछ दिन सेवन करने से कफज उन्माद अवश्य शांत होता है ।

१०. ब्रह्मी का रस २० तो , शङ्खपुष्पी का रस २० तो०, वच का रस अथवा क्वाथ २० तो०, कुठ का रस अथवा क्वाथ २० तो , १० वर्ष का पुराना गोघृत २० तो० । सबको एक उत्तम ताम्बे के पात्रमें डालकर मन्दाग्नि पर पकावें, जब घृतमात्र रह जाय, तो छान कर रख लें ।

मात्रा—६ मा० से २ तो० ।

अनुपान– गो अथवा बकरी के दूध में मिला कर पिलाने से पित्तजन्य उन्माद का नाश होता है ।

सारस्वत चूर्ण

कुठ, असगन्ध नागौरी, सेन्धा नमक, अजमोद, ज़ीरा सफेद, काली मरिच, सौंफ, पीपल, काला ज़ीरा, पाठा, शङ्खपुष्पी प्रत्येक २तो०, सब का बारीक चूर्ण बनावें और सारे चूर्ण के समान वचचूर्ण मिलाकर ब्रह्मी स्वरस में ७ दिन तक खरल करें और सूख जाने पर सावधानी से रक्खें।

मात्रा—६ माशा से १ तो० तक।

अनुपान—घृत और मधु मिला कर सेवन कराने से सर्व प्रकार का उन्माद नष्ट हो जाता है।

विश्वादि चूर्ण

सोंठ, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी, सेन्धा नमक, वच, मुलहठी, पीपल, काला ज़ीरा प्रत्येक समभाग लेकर बारीक चूर्ण बनावें।

मात्रा—३ मा० से ६ मा० तक।

अनुपान—घी और शहद मिला कर सेवन कराने से कफजन्य उन्माद दूर होता है।

उन्माद गजांकुश रस

पारा शुद्ध २ तो०, शुद्ध गन्धक २ तो०। दोनों को खरल करके काजल की तरह बनायें और लोहे की कड़छी में डाल कर हल्की अग्नि पर रक्खें और किसी लोहे की सीख से हिलाते जांय, जब हिलाते २ धूआं निकलना बन्द हो जाय, तो इस काले रङ्ग की औषधि को लेकर इसमें धतूरबीज २ तो०, कृष्णाभ्रक भस्म २ तो०, शुद्ध गन्धक २ तो०, शुद्ध वत्सनाभ विष २ तो० बारीक पीस कर मिला दें और बराबर ३ दिन तक ब्रह्मी रस डालकर खरल करें, फिर एक २ रत्ती की गोली बना लें।

मात्रा—एक गोली प्रातः एक गोली सायं।

अनुपान—मधु के साथ सेवन कराने से कफजन्य उन्माद शीघ्र नष्ट हो जाता है।

सूचना—इस रस में पड़ने वाली कृष्णाभ्रक भस्म रसेन्द्रसारोक्त श्रृङ्गवेरादि द्वारा बनी होनी चाहिये।

तिक्ताद्यवलेह

हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, काली मिरच, पीपल, चित्रकमूल-छाल, नागरमोथा, वायविडङ्ग, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, असगन्ध-नागौरी, काकोली, क्षीर काकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलहठी, प्रत्येक १ तो० उत्तम मनः शिला योग से बनी हुई लोहभस्म १८ तोला। सब को बारीक पीसकर एकरस करके शीशी में रक्खें ।

मात्रा –१ रत्ती से ४ रत्ती तक।

अनुपान--दूध अथवा दूध की मलाई या मक्खन के साथ सेवन कराने से मनोदुखजन्य उन्माद शान्त हो जाता है।

उन्माद भञ्जन रस

त्रिकुटा, त्रिफला, गजपीपल, वायविडङ्ग, देवदार, चिरायता, कुटकी, छोटी कटेरी, मुलहठी, इन्द्रजौ, चित्रकमूलछाल, खरैंटी, पिप्पला-मूल, खस, सुहाञ्जने के बीज, निसोत, इन्द्रायण, बङ्गभस्म, चांदी भस्म, कृष्णाभ्रकभस्म, प्रवालभस्म प्रत्येक १ तो०, सबके बराबर लोहभस्म। इन सबको एकत्र पीसकर जल के साथ दो-तीन रोज़ खरल करें ।

मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक।

अनुपान--मधु के साथ अथवा गरम किये गोदुग्ध के साथ सेवन कराने से वात तथा कफजन्य उन्माद का नाश होता है।

सूचना--इसमें पड़ने वाली वङ्ग और चांदी भस्म हड़ताल योग से कृष्णाभ्रकभस्म शृङ्गवेरादिगण से तथा लोहभस्म शारङ्गधरोक्त मनः शिल योग से बनी हुई होनी चाहिये ।

ब्रह्मी घृत

ब्रह्मी स्वरस ४ सेर, गाय का घी १ सेर तथा बच्च, कुठ, शंखपुष्पी, प्रत्येक १ पाव। सब को एक उत्तम कलईदार बर्तन में डालकर मन्दाग्नि पर पकावें; जब घृत मात्र रह जाये, तो छानकर रख लें।

मात्रा--६ माशा से २ तोला तक।

अनुपान--गाय के गरम दूध में मिलाकर सेवन कराने से वात तथा पित्तजन्य उन्माद नष्ट होता है ।

महापैशाचिक घृत

बालछड़, हरड़, भूतकेशी, ब्रह्मी, कौंच्च बीज, बच, त्रायमाणा, अरणी, क्षीरकाकोली, कुटकी, चोरपुष्पी, सम्भालू, विदारीकन्द, सौंफ, सोये के बीज, गुग्गुल, शतावर, गिलोय, रास्ना, मालकङ्गनी, शालपर्णी प्रत्येक २ तो०। सबको बारीक पीसकर ८ सेर पानी, २ सेर गाय का घी मिलाकर मदाग्नि पर पकावें, जब घृतमात्र रह जावे, तो छान लें।

मात्रा--६ मा० से २ तो० तक।

अनुपान—गाय के दूध में प्रातः सायं सेवन कराने से सब प्रकार का उन्माद रोग शांत होता है ।

सारस्वत घृत

हरड़, बहेड़ा, आमला, छोटीकटियारी की जड़, अनंतमूल, मजीठ, गिलोय, ब्रह्मी, बड़ी कटेरी, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, विसखपरा; सहदेवी, सूर्यमुखी प्रत्येक ४ तो०। सबको बारीक पीसकर १६ सेर पानी में पकावें, जब चतुर्थांश रह जावे, खूब मलकर छान लें। तगर २॥ तो०, सम्भालू २॥ तो०, बच्च २॥ तो०, कुठ २॥ तो० पीपल २॥तो०, सरसों २॥ तो०,सेंधा नमक २॥ तो०, सब को बारीक पीसकर उपरोक्त छने हुए क्वाथ में मिलावें और गाय का दूध १६ सेर, गाय का घी १ सेर। सब को एकत्र करके मन्दाग्नि पर पकावें, जब घृतमात्र रह जाये, तो छान लें।

मात्रा-६ मा० से २ तो० तक।

अनुपान—गाय के दूध में मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार का उन्माद नष्ट होता है।

उन्माद रोग में हमारा अनुभव

१. शंख पुष्पी १ तो०, पेठे के बीज ६ मा० बादामकी गिरी ७ नग, ब्रह्मी ३ मा० सब को सरदाई की तरह घोट कर एक पाव पानी मिला कर

छानें और इसमें४तो०मिश्री मिला कर रोगी को पिलावें इस की एक ही मात्रा से पित्तजन्य उन्माद रोगी जो कई दिनों से नहीं सोता था अवश्य निद्रा आ जाती है और इस के निरन्तर एक सप्ताह सेवन से पित्तजन्य उन्माद अवश्य शान्त होता है।

२. अफतेमू २० तो०, ब्रह्मी २० तो०, वच २॥ तो० तीनों को १६ गुना पानी में रात्रि को भिगो दें, प्रातः इतना पकावें कि पानी चतुर्थांश रह जाए, फिर इस को छान कर ४ सेर बकरी का दूध और १ सेर गाय का घी मिला कर मन्दाग्नि पर पकावें जब घृत मात्र शेष रह जावे तो छान लें।

मात्रा—६ माशे से २ तोला तक।

अनुपान—गाय अथवा बकरी के दूध में मिला कर सेवन करावें यह भी उन्माद रोग की उत्तम औषधि है।

३. अफतेमू (आकाश बेल) २० तो०, २ सेर पानी में रात्री को भिगो दें। प्रातः इतना पकावें कि पानी चतुर्थांश रह जाए फिर मल कर छान लें, इस में १। सेर खांड मिला कर शर्बत बना लें।

मात्रा—२ तोले से ४ तोले तक आवश्यकतानुसार पानी मिला कर पिलाने से उन्माद रोग शान्त होता है।

४. स्वर्ण भस्म १ मा० मूंगा भस्म २ माशा, मोती भस्म ३ मा०, पुखराज भस्म ३ मा०, अकीक भस्म ६मा० संग यशब भस्म १मा० सब को ब्रह्मी के रस में डाल कर२१दिन तक खरल करें,सूख जाने पर शीशी में रखें।

मात्रा—½ रत्ती से १ रत्ती तक।

अनुपान—मक्खन अथवा मलाई में सेवन कराएं।

यह मनो दुःख जन्य उन्माद के लिए अव्यर्थ औषधि है। इस औषधि के सेवन काल में यदि उपरोक्त अफतेमू का शर्बत और निम्न लिखित पेठापाक भी सेवन कराया जाए तो आशातीत लाभ होता है।

पेठापाक

उत्तम पका हुआ पेठा कद्दूकस कर के ४ सेर गाय का दूध १६ सेर दोनों को इतना पकावें कि मावा बन जावे फिर इस में ½ सेर गाय का

घी मिला कर मन्दाग्नि पर पकावें जब भली प्रकार पक कर लाल हो जाए तो आग पर से उतार लें फिर ४ सेर उत्तम खांड घी की चासनी बना कर इस में उपरोक्त पेठे और निम्न लिखित औषधियों का चूर्ण मिला दें।

ब्रह्मी २ तो०, सोंठ १ तो०, काली मिरिच ६ मा०, पीपल ६ मा०, मालकङ्गनी २ तो०, शंखपुष्पी १० तो०, पेठे के बीज की गिरी ५ तो०, बादाम गिरी १० तो०, छोटी इलायची १ तो०, चांदी भस्म ३ मा०, मोती भस्म ३ मा०, अकीक भस्म ३ मा०, प्रवाल भस्म ३ मा० सब को पेठा पाक में मिला दें।

मात्रा—२ तोले से ४ तोले तक।

अनुपान—प्रातः सायं गाय के दूध के साथ सेवन करने से वात तथा पित्तजन्य उन्माद को अवश्य लाभ होता है।

उन्माद रोग और सर्प गन्धा

यह एक बिहार और बंगाल प्रान्त में उत्पन्न होने वाली उन्माद नाशक महौषधि है इस के सम्बन्ध में भारत के कई एक विद्वान् वैद्यों का अनुभव है कि यह उन्माद रोग को समूल नष्ट करने के लिए एक अव्यर्थ औषधि है। बिहार तथा बंगाल प्रान्त में ग्रामीण लोग इस को चन्दविरवा तथा धोलोविरवा के नाम से भी पुकारते हैं इसके सम्बन्ध में हमारा अनुभव इस प्रकार है उन्माद रोगियों को जब रोग के कारण निद्रा न आती हो तो इसकी ४ रत्ती से १ माशे की मात्रा प्रातः सायं जल अथवा दूध के साथ सेवन कराने से निद्रा अवश्य आ जाती है। कई रोगी इस के सेवन से बारह से सोलह घण्टे तक सोते देखे गए हैं।

हमारी सम्मति में पूर्वोक्त अन्य उन्माद नाशक प्रयोगों के साथ यदि इसका सेवन कराया जाय तो उन्माद रोग की चिकित्सा में निश्चित सफलता प्राप्त हो सकती है।

उन्माद रोग में पथ्य

स्नेह कर्म, विरेचन, वमनादि कर्म कराकर पश्चात्, वात पित्त कफ से उत्पन्न उन्माद पर वस्ति कर्म, नस्य कर्म, डराना, ताड़न करना, अञ्जन

लगाना, धीरज बंधाना, त्रास देना, बांधना, भयभीत करना, प्रसन्न करना, धूनी देना, पीटना, सुलाना, लेप करना, फसद खोलना, शमन करना, आश्चर्य जनक कर्मों का करना, गेहूं मूंग, लाल चावल, धारोष्ण गोदुग्ध, सौबार धोया हुवा घी, पुराना घी, कछुए का मांस, जंगली पशु पक्षियों का मांस रस,पुराना पेठा, परवल, ब्रह्मी,बथुआ, चौलाई,गधे और घोड़े का मूत्र, वर्षा का जल, हरड़, स्वर्णभस्म, नारियल की गिरी, दाख, कटहर, यह सब कर्म और पदार्थ उन्माद रोग में पथ्य अर्थात हितकारी हैं ।

उन्माद रोग में अपथ्य

मदिरा, विरुद्ध, भोजन, गरम भोजन, निद्रा, क्षुधा, प्यास इन के वेगों का रोकना, व्यायाम और आषाढ़ मास में उत्पन्न होने वाले फल पत्र शाखादि सब प्रकार के तीखे और चटपटे पदार्थ । यह सब उन्माद रोगं में अपथ्य अर्थात् अहितकर हैं ।

अपस्माराधिकार (मिर्गी)

निदान

चिन्ता शोकादिभिर्दोषाः क्रुद्धा हृत्स्रोतसां स्थिताः ।
कृत्वा स्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते ॥

चिन्ता शोकादि कारणों से कुपित हुए वात्त पित्तादि दोष हृदय और ज्ञान वाही स्रोतों में स्थित हो कर स्मरण शक्ति को नष्ट करके अपस्मार रोग को उत्पन्न करते हैं ।

अपस्मार के भेद और सामान्य लक्षण

वातात्पित्तात्कफात्सर्वैर्दोषैः स स्याच्चतुर्विधः ।
तमसो दर्शनं ध्यानं हृत्कम्पो नेत्र वेकृतम् ॥
भ्रमो हृदय शून्यत्वं भाविनस्तस्य लक्षणम् ।

वात, पित्त, कफ तथा त्रिदोषज, ऐसे अपस्मार रोग चार प्रकार का होता है ।

अन्धकार दर्शन, एक ही ओर ध्यान लगाए रखना, हृदय का कांपना नेत्रों का विकृत होना, भ्रम, हृदय में शून्यता ।

अपस्मार के वेग का समय

अपस्मार रोग के वेग अर्थात् दौरे का समय आयुर्वेद शास्त्रों में वात पित्तादि दोषों की दृष्टि से निम्न लिखित प्रकार से माना है । वातज अपस्मार का दौरा बारह दिन के पश्चात्, पित्तज अपस्मार का दौरा पन्द्रह दिन के पश्चात् और कफज अपस्मार का दौरा एक मास के पश्चात् होता है । त्रिदोषज अपस्मार के दौरे का कोई नियत समय नहीं । कई रोगियों को दूसरे चौथे दिन, कइयों को प्रतिदिन और कई एक को दिन में कई बार होता हुआ देखा गया है ।

असाध्य लक्षण

विस्फुरन्तं सुबहुशः क्षीणं प्रचलित-भ्रुवम् ।
नेत्राभ्याञ्च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत् ॥

जो अपस्मार रोगी अत्यन्त कांपे, जिसकी दोनों भौवें हर समय फड़कती रहें, नेत्रों को टेढ़ा रखे और जिस का शरीर अत्यन्त कृश हो गया हो, ऐसा अपस्मार रोगी बच नहीं सकता ।

अपस्मार चिकित्सा विधिः

पूर्वां युज्ज्यादपस्मारे छर्दनादीनि बुद्धिमान् ।
वातिकं वस्तिभिः प्रायः पैतिकन्तु विरेचनैः ॥
कफजं वमनैर्धीमानपस्मारमुपाचरेत् ॥

बुद्धिमान वैद्य को अपस्मार की चिकित्सा इस प्रकार आरम्भ करनी चाहिये । वातज अपसमार में प्रथम वस्ति कर्म, पित्तज में विरेचन (जुल्लाब) और कफज अपस्मार रोग में वमन करावें । इस प्रकार अपस्मार रोगी के शरीर की शुद्धि करके पश्चात् उन्मादरोगोक्त औषधियें प्रयोग करावें ।

"अपस्मार का दौरा रोकने वाले सिद्ध योग"

१. आक की जड़ की छाल को बकरी के दूध में पीसकर दौरे के समय दो चार बूंदें रोगी के नाक में टपकाने से शीघ्र दौरा शान्त हो जाता है ।

२. रीठे का छिलका बारीक पीसकर दौरे के समय नस्वार देने से दौरा खुल जाता है ।

३. नौशादर ६ मा०, एलवा ३ मा० दोनों को बारीक पीसकर १ तो० सरसों के तेल में मिलावें, दौरे के समय इसकी दो-चार बूंदें नाक में टपकाने से शीघ्र दौरा खुल जाता है ।

४. कण्डियारी की जड़ का छिलका ३ मा०, भांग का बीज ३ मा० दोनों को बारीक पीसकर छोटे बच्चे के मूत्र में मिलाकर नाक में टपकाने से से मिर्गी का दौरा तत्काल शान्त होता है ।

५. राई को पीस कर दौरे के समय सुंघाने से 'दौरा खुल जाता है।

६. एक कपड़े की बत्ती बना कर खटमल के खून में तर करके उसका धूआं देने से दौरा दूर होता है।

७. ढाक की जड़ पानी में घिस कर नाक में टपकाने से मिर्गी का दौरा दूर होता है।

८. गीदड़ के पित्ता में काली मिर्च भर कर छाया में सुखा लें और सूखने पर मिर्चों को रखलें, इनमें से दो मिर्च पानी में घिसकर नाक में टपकाने से दौरा शान्त होता है।

६. चूहे का भेजा लेकर छाया में सुखा लें सूखने पर बारीक पीस कर रखें और इस में से दो तीन रत्ती रोगी के नाक में भर कर बांस की नली से फूंके इससे भी शीघ्र दौरा खुलेगा।

१०. महुए का बीज ½ नग काली मिर्च २½ नग दोनों को पानी में पीसकर नाक में टपकाने से तत्काल दौरा दूर होता है।

११. नक छिकनी, कुटकी, गुद्दा इन्द्रायन, करेला का रस, काली मिर्च, कलौंजी, सोंठ, जुन्दबदस्तर, इन में से जो चीज भी समय पर मिल सके अपस्मार रोगीके नाक में डालने से मिर्गी का दौरा शीघ्र शान्त होता है।

अपस्मार रोग के लिये शास्त्रीय सिद्ध योग

महापञ्चगव्य घृत

दशमूल, त्रिफला, हल्दी, दारू हल्दी, कुडाछाल, सत्वन, अपामार्ग, नील, कुटकी, अम्बलतास का गूदा, अमलतासकी जड़, पोहकरमूल, धमासा, प्रत्येक ८ तो० सब को यवकुट करके १६ सेर पानी में पकावें जब चतुर्थांश रह जावे तो छान लें फिर इसमें भारंगी, पाढ़, त्रिकुटा, निसोत, जलबेत, हरड़, अरहर, मुर्वा, दन्ती, चिरायता, चित्रकमूल छाल, अनन्त-मूल, रोहिषत्रण, भूत्रण, मोतिया के फूल, प्रत्येक २ तो० सब को पीस कर क्वाथ में डाल दें और इसी में गाय का घी १ सेर, गाय के गोबर का रस १ सेर, दही १ सेर, दूध १ सेर, गोमूत्र १ सेर सब को एकत्र मिला कर

मन्दाग्नि पर पकावें। जब घृतमात्र रह जावे तो नितार कर छान लें।

मात्रा—१ तो० से २ तोला तक प्रातः सायं सेवन करने से सब प्रकार का विशेष कर वात और पित्त अपस्मार शान्त होता है।

महाचैतस घृत

सण के बीज, निसोत, आरिण्डमूलछाल, दश मूल, सतावर, रास्ना, पीपल, सुहांजने के बीज प्रत्येक ८ तोला इन सब को यवकुट कर के १६ गुना पानी में पकावें चतुर्थांश रहने पर छान लें फिर इस में विदारी कन्द, मुलहठी, मेदा, महा मेदा, काकोली, मिश्री, खजूर, सतावर, दाख, छुहारा, गोखरू प्रत्येक २ तोला, सब को बारीक पीस कर मिला दें और गाय का घी २ सेर मिला कर मन्दाग्नि पर पकावें जब घृत मात्र रह जाए तो नितार कर छान लें।

मात्रा—१ तो० से २ तो० तक प्रातः सायं सेवन कराने से वात तथा पित्त से उत्पन्न होने वाला अपस्मार शान्त होता है।

ब्रह्मी घृत

वच २० तो०, कुठ २० तो०, शंख पुष्पी २० तो० इन तीनों को बारीक पीस लें। ब्रह्मी का रस १६ सेर, गाय का घी ४ सेर सब को मिला कर मन्दाग्नि पर पकावें जब घृत मात्र रह जाय तो नितार कर छान लें।

मात्रा—१ तोला से २ तोला तक प्रात: सायं सेवन करने से कफ जन्य अपस्मार शान्त होता है।

कूष्माण्ड घृत

मुलहठी का चूर्ण ½ सेर, पेठे का पानी ३६ सेर, गाय का घी २ सेर सब को मिला कर मन्दाग्नि पर पकावें घृतमात्र रहने पर नितार कर छान लें।

मात्रा—१ तो० से २ तो० तक प्रातः सायं सेवन करने से पित्त से उत्पन्न होने वाला अपस्मार रोग नष्ट होता है।

सिद्ध अर्थक घृत

देवदार, कुठ, वच, श्वेत सरसों, त्रिकुटा, हींग, मजीठ, हल्दी, दारु-

हल्दी, लज्जावन्ती, त्रिफला, नागरमोथा, करञ्जबीज, सरसबीज, चित्रक-मूल छाल, प्रत्येक १ तो., गोमूत्र १६ सेर, सबको गाय के घी ४ सेर में मिला कर मन्दाग्नि पर पकावें घृत मात्र रहने पर छान लें।

मात्रा--१ तो० से २ तो०तक प्रातः सायं। यह कफजन्य अपस्मार रोग में अति लाभ करता है।

शिग्रु तैल

सोहाञ्जने के बीज, कुठ, मैनसिल, काला जीरा, त्रिकुटा, लहसन, हींग, प्रत्येक २ तो०, गोमूत्र ३ सेर, तिल तैल ३ पाव इन सब औषधियों को पीस कर सब को एकत्र करके मन्दाग्नि पर पकावें जब तैल मात्र रह जावे तो नितार कर छान लें, अन्य औषधियों के साथ २ यदि इस तैल की नस्वार दी जाय तो अपस्मार रोगी को बहुत लाभ होता है।

इन्द्र भद्रम वटि

षड्गुणगन्धकजारितरससिन्दूर, कृष्णाभ्रकभस्म, लोहभस्म, चांदीभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, मीठातेलियाविष, कमल केसर, प्रत्येक १ तो० सब को बारीक पीस कर (१) थोहर के दूध (२) चित्रकमूलछाल के रस (३) भांग के पत्तों के रस (४) अरिण्ड मूलछाल रस, (५) जिमीकन्द का रस (६) संभालू के पत्तों का रस इन सब रसों में निरन्तर एक २ दिन खरल कर के गोला बना दें, इस गोले पर अरिण्ड के पत्ते लपेट कर १ सेर जंगली उपलों की हल्की आंच में पुट दें। पश्चात् ५ तो० शुद्ध गन्धक को मालकंगनी और सरसों के तेल में पीस कर उपरोक्त औषधि में मिला कर गोला बना लें और इस गोले को अरिण्ड के पत्तों में लपेट कर पांच सेर जंगली उपलों की आग में फूंक दें। स्वांग शीतल होने पर पीस कर रख लें।

मात्रा--१ रत्ती।

अनुपान--दिन में दो-तीन बार अदरक के रस में सेवन कराने से वातकफजनित तथा त्रिदोष जनित अपस्मार अवश्य नष्ट हो जाता है।

सूचना—इस रसमें पड़ने वाली अभ्रकभस्म, शृंगवेरादिगणद्वारा, लोहभस्म मैनसिल योग से, चान्दी भस्म ताल योग से और स्वर्ण माक्षिक

भस्म लवण तथा अरिण्ड तैल योग से बनी होनी चाहिये ।

वातकुलान्तक रस

कस्तूरी, मैनसिल, नागकेसर, बहेड़ा, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, जायफल, इलायची, लौंग प्रत्येक १ तो० प्रथम पारे और गन्धक को तीन-चार घण्टे खरल कर के कज्जली बना लें पश्चात् शेष औषधियों को बारीक पीस कर इस में मिला लें और पानी के साथ खरल कर के १ से २ रत्ती प्रमाण गोली बनावें ।

मात्रा—१ से २ गोली तक ।

अनुपान—दिन में दो बार प्रातः सायं मधु और पान के रस के साथ सेवन कराने से वात से उत्पन्न होने वाला अपस्मार शान्त होता है ।

पाषाण बज्र रस

पारा, हीराभस्म, स्वर्णभस्म, चान्दीभस्म, मोतीभस्म, तालभस्म, शुद्ध गन्धक, रस सिन्दूर, शुद्ध खपरिया, मैनसिल, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, सीसाभस्म (सिक्का) प्रत्येक १ तो० सब को एक खरल में डाल कर एक दिन खरल करें पश्चात् एक मिट्टी के शकोरे में सावधानी से बन्द कर के गजपुट की आग में फूंक दें तत्पश्चात् खरल में डाल कर ब्राह्मी के रस में सात दिन तक, जयन्ति के रस में सात दिन, सम्भालू के रस में सात दिन पान के रस में सात दिन खरल कर के एक गोला बनावें इस गोले को सुखा कर केले की जड़ के खोखल में बन्द कर के तीन-चार दिन धूप में रखें फिर निकाल कर खरल कर के १ रत्ती से २ रत्ती प्रमाण की गोली बनावें ।

मात्रा—१ गोली प्रातः १ गोली सायं मधु और पान के रस से सेवन करने से कफ और वायु से होने वाला अपस्मार नष्ट हो जाता है ।

सूचना—इस रस में पड़ने वाली हीरेकी भस्म गधे के मूत्र में, अभ्रकभस्म शृंगवेरादि गण द्वारा, चान्दीभस्म ताल योग से, लोहभस्म मनसिल योग से, स्वर्णभस्म गन्धक और पारे के योग से, मोती भस्म ब्रह्मी के रस से; तालभस्म अपामार्ग क्षार योग से बनी हुई डालनी चाहिये ।

अपस्मार के लिए एक अद्वितीय योग

यदि अपस्मार रोगी पुरुष हो तो श्मशान में से पुरुष की खोपड़ी ला कर पीस लें।

मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक प्रातः सायं जल के साथ सेवन करावें और यदि रोगी स्त्री हो तो स्त्री की खोपड़ी पीस कर सेवन कराने से सब प्रकार का अपस्मार रोग दूर होता है।

अपस्मार रोग में पथ्य

वात विकार से उत्पन्न अपस्मार रोग में प्रथम वस्ति कर्म पित्तजन्य में विरेचन तथा कफजन्य में वमन कराना श्रेष्ठ है। इस के अतिरिक्त हिंग्वादि तीव्र औषधियों की धूनी देना तीव्र अंजन लगाना नस्य कर्म, फसद खोलना, दान, त्रास, बन्धन, भय, भजन, ताड़न, हर्ष, धूम पान, विस्मय, बुद्धि को स्थिर रखना, धैर्य देना, स्नान, उबटन, लाल चावल, मूंग, गेहूं, पुराना घी, कछुए का मांस, जंगली जीवों का मांस रस, दूध ब्रह्मी, वच, परवल, पुराना पेठा, बथुआ, मीठा अनार, सुहांजने की फली, नारियल का जल, दाख, आमले, फालसे, वर्षा का जल, गधे और घोड़े का मूत्र यह सब अपस्मार रोगी के लिए पथ्य अर्थात् हितकारी हैं।

अपस्मार रोग में अपथ्य

चिन्ता, शोक, भय, क्रोध, अपवित्र भोजन, मदिरा, मछली, विरुद्ध अन्न, तीखा गरम और भारी भोजन, अति मैथुन, अति परिश्रम, सत्कार योग्य गुरु ब्राह्मणादिका अपमान सब प्रकार के पत्तों वाले शाक, कुन्दरु, आषाढ़ मास में उत्पन्न प्यास, नींद, भूख आदि वेगों को रोकना यह सब अपस्मार रोग में अपथ्य अर्थात् अहितकारी हैं।

वातव्याध्याधिकार।

वैदिक शास्त्रों में वात और वात व्याधि को सब से प्रबल माना जाता है। वास्तव में यह है भी ठीक क्योंकि तीनों दोषों में से जितनी वात व्याधियां हैं, उतनी अन्य किसी दोष की नहीं, वायु कितना बलवान् है ? और यह किस प्रकार रोग रूपी शत्रु की सेना को शरीर रूपी दुर्ग पर चढ़ा लाता है, इस के सम्बन्ध में शास्त्र कैसा स्पष्ट कह रहा है—

पित्तं पंगु कफं पंगु पंग्वो मलधातवः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् ॥

अर्थात् पित्त और कफ दोनों ही पंगु (लंगड़े) हैं, तथा शारीरिक मल और धातु सब ही लंगड़े हैं, परन्तु महा बलवान् वायु ही इन को अपनी अपार शक्ति से जिस ओर चाहे ले जाना है, जैसा कि आकाश में बादलों को। वायु की शक्ति और प्रबलता का प्रमाण इस से अधिक क्या हो सकता है कि यह अकेला अस्सी प्रकार की व्याधियों को उत्पन्न करता और दूषित हुए पित्त तथा कफ को शरीर के विभिन्न भागों में धकेल कर व्याधि की उत्पत्ति में सहायक होता है, इस की सहायता के बिना पित्त तथा कफ कुछ भी नहीं कर सकते क्यों कि यह बेचारे दोनों ही पंगु हैं।

व्यापकता

वात व्याधि इतनी व्यापक और विस्तृत है कि संसार भर में होने वाली नवीन से नवीन व्याधियां इस एक ही के अन्तर्गत आ जानी हैं।

निदान

कषाय कटु तिक्तकं प्रमित रुक्षलघ्वन्नतः।
पुरः पवन जागर प्रतरणाभि घातश्रमैः।
हिमादनशनात्तथा निधु वनाच्च धातुक्षया

न्मलादिरथधारणान्मदन शोक चिन्ताभयैः ॥
अति क्षतज मोक्षणाद्वद कृतानि मांस क्षया-
दतीववमनान्नृणामति विरेचना दामतः ।
पयोदसमये दिन क्षणदयोस्तृतीयां—
शयोर्जरामति गतेऽशित शिशिर संग कालेऽपिच ॥
देहे स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली
करोति विवधान्रोगान्सर्वांगैकांङ्ग संश्रयान ॥

अर्थ– कसैला, चरपरा, कड़वा, अत्यन्त कम और रूखे (खुश्क) अन्न खाने से, अतीव हल्के और शीतल पदार्थ खाने से, अत्यन्त स्त्री प्रसंग करने से, पूर्व दिशा की तीव्र पवन सेवन करने से, अधिक जागने से, जल में अधिक समय तक तैरने से, चोट आदि के लगने से, अत्यन्त श्रम (मेहनत) करने से, अधिक ठंडी लगने से उपवास व्रतादि अधिक करने से धातुओं के क्षय से, मल मूत्रादि वेगों को रोकने से, काम शोक, चिन्ता तथा भय से, अधिक रुधिर निकलवाने से, किसी रोग के कारण मांस के क्षीण होने से अत्यन्त वमन और विरेचन करने से और आम से कुपित हुआ बलवान वायु शरीर के किसी एक भाग अथवा समस्त शरीर में नाना व्याधियों को उत्पन्न करता है ।

वात कोप काल

आयुर्वेदिक विज्ञान वेत्ताओं ने प्रकृति नियमानुसार अपने दीर्घ कालीन अनुभव द्वारा निश्चय कर रखा है कि मानव देह में वायु किस २ काल में बढ़ता अथवा कोप को प्राप्त होता है, यहां पर हम शास्त्र वचनानुसार पाठकों की सुविधा के लिए इस का वर्णन करते हैं ।

वर्षा ऋतु में, दिन और रात्रि के तीसरे भाग में, किए हुए भोजन के पचने पर, तथा शिशिर ऋतु में बलवान् वायु शरीर के खाली स्रोतों में भर कर सम्पूर्ण शरीर अथवा शरीर के किसी एक भाग में नाना प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है ।

वात व्याधि के भेद

कुपित हुआ वायु शरीर के विविध भागों में निम्न लिखित ८० व्याधियों को उत्पन्न करता है :—

१. शिरोग्रह	२. अल्प कृशता	३. जृम्भा
४. हनुग्रह	५. जिह्वास्तम्भ	६. गद्गदता
७ मिन्मिनत्व	८. मूकता	९. वाचालत्व
१०. प्रलाप	११. रसज्ञान	१२. वाधिर्य (बहरापन)
१३. कर्णनाद	१४. त्वक्शून्यता	१५ अर्दित (लकवा)
१६. मन्यास्तम्भ	१७. वाहुशोष	१८. अपवाहुक
१९. विश्वाची	२०. ऊर्द्ध्ववाहु	२१. अध्मान (अफारा)
२२ प्रत्याध्मान	२३. वातष्ठीला	२४. प्रत्यष्ठीला
२५. तूनी	२६. प्रति तूनी	२७. वन्हि वैषम्य
२८. आटोप	२९. पार्श्वशूल	३०. त्रिकशूल
३१. मुहुर्मूत्रण	३२. मूत्र निग्रह	३३. मलगाढता
३४. मलाप्रवृत्ति	३५. गृध्रसी	३६. खञ्जता
३७. कलाय खञ्जता	३८. पंगुता	३९. क्रोष्टशीर्ष
४०. खल्ली	४१. वातकंटक	४२. पादहर्ष
४३. पाददाह	४४. दन्डकाक्षेप	४५. वातपितकृताक्षेप
४६. दन्डापतानक	४७. अभिघाताक्षेप	४८. अन्तरायाम
४९. वाह्यायाम	५०. धनुर्वात	५१. कुब्जक
५२. अपतन्त्र	५३. अपतानक	५४. पक्षाघात
५५. सर्वांगवात	५६. कम्प	५७. स्तम्भ
५८. व्यथा	५९- तोद	६०. भेद
६१. स्फुरण	६२. रौक्षय	६३. कार्श्य
६४. काष्ण्य	६५. शैत्य	६६. लोमहर्ष
६७. अंगमर्द	६८. अंगविभ्रंश	६९. शिरासंकोच
७०. अंगशोष	७१. भीरुता	७२. मोह
७३. चलचित्तता	७४. निद्रानाश	७५. स्वेदनाश
७६. बल हानि	७७. शुक्र नाश	७८. रजनाश
७९. गर्भ नाश	८०. परिश्रम	

उपरोक्त ८० (अस्सी) भेदों के विशेष लक्षण निदान आदि ग्रन्थों में देखने चाहियें। चिकित्सा पद्धति में विस्तार भय से लक्षणों का उल्लेख नहीं किया गया। यहां पर स्थान भेद से वात व्याधियों का संक्षिप्त वर्णन किया जाता है।

स्थान भेद से वात व्याधि के भेद।

कोष्ठगत वायु के लक्षण

जब कुपित हुआ वायु कोष्ट स्थान में स्थित होता है तो मूत्र तथा विष्टा का अवरोध गुल्म, अर्श, पार्श्वशूल आदि व्याधियें उत्पन्न करता है।

आमाशय गत वात के लक्षण

अब वायु कुपित हो कर आमाशय में स्थित होता है तब हृदय, पसली, पेट और नाभि में पीड़ा होती है। तृषा अधिक लगती है, डकारें आती हैं, विसूचिका, खांसी, कण्ठ में शोष, और श्वासादि उपद्रवों को करता है।

पक्वाशय गत वायु के लक्षण

कुपित हुआ वायु जब पक्वाशय में स्थित होता है तब आंतों में गुड़गड़ाहट, शूल, वातविरोध, मूत्र और विष्टा का थोड़ा २ उतरना, पेट में अफारा और त्रिक स्थान में पीड़ा होना।

गुदा गत वायु के लक्षण

जब वायु गुदा में स्थित होता है तो मल मूत्र और अधोवायु को रोक देता है। उदर में शूल तथा अफारा, पिण्डली, पसली, कंधे और पीठ में पीड़ा, वृक्क, (गुर्दे), वस्ति (मिसाना) में पथरी और शर्करा पैदा हो जाती है।

कर्णआदि इन्द्रियों में कुपित वात के लक्षण

कोप को प्राप्त हुआ वायु जब श्रोत्रादि इन्द्रियों में स्थित होता है तब उन इन्द्रियों की श्रवणादि शक्ति का नाश कर देता है।

शिरागत वायु के लक्षण

कुपित हुआ वात शिराओं में जा कर उन को संकुचित तथा उन में स्थूलता पैदा कर के अन्त्रायाम, व्हायायाम, खल्ली और कुब्जक वात को उत्पन्न करता है।

स्नायु गत वात के लक्षण

कोप को प्राप्त हुआ वायु जब स्नायुओं में स्थित होता है तब शूल आक्षेपक, और स्तम्भ आदि वेदनायें उत्पन्न करता है।

सन्धिगत वायु के लक्षण

विकृत वायु जब जोड़ों में स्थित होता है तब सन्धियों मे पीड़ा तथा सूजन उत्पन्न करता है।

धातु भेद से वात विकार के लक्षण।

रसगत वायु के लक्षण

विकृत वात जब रसगत स्थित होता है तब शरीर की त्वचा रूखी और फटी हुई, पतली, जड़ और काली हो जाती है और उस में सूई चभोने की सी पीड़ा होती है। त्वचा खिच जाती है।

रक्तगत वात के लक्षण

कुपित वात जब रुधिर में स्थित होता है तब शरीर का वर्ण विकृत हो जाता है, तीव्र पीड़ा, और सन्ताप होता है। शरीर में शिथिलता हो जाती है। अरुचि होती है, शरीर में फोड़े फुंसियां पैदा हो जाते हैं और शरीर जकड़ा सा रहता है।

मांस गत वात के लक्षण

कोप को प्राप्त हुआ वायु जब मांस में ठहरता है, तब शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्गों में भारीपन, और लकड़ी या घोंसा मारने की सी पीड़ा तथा स्तब्धता बेचैनी और अत्यन्त निश्चलता होती है।

मेदोगत वायु के लक्षण

विकृत वात जब मेदे में स्थित होता है तब उपरोक्त लक्षणों के अतिरिक्त शरीर में गांठें पड़ जाती हैं, और फोड़े फुंसियां निकलने लगती हैं।

अस्थिगत वात के लक्षण

कोप को प्राप्त हुआ वायु जब हड्डियों में जा ठहरता है तब हड्डियों के जोड़ों में तोड़ने की सी पीड़ा, सन्धिशूल, मांस और बल का क्षय. अथवा नाश तथा निद्रानाश, आदि को उत्पन्न करता है।

मज्जा गत वायु के लक्षण

कुपित हुआ वायु जब मज्जा में स्थित होता है तब उपरोक्त लक्षणों के अतिरिक्त केवल इतना ही अन्तर होता है कि मज्जा गत वात की अवस्था में शरीर के किसी भाग में ऐसी वेदना होती है जो किसी भी अवस्था में बन्द नहीं होती।

शुक्र गत वात के लक्षण

विकृत वायु जब शुक्र अर्थात् वीर्य में प्रवेश करता है तब वीर्य को स्खलित नहीं होने देता, और यदि ऐसे वीर्य से गर्भस्थित हो जाय तो वह कच्चा ही गिर जाता है। तथा मूढ़ गर्भ व्याधि को करता है, और वीर्य के वर्ण को बदल देता है।

पाठक! रस आदि सप्त धातु और आमाशय आदि आशयों में विकृत वात के लक्षण देने से हमारा अभिप्राय केवल इतना ही है कि पूर्व लिखित ८० (अस्सी) वात व्याधियां इन्हीं रस आदि धातु और आमाशय आदि आशयों में कुपित वात के स्थित होने से उत्पन्न होती हैं। बुद्धिमान चिकित्सक यदि विचार पूर्वक उपरोक्त लक्षणों को ध्यान में रखता हुआ वात व्याधि की चिकित्सा में प्रवृत्त हो तो वह निःसन्देह विजयी हो सकता है। उपरोक्त ८० वात व्याधियां इन्ही सप्त धातु और आशयों में विकृत वात के स्थित होने से उत्पन्न होती हैं। चिकित्सा पद्धति का विषय न होते हुए भी चिकित्सकों की सुविधार्थ हमने यहां वात व्याधि के वास्तविक

स्थान तथा लक्षणों का वर्णन कर दिया है। जो सज्जन इन मूल लक्षणों को ध्यान में रखता हुआ आगे वर्णित प्रयोगों को बुद्धि अनुसार काम में लावेंगे वह भयंकर से भयंकर स्थिति में भी सफल होंगे।

स्थान और कार्य्य से वायु के भेद

यद्यपि वायु एक ही है तथापि स्थान और कार्य्य की दृष्टि से शास्त्रों ने इसके पांच भेद किये हैं।

वायु के पांच भेद

१. प्राण २. अपान ३. समान ४. उदान और ५ व्यान

स्थान भेद से कार्य

१. जब प्राण नामी हृदय में रहने वाला वायु पित्त से मिल कर विकृत होता है तब वमन, और दाह को करता है और यदि वही प्राणवायु कफ से मिल कर बिगड़ता है तो शरीर में दुर्बलता, ग्लानि, तन्द्रा, और विरस्ता पैदा करता है।

२. गुदा स्थान में रहने वाला 'अपानवायु' यदि पित्त से मिलकर कुपित हो जावे तो शरीर में दाह, ऊष्मा होती है और मूत्र का रंग लाल हो जाता है। यदि अपानवायु कफ से मिल कर दुष्ट हो जावे तो शरीर का निचला भाग भारी और ठण्डा रहता है।

३. जठराग्नि में रहने वाला 'समान वायु' यदि पित्त से मिल कर कुपित हो जावे तो शरीर में पसीने की अधिकता, दाह, प्यास और मूर्छा को उत्पन्न करता है। परन्तु यदि कफ से मिल कर कुपित हो तो मल मूत्र का अवरोध और रोमांच (रौंगटे खड़े होना) आदि को करता है।

४. कण्ठ स्थान में रहने वाला 'उदान वायु' यदि पित्त से मिल कर बिगड़ जाय तो दाह, मूर्छा, भ्रम और ग्लानि को उत्पन्न करता है और यदि कफ से मिल कर विकृत हो तो पसीना का रुकना, रोमांच, अग्निमान्द्य और शरीर में शीतलता उत्पन्न करता है।

५ सर्व शरीर में रहने वाला 'व्यान वायु' यदि पित्त से मिल कर कुपित हो तो दाह, अङ्गों का पटकना, और ग्लानी को करता है और यदि

वह कफ से मिल कर बिगड़ जाय तो शरीर में जड़ता, दण्ड का आक्षेप, शूल, और शोथ को पैदा करता है।

चिकित्सा विधि

पूर्व कह चुके हैं कि वात एक व्यापक और महान् शक्तिशाली शारीरिक दोष है। जो शिरोगत् आदि ८० (अस्सी) व्याधियों को उत्पन्न करता है। ८० व्याधियों की भिन्न२ चिकित्सा स्थान २ पर वर्णन होगी। यहां पर सर्व प्रथम उपरोक्त रस आदि धातु और आमाशय आदि स्थान भेद से चिकित्सा प्रकार लिखते हैं।

कोष्ठगत वात चिकित्सा

कोष्ठगत वात चिकित्सा करते समय चिकित्सक को चाहिये कि पाचन रसों अथवा अन्य मल को पकाने वाली औषधियों का उपचार करे। और केवल गो दुग्ध ही पीने को देवें।

आमाशयगत वात चिकित्सा

यदि वायु आमाशयगत कुपित हो तो प्रथम लंघन कराना चाहिये तथा दीपन, और पाचन, औषधियां देनी चाहियें अथवा वमन और तीव्र विरेचन देना चाहिये।

१. हरड़, रोहिष तृण, कचूर, पोहकरमूल, प्रत्येक छः २ माशा १॥ पाव पानी में यथाविधि क्वाथ बना कर पिलाने से आमाशय गत वात शांत होता है।

२ विल्वमूलछाल, गिलोय, देवदारु, और सोंठ प्रत्येक छः माशा विधिवत् क्वाथ बना कर पिलाने से भी आमाशयगत वात शान्त होता है।

३. वच, अतीस पीपल, सोंचरनमक इन के क्वाथ से भी आमाशय गत वात शान्त होता है।

षड्धरिण योग

चित्रक मूल छाल, इन्द्रजौ, पाढ़, कुटकी, अतीस, हरड़ प्रत्येक एक तो० सब को बारीक चूर्ण करके कपड़ छान करलें।

मात्रा –३ माशा।

अनुपान—गर्म जल के साथ प्रातः सायं सेवन करने से आमाशय गत विकृत वात शमन होता है।

पक्वाशयगत वात चिकित्सा

पक्वाशय गत कुपित वात की चिकित्सा जठराग्नि को दीपन करने वाली औषधियों द्वारा करनी चाहिये। अथवा उदावर्त रोग की जो चिकित्सा कही है वह सब चिकित्सा पक्वाशय गत वात में भी करनी चाहिये।

गुदा गत वात चिकित्सा

गुदा गत वायु की चिकित्सा भी उदावर्त चिकित्सा के समान ही करनी चाहिये।

हृदयगत वात चिकित्सा

१, गिलोय १ तो०, काली मिर्च १॥ मा० दोनों को गर्म जल के साथ सरदाई की भाँन्ति घोट कर गर्मजल डाल कर, छान कर, प्रातः काल पिलाने से हृदय गत वात नष्ट होता है।

२. असगन्धनागौरी, बहेड़ा, दोनों को समान भाग, बारीक पीस कर दुगना गुड़ मिला दें।

मात्रा—छः माशा।

अनुपान—गर्म जल के साथ प्रातः सायं सेवन कराने से हृदय गत दुष्ट वात शान्त होता है।

३. देवदारु, और सोंठ सम भाग, पीस कर चूर्ण बना लें।

मात्रा—३ माशा।

अनुपान—गर्म जल के साथ प्रातः सायं सेवन करने से हृदयगत दुष्ट वात शान्त होता है।

कर्णादि इन्द्रियों में वातगत चिकित्सा

इस की विशेष चिकित्सा कर्णरोगाधिकार में वर्णन की जावेगी। यहां पर केवल इतना ही जानना चाहिये कि यदि श्रोत्रादि इन्द्रियों में वात

का प्रकोप हो तो घृत, तैल आदि स्निग्ध पदार्थों की मालिश करे। तथा घृत, तैल वसा आदि स्नेहों की कोष्ठी (टब) में बिठला कर भली प्रकार अवगाहन करावें।

शिरागत वायु चिकित्सा

शिराओं में वायु का प्रकोप हो तो महानारायण तैल अथवा नारायण तैल का शरीर पर अभ्यंग करें। वात नाशक औषधियों के क्वाथ में तिल तैल अथवा नारायण तैल मिला कर भफारा दें।

स्नायुगत वायु चिकित्सा

स्नायुगत वायु की चिकित्सा घृत तैल आदि से चुपड़ कर दृढ़ बन्धन बांधने से करनी चाहिये अथवा वातनाशक औषधियों के क्वाथ से भफारा देकर पसीना निकालना चाहिये अथवा दाग देना चाहिये।

सन्धिगत वात चिकित्सा

यदि कुपित वायु सन्धियों में स्थित हो, तो इन्द्रायण की जड़ का चूर्ण पिप्पली चूर्ण समान भाग में दोगुना गुड़ मिलावें।

मात्रा—६ माशा तक।

अनुपान—गर्म जल के साथ प्रातः सायं सेवन करने से सन्धिगत वात नष्ट होता है। पसीने निकालने और दाग देने से भी सन्धिगत वात शमन होता है।

वातरोगों में कष्टसाध्य

हनुग्रह, अर्दित, आक्षेप, पक्षाघात और अपतानक यह व्याधियां कष्ट साध्य होती हैं। यदि मनुष्य भाग्यशील और रोग उपद्रव रहित हो, तो बुद्धिमान चिकित्सक की चिकित्सा से आराम हो जाता है।

वात व्याधि के उपद्रव

वायु के प्रकोप से होने वाली वात व्याधियों से जिनका मांस तथा बल क्षीण हो जाता है, वह मनुष्य विसर्प, दाह, भंग, मूर्छा, अरुचि, मन्दाग्नि व्यथा आदि पीड़ाओं से यम लोक सिधार जाते हैं।

अस्सी (८०) प्रकार के वातरोगों की चिकित्सा

शिरोग्रह चिकित्सा

१- शालपर्णी, पृष्टपर्णी, गोखरू, बेलछाल, कम्भारी, पाढल, कण्टियारी द्वय, श्योनाक, अर्णी, प्रत्येक ५ तो० । सब को यवकुट करके १६ गुना पानी में पकावें और चतुर्थांश जल रहने पर अग्नि पर से उतार कर छान लें । इसमें १। सेर तिल तैल, बिजौरे का रस १ सेर डालकर मन्दाग्नि पर पकावें, जब तैल मात्र रह जावे, तो नितार कर छान लें । इस तैल की शिर पर मालिश करने अथवा शिरोवस्ति करने से शिरोग्रह को आराम होता है ।

शिरो वस्ति विधि

रोगी के सिर के बराबर एक इस प्रकार चमड़े की दीवार तय्यार करायें, जो चारों ओर से टोपी की भांति ४ अंगुल ऊंची हो और मध्य से खाली हो, जिस रोगी को शिरोवस्ति कराना हो, उसके सिर पर इसको टोपी की भांति पहना दें और बाहर की ओर माश के आटे को पानी में गूंथ कर भली प्रकार लगा दें, ताकि तैल न गिरने पाये । उपरोक्त तैल को भर दें और १५ मिण्ट से १ घण्टे तक तैल पड़ा रहने दें, पश्चात् सावधानी से तैल निकाल कर टोपी उतार दें और सिर को किसी कपड़े से पोंछ डालें । एक-दो सप्ताह इसी प्रकार करने से शिरोग्रह, नाभिरोग तथा अन्य शिरो वेदनाएं दूर होती हैं ।

जृम्भा चिकित्सा

१. सोंठ, मिर्च, पिप्पल, अजवाइन, सेन्धा नमक प्रत्येक समभाग सब को पीसकर चूर्ण बना लें ।

मात्रा-- इसमें से ४ रत्ती से १ माशा तक ।

अनुपान- गर्म जल के साथ सेवन करने से तत्काल जृम्भा बन्द होती है ।

२. सरसों या तिलों का तैल सिर पर मलने से भी जंभाई आना बन्द होती है ।

३- पान खाने से भी जम्भाई बन्द हो सकती है।

४. पीठी व चिकनी चीज़ोंके खानेसे भी जम्भाई बन्द हो जाती है।

५. यदि औषधि करने पर भी जम्भाई बन्द न हो, तो रोगी को नरम बिस्तरे पर सुला दें।

हनुग्रह चिकित्सा

१. तिलों के तैल को गर्म करके उसकी मालिश करें या स्वेद कर्म करें, अर्थात् गर्म वस्तुओं के सेक से पसीना निकलवाएं।

२. पिप्पल, सोंठ दोनों को समान भाग लेकर चूर्ण बना लें। इसमें से थोड़ा २ मुंह में रखकर मुंह को ढीला छोड़ें। इससे हनुग्रह को लाभ होता है।

३. लसन को साफ़ करके पीस लें और इसमें आवश्यकतानुसार नमक मिलाकर तिलों के तैल में पकौड़ों की भांति तलकर सेवन करायें, इस से हनुग्रह नष्ट होता है।

४. लसन, उड़द की दाल दोनों को पानी में भिगोकर साफ़ कर लें, और इनकी पीठी तय्यार करें। इस पीठी में अद्रक, काली मिरच, पिप्पल, हींग, मसाले की भांति मिला कर तिल के तैल में बड़ों अथवा पकौड़ों की भांति तल लें और रोगी को खिलायें, इससे हनुग्रह नष्ट होता है।

५. औषधि उपचार से यदि हनुग्रह रोग में लाभ न हो, तो नारायण तैल अथवा निम्नलिखित प्रसारणी तैल गले अथवा ठोडी के नीचे पट्ठों पर खूब मालिश करके ज़ोर के साथ रोगी का मुंह खोल दें।

प्रसारणी तैल

प्रसारणी ५ सेर १६ गुना पानी में पकावें, चतुर्थांश रहने पर मल कर छान लें। फिर इसमें तिलों का तैल ५ सेर, दही का पानी ५ सेर, दूध गाय २० सेर, तथा निम्नलिखित औषधियों का चूर्ण मिला कर तैल पाक विधि से पका लें।

चूर्णद्रव्य--चित्रकमूलछाल, पिप्पला मूल, मुलट्ठी, सेन्धानमक, बच, सोए, देवदार, रास्ना, गजपीपल, बालछड़, प्रसारणीमूल, चन्दनलाल, अरण्डमूल, खरैंटीमूल, सोंठ, प्रत्येक ४ तो०।

बारीक चूर्ण करके उपरोक्त तैल में मिला लें और तैल का पाक करें, तैलमात्र रहने पर छान लें। यह तैल हनुग्रह की अव्यर्थ औषधि है, इसके मलने से हनुग्रह, जिह्वा स्तम्भ आदि पट्ठों की व्याधियां शान्त हो जाती हैं।

जिह्वास्तम्भ चिकित्सा

१. सोंठ, काली मिरच, पिप्पल, अकरकरा, बच, लाल मिर्चे, इन सबका अथवा इनमें से किसी एक का बारीक चूर्ण मुंह में रख कर मुख को ढीला छोड़ें, इससे जिह्वा स्तम्भ रोग दूर होता है।

२. महानारायण तैल गर्म करके गण्डूश (गरारा) धारण करावें, इससे भी जिह्वास्तम्भ दूर होता है।

गद्गदत्व और मिन्मनत्व चिकित्सा

१. सोहान्जना, बच, सेन्धा नमक, धाय के फूल, लोध, पाढ, प्रत्येक ४ तो०। सबको बारीक पीस कर बकरी के दूध के साथ कल्क (लुगदा) बना लें और ६४ तोला उत्तम गोघृत और ३ सेर बकरी का दूध–सब को मिला कर घृत पाक की विधि से पका लें, तय्यार होने पर छान लें।

मात्रा—इसमें से ३ माशे से १ तो० तक।

अनुपान—गाय के गर्म दूध में मिला कर सेवन करने से गद्गदत्व और मिन्मनत्व रोग शांत होते हैं।

कल्याणकावलेह

हल्दी, बच, कुठ, पिप्पली, सोंठ, जीरा श्वेत, अजमोद, मुलट्ठी, सेन्धा नमक प्रत्येक समभाग। सबका बारीक चूर्ण बना कर इसमें चतुर्थांश अर्थात् चूर्ण से चतुर्थांश गोघृत मिलाकर रक्खें।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक।

अनुपान—१ तो० से २ तो० तक मधु में मिला कर चटाने से गद्गदत्व और मिन्मनत्व शान्त होता है।

प्रलाप चिकित्सा

१. तगर, पित्तपापड़ा, गूदाअमलतास, नागरमोथा, कुटकी, सुगन्धवाला, असगन्धनागौरी, ब्रह्मी, द्राक्ष, लाल चन्दन, दशमूल की दशों औषधियां, शङ्खपुष्पी, समस्त औषधियें ४ तो० १ सेर पानी में पकावें। चतुर्थांश रहने पर छान कर इनमें से थोड़ा २ रोगी को पिलावें। इससे प्रलाप शान्त होता है।

रसाज्ञान चिकित्सा

२. सोंठ, काली मिरच, पिप्पल, अम्लबेत्त, सेन्धा नमक समान भाग लेकर बारीकचूर्ण बना लें।

मात्रा—इसमें से २-३ माशे चूर्ण दिन में २-३ बार जिह्वा पर मलने से रसाज्ञान दूर होता है।

किरात आदि कल्क

१. चिरायता, कुटकी, इन्द्रजौ, बच, ब्रह्मी, ढाक के बीज, सज्जीखार, कालाजीरा, पिप्पल, पिप्पलामूल, चित्रकमूलछाल, सोंठ, कालीमिर्च, सब को समान भाग लेकर बारीकचूर्ण बना लें, इस चूर्ण को अद्रक के रस में तर करके जिह्वा पर मलने से रसाज्ञान रोग दूर होता है।

त्वक्शून्यता चिकित्सा

१. रोगी के बाहु शिरा में से रक्तमोक्षण (फसद) करें, इससे त्वक्शून्यता शान्त होती है।

२. सुलगते हुए कोयलों पर तिल का तैल और सेन्धा नमक डाल कर शरीर पर धूनी देने से त्वक् शून्यता को आराम होता है।

आर्दितरोग चिकित्सा

१. दो से ४ तो० उत्तम लहसन को आध सेर गाय के दूध में भली प्रकार छान लें और इसमें १ तो० बादाम का तैल मिलाकर रोगी को सेवन करावें, इससे अर्दित रोग शान्त होता है।

२. सूखा हुआ लहसन् ४ तो०, सेन्धा नमक ४ मा०, सौंचरनमक ४ मा०; त्रिकुटा १ तो०, घी में भूनीं हींग ४ मा० । सबको बारीक पीस कर चूर्ण बना लें ।

मात्रा—१ माशे से ३ माशे तक ।

अनुपान—गर्म जल के साथ दिन में २—३ बार सेवन करने से अर्दितरोग नष्ट होता है ।

३. शालपर्णी, पृष्टपर्णी, कण्टकारी छोटी, कण्टकारी बड़ी, गोखरु, बिल्वछाल, कम्भारी, श्योनाक, अरणी, पाढ़ प्रत्येक ६ माशे यवकुट करके ३ पाव पानी में पकावें, चतुर्थांश रहने पर मलकर छान लें । इसमें २ माशे सेन्धा नमक और २ तो० अरिण्ड तैल मिलाकर रोगी को पिलावें । इससे २-३ दिन में अर्दितरोग शान्त होता है ।

४. सण की बीज का चूर्ण बनाकर ६ माशे से १ तो० तक मधु में मिलाकर सेवन करने से शीघ्र ही अर्दितरोग शान्त हो जाता है ।

५. काले धतूरे के पत्ते २॥ तो०, कनेर मूलछाल २॥ तो०, घुङ्गची श्वेत २॥ तो० । सब को पानी के साथ सिल्ल पर पीस कर कल्क बना लें । १॥ पाव तिलों का तैल और कल्क दोनों को किसी पात्र में डालकर तैलपाक की विधि से पका लें, पूर्णरूप से पक जाने पर तैल को छान लें । इसकी मालिश करने से अर्दितरोग शान्त हो जाता है ।

६ कुचले को घी में भून कर बारीक पीस लें, जितना कुचला हो, उतना ही शुद्ध मीठा तेलिया का चूर्ण बना लें और दोनों को मिला कर अद्रक के रस में ३ दिन खरल करके एक २ रत्ती प्रमाण गोलियां बना लें ।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक ।

अनुपान—४ तो० गर्म घृत के साथ प्रातः सायं सेवन करने से अर्दितरोग शीघ्र ही शान्त हो जाता है ।

७. इसी वातव्याधि प्रकरण में वर्णित महा योगराज गुग्गुल तथा महानारायण तैल सेवन करने से भी अर्दित रोग को लाभ होता है ।

मन्यास्तम्भ चिकित्सा

१, मुर्गी के अण्डे की ज़र्दी में थोड़ा नमक मिला कर गर्म करके

गर्दन पर मालिश करने से मन्यास्तम्भ को तत्काल आराम हो जाता है।

२. चार तो० तिलों के तैल में २ दाने जायफल जलाकर इस तैल को गर्दन पर मालिश करने से मन्यास्तम्भ रोग शान्त होता है।

३. महानारायण तैल गर्म करके गर्दन पर खूब मलने से मन्यास्तम्भ को आराम हो जाता है।

बाहु शोष चिकित्सा

१. असगन्ध नागौरी २ तो, यवकुट करके आध सेर पानी में पकावें चतुर्थांश रहने पर छान लें और इस में २ तोले गर्म घृत २ माशा सेंधानमक मिला कर सेवन करावें। थोड़े दिनों में ही बाहुशोष को अवश्य लाभ होता है।

२. खरैंटीमूलछाल ४ तो, आध सेर पानी में पकावें चतुर्थांश रहने पर मल कर छान लें। इस में १॥ माशा नमक मिला कर प्रातः सायं सेवन करने से बाहु शोष को शीघ्र आराम होता है अथवा अपस्माररोगाधिकार में कहे महाकल्याण या कल्याण घृत एक एक तो. प्रातः सायं सेवन करने से बाहु-शोष रोग शान्त होता है अथवा इसी वातव्याध्याधिकार में कहे गये महा-नारायण की मालिश करने से बाहुशोष को लाभ होता है।

अपबाहुक चिकित्सा

१. उड़द, अलसी, जौ, कण्डयारी छोटी, कण्डयारी बड़ी, गोखरु श्योनाक, बालछड़, कौंचबीज, मुश्कबाला, बिनौला, सण के बीज, कुल्थ, प्रत्येक ५ तो. यवकुट कर के १६ गुना पानी में पकावें। चतुर्थांश रहने पर मल कर छान लें और २ सेर बकरे के मांस को चारगुणा पानी में पका कर चतुर्थांश रहने पर मल कर छान लें। पश्चात् निम्न लिखित औषधियों का कल्क बना लें—

सोंठ, पिप्पल, सोये बीज, अरिण्डमूलछाल, पुनर्नवामूलछाल, प्रसा-रणी, रास्ना, खरैंटी, गिलोय, कुटकी, प्रत्येक २ तो. सब को उपरोक्त क्वाथ में घोंट कर कल्क (लुग्दा) बना लें। सवा सेर तिलों का तैल और समस्त चीजों को एक ताम्र पात्र में डाल कर नरम २ अग्नि पर पकावें। जब तैल मात्र रह जावे तो नितार कर छान लें। इस की मालिश कर के ऊपर एरण्ड

के पत्ते बान्ध देने चाहियें। इस के थोड़े दिन के व्यवहार से अपबाहुक रोग शान्त हो जाता है।

२. इसी प्रकरण में कहे हुए महायोगराज गुग्गुल, ४ रत्ती से १ मा. प्रातः सायं गाय के दूध के साथ सेवन करने से अपबाहुक को आराम होता है।

३. जिस पुरुष अथवा स्त्री को अपबाहुक रोग हो गया हो, भरी सभा में उस की धोती अथवा साड़ी या पायजामा एक दम खोलकर उसे नंगा कर देना चाहिये इस से रोगी लज्जा के कारण अपनी दोनों भुजाओं को पूरी शक्ति से नीचे को लाएगा इस से उस का अपबाहुक रोग शान्त हो जायगा।

विश्वाची रोग चिकित्सा

१. काले रंग की उड़द २० तो., ४ सेर पानी में पकावें चतुर्थांश रहने पर छान लें और इस में एक पाव तिलों का तैल तथा सैन्धा नमक, खरैंटी, रास्ना, गोखरू, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, अरणी, छोटी कण्टियारी, बड़ी कण्टियारी, बेल छाल, कम्भारी, श्योनाक, बच, हींग प्रत्येक छः माशा सब का चूर्ण बना कर एक पात्र में उपरोक्त क्वाथ और तैल तथा चूर्ण डाल कर तैल पाक की विधि से पका लें और तैल मात्र रहने पर छान लें। इस तैल की मालिश करने से विश्वाची रोग शान्त होता है। इस के अतिरिक्त उपरोक्त अपबाहुक और बाहुशोष रोग चिकित्सा में कहे गये योग भी विश्वाची रोग में विशेष लाभ करते हैं।

ऊर्द्ध वात चिकित्सा

१. सोंठ ५ तो, विधारा २ तो., हरड़ १॥ तो. घृत में भुनी हींग २ तो. सैन्धानमक ६ माशा, चित्रक मूलछाल ६ माशा। सबको बारीक पीसकर चूर्ण बना लें।

मात्रा—१ माशा से ३ माशा तक।

अनुपान—गर्मजल के साथ दिन में २-३ बार सेवन करने से ऊर्द्ध वातरोग शीघ्र शान्त होता है।

आध्मान चिकित्सा

१. पिप्पल १ तो०, निसोत ४ तो०, खांड ५ तो० औषधियों को पीसकर खांड मिला दें, पश्चात् सब के बराबर मधु मिलावें।

मात्रा—६ माशे से १ तो० तक।

अनुपान—गर्म जल के साथ सेवन करने से आध्मान (अफारा) शीघ्र शान्त हो जाता है।

२ देवदार. वच, कुठ, सोयबीज, हींग, सेन्धा नमक। सबको समभाग लेकर बारीक पीस लें और इसमें निम्बू का रस या खट्टी छाछ मिलाकर इतना घोटें, कि लेप करने के योग्य हो जावे, इसको पेट पर लेप करें, इससे आध्मान रोग शान्त हो जाता है।

महा नाराचरस

हरड़छाल, गूदाअम्लतास, आंवला, शुद्ध जमालगोटा, कुटकी, थोहर, निसोत, नागरमोथा प्रत्येक ४ तो० सबको यवकुट करके ६ सेर पानी में पकावें। आठवां भाग रहने पर मलकर छान लें, फिर इस में निम्नलिखित औषधियों का चूर्ण मिला दें। शुद्ध जमालगोटा ८ तो०, सोंठ ३ तो०, काली मिर्च २ तो०, शुद्ध पारा २ तो० शुद्ध गन्धक २ तोला। प्रथम पारे वा गन्धक को दो पहर खरल करके कज्जली बना लें और शेष औषधियों का बारीक चूर्ण करके उपरोक्त क्वाथ में मिला कर खरल करें, पुनः जब गोली बनने योग्य हो जाय, तो १ रत्ती से २ रत्ती प्रमाण गोलियां बना लें।

मात्रा—१ से २ गोली तक।

अनुपान—ठण्डे पानी के साथ सेवन करने से एक दो दिन में ही आध्मान रोग शान्त हो जाता है।

नोट—१. महानाराच रस के सेवन करने पर यदि रोगी को अधिक तृषा लगे, तो मिश्री का शर्बत पिलाना चाहिये।

२. आध्मान चिकित्सा आरम्भ करने से पूर्व रोगी को २-३ दिन लंघन कराना आवश्यक है, क्योंकि इससे जठराग्नि तीव्र होकर औषधि उपचार में सहायक होती है।

प्रत्याध्मान चिकित्सा

प्रत्याध्मान की चिकित्सा करते समय चिकित्सक को चाहिये, कि प्रथम मैनफल, मुलट्ठी अथवा उष्णोदक में लवण मिला कर रोगी को वमन करावें, पश्चात् २-३ दिन लंघन करके निम्नलिखित औषधियों का उपचार करें—

१. चित्रक मूलछाल, सोंठ, पिप्पल, कालाजीरा, अजवाइनदेसी, काली मिर्च प्रत्येक १ तो० घृत में भुनी हींग ३ माशे। काला नमक २तो० भुना सुहागा १ तो०। सबको बारीक पीसकर सुहांजना मूलछाल के रस में ३-४ दिन खरल करके २ से ४ रत्ती की गोली बनावें—

मात्रा—२ गोली प्रात: २ गोली सायं।

अनुपान—गर्म पानी से सेवन करने से प्रत्याध्मान रोग शान्त होता है।

वाताष्ठीला चिकित्सा

१. घृत में भुनी हींग, पिप्पलामूल, धनियां, काला जीरा, सेन्धा नमक, वच, चव्य, चित्रकमूलछाल, पाठा, कचूर, अम्लवेद, काला नमक, सोंठ, काली मिर्च, पिप्पल, जौखार, सज्जीखार, अनारदाना, हरड़ छाल, पोहकरमूल, हाऊबेर प्रत्येक समान भाग सब को बारीक पीस कर चूर्ण बना लें।

मात्रा - १॥ माशा से ३ माशे तक।

अनुपान—गर्म जल के साथ दिन में २-३ बार सेवन करने से वाताष्ठीला रोग शीघ्र शान्त हो जाता है।

तूनी प्रतितूनी चिकित्सा

१. प्रथम तूनी प्रतितूनी रोगी को गर्म पानी में अरिण्ड तैल मिला कर वस्तिकर्म (अनीमा) करावें। पश्चात् उपरोक्त चूर्ण १ मा. से ३मा०, तक गर्म पानी के साथ दिन में दो-तीन बार सेवन करावें, इससे भी तूनी-प्रतितूनी रोग शान्त होता है।

२. ३ तो० गोघृत को गर्म करके इसमें ३ माशे नमक मिलाकर रोगी को पिला दें, इससे भी तूनी प्रतितूनी रोग शान्त होता है।

३. बादाम का तैल ३ तो० गर्म करके इस में ३ माशे सेन्धा नमक मिलाकर रोगी को पिला दें, इस से भी तूनी प्रतितूनी रोग शांत होता है।

४. २ तो० से ४ तो० नारायण तैल गर्मजल में डालकर पिलाने से भी तूनी प्रतितूनी रोग को आराम होता है।

५. वृहद् योगराज गुग्गुल ४ रत्ती से १ माशा तक दिन में दो बार गर्म जल के साथ सेवन कराने से तूनी प्रतितूनी रोग शान्त होता है।

त्रिकशूल चिकित्सा

१. असगन्ध नागौरी, छाऊबेर, हरड़छाल, गिलोय, सतावर, गोखरु, रास्ना, निसोत, सोये बीज, कचूर, अजवाइन देसी, सोंठ प्रत्येक समभाग सब का बारीक चूर्ण बनावें, इसमें चतुर्थांश गोघृत मिला कर समस्त चूर्ण के समान शुद्ध गुग्गुल लेकर गुग्गुल की भांति तय्यार करावें।

मात्रा—१ माशा से ३ माशा तक।

अनुपान—प्रातः सायं गर्मजल, व गाय का गर्म दूध अथवा सुरा के साथ सेवन करने से त्रिकशूल रोग शीघ्रही नष्ट हो जाता है।

२. असगन्ध नागौरी, सोंठ, पिप्पल, सुरञ्जां शीरीं समान भाग लेकर सबका चूर्ण बनावें, सबके समान मिश्री मिलावें।

मात्रा—६ माशा से १ तो० तक।

अनुपान—गाय के गर्म दूध के साथ सेवन करने से त्रिकशूल को शीघ्र आराम हो जाता है।

३. घृत से भुना हुआ कुचला १ तो०, अफीम १ तो०, शङ्खराज, भस्म १ तोला, दस साल का पुराना गुड़ ३ तो०। सब को कूट कर एक २ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा—१ गोली प्रातः १ गोली सायं।

अनुपान—गाय के गर्म दूध के साथ सेवन करने से अति बढ़ा हुआ त्रिकशूल भी शीघ्र शान्त हो जाता है।

इसी वात व्याधि प्रकरण में कहे हुए महायोगराजगुग्गुल और महानारायण तैल भी त्रिकशूल के लिये लाभकारी हैं।

मुहुर्मूत्र चिकित्सा

१. खरैंटी, परवान भेद, दालचीनी समभाग लेकर बारीक चूर्ण बनावें, सब के बराबर खांड या मिश्री मिलावें।

मात्रा--३ माशा से ६ माशा तक।

अनुपान—गर्म दूध व गर्म पानी के साथ दिन में २-३ बार सेवन करने से मुहुर्मूत्र को आराम होता है।

२. हरड़, बहेड़ा, आंवला, प्रत्येक १ तोला उत्तम त्रिफला द्वारा भस्म किया हुआ लोहभस्म १तो. बारीक चूर्ण करके लोहभस्म मिला लें।

मात्रा--एक २ माशा प्रातः सायं।

अनुपान--६ माशे मधु में मिलाकर सेवन करने से मुहुर्मूत्र शान्त हो जाता है।

३. खीरे का बीज ३ माशा, खरबूजे का बीज ३ माशा, पेठे का बीज ३ माशा, छोटी इलायची १० दाने, सरदाई की भांति घोंट कर पाव भर पानी मिलाकर छान लें और २ तो० मिश्री मिला कर सेवन करावें। इससे भी मुहुर्मूत्र शांत होता है।

मूत्र निग्रह चिकित्सा

१ यवक्षार ५ तो०, मिश्री ५ तो०। दोनों को पीसकर ठण्डे पानी के साथ दिन में ३-४ बार तीन २ माशे की मात्रा ठण्डे जल से देने से मूत्र निग्रह शान्त होता है।

२. गोखरु ६ माशे, छोटी इलायची ३ माशा, पेठे का बीज ४ मा०, खरबूजे का बीज ४ मा०, खीरे का बीज ४ माशे, कासनी ४ माशे। सब को कूट कर ३ पाव पानी में पकावें, जब एक पाव पानी रह जावे, तो छानकर इसमें ३ माशे यवक्षार मिलाकर पिलाने से मूत्र निग्रह शांत होता है।

३ मूत्र नाली में कपूर की वत्ती बना कर धीरे २ चढ़ाने से मूत्र की

रुकावट दूर हो जाती है।

४. सूखे अथवा हरे आंवलों को घोंटकर इसमें थोड़ा कलमी शोरा मिलाकर पेडू पर लेप करने से रुका हुआ मूत्र खुल जाता है।

५. चूहे की मेंगन १० तो०, कलमी शोरा १ तो० पानी में पीसकर पेडू पर लेप करने से रुका हुआ मूत्र खुल जाता है।

६. टेसू फूल २० तो० ५ सेर पानी में पकावें और किसी लोटे में डालकर पेडू पर त्रेड़ा (धार) करने से शीत से रुका हुआ मूत्र शीघ्र खुल जाता है।

गृध्रसी (रींघन वात) चिकित्सा

कूल्हे की सन्धि से आरम्भ होकर उरू, जांघ में होती हुई सूई चुभोने की सी तीव्र वेदना, जो पांव की कनिष्ठिका उङ्गली तक जाती है, उसको वैदिक-परिभाषा में "गृध्रसी-रोग" कहते हैं। कई बार उपेक्षा करने से यह रोग इतना दुःखदायी और भयङ्कर हो जाता है, कि इसके कारण चूतड़, कूल्हे और जांघ की शिराएं कांपने लगती हैं और टांग सूख जाती है। बैठे रहने या लेटे रहने से प्रायः पीड़ा कम होती है। परन्तु चलते समय इसकी वेदना से कई बार मनुष्य गिर पड़ता है।

चिकित्सक क स्मरण रखने योग्य बातें

१. गृध्रसी चिकित्सा आरम्भ करने से पूर्व रोगी को मैनफल, मुलट्ठी अथवा लवण और जल द्वारा वमन कराना आवश्यक है, वमन कराने के लिये एक युवा पुरुष को ६ माशे से ६ माशे तक मैनफल का चूर्ण गर्म जल के साथ पर्याप्त होता है अथवा २ से ३ तो० लवण को साधारण ३ पाव उष्ण जल में घोल कर पिलाने से भी वमन हो सकता है।

२. वमन के पश्चात् गृध्रसी रोगी को विरेचन कराना भी अत्याव-श्यक है। यदि रोगी कफ प्रकृति का हो अथवा रोग में कफ प्रधान हो, तो ६ माशे से ६ माशे तक निशोथ चूर्ण, ३ माशे शुण्ठी चूर्ण। दोनों को मिलाकर इसमें समभाग मधु मिश्रण कर ठण्डे जल से सेवन कराना चाहिये.

इससे खूब विरेचन होकर कोष्ठ की शुद्धि हो जाती है।

यदि रोगी वात प्रकृति का हो अथवा रोग में वात प्रधान हो, तो एक युवा पुरुष के लिये २॥ तो० से ५ तो० तक उत्तम अरण्ड तैल गर्म गोदुग्ध में मिलाकर पिलाना चाहिये, इससे खूब विरेचन हो जाता है। विरेचन के पश्चात् निम्नलिखित अनुभूत प्रयोगों में से देश, काल, बल, और प्रकृति का ध्यान रखते हुए कोई एक योग सेवन कराने से गृध्रसी रोग शांत हो जाता है।

गृध्रसी के लिए अनुभूत प्रयोग

१. रास्ना चूर्ण ५ तो०,उत्तम शुद्ध गुग्गुल ५ तो० दोनों को घृत के योग से इतना कूटना चाहिये कि मोम की भांति हो जात।

मात्रा--१॥ माशा से ३ मा७ तक।

अनुपान--प्रातः सायं रास्ना सप्तक क्वाथ अथवा गर्म जल के साथ सेवन करने से गृध्रसी रोग शीघ्र ही शान्त हो जाता है।

रास्ना सप्तक क्वाथ

रास्ना,गिलोय, गूदाअम्लतास, गोखरू, देवदार, अरिण्डमूल छाल, पुनर्नवा प्रत्येक ४ माशे यवकुट करके ½ सेर पानी में पकावें और चतुर्थांश रहने पर छान कर रोगी को पिलावें, इस से भी गृध्रसी रोग शान्त होता है।

नोट--रास्ना सप्तक क्वाथ उपरोक्त गुग्गुल अथवा महा योग राज गुग्गुल के साथ सेवन कराने से अतीव लाभ करता है। रोग की साधारण अवस्था में अकेला क्वाथ भी लाभ करता है।

पथ्यादि गुग्गुल

हरड़ १००, बहेड़ा २००, आंवला ४००, गुग्गुल १ सेर सब को यवकुट करके २ सेर पानी में पकावें चतुर्थांश रहने पर मल कर छान लें। और पुनः अग्नि पर पाक करें, जब खूब गाढ़ा हो जाय तो इस में निम्न लिखित औषधियों का चूर्ण मिला दें:--

चूर्ण --वाय विडंग, दन्ती मूल, हरड़ छिलका, वहेड़ा, आंवला, गिलोय, निसोत, पिप्पल, सोंठ, दालचीनी प्रत्येक २ तो. बारीक चूर्ण कर

उपरोक्त औषधि में भली प्रकार मिलाकर १ माशे से १॥ माशे तक की गोलियां बनावें।

मात्रा-एक से दो गोली तक।

अनुपान--प्रातः सायं गर्म जल अथवा रास्ना सप्तक के साथ सेवन कराने से गृध्रसी रोग को अवश्य आराम हो जाता है।

विषमुष्टी योग

कुचला ५ तो० घृत में भून कर चार पहर तक अद्रक के रस में और चार पहर तक पान के रस में खरल करके एक २ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक।

अनुपान--प्रातः सायं गुड़ के हलवे में सेवन कराने से गृध्रसी रोग को अवश्य आराम होता है।

ब्रह्मपुत्र योग

पीला संखिया ५ तो० इस को यवकुट करके पोटली में बांधें और २ सेर भेड़ के दूध में दोलायन्त्र द्वारा स्वेदन करें। जब दूध सूख जाय तो अगले दिन २ सेर दूध से पुनः स्वेदन करें और यही क्रिया पूरे सात दिन तक करनी चाहियें। पश्चात् संखिया को पोटली से निकाल कर किसी डाट दार शीशी में रखें। यह संखिया ऐसी समस्त वात व्याधियों में अतीव लाभ करता है जिन में कि वेदना अथवा पीड़ा अतीव कष्ट दायक होती है गृध्रसी रोग के लिए इस शुद्ध संखिये में से १ माशा संखिया लेकर खरल करें और इस में दश वर्ष का पुराना गुड़ १ तो० मिलाकर, एक २ रत्ती की गोली बनावें।

मात्रा—१ गोली प्रातः १ गोली सायं हलवे में रख कर सेवन कराने से तत्काल गृध्रसी रोग को लाभ होता है।

गृध्रसी रोग के लिए मालिश

महा नारायण तेल २० तो० को आग पर चढ़ा कर खूब गर्म करलें जब लाल हो जावे तो इसमें ५ तो० मोम और २॥ तो कपूर छोड़ कर

तुरन्त अग्नि पर से उतार लें। और ऊपर ढकना देदें ठण्डा होने पर सावधानी से शीशी में रखलें। इस तैल की कूल्हे,उरू, जांघ पर खूब मालिश करने से गृध्रसी रोग को लाभ होता है।

खञ्जता और पंगुता चिकित्सा

यह दोनों रोग नवीन ही साध्य होते हैं पुराने होकर असाध्य हो जाते हैं और कोई औषधि उन को दूर नहीं कर सकती। निम्न औषधियें हमारे अनुभव में आई हैं :-

१. आरम्भ में ५ तो० एरण्ड तेल २० तो० गर्म जल से रोगी को वस्ती कर्म (अनीमा) कराएं तत्पश्चात् निम्न प्रकार से स्वेद कर्म करें —

स्वेद विधि

सोंठ, मिर्च, पिप्पल, कुठ, असगन्ध नागौरी, बिनौला, इलसी, प्रत्येक ५ तोला को यवकुट कर के १६ गुना पानी में पकावें और आधा पानी रहने पर पतीले में बन्द करके रोगी को किसी जालीदार कुर्सी अथवा जो सघन बुना हुआ खाट न हो, उस पर बिठला कर नङ्गा करके ऊपर कम्बल उढ़ा दें और पतीले का ढक्कन अलग करें, जिससे रोगी के रुग्ण अङ्ग पर भाप लगे अथवा इन्हीं औषधियों को स्वेदयन्त्र में पका कर स्वेदन क्रिया करें और पसीना सूख जाने पर महानारायण तैल की मालिश करें। और महायोगराज गुग्गुल ४ रत्ती से १ माशा गर्म गो दुग्ध से सेवन करावें इससे खञ्जता और पंगुता रोगी को लाभ होता है।

क्रोष्टु शीर्ष चिकित्सा

यह रोग कफ और वायु के कारण होता है, जिस मनुष्य को यह व्याधि हो जाती है, उसके एक अथवा दोनों ऊर्व (घुटने) सूज कर गीदर के सिर की भांति हो जाते हैं। संस्कृत भाषा में क्रोष्ट गीदर का नाम है, जिस रोग में रोगी के घुटने गीदर के सिर की न्याईं हो जावें, उसे "क्रोष्ट शीर्शक" कहते हैं। यह रोग भी बड़ा हठीला होता है, यदि समय पर उत्तम चिकिसा न की जावे, तो प्रायः असाध्य हो जाता हैं। निम्न लिखित योग हमारे अनुभव में उत्तम सिद्ध हुए हैं —

१. विधारा ५ तो०, सोंठ २॥ तो०, सुरञ्जां २॥ तो०, पिप्पल २॥ तो०, असगन्ध नागौरी ५ तो०। सब का बारीक चूर्ण बना कर तीन गुना मधु में मिलावें।

मात्रा--६ माशे से १ तो० तक।

अनुपान—गर्म जल अथवा रास्ना सप्तक क्वाथ के साथ प्रातः सायं सेवन कराने से क्रोष्ठ शीर्ष रोग शान्त हो जाता है।

२. गिलोय, हरड़, बहेड़ा, आंवला, प्रत्येक २ तो० १ सेर पानी में पकावें, अष्टमांश रहने पर मल कर छान लें और इसके साथ १ माशा से ३ माशे तक योगराज गुग्गुल प्रातः सायं सेवन करें।

३. उपरोक्त शुद्ध ब्रह्मपुत्र योग ६ माशे २१ दिन तक पान के रस में खरल करें और उड़द प्रमाण गोलियां बना लें।

मात्रा—१ गोली प्रातः १ गोली सायं।

अनुपान - गुड़ के हलवे में सेवन कराने से क्रोष्टु शीर्ष रोग शान्त हो जाता है।

क्रोष्टु शीर्षक के लिए लेप

१. कुठ ६ माशा, आकाश बेल १ तोला, पुनर्नवा मूलछाल १तो०, अरण्डमूलछाल ६ माशा, कण्डियारी फल १ तो०, निर्विशी ६ माशा, शृंगराज भस्म ६ माशा, मिट्ठा तेलिया ३ माशे। इन सब को बारीक पीसकर गोमूत्र में खूब घोंटकर लेप बनावें और गर्म करके क्रोष्टु शीर्षक के ऊपर गाढ़ा २ लेप कर दें। इस लेप से भी क्रोष्टु शीर्षक रोगी को लाभ होता है।

खल्ली वात चिकित्सा

जिसरोग में पैर, उरु, जंघा, अथवा शरीर के किसी अन्यभाग में खल्ली पड़ जाय अर्थात् ठिठर जाय या बाईंटिड (तशुन्नुज) पड़ जाय, उसको वैदिक परिभाषा में "खल्ली वात रोग" कहते हैं।

१. कुठ ६ माशा; सैन्धा नमक ३ माशा। दोनों को बारीक पीस कर १ तो० निम्बू का रस और १ तो० तिल तैल मिलाकर थोड़ा गर्म करके

खल्ली स्थान पर खूब मलें, इससे खल्ली वात शान्त होता है।

२ वृहद् योगराज गुग्गुल ४ रत्ती से १ माशे तक प्रातः सायं गर्म दूध से सेवन करने से भी खल्ली वात को आराम होता है।

पाद दाह चिकित्सा

१. पानी को खूब पकाकर साबित मसूर का आटा लें और इस में पका हुआ जल मिला कर दोनों पैरों पर लेप करने से पावों का दाह हट जाता है।

२. गाय या भैंस का मक्खन दोनों पावों पर लेप करके सुलगते हुए कोयलों पर सेक करने से भी पावों का दाह बन्द होता है।

पाद हर्ष चिकित्सा

१. सोंठ, मरिच, पिप्पल समभाग लेकर बारीक पीसकर चतुर्थांश बादाम तैल और तीन गुना मधु मिलाकर रक्खें।

मात्रा--३ माशा प्रातः और ३ माशा सायं।

अनुपान—गाय के गर्म दूध के साथ सेवन करावें और महानारायण तैल की मालिश करें, इससे पादहर्ष रोग शान्त होता है।

कुब्जक (कुबड़ा) चिकित्सा

यह रोग भी पुराना होकर असाध्य हो जाता है, रोग की आरम्भावस्था में ही यदि योग्य चिकित्सक उत्तम, पैष्टिक और वातहर, औषधियों द्वारा चिकित्सा करें, तो लाभ भी हो सकता है, इसमें महायोगराज गुग्गुल वृहद् छागलादि घृत, अश्व गन्धादि घृत, चिन्तामणी चतुर्मुख रस आदि औषधियें उचितमात्रा में सेवन करानी चाहिये।

नोट– गृध्रसी चिकित्सा प्रकरण में जो ब्रह्मपुत्र योग वर्णन कर आये हैं, वह भी कुब्जवात में लाभकारी होता है।

कम्पवात चिकित्सा

इस रोग में रोगी का सारा शरीर अथवा शरीर का कोई एक भाग

हर समय कांपती रहती है, निम्नलिखित योग इसके लिये उत्तम गुणकारी सिद्ध हुए हैं—

१. नकुल मांस (नेवला) १ सेर, ८ सेर पानी में पकावें, चतुर्थांश रहने पर मल कर छान लें। १ सेर तिलों का तैल और निम्नौषधियों का कल्क बनाकर तैलपाक की विधि से सिद्ध करें—

कल्क द्रव्य—कुठ १ तो०, असगन्ध नागौरी ४ तो०, विधारा २ तो०, सतावर ४ तो०, दशमूल की दशों औषधियां ५ तो०, मालकंगनी ४ तो०। उपरोक्त मांस क्वाथ के साथ कल्क बनाकर एक ताम्र के पात्र में सब चीज़ों को डाल दें और ४ सेर गोदुग्ध पाकार्थ भी मिला दें। मन्दाग्नि पर पकावें, जब तैल मात्र रह जावे, तो नितार कर छान लें, इस तैल की नित्य प्रति मालिश करने और ६ माशे से १ तोला तक पीने से कम्पवात रोग शान्त होता है

कम्पवात रोगी को भोजन

गेहूं की रोटी के साथ मुर्गी के अण्डे, मुर्गी का मांस रस, और तीतर, बटेर, कबूतर का मांस रस सेवन कराना चाहिये। इससे भी कम्पवायु का नाश होता है।

आक्षेपक वात चिकित्सा

इस रोग में मनुष्य की नस व नाड़ियों में वायु प्रकुपित होकर सारे शरीर को इस प्रकार हिलाता है, जैसा कि हाथी पर चढ़ा हुआ पुरुष हिलता है।

१. कुचला को घृत में भून कर बारीक पीस लें।

मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक।

अनुपान—हलवे में खाने को दें, इससे आक्षेपक और दण्ड आक्षेपक रोग शान्त होता है।

२. घृत में भुना कुचला १ तो०, काली मिर्च १ तो०, शुद्ध अफ़ीम १ तो०, केसर ६ माशा। चारों औषधियों को ४ पहर तक बङ्गला पान के रस में खरल करके एक २ रत्ती की गोली बनावें।

मात्रा—एक २ गोली प्रातः सायं।

अनुपान—गर्म दूध के साथ सेवन करने से आक्षेपक रोग शान्त होता है।

महाबला तैल

खरैंटी मूल २ सेर, दशमूल की दशों औषधियें २॥ सेर, यव २सेर, कुल्थ २ सेर। सब चीज़ों को १६ गुना पानी में पकावें, चतुर्थांश रहने पर छान लें। तिलों का तैल ४ सेर, गाय का दूध ८ सेर। सब को मिला कर निम्नलिखित औषधियों का कल्क बनावें—

कल्क द्रव्य—सेन्धा नमक, अगर, राल, धूप, देवदार, मंजीठ, पद्माख, कुट, बड़ी इलायची, सारेवा, बालछड़, छड़ीला, तेजपत्र, तगर, वच, स्तावर, असगन्ध नागौरी, सोए बीज, पुनर्नवामूल प्रत्येक ५ तोला। कल्क बनाकर तैल पाक करें। जब तैल भली प्रकार सिद्ध हो जाय, तो नितार कर छान लें, इसकी सारे शरीर पर मालिश करें।

मात्रा—२ तो० तैल प्रातः साय।

अनुपान—गाय के गर्म दूध के साथ सेवन करने से आक्षेपक वात रोग शान्त होता है।

अपतन्त्रक वात चिकित्सा

विकृत हुआ वात जब पक्वाशय से हृदय और मस्तिष्क की ओर गमन करता है. तो रोगी का शरीर कमान की तरह तन जाता है। नेत्र और मुख दूसरी ओर फिर जाते हैं। संज्ञा नाश हो जाती है और रोगी कबूतर की भांति कूञ्जता है।

इसका नाम अपतन्त्रक रोग है, इस रोग के लिये निम्नयोग हमारे अनुभव में सिद्ध हुए हैं—

१. भृङ्गराज भस्म, अर्क दुग्ध द्वारा बनी हुई १ रत्ती से २ रत्ती तक प्रातः सायं गाय के खट्टे दही के साथ सेवन कराने से अपतन्त्रक रोग शान्त होता है।

मिर्चादि नस्य

२. काली मिर्च, सुहांजने के बीज, वायविडङ्ग, मरुआ बीज, समान भाग लेकर बारीक पीस लें और रोगी को इसकी नस्य दें। इस से अपतन्त्रक वात शान्त होता है।

हरीतकादि

३. हरड़छाल, वच, रास्ना, सेन्धा नमक, अम्लवेद समान भाग लेकर बारीक पीस लें। पश्चात् सारे चूर्ण से अष्टांश गोघृत मिलावें।

मात्रा—१॥ माशा से ३ माशे तक।

अनुपान—अद्रक के रस और मधु में मिला कर सेवन कराने से अपतन्त्रक वात नष्ट होता है।

४. घृत में भुना हुआ कुचला और शुद्ध धतूर बीज समान भाग बारीक पीसकर चूर्ण बना लें।

मात्रा—१-२ रत्ती प्रातः सायं।

अनुपान—पान के रस और मधु के साथ मिला कर सेवन कराने से अपतन्त्रक वात शीघ्र शान्त होता है।

इसी वाताधिकार के वातष्ठीला प्रकरण में कहे हुए प्रयोग नम्बर १, के सेवन कराने से भी अपतन्त्रक वात शीघ्र शान्त हो जाता है।

अपतानक वात चिकित्सा

यह रोग भी अपतन्त्रक वात की भांति ही होता है। यदि इस की चिकित्सा में उपेक्षा की जाय, तो भयङ्कर रूप धारण कर लेता है। अतः इसकी चिकित्सा में विलम्ब न करना चाहिये।

सर्व प्रथम रोगी को बादाम तैल अथवा गोघृत के साथ स्नेह कर्म कराकर निसोत अथवा काला दीना की उचित मात्रा से विरेचन कराना चाहिये।

मात्रा—एक युवा पुरुष के लिये ६ मा० से ९ माशे तक निसोत अथवा काला दाना विरेचनार्थ पर्याप्त होता है।

दशमूलादि क्वाथ, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, गोखरू, कण्टकारी द्वय, अरनी, कम्भारी, श्योनाक, बेल छाल, पाढल प्रत्येक ३ माशा यवकुट करके २॥ सेर पानी में पकावें, चतुर्थांश रहने पर मलकर छान लें। इसमें १ मा० पिप्पली चूर्ण मिलाकर रोगी को सेवन करावें। क्वाथ पच जाने पर रोगी के शरीर पर महा नारायण तैल की मालिश करावें, इससे अपतानक वात शीघ्र शान्त हो जाता है।

२. १ पाव से १॥ पाव तक खट्टे दही में एक माशा काली मिर्चें और १ माशा सेन्धा नमक मिलाकर दो-तीन दिन सेवन कराने से अपतानक वात शान्त होता है।

३. एरण्ड तैल १० तो०, गर्मजल १॥ पाव। दोनों को मिला कर दिन में एक बार शौच के पश्चात् अनीमा कराने से अपतानक वात का नाश होता है।

४. इस वाताधिकार में आगे कहे हुए चतुर्भुज रस एक २ रत्ती की मात्रा मधु और पान रस में प्रातः सायं सेवन कराने से अपतानक वात नष्ट हो जाता है।

सर्वाङ्ग वात चिकित्सा

प्रबल वात कुपित होकर जब शरीर के सम्पूर्ण भागों में गमन करता है, तो रोगी के हाथ, पांव, नेत्र, भवें, कन्धे और शरीर की सर्व नस और नाड़ियें फड़कने लगती हैं। इसी का नाम सर्वांग वात है।

१. स्नेह और विरेचन तथा वस्तिकर्म कराने के पश्चात् यदि रोगी को सदोष्ण नारायण तेल अथवा तिल तैल के कड़ाहे में बिठला कर सारे शरीर पर मर्दन करने से सर्वाङ्ग वात शान्त होता है।

२ सूखा लहसुन १ तो०, सेन्धा नमक ६ माशा, काला जीरा ६माशा, सोंठ ६मा०, काली मिर्च ६माशा, पिप्पल ६माशा, सौंचर नमक ६माशा, घृत में भुनी हींग ६ माशा सबको बारीक पीसकर चूर्ण बना लें।

मात्रा - १॥ माशा से ३ माशा तक प्रातः सायं।

अनुपान—२ तो० अरण्ड मूल छाल के क्वाथ के साथ सेवन करने से सर्वांग वात शान्त होता है।

महालक्ष्मी विलास रस

कृष्णाभ्रक भस्म शतपुटी ४ तोला, शुद्ध पारा २ तोला, शुद्ध गन्धक २ तो०, खरैंटी बीज २ तो०, गगेरन मूल छाल २ तो०, सतावर २ तो०, विदारीकन्द २ तो०, धतूरबीज २ तो०, समुद्र फल २ तो०, गोखरू २तो०, विधारा के बीज २ तो०, भांग के बीज २ तो०, जायफल २ तो०, जाविन्त्री २ तो०, कपूर २तो०,स्वर्णभस्म ६ माशे। प्रथम पारे व गन्धक को चार पहर पर्यन्त खरल करके कज्जली बना लें, पश्चात् सब वस्तुओं को बारीक पीस कर इसमें मिलावें और सात दिन तक पान के रस में खरल करके १ रत्ती से २ रत्ती प्रमाण गोलियां बनावें।

मात्रा—एक २ गोली प्रातः सायं।

अनुपान—गाय के गर्म दूध के साथ सेवन कराने से सर्वांग वात रोग शान्त होता है।

पक्षाघात चिकित्सा

मस्तिष्क और शरीर के आधे भाग में जब प्रकुपित वात ज्ञानवाही स्रोतों और शरीर के सञ्चालन करनेवाली शिराओं पर आघात करता है, तब मनुष्य के शरीर का दक्षिण अथवा वाम (दहिना और बायां) भाग बेकार हो जाता है, रोगी उस भाग से कोई क्रिया नहीं कर सकता। रोग के साधारण आक्रमण से हाथ और पांव कुछ क्रिया कर सकते हैं और त्वचा में साधारण ज्ञान भी उपस्थित होता है, परन्तु रोग के प्रबल आक्रमण से रोगी ज्ञानशून्य होकर जड़वत् पड़ा रहता है, शरीर के जिस भाग पर रोग का वेग होता है। वह भाग प्रायः मृतवत् हो जाता है। नाखुन से काटने अथवा सुई चुभोने से भी रोगी को कुछ भान नहीं होता।

साध्यासाध्य विचार

रोगी बलवान हो और रोग का साधारण आक्रमण हो, तो समय पर उचित चिकित्सा करने से रोगी अच्छा हो जाता है, परन्तु रोग के प्रबल

आक्रमण से जिसमें रोगी बिल्कुल ज्ञान शून्य पड़ा रहता है, ऐसी अवस्था में असाध्य जानना चाहिये, कहा भी है—

गर्भिणी सूतिका बाल वृद्ध क्षीण अस्त्रक क्षय ।
पक्षाघातं परिहरेत वेदना रहितो यदि ॥

अर्थात् गर्भिणी स्त्री, प्रसूता, छोटे बच्चों, वृद्ध, किसी रोग के कारण से अतिक्षीण और जिसका किसी कारण से रक्तक्षय हो चुका हो, ऐसे पक्षाघाती की चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। यदि ऐसे मनुष्यों के रोगावस्था में पक्षाघात के कारण त्वचा और अङ्ग प्रत्यङ्ग इतने ज्ञान शून्य हो गये हों, कि उनको शस्त्र से काटने अथवा सूई चुभोने से भा पीड़ा न होती हो, तो यश की इच्छा करने वाले चिकित्सक को चाहिये, कि ऐसे रोगी की भूल कर भी चिकित्सा न करे, क्योंकि ऐसे रोगियोंको शास्त्र और अनुभव असाध्य बतलाते हैं।

चिकित्सा विधि

यद्यपि पक्षाघात रोग अति भयंकर और दुःसाध्य है और शास्त्र ने भी इसकी विशेष अवस्थाओं में चिकित्सा का निषेध किया है, तथापि निम्न-प्रकार से चिकित्सा करने पर शास्त्र की दृष्टि से दुःसाध्य तथा असाध्य कहे गये रोगी भी रोग मुक्त हो सकते हैं—

चिकित्सक के जानने योग्य

पक्षाघात की चिकित्सा करते समय चिकित्सक को निम्न-लिखित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

१. रोग की आरम्भावस्था में ही उग्र रस और भस्में सेवन नहीं कराने चाहिये।

२. आरम्भावस्था में रोगी को सात अथवा दस दिन तक लंघन करवाना परमावश्यक है और लङ्घन अवस्था में अर्द्धावशेष जल में मधु मिलाकर थोड़ा २ पिलाते रहना चाहिये।

मधु का प्रमाण-- एक सेर जल में ५ तो० से १० तो० तक मधु मिला सकते हैं।

३ जिस पक्षाघाती की संज्ञा नाश न हुई हो, उसको नित्य दो तो० से ४ तोले तक दशमूल की दशों वस्तुओं के यथा विधि बने हुए क्वाथ में २ से ४ तो० उत्तम एरण्ड तैल मिलाकर सेवन कराते रहना चाहिये। ताकि आंतों में मल का सञ्चय न होने पावे और यदि पक्षाघाती ज्ञान शून्य होकर जड़वत् पड़ा हो, तो सहोष्ण जल में ५ तो० अरण्ड तैल मिला कर कम से कम दिन में एक बार अनीमा करते रहना चाहियें।

४ लङ्घन अवधि के पश्चात् रोगी को कुक्कुट और काले कबूतर का मांस का रस दिन में एक-दो बार सेवन कराना चाहिये और अर्द्धावशेष जल पीने को देना चाहिये।

५. शिर, ग्रीवा और वाताङ्ग पर आगे कहे हुये महा माषादि तैल महानारायण तैल की मालिश दिन में २-३ बार करते रहना चाहिये।

औषधि उपचार

१. सात अथवा दस दिन के लङ्घन के पश्चात् ४ रत्ती से १ मा० तक धातु मिश्रित महायोगराज गुग्गुल दशमूल क्वाथ में १ से २ तोला बादाम तैल मिलाकर दिन में २-३ बार सेवन कराने से पक्षाघात रोग शीघ्र शान्त हो जाता है।

२. उड़द, कौंचबीज, अरण्ड मूल छाल, खरैंटी मूल छाल प्रत्येक १ तो० यवकुट करके १ सेर जल में पकावें, चतुर्थांश रहने पर मल कर छान लें और इसमें २ माशा काला नमक तथा १ मा० घृत में भुनी हींग, मिला कर दिन में दो-तीन बार पिलाने से पक्षाघात शांत होता है।

३. हड़ताल शुद्ध १ तो० खरल में डाल कर ४ तो० काली मिरच के साथ इस प्रकार खरल करें, एक मिर्च डालें, जब वह सुमें की भांति बारीक हो जाय, तो दूसरी डालें, इसी प्रकार जब ४ तो० मिर्च समाप्त हो जाय, तो इसमें २ तो० षड्गुण बलिजारित रस सिन्दूर मिला कर, बराबर ३ दिन पर्यन्त खरल करें, तत्पश्चात् पान के रस से २१ दिन तक खरल करके २ से ४ रत्ती प्रमाण गोलियां बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली तक।

अनुपान—द्राक्षा (मुनक्का) में रखकर दिन में २-३ बार सेवन करावें, इस प्रयोग से दुस्साध्य से दुस्साध्य और कई असाध्य रोगी भी

रोग मुक्त हुए हैं। इस औषधि के सम्बन्ध में हमारा चिरकालीन अनुभव है। यदि रोगी मन्दभाग्य न हो तो पक्षाघात से अवश्य मुक्त हो सकता है। हम अपने चिकित्सालय में अन्य औषधियों के अतिरिक्त प्रायः इसी औषधि को काम में लाते हैं।

४. कुचला ५ तो., घृत में भून कर बारीक पीस लें और समान भाग काली मिर्च का चूर्ण मिला कर ३० दिन तक पान के रस में खरल कर के दो रत्ती प्रमाण गोलियां बनावें।

मात्रा—एक ? गोली प्रातः सायं २ से ४ तो. बादाम तैल के साथ सेवन कराने से कफाधिक्य पक्षाघात शान्त होता है।

५. लोबान का सत्व १ तो., कस्तूरी ६ मा., अम्बर ३ मा. स्वर्ण भस्म ३मा, षड्गुण बलि जारित रससिन्दूर १ तो., शुद्ध शिलाजीत १ तो, केसर १ तो., सब को सात दिन तक पान के रस में खरल कर के ½ रत्ती प्रमाण गोली बनावें।

मात्रा—एक २ गोली प्रातः सायं गाय के गर्म दूध में बादाम तैल मिला कर सेवन कराने से पक्षाघात रोग नष्ट हो जाता है।

महा माषादि तैल

६ उड़द १ सेर १० छ., दशमूल की दशों औषध २॥ से अखट वीर्य बकरे का मांस १॥ सेर इन को १६ गुणा पानी में पकावें चतुर्थांश रहने पर मल कर छान लें। इस में २ सेर उत्तम तिलों का तैल ६। सेर गाय का दूध और निम्न लिखित औषधियों का कल्क मिला कर तैल पाक विधि से पकावें।

कल्क द्रव्य—काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, असगन्ध नागौरी, सतावर, चव्य, चित्रकमूलछाल, कायफल, सोंठ, मिर्च, पिप्पली, पिप्पलामूल, रास्ना, आंवला, गोखरू, देवदारु, कौंचबीज, अरण्ड मूल छाल, सोए बीज, सेन्धा नमक, साम्बर नमक, सौंचर नमक, गिलोय, कुट, वच, कचूर, प्रत्येक १ तोला। इन औषधियों को उपरोक्त क्वाथ अथवा दुग्ध के साथ पीसकर कल्क बनावें। सब वस्तुओं को मिला कर तैल पाक करें और भली प्रकार पक जाने पर तैल को नितार कर छान लें, इस तैल की मालिश करने से पक्षाघाती को विशेष लाभ होता है।

महानारायण तैल

उत्तम तिलों का तैल १६ सेर, दोष शमनार्थ इस तैल को पञ्च पल्व के क्वाथ से पाक करें, तैलमात्र रहने पर फिर इसमें १६ सेर बकरी अथवा गाय का दूध और १६ सेर सतावर का रस मिलाकर पकावें। तैलमात्र रहने पर छान लें, पश्चात् निम्न लिखित औषधियों का क्वाथ बनावें--

दशमूल की दशों औषधियें, खरैंटी, रास्ना, सुहाञ्जना, कमल, पुनर्नवा, निर्गुण्डी (सम्भालू), कंघी, गंगेरन, प्रसारणी, असगन्ध, दूब की जड़, कट सरैया, ढांक, मौलसरी, अरण्ड मूल छाल, बरना छाल, कुटकी. सिरस छाल, अपामार्ग मूल, बासामूल, बालछड़, जामुनछाल, बहेड़ा, कचनार छाल, कैथ छाल, नीम छाल, चिरौंजी, पाखान भेद, अम्लतास छाल, दुद्धी, अनार छाल, गूलर छाल, सातला छाल, धीक्वार, मालती, चम्बेली, तज, पीपल, नरसल की जड़, यव, बेर, कुल्थी, कौचबीज, आक की जड़, कपास की जड़, थूहर. गिलोय, चित्रकमूल छाल, केवड़ी की जड़, धतूरा, कलिहारी, बेलिया, पीपल की छाल, बकायन, पञ्चवल्कल गोरखमुण्डी, टेकारी, मूसली, लाल लज्जालू, और इन्द्रायण। यह प्रत्येक पदार्थ दस-दस पल लेकर ८ गुने पानी में पकावें, जब पकते २ चतुर्थांश जल शेष रह जावें, तब उतार कर छान लेवें, फिर इस क्वाथ में इस तैल को पकावें। फिर, बकरा, मेंढा, हिरण, पृष हिरण, सांवर, खरगोश, सेई, छपकली, गोय, सिंह, बाघ, रीछ, जङ्गली सूअर, गेंडा, भैंसा, घोड़ा, बन्दर, नेवला, बिलाव, चूहा, मेंडक, बतक, तीतर, लवा, खञ्जन, (ममोला), चकोर, उल्लू, नील कण्ठ, बनमुर्गा, गीध, गरुड़, हंस, चकवा, कारण्डव, कबूतर, सारस, कुण्डा, जङ्गली कबूतर, रोहू मछली मुद्गुर मछली, शिलीन्ध्र, शृङ्क, इल्लीस, गर्गरी मछली, वर्मी, क्वथ मछली, कौआ, कोयल, महामत्स्य, कछुआ, शिशुमार, संकुच मगर, घड़ियाल। इनमें जितने भी जीवों के मांस मिल सकें, उतने ही लेने चाहियें। समस्त मांस १६ सेर पाकार्थ जल ६४ सेर। चतुर्थांश शेष रहने पर मलकर छान लें।

उपरोक्त काथ और मांस काथ तथा निम्नलिखित औषधियों का कल्क

और तैल सब को किसी उत्तम पात्र में डालकर तैल पाककी विधि से पकावें, तैल मात्र रहने पर नितार कर छान लें।

कल्क द्रव्य—रास्ना, असगन्ध नागौरी, सोया, देवदारु, पृष्टपर्णी, शालपर्णी, मुद्गपर्णी, माशपर्णी, कुठ, अगर, नागकेसर, सेन्धा नमक, बाल छड़, हल्दी, दारुहल्दी, छरीला, चन्दन, पोहकर मूल, इलायची, मुलट्ठी, तगर, नागरमोथा, तेजपत्र, तज, सतावर, विदारी कन्द, असगन्ध, बराहीकन्द, वच, गन्ध पलाशी (यदि गन्ध पलाशी न मिले, तो कचूर डालें) पुनर्नवा, मूर्वा, कायफल, पद्माख,कमल की नाल, जायफल, केवड़ा मूल, केवड़ा फूल, धूप सरल, कपूर कचरी, गिलोय, सुगन्धबाला, हरड़, बहेड़ा, आंवला, धमासा, कौंचबीज, अर्जुन, चिरायता, बादाम, छुहारे, पिप्पलामूल, धनियां, पित्तपापड़ा, परवल, धतूरे की छाल, अर्णी, त्रायमाण, अलम्बुशा (लज्जावन्ती), इन्द्रजौ, रसौंथ, बबूल की छाल, निसोत, मजीठ, द्राक्ष, पिप्पल, गूमा, निर्गुण्डी बीज, वायविडङ्ग, कनेर की जड़, नील कमल, काला ज़ीरा, केले का कन्द, चित्रकमूल छाल, गोखरु, ताल मखाना, कङ्कोल, पीला चन्दन, कुसुम के फूल, शिलारस, केसर, मोम, लौंग, कपूर, कस्तूरी, सुगन्धबाला, अम्बर प्रत्येक २ तो०, इन वस्तुओं का उपरोक्त क्वाथ के साथ विधिवत् कल्क बनावें और तैल तय्यार करें। इस तैल की मालिश करने से पक्षाघात तथा अन्य पट्ठों से सम्बन्ध रखने वाले अन्यवात रोग निश्चय ही नाश हो जाते हैं। ग्रन्थकारों ने इस तैल की बड़ी भारी उपमा की है। परन्तु हमारा अनुभव है, कि यह तैल वातव्याधि मात्र को दूर करने के लिये एक अन्यर्थ औषधि है। आयुर्वेद चिकित्सा करने वाले वातव्याधि विशेषज्ञों को इस तैल को अवश्य अपने यहां बना कर रखना चाहिये।

महा योगराजगुग्गुल

सोंठ, पिप्पल,चव्य,पिप्पलामूल, चित्रकमूलछाल, भुनी हुई हींग,अजमोद, सरसों, जीरा, काला जीरा, रेणुका, इन्द्रजौ, पाढ, वायविडङ्ग, गजपीपल, कुटकी अतीस, भारङ्गी, वच, मूर्वा प्रत्येक ४॥माशे। सबको बारीक पीस कर चूर्ण बनावें। समस्त चूर्ण से दुगुना त्रिफला चूर्ण (हरड़, बहेड़ा, आमला) सब औषधियों के चूर्ण के समान शुद्ध गुग्गुल लेकर विधिवत् कुटावें।

जब गुग्गुल और समस्त चूर्ण मिलकर कूटते २ लेहवत् हो जाय, तो इसमें हड़ताल योग से बनी बङ्गभस्म ४ तो०, और हड़ताल योग से बनी चांदी भस्म ४ तो०, मनसिल योग से बनी नागभस्म ४ तोला हिंगुलयोग से बनी लोहभस्म ४ तो०, रसेन्द्र सारोक्त शतपुटी, कृष्णाभ्रक भस्म ४ तो०, त्रिफला और गोमूत्र के योग से बनी मण्डूर, भस्म ४ तो०। षड्गुण बलिजारित रससिन्दूर ४ तोला। इन सब को उपरोक्त लेहवत् हुए योगराज गुग्गुलमें भली प्रकार मिलाकर पुनः खूब कुटाई करें। जब समस्त औषधियें एकजीव हो जांय, तो सावधानी से रक्खें।

मात्रा—४ रत्ती से १ माशा तक।

अनुपान—गर्म जल, गर्म दूध अथवा रास्नादि क्वाथ, व माषादि क्वाथ के साथ सेवन कराने से पक्षाघात रोग तथा अन्य सब प्रकार के वात-रोग शान्त होते हैं।

इस प्रयोग के निर्माता महोदय ने निम्नलिखित शब्दों में प्रसंशा की है—

गुग्गुलयोग राजोयं त्रिदोषऽघ्नो रसायनं !
मैथुनाहार पानाना त्यागो नैवऽत्र विद्यते ॥
सर्वान् वातामयान् कुष्ठानर्शांसिग्रहणीगदम्।
प्रमेहं वातरक्तं च नाभिशूलं भगंदरम् ॥
उदावर्त्तं क्षयं गुल्ममपस्मार मुखोग्रहम्।
मन्दाग्नि श्वास कासांश्च नाशयेदरुचिं तथा ॥
रेतोदोषहरः पुंसां रजोदोषहरः स्त्रियाम्।
पुंसामपत्य जनको वंध्यानां गर्भदस्तथा।
रास्नादि क्वाथ संयुक्तो विविधं हन्तिमारुतं ॥

हमारा अनुभव है कि यदि विचार पूर्वक इस महौषधि को देश, काल, बल, प्रकृति तथा रोग और रोगी की अवस्था के अनुसार विविध अनुपानों के साथ सेवन कराया जाय, तो उपरोक्त रोगों के अतिरिक्त शरीर की कई अन्य व्याधियों को भी समूल नाश किया जा सकता है।

चतुर वैद्य का चातुर्य इसी में है, कि किसी भी रोग के लिये इस औषधि की व्यवस्था करते समय रोग अनुसार अनुपान का यथोचित निश्चय करें।

त्रयोदशांग गुग्गुल

बबूल की छाल, असगन्ध नागौरी, हाऊबेर, सतावर, गिलोय, गोखरू, विधारा, रास्ना, सौंफ, कचूर, अजवाइन देशी, सोंठ प्रत्येक १तो०, सब का यथा विधि बारीक चूर्ण बनावें। समस्त चूर्ण के बराबर शुद्ध गुग्गुल लेकर विधिवत् कूटकर एकजीव करें।

मात्रा--१ माशे से ३ माशे तक।

अनुपान--गर्म जल अथवा रास्ना आदि क्वाथ के साथ सेवन कराने से पक्षाघात तथा अन्य वात रोग शान्त होते हैं।

——०+०——

सर्ववात व्याधियों के लिये कुछ सिद्धयोग

यद्यपि वात व्याधियों के लिये स्थान २ पर उत्तम योग दिये गये हैं और उनके होते हुये अन्य योगों की आवश्यकता नहीं, परन्तु विशेष रूपेण वात व्याधियों के लिये निम्न लिखित प्रयोग सैंकड़ों बार हमारे अनुभव में आ चुके हैं, अतः प्रेमी पाठकों के लाभार्थ यहां दिये जाते हैं—

रसोन आदि चूर्ण

सूखा लहसुन ४तो०, काला ज़ीरा, सफेद ज़ीरा, सोंठ, काली मिर्च, पिप्पल, हींग घृत में भुनीं हुई, काला नमक, सेन्धा नमक प्रत्येक ६मा०, सब को बारीक पीस कर चूर्ण बनावें।

मात्रा--३ माशे से ६ माशे तक।

अनुपान—गर्म जल के साथ यह चूर्ण उदर सम्बन्धी आध्मान, प्रत्याध्मान, वात अष्ठीला आदि रोगों में विशेष लाभ करता है। अतः इस

चूर्ण को सदैव उदर सम्बन्धी वात व्याधियों में ही सेवन कराना चाहिये ।

त्रिषमुष्टि वटिका

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा तेलिया, अजवाइन देसी, हरड़, बहेड़ा, आमला, सज्जीखार, जौखार, सेन्धा नमक, चित्रकमूल-छाल, जीरा श्वेत, काला नमक, बायविडङ्ग, सोंठ, काली मिर्च, पिप्पल, प्रत्येक समान भाग लेकर प्रथम पारे व गन्धक की विधिवत् कज्जली बनावें, और शेष वस्तुओं को बारीक पीस कर कजली में मिला दें। सर्व औषधिओं के समान भाग घृत में भुने हुए कुचले का चूर्ण, सब निम्बू के रस में ३ दिन पर्यन्त खरल करके २ रत्ती प्रमाण गोलियां बनावें।

मात्रा---१ से २ गोली तक।

अनुपान---गर्म जल के साथ दें।

यह औषधि भी उदर सम्बन्धी वात व्याधियों में विशेष लाभ करती है। विशेष कर जब कि उदर में वाताधिक्य के कारण शूल भी होता हो, तो इस का विशेष प्रभाव देखा गया है।

रसोन पाक

उत्तम लहसुन १ सेर, छिलके उतार कर कुचल डालें और एक दिन रात दही की छाछ में भिगो छोड़ें। पश्चात् निकाल कर धो लें और सिल पर पीसकर पीठी बना लें। फिर ४ सेर गोदुग्ध में मिला कर नर्म आग पर पकावें, जब खोए की भांति हो जाय तो इसमें एक पाव गोघृत, मिला कर अच्छी प्रकार भून डालें, पश्चात् २सेर खांड की पक्की चाशनी बना कर इसमें भुना हुआ लहसुन, खोआ, और निम्नलिखित औषधियों का बारीक चूर्ण मिला दें और अग्नि पर से उतार कर बर्फी अथवा लड्डू बना लें।

चूर्ण द्रव्य—सोंठ, काली मिर्च; पिप्पल; दालचीनी, तेजपत्र; छोटी इलायची, नाग केसर; पिप्पलामूल; अजमोद; लौंग; चव्य, चित्रक मूलछाल, वायविडङ्ग, हल्दी, विधारा, पोहकरमूल, देवदार, पुनर्नवा, सतावर, कचूर, गोखरू, रास्ना, सौंफ, असगन्ध नागौरी, कौंचबीज प्रत्येक १ तोला। चूर्ण बनाकर उपरोक्त में मिला लें।

मात्रा—१ तो० से ४ तो० तक।

अनुपान--बलाबल विचार कर गर्म जल के साथ अथवा गाय के दूध के साथ सेवन करावें।

यह पाक भी उदरस्थ वात व्याधियों में ही लाभ करता है, विशेष कर जब कि रोगी को उदर वात के कारण शूल के साथ साथ बद्धकोष्ठ (कब्ज़) भी हो।

मेथी पाक

मेथी के बीज ३२ तोला, सौंठ ३२ तो०, दोनों का उत्तम चूर्ण, बनाकर ४ सेर गोदुग्ध में पकावें, जब खोए की भांति हो जाय, तो १ पाव घृत में भून लें और २ सेर खाण्ड की पक्की चाशनी बनाकर इसमें खोए और निम्न-लिखित वस्तुओं का चूर्ण मिलाकर २-३ तो० प्रमाण में लड्डू बना लें।

चूर्ण द्रव्य--सौंठ, काली मिर्च, पिप्पल, पिप्पला मूल, चित्रक-मूल छाल, धनियां, सफेद ज़ीरा, कलौंजी, सौंफ, जायफल, कचूर, दालचीनी, तेजपत्र; नागकेसर; नागरमोथा; प्रत्येक १ तो० चूर्ण बनाकर उसमें मिलावें।

मात्रा--२ तो० प्रातः २ तो० सायं।

अनुपान—गर्म दूध या जल के साथ सेवन कराने से उदर सम्बन्धि वात विकार दूर होते हैं।

वातगजकेसरी अर्क

रास्ना २ सेर अजवाइन देसी १ सेर, धनियां २० तो० नागरमोथा, ५तो० वांसा मूलछाल ५तो०देवदार ५तो० सौंफ ५तो.,सतावर ५तो०, कचूर ५ तो० गोखरू ५ तो० बादाम गिरी ५ तो० जीरा काला ५ तो०,बहेड़े का छिलका ५ तो० असगन्ध नागौरी ५ तो०, गुद्दा अम्लतास ५ तो०, बड़ा गोखरु ५ तो०, कण्डियारी ५ तो०, पतीस ५ तो०, हरड़ छाल ५ तो०, विधारा ५ तो०, वच ५ तो० अतीस ५ तो, जवांसा ५ तो० अरण्ड मूल छाल ५ तो० पिप्पल ५तो० सोंठ ५ तो० काली मिर्च ५ तो०, खरैंटी ५ तो० सब को कुचल कर १६ सेर पानी में रात्री को भिगो दें। प्रातः बक यन्त्र

द्वारा १२ बोतल अर्क खेंचलें। और दूसरी और तीसरी वार उन्हीं औषधियों के वर्तन में पुनः अर्क डाल कर दूसरी वार १० और तीसरी वार ८ बोतलें अर्क खीचलें।

मात्रा—२ तो० से ४ तो० तक बच्चों को ६ मा० से २ तो० तक दिन में दो तीन वार सेवन कराने से सर्वाङ्ग कुपित वात शान्त होता है। यह प्रयोग रोगी को ऐसी अवस्था में सेवन कराना चाहिये जब कि वात रोग के कारण रोगी का मांस और बल क्षीण हो गया हो तब इस अर्क से विशेष लाभ होता है।

अश्वगन्धादि घृत

असगन्ध नागौरी २ सेर यवकुट करके ३२ सेर पानी में पकावें, चतुर्थांश रहने पर इस में आठ सेर गोदुग्ध मिलादें, पश्चात् ४० तो० असगन्ध नागौरी को उपरोक्त क्वाथ अथवा दूध के साथ सिल्ल पर पीस कर कल्क बनालें फिर २ सेर गो घृत और सब वस्तुओं को उत्तम ताम्बे के पात्र में डाल कर घृत पाक की विधि से पकावें। जब घृतमात्र शेष रह जावे तो नितार कर छानलें।

मात्रा—१ तो० से ४ तो० तक

अनुपान—गाय के गर्म दूध में मिलाकर सेवन करने से सर्वांग वात जनक पीड़ा तथा वात व्याधि से होने वाली क्षीणता नष्ट होती है।

रसराज रस

षडगुण बलि जारित रस सिन्दूर ४ तो० रसेन्द्रसारोक्त शतपुटि अभ्रकभस्म १ तो०, पारद योग से बनी हुई स्वर्णभस्म ६ मा० हिंगुल योग से बनी हुई लोह भस्म ३ मा०, ताल योग से बनी हुई वंग भस्म ३ मा० ताल योग से वनी चान्दी भस्म ३ मा० असगन्ध नागौरी ३ मा० लौंग ३ मा० जावित्री ३ मा० क्षीर काकोली ३ मा० सब को बारीक पीस कर एक पहर घी क्वार के रस में और दो पहर मकोय के रस में खरल करके २ रत्ति प्रमाण गोली बना लें।

मात्रा—१ गोली प्रातः १ गोली सायं।

अनुपान—गाय के गर्म दूध के साथ सेवन करने से सर्वाङ्ग वात और वात जनित पीड़ायें शान्त होती हैं।

वत्सनादि गुटिका

अशुद्ध मीठा तेलिया १ तो०; सुहागा सफेद ३ तोला, काली मिर्च ४ तो०; बारीक पीसकर ३ दिन पर्यन्त अद्रक के रस में खरल करके एक २ रत्ती की गोली बनावें।

मात्रा—१ गोली प्रातः १ गोली सायं कफ प्रधान वातव्याधि का नाश होता है।

चिन्तामणि रस

षड् गुण बलिजारित रस सिन्दूर १ तोला, रसेन्द्रसारोक्त शतपुटि अभ्रक १ तो., हिंगुल योग से बनी हुई लोहभस्म ६ मा., गन्धक और पारे के योग से बनी हुई स्वर्ण भस्म ६ माशा। सबको ६ घण्टे तक घक्किार के रस में खरल करके एक २ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा—१ गोली प्रातः, १ गोली सायं।

अनुपान—गाय के गर्म दूध में १ तोला से २ तो० बादाम रोग़न मिलाकर सेवन करें। इससे भी सर्वांग वात जनित पीड़ायें होती हैं।

चतुर्मुख रस

शुद्ध पारा ६ माशा, शुद्ध गन्धक ६ माशा, शतपुटी अभ्रकभस्म, ६ माशा, गन्धक और पारे के योग से बनी स्वर्णभस्म १ माशा, हिंगुल-योग से बनी हुई लोहभस्म ६ माशा। प्रथम पारे और गन्धक का ३ घण्टे पर्यन्त खरल करके कज्जली बनावें, पश्चात् अन्य वस्तुओं को मिलाकर घीकार के रस में ६ घण्टे खरल करके गोली बना लें, इस गोले पर ५-७ अरण्ड पत्र लपेटकर ऊपर धागा लपेट दें और एक सप्ताह पर्यन्त गेहूं के ढेर में दबा दें। पश्चात् निकाल कर २ रत्ती प्रमाण की गोली बनावें।

मात्रा—१ गोली प्रातः १ गोली सायं।

अनुपान--त्रिफला के क्वाथ के साथ सेवन करने से सर्वांग वात का का नाश होता है।

बृहद्वात गुजांकुश रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शतपुटि अभ्रक भस्म, हिंगल योग से बनी लोहभस्म, पारद और गन्धक योग से बनी ताम्रभस्म

शुद्ध हरताल वर्कीया, पारद और गन्धक योग से बनी स्वर्ण भस्म सोंठ, खरैंटी, धनियां, कायफल, हरड़, शुद्ध मीठा तेलिया, काकड़ा-सिंगी, कालीमिर्च, पिप्पल, सुहागाश्वेत प्रत्येक समान भाग। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें और शेष सब चीज़ों को इस में मिला कर तीन दिन पर्यन्त मुण्डी के क्वाथ अथवा स्वरस और सम्भालू के पत्तों के स्वरस में खरल करके दो रत्ती प्रमाण की गोली बनावें।

मात्रा—१ गोली प्रातः १ गोली सायं,

अनुपान—गाय के दूध में बादाम रोगन मिला कर सेवन कराने से सर्वांग वात तथा वातजनित पीड़ाएं शान्त होती हैं।

वात गुजांकुश वटि

शुद्ध गन्धक, घृत में भुना हुआ कुचला, सुहागा सफेद, घी में भुनी हींग, हरड़, वहेड़ा आंवला, सेंधा नमक, सौंचर नमक, सोंठ, पिप्पलामूल चित्रक मूल छाल, पुराना गुड़ सब को बारीक पीस कर तीन दिन पर्यन्त निम्बू के रस में खरल कर के ४ रत्ती से १ माशा तक की गोलियां बनावें।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक प्रातः सायं,

अनुपान—गर्म जल के साथ सेवन कराने से उदर सम्बन्धी वात विकारों का नाश होता है।

बलारिष्ट

खरैंटी मूल छाल ५ सेर, असगन्धनागौरी ५ सेर दोनों क कुचल कर ३ मन ८ सेर पानी में पकावें. चतुर्थांश रहने पर इस को मल कर छान लें और किसी उत्तम चिकने पात्र में डाल कर १ वर्ष का पुराना गुड़ १५ सेर इस में घोल दें और निम्न लिखित प्रक्षिप्त द्रव्यों का चूर्ण मिला कर पात्र का मुख बन्द कर के यदि शीत काल हो तो एक मास तक और यदि उष्ण काल हो तो १५ दिन तक भूसे के ढेर में दबा रखें। पश्चात् पात्र का मुख खोल कर देखें यदि भली प्रकार अरिष्ट नित्तर कर तैयार हो गया हो तो इस को सावधानी से छान कर बोतलों में भर लें।

मात्रा—२ तोले से ४ तोले तक दोनों समय,

अनुपान--भोजन के पश्चात् थोड़ा पानी मिला कर सेवन कराने से सब प्रकार की वात व्याधियां शान्त होती हैं ।

प्रक्षिप्त द्रव्य--धाय के फूल ३ पाव, क्षीर काकोली ८ तोला, एरण्ड मूल छाल ८ तोला, रास्ना ४ तोला, छोटी इलायची ४ तोला, प्रसारणी ४ तोला, लौंग ४ तोला, खस ४ तोला, गोखरु ४ तोला, सब को पीस कर उपरोक्त बलारिष्ट के पात्र में डालना चाहिये ।

वातरोग में पथ्य

अभ्यंगो मर्दनं वस्तिः स्नेहः स्वेदोऽवगाहनम् ।
संवाहनं संशमनं प्राक्प्रवात विवर्जनम् ॥
अग्नि कर्मोपनाहश्च भूशय्या स्नानमासनम् ।
तैलद्रोणी शिरोवस्तिः शयनं नस्यमातपः ॥

सन्तर्पणं बृंहणं च किलाटं दधि कूर्चिकाः ।
सर्पिस्तैलं वसामज्जा स्वाद्वम्बु लवणा रसाः ॥
नवीनास्ति लगो धूममाषाः संवत्सरोस्थिताः ।
शालयः षष्टिकाश्चापि कुलत्थानां रसः सुराः ॥

ग्राम्य गोश्वतरोष्ट्राश्वरा सभच्छागलादयः ।
अनूपाः कोलमहि षन्यं कुरु खड्ग गजादयः ॥
औदका हंस कादम्ब चक्रमर्द बकादयः ।
बिलेशया भेक गोधान कुलश्वा विदादयः ॥
चटकः कुक्कुटो बर्हीं तित्तिरश्चेति जांगलाः ।
शीलीन्ध्रं पर्वतो नक्रो गर्गरः कवयील्लिशः ।
एरंडश्चुलुकी कूर्म शिशुमारस्तिमिंगिलः ॥

रोहितो मद्गुरो शृंगी वर्मी च खुड्डिशो झषाः ।
पटोलं शिग्रु वार्ताकुं लशुनं दाडिमद्वयम् ॥

पक्वतालं रसालं च नलदम्बु परुषकं ।
जम्बीरं बदरं द्राक्षा नागरंगं मधूकजम् ॥
प्रसारणी गोरक्षकः शुक्लाक्षी पारिभद्रकः ।
पयांसि च पयः पेटी कटु तैलं गवाजलं ।
मत्स्यण्डिका च ताम्बूलं धान्याम्लं तिंतिडीफलम् ॥
स्निग्धोष्णानि च भोज्यानि स्निग्धोष्णं चानुलेपनं ।
विशेषात् वमनं कार्यमामाशयमुपागते ॥
पक्वाशयस्थे मांसस्थे तथा स्निग्ध विरेचनम् ॥
प्रत्याध्मानाध्मान संज्ञे वार्त्तिलंघन दीपनम् ॥
अष्ठीलास्थे मूत्र विधिः शुक्रस्थ क्षयजित्क्रिया ।
त्वङ् मांसासृक् शिरा प्राप्ते हितं शोणित मोक्षणम् ।
यथाश्रयं यथा वस्थं यथा चरणमेव हि ।
वात व्याधौ समुत्पन्ने पथ्यमेतन्नृणां भवेत् ॥

वात व्याधि में वातनाशक तैल की मालिश वस्तिकर्म, स्नेहकर्म, स्वेदन तथा उष्णोदक से स्नान और पीड़ा स्थान पर दबाना, अग्नि सेंकना, तथा अग्नि में तपाकर पत्थर ईंट से सेंक करना, शिरोवस्ति, नसवार लेना, धूप की गर्मी में बैठना, सन्तर्पण, बृंहण, घी, चर्बी, तैल, मज्जा, नमकीन रस, तिल, गेहूं, उड़द, पुराने शाली चावल, साठी चावल, कुलथी का रस, मदिरा, ग्राम तथा जङ्गल में रहने वाले पक्षियों का मांस रस तथा रोहु, शृङ्गी, खुड्डीश, वर्मी, मुद्गर आदि मच्छलियों का मांस तथा मांस रस, परवल, सुहाञ्जना, बैंगन, लहसुन, खट्टा मीठा अनार, पका ताड़ फल आम, फालसे, अंगूर, जम्बीरी निम्बू, गोखरु, प्रसारणी, मौवा, क्षीर काकोली नीम, नारयल का दूध, गो दूध, कटु तैल, गोमूत्र, पान, धान की काञ्जी, तंतड़ीक फल (समाक दाना) चिकने और गर्म भोजन तथा चिकने और गर्म लेप, यह सब पदार्थ वात रोगी के लिये पथ्य अर्थात् हितकारी हैं। यदि वात विकार आमाशयस्थ हो तो वमन और पक्वाशयस्थ तथा मांस में

स्थित हो तो एरण्ड तैल आदि स्निग्ध विरेचन आध्मान प्रत्याध्मान विकार में वर्ती (स्पाज़ीटर) लंघन तथा दीपन वस्तुओं का सेवन कराना चाहिये।

वात रोग में अपथ्य

चिन्ता प्रजागरण वेग विधारणानि छर्दिः श्रमोऽनशनताचणकामकुष्टः।
नीवारकं गुशरवैणवकोर दूषश्यामाकचूर्ण कुरुविन्द मुखानि यानि ॥
धान्यानि तानि तृणजानि न राजमाषा मुद्गस्तडागसरिदम्बुयवाः करीरम्।
जम्बूकेसर कमलं क्रमुकं मृणालं निष्पाव बीजमपि तालफलास्थितमज्जा ॥
शिंबी च पत्रभवशाकमुदुम्बरं च शालूकतिन्दुककठिल्लक वालतालम्।
शीताम्बुरास भपयोऽपि विरुद्धमन्नं क्षारोऽपि शुष्कपललं रुधिरस्त्रुतिश्च ॥
क्षौद्रं कषायकटुतिक्तरसा व्यवायो हस्त्यश्वयानमपि चंक्रमणं च खट्वा।
आध्मानि नोर्दितवतोऽपि पुनर्विशेषात् स्नानं प्रदुष्टसलिलं द्विजघर्षणंच॥
निशे पतस्तु परिकीर्तित एव वर्गो नृणां सभीरणगदेषु मुदं न दत्ते ॥

चिन्ता, शोक, रात्रि में जागना, मल मूत्र आदि वेगों को रोकना, अधिक वमन, परिश्रम करना, अधिक भूखे रहना, चना, मटर, बांस के चावल, कोंदों, साधारण चावल, सेम, तृण से उत्पन्न अन्न, मूंग, तालाब और नदी का जल, पूर्व की वात, जौं, जामन, कसेरु, सुपारी, भें, ताल फल की गुठली का गुद्दा सब प्रकार के पत्तों का शाक, गूलर, तेन्दु फल, करेला, ताड़ का कच्चाफल, गधी का दूध, भोजन पर भोजन, अधिक क्षार, सूखा मांस, रक्तमोक्षण [फसद], मधु; कसैले, कड़वें; और चरपरे द्रव्य, तथा उनका रस; स्त्री प्रसंग; हाथी और घोड़े की सवारी, अधिक भ्रमण, खुर्दरी खाट पर सोना, दूषित जल, दांतों का घिसना; ठण्डे जल में स्नान—यह सब वातरोगी के लिये अपथ्य अर्थात् अहितकर हैं।

वात रक्ताधिकार

वायु प्रवृद्धो वृद्धेन रक्तेनावरिता पथि ।
क्रुद्धः संदूषयेद्रक्तं तज्ज्ञेयं वात शोणितं ॥

प्रवृद्ध हुआ वायु प्रवृद्ध रुधिर में मिलाकर रुधिर को दूषित करके मानव देह में वातरक्त रोग उत्पन्न करता है।

वातरक्त के पूर्व लक्षण

स्वेदोऽत्यर्थं नवा कार्ष्ण्यं स्पर्शाज्ञत्वं क्षतोति रुक्।
सन्धि शैथिल्यमालस्यं सदनं पिटि कोद्गमः ॥
जानु जंघोरुकट्यं सहस्त पादांग सन्धिषु ।
निस्तोदः स्फुरणं भेदो गुरुत्वं सुप्तिरेव च ॥
कण्डूः सन्धिषु रुग्दाहो भूत्वा नश्यति चासकृत्।
वैवर्ण्यं मंडलोत्पत्तिर्वातासृक् पूर्व लक्षणम् ॥

जब मनुष्य को वातरक्त रोग उत्पन्न होने वाला हो, तो निम्नलिखित लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। पसीने का अधिक आना अथवा बिल्कुल न आना; जिस स्थान पर रोग होने वाला हो, उस स्थान का वर्ण काला हो जाना तथा स्पर्श ज्ञान का नाश, अत्यन्त वेदना, सन्धि-बन्धन में शिथिलता, आलस्य, अंगों का टूटना, शरीर में फुन्सियों का होना; उरु; जानू, जंघों; कटी; स्कन्द; हाथ, पांव, और सन्धि स्थानों में सुई चुभोने की सी पीड़ा होना, अंगों का फड़कना, शरीर का भारीपन, तथा शून्यता, खुजली और दाह का होना और फिर तत्काल हट जाना शरीर का रंग बदल जाना और शरीर में गोल २ चिकित्तों का पड़ना। यह सब लक्षण वातरक्त उत्पन्न होने से पूर्व उत्पन्न हो जाते हैं।

वातरक्त के भेद

उत्तानमथ गम्भीरं द्विविध वात शोणितम् ।
त्वङ् मांसाश्रयमुत्तानं गम्भीरन्त्वन्तराश्रयम् ॥

उत्तान और गम्भीर नाम से वातरक्त रोग दो प्रकार का होता है।

त्वचा और मांस के आश्रय उत्तान नामक और शरीर के अन्तःस्थित अवयवों में गम्भीर नामक वात-रक्त होता है। इसके अतिरिक्त दोषों की दृष्टि से वातरक्त के ६ भेद हैं—

१. वाताधिक्य वात रक्त; २. पित्ताधिक्य वात रक्त,
३. रक्ताधिक्य वातरक्त, ४. कफाधिक्य वातरक्त;
५ द्विदोषाधिक्य वातरक्त, ६. त्रिदोषाधिक्य वातरक्त।

यह ६ भेद शास्त्रकारों ने चिकित्सक की सुविधा के लिये वर्णन किये हैं। इनके सम्पूर्ण लक्षण निदान अन्य बड़े ग्रन्थों में देखने चाहियें; क्योंकि यह चिकित्सा-पद्धति का विषय नहीं।

वातरक्त के उपद्रव

निद्रानाश, अरुचि; श्वास, मांस का गलकर गिरना, शिर में पीड़ा, मूर्च्छा; सारे शरीर में मन्द २ पीड़ा, तृषा, ज्वर; मोह, शरीर का लिपा सा रहना; कम्प; हिचकी, पंगुता: रोग का सारे शरीर में फैल कर पकना; तोड़ने की सी पीड़ा, भ्रम, ग्लानि, हाथ और पांव की उंगलियों का टेढ़ा होना, सर्व शरीर गत फोड़े और फुन्सियों का निकलना, दाह, और मर्म-स्थानों का जकड़ना; और शरीर के विविध भागों में अर्बुद (रसौली) होना—यह सब वातरक्त रोग के उपद्रव हैं। इन उपद्रवों युक्त रोगी को असाध्य समझना चाहिये।

वातरक्त के असाध्य लक्षण

आजानु स्फुटितं यच्च प्रभिन्नं प्रस्रुतंच यत्।
वातरक्तं असाध्यं स्याद्याप्यं संवत्सरोत्थितं॥

जिस वातरक्त रोगी के पांव से घुटने तक की त्वचा विदीर्ण हो गई हो, अधिक फट गई हो, एवं जिसमें से रुधिर और पीब निकलने लगे, ऐसे रोगी को असाध्य जानना चाहिये और एक वर्ष से हुआ वातरक्त रोग याप्य होता है।

वातरक्त चिकित्सा विधि

वात शोणितिनो रक्तं स्निग्धस्य बहुशो हरेत् ।
अल्पाल्पं रक्षयेद्वायुं यथा दोषं यथाबलं ॥

चिकित्सक को चाहिये, कि सर्व प्रथम स्नेह पान आदि से स्निग्ध करके दोष और बलानुसार वायु की वृद्धि से रोगी की रक्षा करता हुआ थोड़े २ समय के पश्चात् बारम्बार रक्तमोक्षण करावे और यदि वातरक्त रोगी के शरीर में उग्रदाह तथा तोड़ने की सी वेदना होती हो, तो जोंकें लगवाकर रुधिर निकलवाये, यदि शरीर में चिमचिम ऐसा शब्द हो तथा खुजली और घोर पीड़ा होती हो, तो तुम्बी अथवा शिंगी लगवाकर रुधिर निकलवाना चाहिये, क्योंकि यदि ऐसी दशा में रक्त न निकलवाया जाय, तो वह दुष्ट रक्त शरीर की सारी शिराओं में फैल कर नाना उपद्रवों को करता है ।

सामान्य प्रयोग

पूर्व लक्षणों के उत्पन्न होते ही अथवा रोग की सामान्य अवस्था में निम्न लिखित सुलभ प्रयोग हमारे अनुभव में उत्तम सिद्ध हुए हैं ।

एरण्डादि क्वाथ

ऐरण्ड मूलछाल, वांसामूलछाला, गोखरू, गिलोय, बलामूलछाल; [खरैंटी]; तालमखाना मूलछाल प्रत्येक ६ माशे । सबको यवकुट कर के आध सेर जल में पकावें; चतुर्थांश रहने पर मल कर छान लें और रोगी को दोनों काल पिलावें । यह प्रयोग वाताधिक्य वातरक्त की आरम्भावस्था में अति लाभ करता है ।

मंजिष्ठादि क्वाथ

मञ्जीठ, हरड़, बहेड़ा, आमला, नीमछाल, वच, कुटकी; गिलोय, दारुहल्दी, प्रत्येक ४ माशे । यवकुट करके आध सेर जल में पकावें;

चतुर्थांश रहने पर मल कर छान लें और इसमें २ तो० मिश्री मिलाकर रोगी को पिलावें । इसके प्रातः सायं सेवन करने से पित्ताधिक्य वातरक्त को शीघ्र लाभ होता है । यह प्रयोग भी पित्ताधिक्य वातरक्त की आरम्भावस्था में प्रयोग कराना चाहिये ।

शम्पाकादि क्वाथ

अम्लतास का गूदा, गिलोय; वांसामूलछाल प्रत्येक १ तो० । आध सेर पानी में पकावें । चतुर्थांश रहने पर मलकर छान लें और इसमें २ तो० एरण्ड तैल मिलाकर रोगी को पिलावें । इससे वाताधिक्य वातरक्त को शीघ्र लाभ होता है । यह प्रयोग वाताधिक्य वात रक्त की ऐसी अवस्था में सेवन कराना चाहिये, जब कि रोगी को बद्ध कोष्ठ (कब्ज़) भी हो ।

निम्बादि चूर्ण

नीम छाल, गिलोय; हरड़; आमले प्रत्येक ४तो०; बावची ४तो०; सोंठ, वायविडंग, पम्वार बीज, पिप्पली, देसी अजवाइन, वच, श्वेतज़ीरा, काली मिर्च, कुटकी, खैरछाल, सेन्धा नमक, हल्दी, दारुहल्दी, जौखार, नागरमोथा, देवदार, कुठ प्रत्येक १ तो० सबका बारीक चूर्ण बना लें ।

मात्रा—१ माशा से ३ माशा तक ।

अनुपान—गिलोय के क्वाथ अथवा ठण्डे जल से सेवन करने से पित्ताधिक्य वातरक्त शान्त होता है ।

अमृताद्य घृत

गोघृत २ सेर, हरे आमलों का स्वरस २ सेर, गिलोय का क्वाथ ८ सेर । कल्कार्थ—गिलोय, मुलहठी, द्राक्ष, हरड़, बहेड़ा, आमला, पुनर्नवा, खरैंटी मूल छाल, वांसामूलछाल; अम्लतास छाल, देवदार, गोखरू, कुटकी; सतावर; पिप्पली, गम्भारी; रास्ना, तालमखाना; एरण्डमूलछाल; विधारा मूल, नागर मोथा, नीलोत्पल प्रत्येक ३ तो० । कल्क बनाकर सब द्रव्यों को उत्तम ताम्रपात्र में डालकर घृतपाक की विधि से पकावें, जब घृतमात्र रह जावे, तो नितार कर छान लें ।

मात्रा—१ तो० से २ तो० तक सेवन कराने से वात तथा पित्ताधिक्य वातरक्त शान्त होता है।

कैशोर गुग्गुल

१ सेर उत्तम महिषाक्ष गुग्गुल, गिलोय २ सेर, पाकार्थ जल ४८ सेर गुगुल की पोटली बना कर गिलोय को कुचल कर पानी में डाल दें और एक लोहे के पात्र में गुग्गुल की पोटली लटका दें और मन्द २ अग्नि पर पकावें। जब जल २४ सेर रह जावे, तो मल कर छान लें। यदि पोटली में कुछ भाग गुग्गुल रह जावे तो इस को भी गिलोय के क्वाथ में मसल कर छान लें। फिर आध सेर गोघृत मिला कर मन्दाग्नि पर पकावें। जब पकते पकते लेहवत् हो जाय तो अग्नि पर से उतार कर ठण्डा कर के निम्न लिखित औषधियों का चूर्ण जो प्रथम तय्यार रखा हो इसमें मिला दें--

प्रक्षेप चूर्ण द्रव्य--हरड़, बहेड़ा, आमला प्रत्येक ४ तो०, सोंठ, मरिच, पिप्पल प्रत्येक ४ तो०, वायविडङ्ग ४ तो०, निसोत २ तो०, दन्ती मूल २ तो०, गिलोय ४ तो०, गोघृत १६ तो०। सब को मिला कर अच्छी प्रकार आलोडन करें।

मात्रा—१ माशा से ३ माशा तक।

अनुपान—गिलोय के क्वाथ अथवा गर्म जल के साथ सेवन कराने से कफ तथा वाताधिक्य वातरक्त का नाश होता है। पाव भर गोदुग्ध में २ तो० अमृतादि घृत मिलाकर इसके साथ यदि कैशोर गुग्गुल को सेवन करावें, तो सब प्रकार के वातरक्त में विशेष लाभ होता है।

रसाभ्र गुग्गुलः

शुद्ध पारा ४ तो०, हिंगुल योग से बनी लोहभस्म ४ तो०, शुद्ध गन्धक ४ तो०, रसेन्द्र सारोक्त शतपुटि अभ्रक भस्म ८ तो०, शुद्ध गुग्गुल ६४ तो०, गिलोय का रस अथवा क्वाथ २ सेर, हरड़, बहेड़ा, आमला, मिलित १ सेर में ८ सेर जल डालकर के क्वाथ किया हुआ २ सेर। प्रथम पारे और गन्धक को ८ पहर खरल करके कज्जली बनावें और त्रिफला तथा गिलोय के उपरोक्त स्वरस अथवा क्वाथ में कज्जली तथा लोहभस्म और

गुग्गुल डाल कर मन्दाग्नि पर पकावें, जब लेहवत् हो जाय, तो निम्नलिखित औषधियों का चूर्ण जो प्रथम तय्यार हो, इसमें मिला दें।

चूर्ण द्रव्य-सोंठ, मिर्च, पिप्पल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, दन्तीमूल, गिलोय, इन्द्रायण मूल, वायविडङ्ग, नागकेसर, निसोथ प्रत्येक २ तो०, सब का बारीक चूर्ण करके गुग्गुल में मिला लेवें।

मात्रा--१ मा० से २ माशे तक।

अनुपान-गिलोय के क्वाथ अथवा गर्म जल के साथ सेवन करने से पित्ताधिक्य वातरक्त को आराम होता है।

पुनर्नवादि गुग्गुलुः

पुनर्नवामूल छाल ५ सेर, एरण्डमूल छाल ५ सेर, सोंठ ६४ तो० सब को यवकुट करके ३२ सेर जल में पकावें। आठवां हिस्सा शेष रहने पर भली प्रकार मल कर छान लें, फिर इसमें ३२ तोला शुद्ध गुग्गुल दन्तीमूल ४ तो०, गिलोय ८ तो०, त्रिफला २ तो०, चित्रकमूलछाल २तो०, सेन्धा नमक ४ तो०, शुद्ध भिलावा ४ तो०; वायविडङ्ग ४ तो०, एरण्डतैल द्वारा बनी हुई स्वर्ण माक्षिक भस्म १ तो०, पुनर्नवा मण्डूर ४ तो०, इन सब औषधियों का चूर्ण बना कर उपरोक्त कथित लेह में मिला दें। और पुनः मन्दाग्नि पर पकावें। भली प्रकार गाढ़ा हो जाने पर अग्नि पर से उतार कर १ माशा से २ माशे तक की गोली बनावें।

मात्रा—एक गोली प्रातः एक गोली सायं।

अनुपान—गर्म जल अथवा गिलोय के क्वाथ के साथ सेवन कराने से वात तथा कफाधिक्य वातरक्त रोगी को लाभ होता है।

वात रक्तान्तक रस

पारा शुद्ध, गन्धक शुद्ध, हिंगुल योग से बनी लोहभस्म, रसेन्द्र सारोक्त शतपुटि अभ्रक भस्म, पेठे में शुद्ध की हुई वर्किया हड़ताल, अद्रक तथा निम्बूरस में शुद्ध की हुई मनसिल, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध गुग्गुल, वायविडङ्ग, हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर्च, पिप्पल, समुद्रफाग, पुनर्नवा, देवदार, चित्रकमूलछाल, दारुहल्दी, अपराजिता-

श्वेत। प्रत्येक समभाग। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें। पश्चात् सर्व औषधियों को बारीक पीस कर इसमें मिला कर त्रिफलाक्वाथ में ३ दिन और जलभङ्गरे के रस में ३ दिन खरल करके उड़द प्रमाण गोलियां बनावें।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक प्रातः सायं।

अनुपान—गोघृत ४ तोला के साथ सेवन कराने से उग्र से उग्र वातरक्त को शीघ्र नष्ट करता है। यह औषधि वात तथा कफाधिक्य वात-रक्त में विशेष लाभ करती है।

विश्वेश्वरो रसः

शुद्ध पारा १० तो०, शुद्ध मिठ्ठा तेलिया विष ५ तो०, घृत और दुग्ध से शुद्ध की हुई गन्धक ५ तो०, कबूतर की विष्टा से शुद्ध किया हुआ तूतिया १० तोला, ढाक के बीज ५ तोला, छोटी कटेरी, कनेर की जड़, धतूर मूल, अकरकराह, नीलोत्पल मूल, जटामांसी, दारचीनी प्रत्येक १० तो० शुद्ध घृत में भुना कुचला १० तोला, शुद्ध भिलावा १० तो०। इन का चूर्ण करके पारे और गन्धक की कज्जली में मिला देवें।

मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक प्रातः सायं।

अनुपान—गोघृत के साथ अथवा अमृतादि घृत के साथ सेवन करने से कफाधिक्य वात रक्त को आराम होता है।

वातरक्त रोग के लिये कुछ सिद्ध तैल प्रयोग

महारुद्र गुडूचि तैल

सरसों का तैल २ सेर, गिलोय १० सेर क्वाथार्थ जल १ मन, अवशिष्ट चतुर्थांश, नीम की छाल ४ सेर, जल ३२ सेर, अवशिष्ट ८ सेर,

गोमूत्र २ सेर, तेल, क्काथ तथा गोमूत्र को मिलाकर निम्नलिखित कल्क द्रव्य डालें और तैल पाक की विधि से पकावें।

कल्क द्रव्य— गिलोय, काली जीरी, दन्तीमूल, कनेरमूल, हरड़, बहेड़ा, आमला, अनारदाना, नीम के बीज, हल्दी, दारुहल्दी, छोटीकटेरी, बड़ीकटेरी, नागबला, सोंठ, मिर्च, पिप्पल, तेजपत्र, जटामांसी, पुनर्नवा, पिप्पलामूल, मजीठ, असगन्ध, सोए बीज, लालचन्दन, अनन्त-मूल, सतवन (सतौना की छाल), प्रत्येक १तो० चूर्ण बनाकर मिला दें और मन्दाग्नि पर पकावें। जब तैल मात्र रह जावे, तो नितार कर छान लें। इस तैल के लगाने से वात कफाधिक्य वात रक्त को विशेष लाभ होता है।

महागुडूचि तैल

उत्तम तिलों का तैल २ सेर, क्वाथार्थ हरी गिलोय १० सेर कुचल कर १ मन पानी में पकावें। १६ सेर शेष रहने पर छानें। गोदुग्ध ८ सेर तीनों को मिलाकर निम्नलिखित कल्क द्रव्य मिश्रित कर तैल पाक विधि से पका लें।

कल्कद्रव्य—असगन्ध, विदारीकन्द, काकोली, क्षीर काकोली श्वेत चन्दन, शतावर, अतिबला (कंघी), गोखरू, छोटी कटेरी, बड़ी, कटेरी, वायविडङ्ग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, रास्ना, त्रायमाण, अनन्तमूल, जीवन्ती, पिप्पलीमूल, सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, कालीजीरी, मण्डूकपर्णी, इन्द्रायण की जड़, पृष्टपर्णी, मञ्जीठ, लालचन्दन, हल्दी, सोये, सतौंना की छाल प्रत्येक २ तो०। कल्क बना कर तैल पाक करें। तैल सिद्ध होने पर छान लें। इस तैल को मर्दन करने से पित्ताधिक्य वात रक्त को अति लाभ होता है।

वातरक्त रोग के लिये कुछ लेप

वातरक्त रोगी के लिये सेवन करने और मालिश करने की औषधियों के अतिरिक्त वेदना स्थान पर लेप करने से भी विशेष लाभ होता है। अतः यहां कुछ अनुभव सिद्ध लेपों के प्रयोग दिये जाते हैं।

एरण्ड बीजादि लेप

एरण्ड बीज की मज्जा, गिलोय, सोये, जीराश्वेत, बला । इन सब को बकरी के दूध में पीस कर वातरक्त स्थान पर दिन में कई बार लेप करने से अति लाभ होता है, यह प्रयोग वात पित्ताधिक्य वातरक्त में व्यवहार करणा चाहिये ।

रास्नादि प्रलेप

रास्ना, गिलोय, मुलट्ठी, खरैंटीमूलछाल समान भाग लेकर गोदुग्ध में पीसकर लेप करने से वाताधिक्य वातरक्त को आराम होता है ।

गृह धूम्रादि प्रलेप

रसोई की छत का धूआं, वच, कुठ, सोये बीज, हल्दी, दारुहल्दी । इन सब को जल के साथ पीस कर लेप करने से वात कफाधिक्य वातरक्त को विशेष लाभ होता है ।

मसूरादि लेप

मसूर, गिलोय, मञ्जीठ । समान भाग लेकर गाय के दूध में लेप तय्यार करें, तय्यार होने पर इसमें गोघृत मिलाकर लेप करें, इस लेप से पित्ताधिक्य वात रक्त को विशेष लाभ होता है ।

वातरक्त रोग में पथ्य

उत्तानेऽभ्यञ्जनं सेकः सोपनातः प्रलेपनम् ।
गम्भीरे स्नेह पानञ्च स्थापनञ्च विरेचनम् ॥
द्वयोरस्र स्त्रतिः सूची जलौका श्रृङ्गय लावुभिः ।
शतधौत घृताभ्यङ्गो मेषीदुग्धावसेचनम् ॥
यवषष्टि कनीवार कलमारुण शालयः ।
गोधूमाश्चणका मुद्गास्तुवर्योऽपि मुकुष्ठका ॥

अजानां महिषीणाञ्च गवामपि पयांसि च ।
लाव तित्तिरि सर्पद्विद् ताम्र चूड़ादि बिष्किराः ॥
प्रतुदाः शुक्थ दातूह कपोत चटकादयः ।
उपोदिका काकमाची वेत्राग्रं सुनिषाण्णकम् ॥
वास्तुकं कारेवलञ्च तण्डुलीयः प्रसारणी ।
पत्तूरो वृद्ध कूष्माण्डम् सर्पिः शम्पाक पल्लवम् ॥

पटोलं रुवुत्तैलञ्च मृद्वीका श्वेत शर्करा ।
नवनीतं सोमवल्ली कस्तूरी सितचन्दनम् ॥
शिंश पागुरुदेवाह्व सरल स्नेह मर्दनम् ।
तिक्तञ्च पथ्यमुद्दिष्टं वातरक्त गदे नृणाम् ॥

उत्तान वातरक्त में अभ्यंग (मालिश), परिषेचन (त्रेड़ा) लेप और गम्भीर वातरक्त में स्नेहपान, विरेचन तथा वस्ती कराना चाहिये। उत्तान तथा गम्भीर वातरक्त में सूचिका, जौंक, सिंगी तथा तूम्बी से रक्त निकलवाना चाहिये। सौ बार धोये हुए मक्खन की मालिश, भेड़ के दूध का त्रेड़ा, जौ तथा मसूर के आटे का लेप, लाल चावल, गेहूं, चने, मूंग, अर्हर, मोठ, आदि अन्न, बकरी, भैंस व गौ का दूध, बटेर, तितर, मोर का मांस तथा मांसरस, पोई, मकोय, चौपतिया, बथुआ, करेला, चौलाई, पेठा आदि का शाक, गोघृत, अम्लतास के पत्ते, परवल, एरण्ड तैल, खाण्ड, मक्खन, गिलोय, श्वेत चन्दन, देवदार, अगर, चीड़, इन का तैल तथा सर्व तिक्त द्रव्य वात रक्तरोग में पथ्य तथा हितकारी है।

वातरक्त रोग में अपथ्य

माषाः कुलत्था, निष्पावाः कुलायाः क्षार सेवनम् ।
अम्बुजानूपमांसानि विरुद्धानि, दधीनि च ॥
इक्षवो मूलकं मद्यं पिण्डयाकोऽम्लानि कांजिकम् ।

दिवा स्वप्नाग्नि संतापम् व्यायामं मैथुनं तथा ॥
कट्वूष्ण गुर्वं भिष्यान्दि लवणाम्लानि वर्जयेत् ।

वात रक्त रोगी को उड़द, कुल्थी, सेम, मटर, चार द्रव्य, जलज, मच्छी आदि तथा अनूप देश के पशु-पत्तियों के मांस, विरुद्ध भोजन, दही, ईख, मूली, सुरा, तिल तथा तिल की पिट्टी, खट्टे पदार्थ, काञ्जी, दिन में सोना, व्यायाम (कसरत), स्त्री प्रसङ्ग, तथा लाल मिर्चादि ऊष्ण, उड़द, आदि गुरु, दही आदि अभिष्यन्दि पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह सब वात रक्त रोगी के लिये अहितकर हैं।

उरु स्तम्भ अधिकार

इस रोग में मनुष्य की जांघें स्तम्भ हो जाती है । संस्कृत भाषा में उरु जङ्घों का नाम है और स्तम्भ कहते हैं रुकने, जकड़ने, बेहिस्सो हरकत होने तथां निर्जीव होने को ।

सम्प्राप्ति

कुपित हुए कफ तथा मेद और वायु आमरस के साथ मिलकर जब पित्त को भी विकृत कर देते हैं और जांघों के अन्दर की हड्डियों में पहुंच कर श्लेष्मा से भर देते हैं ऐसी अवस्था में मनुष्य की दोनों जांघे ठण्डी और निर्जीव हो जाती हैं।

उरु स्तम्भ के लक्षण

वात शंकिभिरज्ञानात्तस्य स्यान्स्नेह नात्पुनः ।
पादयोः सदनं सुप्तिः कृच्छ्रादुद्धरणं तथा ॥
जंघोरुग्लानिरत्यर्थं शश्वद्वा दाह वेदने ।
पादं च व्यथते न्यस्तम् शीतस्पर्शं न वेत्तिसः ॥
संस्थाने पीडने गत्यां चालने व्याप्यनीश्वरः ।
अन्यनेयौ हि सम्भग्नावूरू पादौ च मन्यते ॥

उरुस्तम्भ रोग में प्रायः चिकित्सक को वात रोग का भ्रम हो जाया करता है और यदि भ्रम वश तैलादि का मर्दन किया जाय तो इस रोग में लाभ के स्थान में हानि होती है । इस रोग में पावों, जङ्घों का सुन्न होना कष्ट से पावों को उठाया जाना, उरु और जांघ में हर समय वेदना और दाह होना शीतल द्रव्यों का स्पर्श ज्ञान न होना, पांव घुटना और जंघों के सम्बन्ध में विपर्य ज्ञान होना अर्थात् अपने पांव और जांघ दूसरे पुरुष के प्रतीत होना इत्यादि लक्षण उरुस्तम्भ रोग में होते हैं ।

असाध्य लक्षण

यदा दाहार्तितो दार्सो वेपनः पुरुषो भवेत् ।
उरुस्तम्भस्तदा हन्यात्साधयेन्यथा नवम् ॥

उरु स्तम्भ वाले रोगी के यदि दाह अथवा सुई चुभाने की सी पीड़ा और कम्प हो, तो वह रोगी नष्ट हो जाता है और यदि रोग थोड़े दिनों का तथा उपद्रवरहित हो, साध्य जानना चाहिये ।

उरुस्तम्भ चिकित्सा में स्मरण योग्य बातें

१. उरु स्तम्भ रोग में स्नेह क्रिया अर्थात् तैलादि का मर्दन, रुधिर निकलवाना [फसद], वमन, विरेचन, वस्ति, आदि कर्म कदापि नहीं करने चाहियें । क्योंकि इन कर्मों से उल्टा रोग प्रकुपित होता है ।

२. उरुस्तम्भ में सदैव स्वेदन, लंघन तथा रुक्ष क्रिया करनी चाहिये, क्योंकि यह रोग कफ तथा आमदोष के प्रकोप से होता है । अतः इसमें कफ शमन करने वाली और वायु को कुपित नहीं करनेवाली ऐसी औषधियों को व्यवहार में लाना चाहिये ।

३. पुराने चावल, कोदों, मूंग, तित्तर, बटेर, कुक्कुट आदि जङ्गली जीवों का मांस तथा मांसरस, गेहूं, चना, बैंगन, मूली, बथुआ, आदि पदार्थ खाने को देने चाहिये ।

४. इस रोग में आगे वर्णित भल्लातकादि क्काथ अष्टकटवर् तैल, कुष्ठाद्य तैल, महासैन्धवादि तैल, प्रभृति औषधियें तथा पीने के लिये वर्षा का जल, नदी और तालाब में तैरना और सूर्य्य की धूप में तपी हुई बालू (रेत) पर चलना हितकारी है ।

५. उरुस्तम्भ रोग में अपामार्ग आदि क्षार युक्त गोमूत्र को तपाकर भाफ देना, सोंठ, कुठ, आदि गर्म खुश्क औषधियों को पीसकर सांथल और घुटनों तक मालिश करना अथवा दाह हो, तो गोमूत्र तथा करञ्जुवे और सरसों, असगन्ध, आक की जड़, नीम की जड़, देवदार आदि के महीन चूर्ण से सांथल को मलना ।

चिकित्सा विधि

रास्नादि क्वाथ—रास्ना, सारिवा, हरड़, काली मिर्च, सौंफ, हल्दी, वायविडंग, असगन्ध नागौरी, जवांसा, गिलोय, अजमोद, बन-तुलसी, अतीस, विधारा, कटहरी छोटी, कटहरी बड़ी, सोंठ, कुटकी, अजवाईन, पिया वांसा, चव्य, अरण्ड मूलछाल, दारहल्दी, साल वृक्ष की छाल समस्त औषधियें मिलित ३ तो० आध सेर जल में पकावें। चतुर्थांश रहने पर मल कर छान लें। प्रातः सायं रोगी को पिलावें। इसके सेवन से बढ़ा हुआ उरुस्तम्भ रोग भी शान्त होता है।

२. दन्ती, तुलसी, सरसों, जीवन्ती, सुहाञ्जना छाल, वच, कुड़ाछाल, नीमछाल, प्रत्येक ६ माशा आध सेर जल में पका कर चतुर्थांश शेष रहने पर मल कर छान लें। प्रातः सायं रोगी को सेवन करावें। इसके सेवन से नवीन उरुस्तम्भ रोग शीघ्र शान्त हो जाता है।

३. शुद्ध भिलावां, गिलोय, सोंठ, दारुहल्दी, पुनर्नवा, देवदार, हरड़, दशमूल की दशों औषधियां समस्त मिश्रित ४ तो० यवकुट करके आध सेर पानी में पकावें, चतुर्थांश रहने पर मलकर छान लें। प्रातः सायं सेवन कराने से थोड़े दिनों का उरुस्तम्भ रोग नष्ट हो जाता है।

४. पिप्पली, पिप्पलामूल, शुद्ध भिलावां प्रत्येक ८ माशे कूट कर चूर्ण बना लेवें।

मात्रा—३ माशा प्रातः ३ माशा सायं।

अनुपान—मधु में मिला कर चटाने से उरुस्तम्भ नष्ट होता है। यह योग रोग की मध्यावस्था में अति लाभ करता है।

५. चित्रकमूल छाल, इन्द्रजौ, पाढल, कुटकी, अतीस, हरड़ समान भाग चूर्ण बनाकर इसमें समस्त चूर्ण से २ गुना मधु मिलावें।

मात्रा—६ माशा से १ तोला तक।

अनुपान—प्रातः सायं गर्म जल के साथ सेवन कराने से उरुस्तम्भ रोग शांत होता है। यह योग भी रोग की मध्यावस्था में काम देता है।

अमृतादि गुग्गुल

हरड़ छाल १ सेर, आमला १ पाव, पुनर्नवा १ पाव । तीनों वस्तुओं को यवकुट करके ३२ सेर पानी में पकावें । चतुर्थांश रहने पर खूब मल कर छान लें और पुनः पकावें। जब लेहवत् गाढ़ा हो जावे, तो इसमें निम्नलिखित औषधियों का बारीक चूर्ण मिला दें ।

चूर्ण द्रव्य—शुद्ध गुग्गुल ४ तो०, जमालगोटे की जड़ २ तो०, चित्रकमूल छाल २ तो०, सोंठ २ तो०, पिप्पल २ तो०, मरिंच २ तो०, हरड़ २ तो०, बहेड़ा २ तो०, आमला २ तो०, गिलोय २ तो०, दारचीनी २ तो०, वायविडङ्ग २ तो०, निसोत २ तो० । सब का बारीक चूर्ण बनाकर उपरोक्त कथित लेह में मिलावें ।

मात्रा—१ माशा से ३ माशा तक ।

अनुपान—दिन में २-३ बार गर्म जल अथवा गोमूत्र के साथ सेवन कराने से बढ़ा हुआ उरुस्तम्भ रोग भी नष्ट हो जाता है ।

गुञ्जाभद्र रस

शुद्ध पारा ३ तो०, शुद्ध गन्धक १२ तो०, शुद्ध गुञ्जा ६ तो०, शुद्ध जमालगोटा १ तो० । प्रथम पारे और गन्धक को ४ पहर पर्यन्त खरल करके शेष औषधियों को बारीक पीसकर इसमें मिला दें और जयन्ती, जम्बीरी निम्बू, धत्तूर पत्र इनके रस के साथ पृथक २ तीन २ दिन खरल करके दो रत्ती प्रमाण की गोली बनावें ।

मात्रा—१-१ गोली प्रात सायं ।

अनुपान—४ रत्ती भुनी हींग और १ माशा सैन्धव लवण के साथ सेवन कराके ऊपर से ताज़ा जल पिलावें । इसके सेवन से उग्र से उग्र तथा बहुत दिन का पुराना उरुस्तम्भ रोग भी नाश हो जाता है ।

उरुस्तम्भ के लिये लेप

१. अर्क मूलछाल (आक) को गोमूत्र में पीस कर जांघ और सांथल पर लेप करनें से रोगी को लाभ होता है ।

२. दाम्बी की मिट्टी, सरसों, नीम के पत्ते पीसकर इनमें मधु मिलाकर लेप करने से भी उरुस्तम्भ को आराम होता है।

३. धतूरे की जड़, पोस्त डोडा, लहसन, काली मिर्च, कालीजीरी, सुहाञ्जने की छाल, जयन्ती पत्र, सरसों, समान भाग लेकर गोमूत्र में पीस लें, इसका गर्मागर्म लेप सांथल और जङ्घों पर लगाने से उरुस्तम्भ का नाश हो जाता है।

कन्जुआबीज, हरड़, बहेड़ा, आमला, सरसों समान भाग लेकर गोमूत्र में पीस लें और गर्म करके लेप करें। यह भी उरुस्तम्भ के लिये अति लाभकारी है।

उरुस्तम्भ के लिये तैल प्रयोग

आरम्भ में स्नेह आदि पदार्थों का निषेध कर आये हैं परन्तु निम्नलिखित तैल जो रुक्ष तथा उष्ण प्रधान औषधियों के योग से तय्यार होते हैं। उरुस्तम्भ के लिये हमारे अनुभूत हैं। अतः चिकित्सक को आवश्यकतानुसार इन का भी व्यवहार करना चाहिये।

सैन्धव आदि तैल

तिल तैल २ सेर, कांजी १६ सेर, सेन्धा नमक ८ तो०, सोंठ २० तो०, पिप्पलीमूल ८ तो०. भिलावें शुद्ध २० दाने। इन सब का कांजी में कल्क बना कर सब को किसी ताम्रपात्र में डालकर मन्दाग्नि पर पकावें। जब तैलमात्र रह जावे, तो नितार कर छान लें। इसकी नित्य मालिश करने से पुराना से पुराना उरुस्तम्भ रोग को अति लाभ होता है।

अष्टकट वर तैल

सरसों का तैल २ सेर, दही की छाछ १६ सेर, पिप्पलामूल ८तो०, सोंठ ८ तो०। दोनों का छाछ के साथ कल्क बना कर तैल पाक विधि से पाक बनावें। इस तैल के प्रयोग से भी उरुस्तम्भ रोग को लाभ होता है।

कुष्ठाद्यं तैल

सरसों का तैल ४ सेर, जल १६ सेर, कुठ, बरोजा, सुगन्धबाला,

सरल काष्ठ, देवदार, नागकेसर, अजमोद, असगन्ध प्रत्येक १० तो० । पानी के साथ कल्क बनाकर समस्त चीज़ों का एक उत्तम ताम्रपात्र में यथाविधि तैलपाक करें, सिद्ध होने पर नितार कर छान लें । इसके मालिश तथा ६ माशे से १ तोला तक दुगना मधु मिला कर सेवन करने से उरुस्तम्भ रोग का नाश होता है ।

उरुस्तम्भ रोग में पथ्य

रूक्षः सर्वविधि स्वेद. को द्रवारक्त शालयः ।
यवा: कुलत्थाः श्यामाका उद्दालाश्च पुरातनाः ॥
शोभाञ्जनं कारवेल्लं पटोलं लशुनानि च ।
सुनिषण्णः काकमाची वेत्राग्रं निम्ब पल्लवम् ॥
पत्तूरो वास्तुकं पथ्या वार्ताकुस्तप्त वारि च ।
शम्याक शाकं पिण्याकः तक्राऽरिष्टमधूनि च ॥
कटु तिक्त कषायाणि क्षार सेवा गवां जलं ।
व्यायामश्च यथाशक्ति स्थलस्याक्रमणानि च ॥
स्वच्छे ह्रदे संतरणं प्रतिस्रोतो नदीषु च ।
श्लेष्मापहरणं यच्च न च मारुत कोपनम् ॥
एतत्पथ्यं नरैः सेव्यमूरुस्तम्भ विकारिभिः ॥

शरीर में रूक्षता उत्पन्न करने वाली औषधिएं तथा अन्न खाने के पदार्थ, कोदों, लाल चावल, कुलथी, जौ, बन कोदों, सुहाञ्जने की फली, करेला, परवल, लहसुन, चपतिया, मकोय, बेंत की कोंपल, नीम के पत्ते, बथुआ, बैंगन, अम्लतास की फली, मधु, गर्म जल, कडुवे, चरपरे, कसैले, खारी पदार्थ, गोमूत्र, यथाशक्ति दण्ड कसरत, बैठक, नदी में तैरना । यह सब उरुस्तम्भ रोग में पथ्य अर्थात् हितकारी है ।

उरुस्तम्भ रोग में अपथ्य

गुरुशीतद्रव स्निग्ध विरुद्धं सात्म्य भोजनम् ।
विरेचनं स्नेहनं च वमनं रक्तमोक्षणं ॥
वस्तिं च न हितं प्राहुरूरुस्तम्भं विकारिणाम् ।

भारी, शीतल, पतले, चिकने, विरुद्ध, और अपने मन के प्रतिकूल भोजन, स्नेह कर्म, वमन, विरेचन, वस्तिकर्म, रक्तमोक्षण (फसद); यह सब उरुस्तम्भ रोग में अपथ्य अर्थात् अहितकर हैं।

आमवात रोगाधिकार

आम का स्वरूप

अहारस्य रसः सारो या न पक्वाऽग्निलाघवात् ।
आम संज्ञाम् च लभते बहु व्याधि समाश्रयः ॥

किये हुए अन्नादि भोजन के रस का सार जो मन्दाग्नि के कारण नहीं पचता है, उसको वैदिक परिभाषा में आम और प्रचलित भाषा में कच्चारेषा तथा ऐलोपैथिक में यूरिक ऐसिड् कहते हैं । यही आम जब वायु के साथ मिलकर सन्धि स्थानों और समस्त शरीर में विचारता है तो नाना प्रकार की वेदनायें पैदा हो जाती हैं ।

आमवात के सामान्य लक्षण

युगपत्कुपितावेतो त्रिकसन्धि प्रवेशकौ ।
स्तब्धञ्च कुरुते गात्रमामवातः स उच्यते ॥

जब आम और वायु एक ही समय में कुपित हो कर कोष्ट, कमर, गर्दन और पीठ की संन्धिओं में प्रविष्ट हो कर शरीर को जकड़ देते हैं । उस को आमवात कहा जाता है ।

विशेष लक्षण

अङ्ग मर्दोऽरुचिस्तृष्णा आलस्यं गौरवं ज्वरः ।
अपाकः शून्यताङ्गानामामवातस्य लक्षणम् ॥

अंगों का टूटना, आलस्य, भारीपन, ज्वर, अरुचि, तृषा, अन्न का न पचना, संधियों में शोथ और पीड़ा, यह सब आम वात के विशेष लक्षण हैं ।

अत्यन्त बढ़े हुए आम वात के लक्षण

सकष्टः सर्व रोगाणाम् यदा प्रकुपितो भवेत् ।
हस्तपाद शिरोगुल्फ त्रिक जानुरु सन्धिषुः ॥

करोति सरुजं शोथं यत्र दोषः प्रपद्यते ।
सदोषो रुजेतऽत्यर्थं व्याधि विद्ध इव वृश्चकैः ॥

सर्व व्याधियों में अधिक कष्ट का देने वाला जब यह आम वात उग्र कोप को प्राप्त होता है तब हाथ, पांव, मस्तक, गुल्फ, त्रिक, घुटने, सांथल, और शरीर के समस्त जोड़ों में अत्यन्त पीड़ा और सूजन को उत्पन्न करता है। और यह दुष्ट आम वात शरीर के जिस प्रदेश में जाता है उसी प्रदेश में बिच्छू के काटने के समान घोर पीड़ा को करता है।

साध्यासाध्य विचार

एक दोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्चते ।
सर्व देह चराः शोथः सकृच्छ्रः सन्निपातिकः ॥

केवल एक दोष अर्थात् वायु से मिला होने पर आम साध्य और वात तथा पित्त अथवा वात तथा कफ से मिला होने पर याप्य और तीनों दोषों से मिला होने पर अति कष्ट साध्य होता है।

आम वात चिकित्सा विधि

लंघनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनिच ।
विरेचनं स्नेहनं च वस्त्यश्चाम मारुते ॥

आम वात रोग की चिकित्सा करते समय सर्व प्रथम रोगी को लंघन कराना और शोथ तथा पीड़ा स्थान पर बालु, जवण, बनौला आदि वस्तुओं को गर्म कर के स्वेद कर्म करना तथा शुण्ठी आदि कटु, चरपरे, और दीपन पाचन वस्तुओं का सेवन कराना निसोत, काला दाना, तथा जयपाल युक्त विरेचन द्रव्यों से विरेचन करना सामान्य उष्ण जल में एरण्ड तैल मिला कर वस्ति कर्म करना। यह सब विशेष लाभकर है।

पञ्च कोलादि क्वाथ

पिप्पल, पिप्पलामूल, चव्य, चित्रकमूलछाल, सोंठ, प्रत्येक ४ माशे आध सेर जल में पका कर चतुर्थांश रहने पर मल छान कर दिन में एक दो

बार पिलाने से आमवात की आरम्भावस्था में विशेष लाभ होता है, यह क्वाथ दीपन, पाचन होने से आम को शीघ्र पचा देता है। आमवात रोगीको यदि आमवात के कारण ज्वर भी हो और रोगी तृषा से आतुर हो, तो उपरोक्त पांचों वस्तुओं को सेर भर जलमें एक दो जोश देकर रख लें और इसमें से थोड़ा २ पिलाते रहें। इससे तृषा शान्त होती और ज्वर को भी लाभ होता है।

रास्नादि क्वाथ

रास्ना, अरण्ड मूल छाल, सतावर, जवांसा, पिग्रावांसा, अडूसा, गिलोय, देवदारु, अतीस, हरड़, नागरमोथा, कचूर, सोंठ प्रत्येक ३ माशे, यवकुट करके आध सेर जल में पकावें, चतुर्थांश रहने पर मल छान कर रोगी को पिलावें, इसके सेवन करने से आमवात की आरम्भावस्था में विशेष लाभ होता है।

महा रास्नादि क्वाथ

रास्ना, एरण्डमूल छाल, अडूसा, धमासा, कचूर, देवदार, खरैंटी, नागरमोथा, सोंठ, अतीस, हरड़, गोखरू, गूदा अम्लतास, सौंफ, धनियां, पुनर्नवा, असगन्ध नागौरी, गिलोय, पीपल, विधारा, सतावर, बच, पियावांसा, चव्य, खरैंटी, प्रत्येक ३ मा०, रास्ना ६ माशे। सब को यवकुट करके ३ पाव पानी में पकावें। चतुर्थांश रहने पर मलकर छान लें और इसमें आगे कहे हुए अलम्बुशादि चूर्ण, अजमोदादि चूर्ण अथवा शुण्ठी चूर्ण, इनमें से कोई एक दोषानुसार ३ माशे मिला कर प्रातः सायं पिलाने से अत्यन्त बढ़ा हुआ आमवात रोग भी शीघ्र शान्त हो जाता है।

नोट—इसी क्वाथ के साथ आगे कहे हुए योगराज गुग्गुल, आमवातादि गुटिका, अजमोदादि वटिका भी सेवन करा सकते हैं। यह भी आम वात की उत्तम औषधियां हैं।

आमवातादि गुटिका

शुद्ध पारा १ तो०, शुद्ध गन्धक १ तो०, शुद्ध नीला थोथा १तो०, भुना सुहागा १ तो०, निमक १ तो०, हिंगुल योग से बनी हुई लोहभस्म

१ तो०, पारद गन्धक के योग से बनी हुई ताम्रभस्म १ तो०, निसोत चूर्ण २ तो० और समस्त औषधियों से दुगुना शुद्ध गुग्गुल। प्रथम पारे और गन्धक को एक पहर खरल करके कज्जली बनावें, पश्चात् गुग्गुल से अतिरिक्त समस्त औषधियों का बारीक चूर्ण बनाकर कज्जली में मिला देवें और गुग्गुल को एरण्ड तैल में लगा २ कर इतना कूटें, कि लेहवत् हो जाय, फिर इसमें थोड़ा २ चूर्ण मिलाकर कूटें, जब समस्त चूर्ण मिलकर गुग्गुल गोली बांधने के योग्य हो जाय, तो १॥ माशे से ३ माशे तक की गोलियां बनावें।

मात्रा--रोगी का बलाबल विचार कर छोटी तथा बड़ी एक २ गोली प्रातः सायं।

अनुपान--गर्म जल अथवा रास्नादि तथा महारास्नादि के साथ सेवन करावें, इससे अति बढ़ा हुआ आमवात रोग शीघ्र नष्ट हो जाता है।

अजमोद आदि वटिका

अजमोद, काली मिर्च, पिप्पल, वायविडङ्ग, देवदार, चित्रकमूल छाल, सोये बीज, पिप्पला मूल, सैन्धा लवण प्रत्येक ४ तो०, सोंठ, ४० तो०, विधारा ४० तो०, हरड़ छाल ४० तो०। सब को बारीक पीसकर छान लें। समस्त चूर्ण के बराबर एक वर्ष का पुराना गुड़, इसमें थोड़ा जल मिलाकर चाशनी बनावें, उत्तम चाशनी बनने पर चूर्ण को इसमें मिला दें और अग्नि पर से उतार के ४ माशे प्रमाण की वटिका बनावें।

अनुपान--यह वटिका भी गर्म जल अथवा रास्नादि, महारास्नादि के साथ सेवन कराने से बढ़े से बढ़ा हुआ आमवात रोग भी शान्त हो जाता है।

सिंह नाद गुग्गुलु

हरड़, बहेड़ा, आमला प्रत्येक २ सेर, गुग्गुल ६४ तो०, १। मन पानी, हरड़, बहेड़ा, आमला को यवकुट करके १। मन पानी में डाल कर अग्नि पर चढ़ावें और गुग्गुल की पोटली बांध कर इस में छोड़ देवें।

जब जल चतुर्थांश रह जावे, तो मलकर भली प्रकार छान लें। यदि पोटली में कुछ भाग गुग्गुल रह गया हो, तो उसको भी क्वाथ के साथ मल कर निकाल लें। पुनः अग्नि पर चढ़ा कर इसमें ३२ तो० सरसों का तैल मिला कर पकावें, जब लेहवत् हो जाय, तो इस में निम्नलिखित औषधियों का चूर्ण मिला देवें--

सोंठ, मिर्च, पिप्पल, हरड़, बहेड़ा, आमला, नागरमोथा, वायविडङ्ग, देवदार, गिलोय, चित्रकमूल छाल, निसोत, दन्तीमूल, चव्य, ज़मीकन्द, पारा, गन्धक, प्रत्येक २ तो०, एक हज़ार (१०००) विशुद्ध जयपाल का चूर्ण सब वस्तुओं का चूर्ण बना के उसमें मिला दें और २ से ४ रत्ती प्रमाण गोलियां बनावें।

मात्रा--१ से २ गोली तक।

अनुपान--बलाबल का विचार कर गर्म जल के साथ सेवन कराएं। इसके सेवन से बढ़ा हुआ आमवात भी शीघ्र शान्त हो जाता है। यह औषधि पुराने आमवात में अति लाभ करती है।

बृहद् योगराज गुग्गुल

हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर्च, पिप्पल, पाठल, सोए बीज, हल्दी, दारहल्दी, अजमोद, वच, भुनी हींग, हाऊबेर, गजपिप्पली, काला जीरा, कचूर, धनियां, विड लवण, सौंचर नमक, सेन्धा नमक, पिप्पला मूल, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नाग केसर, तुलसीपत्र, हिंगुल योग से बनी लोहभस्म, राल, गोखरू, रास्ना, अतीस, पुनर्नवा, यवक्षार, अमरवेद, चित्रकमूल छाल, पोहकरमूल, चव्य, अनारदाना, अरण्ड मूल छाल, असगन्ध, निसोत, दन्तीमूल, बेर, देवदार, हल्दी, कुटकी, मूढ़ वा त्रायमाण, जवासा, वायविडङ्ग, बङ्गभस्म (ताल योग से बनी), अजवाइन देसी, बांसा मूलछाल, कृष्णाभ्रक भस्म प्रत्येक सम भाग यथाविधि चूर्ण बनावें। इस चूर्ण के बराबर विशुद्ध गुग्गुल लेकर प्रथम गुग्गुल को घृत अथवा एरण्ड तैल लगा २ कर इतना कूटें कि लेहवत हो जाय। जब लेहवत हो जाय, तब थोड़ा २ चूर्ण मिलाकर कूटें और पुनः लेहवत हो जाने पर रख लें।

मात्रा—१ माशा से २ माशा तक।

अनुपान—गर्म जल अथवा रास्नादि क्वाथ के साथ सेवन करने से वृद्धि को प्राप्त हुआ आमवात रोग शान्त हो जाता है। यह प्रयोग कुछ काल के पुराने आमवात रोग में सेवन कराना चाहिये।

वातारि गुग्गुल

एरण्ड तैल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध गुग्गुल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, प्रत्येक समान भाग औषधियों को कूटकर एरण्ड तैल में मिला लें।

मात्रा—१॥ माशे से ३ माशे तक।

अनुपान—गर्म जल से सेवन कराने से थोड़े दिनों का नवीन आम वात रोग नष्ट हो जाता है।

शिवा गुग्गुल

हरड़, बहेड़ा, आमला प्रत्येक ३२ तो० क्वाथार्थ जल ८ सेर में पकावें, अवशिष्ट क्वाथ २ सेर मलकर छान लें। पुनः इसमें ८ तोला एरण्ड तैल और ८ तो० गुग्गुल डालकर पकावें। जब उत्तम पाक हो जाय, तो इसमें निम्न लिखित औषधियों का चूर्ण मिलावें।

चूर्ण द्रव्य—शुद्ध गन्धक ६ तो०, रास्ना, वायविडङ्ग, काली मिर्च, पिप्पली, दन्तीमूल, सोंठ, देवदारु प्रत्येक १ तो० चूर्ण बना कर प्रक्षेप दें।

मात्र—१ माशा से ३ माशा तक।

अनुपान—गर्म जल के साथ अथवा रास्नासप्तक क्वाथ के साथ सेवन कराने से नवीन आमवात रोग में विशेष लाभ होता है।

पुनर्नवादि चूर्ण

सोंठ, गिलोय, सतावर, गोखरू, मुण्डी, कचूर, देवदार, पुनर्नवा-मूल प्रत्येक समभाग लेकर चूर्ण बनावें।

मात्रा—२ मा० से ६ मा० तक प्रातः सायं।

अनुपान—गर्म जल के साथ सेवन कराने से शोथ युक्त नवीन आमवात का नाश होता है।

अलम्बुषादि चूर्ण

मुण्डी, गोखरू, गिलोय, विधारा मूल, पिप्पल, निसोत, नागरमोथा, वरन छाल, पुनर्नवामूल, हरड़, बहेड़ा, आमला प्रत्येक समभाग सबका यथा विधि चूर्ण बनावें।

मात्रा--३ माशे ६ माशे तक।

अनुपान--गर्म जल अथवा रास्नादि क्वाथ के साथ सेवन कराने से पित्ताधिक्यआमवात शान्त होता है। यह प्रयोग आमवात की ऐसी अवस्था में प्रयोग कराना चाहिये, जबकि आमवात के साथ ज्वर भी हो।

वैश्वानर चूर्ण

सेन्धा नमक २ तो०, देसी अजवाइन २ तो०, अजमोद ३ तो०, सोंठ ४ तो०, हरड़ का छिलका १२ तो०। सब को कूट पीसकर चूर्ण बनावें।

मात्रा-३ माशे से ६ माशे तक प्रातः सायं।

अनुपान—गर्म जलके साथ सेवन कराने से सामान्य आमवात रोग शीघ्र शान्त हो जाता है।

रसोन पिण्ड

उत्तम लहसुन ५ सेर. काले तिल १६ तो०, भुनी हींग ४ तो०, सोंठ ४ तो०, काली मिर्च ४ तो०, पिप्पल ४ तो०, जौखार ४ तो०, सज्जीखार ४ तो०, पांचों नमक प्रत्येक ४ तो०, सौंफ ४ तो०, हल्दी ४तो०, कुठ ४तोला, पिप्पलामूल ४ तो०, चित्रकमूलछाल ४तो०, अजमोद ४ तो०, अजवाइन देसी ४ तो०, धनियां ४ तो०। सब को पीसकर एक चिकने पात्र में डाल दें। पश्चात् आध सेर तिल का तैल और आध सेर कांजी डाल कर पात्र का मुख बन्द करके गेहूं के ढेर में दबा दें। एक मास के पश्चात् निकाल लें। इसी का नाम रसोन पिण्ड है।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक प्रातः सायं।

अनुपान – गर्म जल के साथ सेवन करने से आमवात रोग को

आराम होता है। यह प्रयोग कफ तथा वायु प्रधान आमवात रोगी के लिये विशेष लाभ करता है।

मृत्युञ्जय रस

शुद्ध हिंगुल २ तो०, (शिंगरफ) मिट्ठा तेलिया १ तो०, काली मिरच १ तो०, पिप्पल १ तो०, शुद्ध गन्धक १ तो०, भुना सुहागा १ तो०, प्रथम मिट्ठा तेलिये को इतने पानी में भिगोवें कि वह इस में डूब सके २४ घण्टों के पश्चात् इस अकेले को खरल में डाल कर इतना खरल करें कि मलाई की भान्ति हो जावे पश्चात् समस्त औषधियों को बारीक पीसकर इसमें मिला देवें। और थोड़ा २ पानी डालकर तीन दिन खरल करके एक रत्ती प्रमाण गोली बना लें।

मात्रा—१ गोली प्रातः १ गोली सायं।

अनुपान—रास्नादि क्वाथ के साथ सेवन कराने से बढ़ा हुआ आमवात रोग नाश हो जाता है।

यह प्रयोग भी वात तथा कफ प्रकृति के मनुष्यों को विशेष लाभ करता है।

वातगजेन्द्र सिंह रस

रसेन्द्र सारोक्त षट्पुटि अभ्रकभस्म, हिंगुल योग से बनी लोह भस्म, पारद गन्धक योग से बनी ताम्रभस्म, मनःशिल योग से बनी नागभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, भुना सुहागा। गो मूत्र में शुद्ध मीठा तेलिया, सेन्धा नमक, लौंग, भुनी हींग, जायफल प्रत्येक १ तो० दारचीनी, तेजपत्र, छोटी इलायची, हरड़, बहेड़ा, आम्ला प्रत्येक ६ माशा प्रथम पारे व गन्धक को दो पहर पर्यन्त खरल करके उत्तम कज्जली बनावें पश्चात् समस्त औषधियों को बारीक पीसकर इस में मिला देवें, और घीक्वार के रस में तीन दिन पर्यन्त खरल करके २ रत्ती प्रमाण की गोली बनालें।

मात्रा—१-१ गोली प्रातः सायं।

अनुपान—गाय के गर्म दूध के साथ सेवन कराने से आमवात तथा आमवात से उत्पन्न हुई क्षीणता का नाश होता है। यह प्रयोग

कफ तथा मेद की अधिकता में विशेष लाभ करता है।

विडङ्गादि लोहम्

हिंगुल योग से बनी लोहभस्म २० तो०, रसेन्द्र सारोक्त शतपुटि अभ्रक भस्म १० तो०, शुद्ध पारा १० तो० शुद्ध गन्धक १० तो०, हरड़, बहेड़ा, आम्ला प्रत्येक, १॥ पाव प्रथम १८ सेर जल में त्रिफले का क्वाथ करें। जब आठवां भाग रह जावे तो मलकर छान लें फिर इस में पारे और गन्धक की कज्जली तथा भस्में मिलाकर आध सेर गो घृत मिलावें। और सतावर का रस १॥ पाव गाय का दूध ३ पाव डालकर मन्दाग्नि से पकावें। जब लेह वत हो जाय तो इस में निम्न लिखित औषधियों का चूर्ण मिलावें।

चूर्ण द्रव्य – वायविडंग, सोंठ, धनिया, गिलोय, जीरा, ढाक के, बीज, काली मिरच, पिप्पल, गज पिप्पल, सोंठ, निसोत, हरड़, बहेड़ा आम्ला, दन्ती मूल, छोटी इलायची, एरण्ड मूल, चव्य, पिप्पलामूल, चित्रकमूलछाल, नागरमोथा, विधारा बीज प्रत्येक २ तो० बारीक चूर्ण करके लेहवत बनी औषधि में मिला दें और ४ रत्ती से १ माशा तक गोली बनावें।

मात्रा—१ गोली प्रातः १ गोली सायं।

अनुपान – गर्म जल के साथ सेवन करने से उग्र आमवात रोग को भी आराम हो जाता है। यह प्रयोग कफ तथा मेद की अधिकता में आमवात रोगी को विशेष लाभ करता है।

आमवात रोग के लिये तैल प्रयोग

विष गर्भ तैल

कनेर के पत्तों का रस १ सेर, धतूरे के पत्तों का रस १ सेर, सम्भालू के पत्तों का रस १ सेर, आक के पत्तों का रस १ सेर, जटामांसी का क्वाथ १ सेर (१ सेर जटामांसी आठ सेर पानी में पकावें अष्टांश रहने पर मलकर

छान लें) तिल तैल १ सेर सब को एक ताम्र पात्र में डालकर निम्न लिखित औषधियों का प्रक्षेप दें।

प्रक्षेप द्रव्य– धतूरा बीज, प्रियंगू, मिट्ठा तेलिया विष अशुद्ध, सत्यानासी, रास्ना मूल, कनेरमूल छाल, मालकंगनी, काली मिरच, गुग्गुलु, मजीठ, वालछड़, बच, चित्रक मूल छाल, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, अरण्ड मूल छाल, हरड़, बहेड़ा, आम्ला प्रत्येक १ तो० समस्त औषधियों का बारीक चूर्ण बनालें और तैल पक जाने पर इस चूर्ण को तैल में मिलाकर बोतलों में रखें इस तैल को सन्धि स्थानों तथा पीड़ा के स्थान पर मलने से आमवात को विशेष लाभ होता है।

महासैन्धवाद्यं तैल

तिल तैल ४ सेर, कांजी ४ सेर, (कल्क द्रव्य), सेन्धा नमक, कुठ, सोंठ, भारङ्गी, मुलहठी; शालपर्णी, जायफल, देवदार, कचूर, धनियां, पिप्पल, कायफल, पोहकर मूल, अजवाइनदेसी, अतीस, अरण्ड मूल, बिल्वमूल, नीलोत्पल प्रत्येक ९ तोला। इन औषधियों को काञ्जी में पीस कर कल्क बना लें और सब को एक ताम्र पात्र में डालकर मन्दाग्नि पर पकावें। जब तैलमात्र रह जावे, तो नितार कर छान लें। इस तैल को पीड़ा स्थान पर मलने से और इसकी नस्य देने से रोगी को विशेष लाभ होता है।

आमवात रोग में पथ्य

रुक्षः स्वेदो लंघनं स्नेहपानं वस्तिर्लेपो रेचनं पायुवर्त्तिः।
अब्दोत्पन्ना शालयो ये कुलत्था जीर्णं मद्यं जांगलानां रसाश्च॥
वातश्लेष्मघ्नानि सर्वाणि तक्रं बर्षाभूश्चैरण्डतैलं रसोनम्।
पटोल पत्तूरककार वेल वार्ताकुशिग्रूणि च तप्तनीरम्॥
मन्दारगोकण्टक वृद्धदारं भल्लातकं मोजलमाद्रकं च।
कटूनि तिक्तानि च दीपनानि स्युराम वातामयिने हितानि॥

लवण, वालू, आदि रुक्ष वस्तुओं को गर्म करके शोथ स्थान पर

सेक देना अथवा स्वेदन करना। एरण्ड तैल आदि से स्नेह करना, वस्ति कर्म, विरेचन, लेप, अभ्यङ्ग, पुराने चावल, पुरानी कुलथी, पुरानी सुरा, तीतर, बटेर, मुर्गा के मांस का रस, वात कफ नाशक सम्पूर्ण द्रव्य, पुनर्नवा-मूल, एरण्ड मूल, एरण्ड तैल, लहसुन, परवल, करेले, बैंगन, सुहांजने की फली, गर्म जल, आक के फूल; गोखरू, विधारा, भिलावां, अद्रक, गोमूत्र तथा कड़वे और तीखे रस, अग्नि संदीपन कर्ता सकल पदार्थ यह सब आमवात रोग में पथ्य तथा हितकारी हैं।

आमवात रोग में अपथ्य

दधिमत्स्य गुडक्षीरो पोदिकामाषा पिष्ठकम् ।
दुष्टनीरं पूर्व वात विरुद्धान्यशनानि च ॥
आसात्म्यं वेगरोधं च जागरं विषमाशनम् ।
वर्जयेदामवातार्तो गुर्वभिष्यन्दकारि च ॥

दही, मच्छली, गुड़, दूध, पोई का शाक, उड़द, उड़द की पीठी, अथवा पीठी के पदार्थ, विरुद्ध भोजन, दूषित जल अथवा ठण्डा जल मल मूत्रादि वेगों का रोकना, रात्री में जागना, भोजन पर भोजन करना, भारी तथा अभिष्यन्दी पदार्थ यह सब आमवात में अपथ्य अर्थात् अहितकर हैं।

शूल रोगाधिकार

जिस रोग में शूल अथवा त्रिशूल तथा लोहकील, पेद, अथवा शरीर के किसी भाग में गाड़ने के समान पीड़ा हो, इसको वैद्यक शास्त्र में "शूल रोग" कहा है।

शूल रोग के भेद

१. वात शूल २. पित्त शूल ३. कफ शूल,
४. सन्निपातज शूल, ५. वातपित्तशूल ६. वात कफ शूल,
७. पित्त कफ शूल, ८. आम शूल।

इस प्रकार शूलरोग के ८ भेद वर्णन किये हैं, इनके अतिरिक्त शूल के २ भेद और भी हैं, जोकि यद्यपि दोषों के विकार से ही उत्पन्न होते हैं, तथापि उनका सीधा सम्बन्ध दोषों से नहीं, किन्तु वे खाये हुए भोजन के परिणाम से सम्बन्ध रखते हैं, इसी लिये वैद्यक मुनियों ने उनके नाम उनके कारण के आधार पर ही निश्चय किये हैं, वे दो भेदों से इस प्रकार हैं—

१. परिणाम शूल, २ अन्नद्रव शूल।

१. खाये हुए भोजन का जब पाक हो जाता है और भोजन के परिणाम रूप रस परिवर्तित हो जाता, अर्थात् खाये हुए अन्न का परिणाम बनता है, ठीक उसी समय वह शूल हुआ करता है, इसीलिये इसका नाम परिणाम शूल है।

२ अन्नद्रव शूल खाये हुये भोजन के आमाशय में द्रवरूप अर्थात् पतला होने के समय उत्पन्न होता है, इसलिये इस का नाम अन्नद्रव शूल है। यह शूल प्राय: भोजन खाने के घण्टा १॥ घण्टा बाद होता है।

शूल के उपद्रव

अत्यन्त पीड़ा, तृषा, मूर्छा, मलमूत्र का निरोध, शरीरका भारी होना अरुचि कास, श्वास, वमन, तथा हिचकी यह सब उपद्रव शूलरोग में होते हैं।

साध्यासाध्य विचार

एक दोष से उत्पन्न हुआ साध्य, द्वे दोषों से कष्टसाध्य और तीन दोषों से उत्पन्न हुआ असाध्य जानना चाहिये।

शूल चिकित्सा में स्मरण रखने योग्य बातें

---

१. शूल की चिकित्सा में विलम्ब कदापि नहीं करना चाहिये, क्योंकि यदि इस की चिकित्सा शीघ्र न की जाय, तो अधिक कष्टदायक हो जाता है, अथवा असाध्य हो जाता है।

२. प्रत्येक शूलचिकित्सा में वात का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

३. शूल चिकित्सा करते समय इन बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिये। यदि शूल कफ अथवा आम से हो, तो प्रथम मैनफल, लवण मिश्रित किञ्चित् उष्णजल से वमन कराएं, पश्चात् रोगी को लंघन करावें तत्पश्चात् दीपन पाचन औषधियां सेवन करानी चाहियें। यदि शूल केवल वात से हो, तो शूल के स्थान पर सेंक देना अथवा स्वेद कर्म करना चाहिये। मलावरोध की अवस्था में लवण, पिप्पली, कुठ आदि वस्तुओं से बनी हुई बत्ती गुदास्थान में चढ़ानी चाहिये और सर्जिका क्षार आदि तीव्र क्षार हींग, त्रिकुटा आदि पदार्थों से बने हुए वटिका या चूर्ण से काम लेना चाहिये।

वातशूल में स्वेद विधि

पूर्व कह आये हैं, कि वात जनित शूल में स्वेदकर्म लाभकर होता है। अतः यहां पर स्वेद विधि दी जाती है।

आवश्यकतानुसार मिट्टी लेकर इसमें इतना पानी मिलायें, कि जिससे वह लेप के योग्य हो जाय; फिर इसको आग पर खूब गर्म करके एक कपड़े में डाल लें और इसकी पोटली बना शूल के स्थान पर सेंक करें

इससे पसीना आकर दर्द शान्त हो जाता है। इसका नाम मृत्तिका स्वेद है।

कर्पास अस्थि स्वेद

यदि मृत्तिका स्वेद से लाभ न हो, तो कपास बीज, कुलथी, तिल, जौ, एरण्ड मूल छाल, अलसी, सोंठ, एरण्ड के बीज आवश्यकतानुसार सम भाग लेकर इन सब का महीन चूर्ण बनाकर खरल अथवा सिल पर थोड़ी २ कांजी डालकर कल्क के समान बना लें। फिर इस कल्कको गर्म करके किसी कपड़में पोटली बना लें और शूलके स्थान पर सेक करें। इससे स्वेद होकर दर्द शान्त हो जाता है। इसको कार्पास अस्थि स्वेद कहते हैं। यह केवल कलाई, घुटने, पेट, कूल्हे, पीठ, कन्धे, सिर और उङ्गलियों के शूल, में व्यवहार करना चाहिये।

बालुका स्वेद

वालू अथवा लवण और वालू को कड़ाही में डालकर खूब गर्म कर के और इसको कपड़े में डालकर पोटली बनावें। इस सेंक से भी स्वेद होकर शूल नष्ट हो जाता है।

पित्त शूल

यदि पित्त की अधिकता से शूल उत्पन्न हुआ हो, तो प्रथम जौखार, सज्जीखार, आदि क्षार पदार्थ सेवन कराने चाहियें अथवा गर्म किया हुआ घृत पिलावें। पश्चात् हरड़, गुलाब के फूल, अमलतास का गूदा आदि औषधियों से विरेचन कराना चाहिये अथवा मैन फल आदि औषधियों से वमन करावें। पित्तशूल में यदि मल का अवरोद्ध हो, तो १ तो० मुलहट्टी चूर्ण आध सेर पानीमें पका कर चतुर्थांश रहने पर छान कर इस में २ से ४ तो० एरण्ड तेल मिला कर पिलाने से रोगी का पित्त शूल शान्त होता है।

कफ शूल

कफ शूल में लंघन अथवा वमन कराकर सोंठ, काली मिर्च, पिप्पल, अजमोद, अजवाइन देसी, सेन्धा लवण, भुनी हींग, इनका चूर्ण बनाकर व्यवहार करने से कफशूल का नाश होता है। आम शूल

की चिकित्सा भी पित्तशूल के समान करनी चाहिये।

शूल रोग के लिये सिद्ध योग

शूलगज केसरी (१)

शुद्ध पारा ४ तो०, शुद्ध गन्धक ४ तो०, त्रिफला क्वाथ से बनी लोहभस्म ४ तो०, भुना सुहागा, भुनी हींग, सोंठ, मिर्च, पिप्पल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कचूर, दारचीनी, बड़ी इलायची, तेजपत्र, तालीस पत्र, जायफल, लौंग, अजवाइन देसी, काला जीरा, धनियां प्रत्येक १ तो० । प्रथम पारे और गन्धक को ४ पहर खरल करके कज्जली बनावें। पश्चात् समस्त औषधियों का बारीक चूर्ण बनाकर इसमें मिला देवें । पुनः घीकार के रस से ३ दिन पर्यन्त खरल करके ४ रत्ती प्रमाण की गोली बनावें।

मात्रा–१ से २ गोली तक ।

अनुपान–आवश्यकतानुसार दिन में २-३ बार गर्म जल से सेवन कराने से वातजशूल नष्ट हो जाता है।

शूलगज केसरी (२)

शुद्ध पारा ५ तो०, शुद्ध गन्धक १० तो० । दोनों को मिलाकर एक पहर पर्यन्त खरल करके इन दोनों के समान शुद्ध ताम्र लेकर उस की कण्टक बेधी दो कटोरियां बना लें, एक कटोरी में कज्जली डालकर दूसरी कटोरी इसके मुंह पर लगाकर एक हण्डिया में एक सेर बारीक लवण डालें। इस पर कटोरी को रख कर ऊपर १ सेर पिसा हुआ नमक और डाल दें और ढकन से हांडी का मुख भली प्रकार सम्पुट कर के सम्पुट को सुखा कर गजपुट की आग में फूंक दें, स्वांग शीतल होने पर हांडी का मुख खोलकर नमक के बीच में से भस्म हुई ताम्र की कटोरी को निकाल कर खरल करके रख लें।

मात्रा--२ रत्ती तक।

अनुपान—पान में रख कर सेवन करावें और इसके ऊपर तत्काल भुनी हींग २ रत्ती, सोंठ २ रत्ती, जीरा २ रत्ती, बच १ माशा, काली मिर्च, २ रत्ती बारीक पीसकर किञ्चित उष्ण जल में घोलकर पिला दें। इससे आम, कफ तथा अन्नद्रवशूल शीघ्र शांत हो जाता है।

सूचना—यह प्रयोग केवल आम, कफ और अन्नद्रव शूल में ही सेवन कराना चाहिये, क्योंकि इससे शीघ्र वमन होकर तीनों प्रकार का शूल तत्काल नष्ट हो जाता है।

शूल वज्रणी वटिका

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, त्रिफला क्वाथ योग से बनी हुई लोह-भस्म प्रत्येक २ तो०, हरड़, बहेड़ा, आमला, भुनी हींग, पारद गन्धक योग से बनी ताम्रभस्म, सोंठ, मिर्च, पिप्पल, भुना सुहागा, तेजपत्र, दारचीनी, इलायची बड़ी, तालीस पत्र, जायफल, लौंग, देसी अजवाइन, काला जीरा, धनियां प्रत्येक १ तो०। प्रथम पारे और गन्धक को भली-प्रकार खरल करके कज्जली बनावें, पश्चात् सब औषधियों का बारीक चूर्ण बनाकर कज्जली में मिला दें और ४ दिन पर्यन्त बकरी के दूध के साथ खरल करके ४ रत्ती से १ माशे प्रमाण की गोली बनावें।

मात्रा--१ से २ गोली तक।

अनुपान--गर्म किये हुए बकरी के दूध के साथ प्रातः सायं सेवन कराने से वात तथा कफ जनित पुराने से पुराना शूल शीघ्र शान्त हो जाता है।

वातशूल के लिये अपूर्व योग (१)

सौंचर नमक २ तो०, तिन्तडीक ४ तो०, काला जीरा ८ तो०, काली मिर्च १६ तो०, काला नमक ४ तो०, भुनी हींग ४ तो०। सब को बारीक पीसकर ३ दिन पर्यन्त निम्बू के रस से खरल करके एक २ माशा की गोली बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली तक।

अनुपान—गर्म जल के साथ सेवन कराने से वातशूल शीघ्र शांत हो जाता है।

वातशूल के लिये अपूर्व योग (२)

आक के फूल का लौंग १६ तो०, काली मिर्च ४ तो०, लौंग २ तो०, पिप्पल २ तो०, काला जीरा २ तो०, सुहाञ्जना मूलछाल ४ तो०, भुनी हींग २ तो०, सौंठ ४ तो०, काला नमक ६ तो० । सब को बारीक पीसकर ३ दिन पर्यन्त निम्बू के रस में खरल करके ४ रत्ती से १ माशा प्रमाण गोली बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली तक।

अनुपान—गर्म जल के साथ सेवन करने से वातशूल तत्काल नष्ट हो जाता है।

वातशूल के लिये अपूर्व योग (३)

वायविडङ्ग, सुहाञ्जने के बीज, सुहाञ्जना मूलछाल, कम्बीला, हरड़, निसोत, अम्लवेद, बच, सौंचर निमक, समान भाग लेकर चूर्ण बना लें।

मात्रा—३ माशा से ६ माशे तक।

अनुपान—गर्म जल के साथ दिन में दो-तीन बार सेवन कराने से वातशूल और कृमियों के कारण होने वाला उदर शूल तथा बद्धकोष्ठ शान्त हो जाते हैं।

शूलान्तक तैल

अजवाइन, धनियां, पिप्पल, बच, सेन्धा नमक, बेरी के पत्ते, प्रत्येक ८ तो० । इन सब को कांजी के साथ पीस कर कल्क बना लें। पश्चात् एरण्ड मूल छाल २० तो०, शालपर्णी २० तो०, पृष्टपर्णी २०तो०, अरणी २० तो०, गोखरू २० तो०, बिल्वमूल छाल २० तो०, छोटी कण्डियारी २० तो०, बड़ी कण्डियारी २० तो०, पाढल २० तो०, श्योनाक २० तो० । सब को यवकुट करके १६ गुना पानी में पकावें। चतुर्थांश रहने पर मलकर छान लें, फिर ८ सेर जौ लेकर ६४ सेर पानी में पकावें। चतुर्थांश रहने पर मल कर छान लें । ४ सेर उत्तम तिलों का

तैल और १६ सेर गाय का दूध। सब को ताम्र के पात्र में डाल कर मन्दाग्नि पर पकावें। तैलमात्र रहने पर नितार कर छान लें।

इस तैल को शूल के स्थान पर मलने अथवा इसको गर्म करके इसमें नमक की पोटली डालकर शूलके स्थान पर टकोर करने से सब प्रकार के शूल को आराम होता है।

शूलराज लोह

त्रिफला क्वाथ योग से बनी लोहभस्म १ तो०, रसेन्द्र सारोक्त किरातादि गण द्वारा बनी अभ्रकभस्म ४ तो०, मिश्री ४ तो०, मधु ४ तो०, गाय का घृत ३ तो०, सब को एक लोहे की खरल में भली प्रकार खरल कर के इस में निम्न लिखित चूर्ण मिलावें।

चूर्ण द्रव्य—हरड़ १ तो०, बहेड़ा १ तो०, आंवला १ तो०, सोंठ १ तो०, मिरच १ तो०, पिप्पल १ तो०, नागरमोथा १ तो०, पिप्पलामूल १ तो०, चित्रकमूलछाल १ तो०, सब को बारीक पीस कर मिला दें।

मात्रा—१ माशा से २ माशे तक।

अनुपान—ठण्डे पानी के साथ सेवन कराने से पित्त से उत्पन्न हुआ शूल शीघ्र शान्त हो जाता है। यह प्रयोग केवल पित्ताधिक्य शूल में ही सेवन कराना चाहिये।

चतुसम लोह

रसेन्द्र सारोक्त किरातादि गण द्वारा बनी अभ्रकभस्म, गन्धक, पारे और वांसा रस से बनी ताम्रभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, त्रिफला योग से बनी लोहभस्म, प्रत्येक ४ तो०, प्रथम पारे व गन्धक की यथा विधि कज्जली बनाकर शेष भस्में इस में मिला दें। पश्चात् ४८ तो० गो घृत और ४८ तोले गोदुग्ध सब को मिला कर लोहे की कड़ाही में धीमी अग्नि पर पकावें जब लेहवत् हो जाय तो इस में निम्न लिखित औषधियों का चूर्ण मिलावें।

चूर्ण द्रव्य—वायविडङ्ग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चित्रकमूलछाल, सोंठ, मिर्च, पिप्पल, प्रत्येक ८ माशे चूर्ण बना कर उपरोक्त औषधि में मिला दें।

मात्रा--१ माशा से ३ माशे तक।

अनुपान--मधु में मिला कर नारयल जल अथवा गो दुग्ध के साथ सेवन कराने से पित्त धिक्य शूल को अवश्य नाश कर देता है।

सप्त अमृतलोह

मुलहठी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पल, त्रिफला क्वाथ योग से बनी लोहभस्म प्रत्येक ४ तोला, गोघृत ८ तो०। प्रथम औषधियों का बारीक चूर्ण बनाकर इस में घृत पिलावें। पश्चात् सबसे तीन गुना उत्तम मधु मिलाकर लेह बना लें।

मात्रा--१ माशे से ३ माशे तक।

अनुपान--गोदुग्ध अथवा नारियल के जल के साथ सेवन करान से पित्ताधिक्य शूल शांत हो जाता है।

कफशूल के लिये कुछ सिद्ध योग

१. पिप्पल, पिप्पला मूल, चित्रकमूल छाल, सोंठ, काली मिर्च, प्रत्येक ६ माशा यवकुट करके आध सेर पानी में पकावें, चतुर्थांश रहने पर मल कर छान लें और इसमें २ माशा काला नमक और २ रत्ती भुनी हींग मिलाकर सेवन करावें, इससे कफजनित शूल नष्ट हो जाता है।

२ पिप्पल, पिप्पला मूल, सोंठ, काली मिर्च, सेन्धा नमक, सोंचर नमक, भुनी हींग, सबको वारीक पीसकर चूर्ण बनावें।

मात्रा–३ माशे से ६ माशे तक।

अनुपान--गर्म जल के साथ सेवन कराने से कफज शूल का नाश होता है।

३. शुद्ध मीठा तेलिया विष १ तोला, काली मिर्च १ तो० घी में भुना कुचला १ तो०, सोंठ १ तो०, काला जीरा १ तो०, कुठ १ तो०, सबको वारीक पीसकर सात दिन पर्य्यन्त अद्रक के रस से खरल करके २रत्ती प्रमाण गोली बनावें।

मात्रा--१ गोली से २ गोली तक।

अनुपान—प्रातः सायं गर्म-जल के साथ सेवन कराने से कफज-शूल नष्ट होता है।

४. सोंठ २ तो०, काली मिर्च २ तो०, पिप्पल २ तो०, जायफल २ तो०, जावित्री २ तो०, देसी अजवाइन २ तो०, काला निमक २ तो, शङ्ख की भस्म २ तो० बारीक पीसकर एक सप्ताह पर्य्यन्त अद्रक के रस से खरल करके ४–४ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा—२ गोली से ४ गोली तक।

अनुपान--गर्म जलके साथ सेवन कराने से कफशूल नष्ट होता है।

आमशूल के लिये सिद्ध योग

चतुसम चूर्ण

१. देसी अजवाइन, सेन्धा नमक, हरड़, सोंठ सम भाग लेकर चूर्ण बनावें।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक।

अनुपान—गर्म जल के साथ प्रातः सायं सेवन करने से आमशूल शान्त होता है।

२. चित्रकमूल छाल, पिप्पला मूल, धानियां, सोंठ प्रत्येक ६माशा यवकुट करके आध सेर पानी में पकावें। चतुर्थांश रहने पर मल कर छान लें, इसके सेवन से भी आमशूल नष्ट होता है।

३. भुनी हींग, धनियां, सोंठ, मिर्च, पिप्पल, देसी अजवाइन, चित्रकमूल छाल, हरड़, सेन्धा नमक, सौंचर नमक, जौखार, सज्जीखार, प्रत्येक समभाग लेकर चूर्ण बनावें।

मात्रा—३ माशे तक।

अनुपान—दिन में २-३ बार गर्म जल के साथ सेवन करने से आमशूल नष्ट हो जाता है।

४. विल्व मूलछाल, चित्रकमूल छाल, एरण्ड मूलछाल, सोंठ, भुनी हींग, सेन्धानमक प्रत्येक समभाग लेकर चूर्ण बनावें।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक।

अनुपान—गर्म जल के साथ सेवन कराने से आमशूल नाश हो जाता है।

५. देवदार, वच, कुठ, सोए बीज, हींग, सेन्धा नमक सब को बारीक पीसकर निम्बू के रस में लेप बनाकर गर्म करके आमाशय पर लेप करने से आमशूल शांत हो जाता है।

त्रिदोष शूल के लिये सिद्ध योग

१ शुद्ध पारा १तो., शुद्ध गन्धक १तो., सोंठ १तो., मिर्च १तो., पिप्पल १तो० निसोत २ तो०, नागरमोथा २ तो०, हरड़ २ तो०, बहेड़ा २ तो०, आंवला २ तो०, चित्रक मूलछाल २ तो०, रसेन्द्र सारोक्त शतपुटि अभ्रक भस्म ४ तो०, गोमूत्र और त्रिफला योग से बनी मण्डूर भस्म ४ तो०, वायविडङ्ग ४ तो० । प्रथम पारे व गन्धक को २ पहर खरल करके कज्जली बना लें । पश्चात् सब औषधियों को बारीक पीस कर इसमें मिला दें और त्रिफला क्वाथ से ३ दिन पर्यन्त खरल करके १-१ माशे की गोलियां बनावें।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक।

अनुपान—दिन में दो-तीन बार गर्म जल के साथ सेवन कराने से त्रिदोषज शूल का नाश होता है।

२. भुना सुहागा, शुद्ध गन्धक, सोंठ, सौंचर नमक, भुनी हींग, सबको सुहांजने के रस के साथ ३ दिन पर्यन्त खरल करके चार २ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा—२ से ४ गोली तक।

अनुपान—गर्म जल के साथ दिन में २-३ बार सेवन कराने से त्रिदोषज शूल शांत हो जाता है।

अग्नि मुख

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, रसेन्द्र सारोक्त शतपुटि अभ्रक भस्म, पारा गन्धक के योग से बनी ताम्रभस्म, अम्लवेद, शुद्ध मीठा तेलिया विष, हरड़, बहेड़ा आंवला प्रत्येक समभाग लेकर प्रथम पारे व गन्धक की यथाविधि कजली बनावें । पश्चात् समस्त औषधियोंको बारीक पीसकर इसमें मिला देवें और निम्नलिखित औषधियों के रस अथवा क्वाथ में एक २ दिन खरल करके २ रत्ती प्रमाण गोलियां बनावें ।

क्वाथ द्रव्य—धतूर के पत्ते, पान, कण्डियारी, जयन्ती, कमल, मुरकबाला, बांसा, कुचला, थोहर, बिजौरा निम्बू का रस । इन सब के रस, अथवा क्वाथ में एक २ दिन खरल करें।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक।

अनुपान--गर्म जल के साथ दिन में दो-तीन बार सेवन करने से त्रिदोषज शूल नाश होता है।

शूलहरण योग

हरड़, सोंठ, मिर्च, पिप्पल, कुचला, हींग, सेन्धा नमक, शुद्ध गन्धक। सब को बारीक पीसकर जल के साथ खरल करके जङ्गली बेर के बराबर गोलियां बनावें।

मात्रा--१ गोली से २ गोली तक।

अनुपान—गर्म जल के साथ सेवन करनेसे त्रिदोषज शूल का नाश होता है।

परिणाम शूल के लिये सिद्ध योग

शम्भूकादि वटिका

घोंघे की भस्म, सोंठ, मिर्च, पिप्पल, सौंचर नमक, सेन्धा नमक, साम्भर निमक, समुद्र निमक, जौखार, प्रत्येक समभाग बारीक पीस कर कदम्ब या सिरस के साथ ३ दिन पर्यन्त खरल करके एक २ माशा की गोली बनावें।

मात्रा--१ से २ गोली तक।

अनुपान—भोजन के पश्चात् गर्म जल के साथ खाने से परिणाम शूल का नाश होता है।

शूलान्तक वटि

सोंठ ४ तो०, काला नमक २॥ तो०, भुना सुहागा १। तो०, भुनी हींग ८ मा०। प्रथम हींग को सुहाञ्जने के रस में खूब खरल करें। पश्चात् क्रमशः सुहागा, सोंठ, सेन्धा नमक मिलाकर सुहाञ्जने के रस से ही इतना खरल करें, कि गोली बनाने के योग्य हो जाय, फिर इसकी ५४ गोलियां बना लें।

मात्रा--१ से २ गोली तक प्रातः सायं।

अनुपान—गर्म जल के साथ सेवन कराने से परिणाम शूल का, नाश हो जाता है।

नारी केलामृत

उत्तम पका हुआ नारियल १ सेर। इसको खूब बारीक पीसकर इसमें गोघृत १ सेर, नारियल का पानी ८ सेर, गाय का दूध ८ सेर, हरे आंवलों का रस १ सेर, खाण्ड ३ सेर, सोंठ चूर्ण आधा सेर। प्रथम नारियल को घृत में भून कर इसमें दूध, नारियल का पानी आवलों का रस, घृत और सोंठ मिलाकर पकावें। जब उत्तम पाक सिद्ध हो जाय, तो इसमें आवश्यकतानुसार खाण्ड मिला दें, पश्चात् निम्न-लिखित औषधियों का चूर्ण मिला दें।

चूर्ण द्रव्य—सोंठ, मिर्च, पिप्पल, दारचीनी, छोटी इलायची, तेज-पत्र, नागकेसर, प्रत्येक १ तो० आंवला, श्वेत जीरा, काला जीरा, धनियां बन्सलोचन, नागरमोथा प्रत्येक १॥ तो०। इन सबका चूर्ण बनाकर नारीकेल पाक में मिला दें। अग्नि पर से उतार कर १० तोला मधु मिलावें।

मात्रा—१ तो० से २ तोला तक प्रातः सायं सेवन कराने से परिणाम शूल अवश्य शान्त हो जाता है।

धातृ लोह

सूखे आंवलों का चूर्ण ३२ तो०, त्रिफला योग से बनी लोहभस्म १६ तो०, मुलहठी चूर्ण ८ तो० तीनों वस्तुओं को खरल में डाल कर हरे आंवलों के रस के साथ ७ दिन तक खरल करें। सूख जाने पर इसमें अष्टांश गोघृत मिलाकर उत्तम पात्र में रक्खें।

मात्रा –३ माशा।

अनुपान—६ मा०मधु में मिलाकर भोजन के प्रथम, मध्य और अन्तिम ग्रास के साथ सेवन करानेसे परिणाम शूल शीघ्र शान्त हो जाता है।

भीम वटिक मण्डूर

यवक्षार, पिप्पल, पिप्पला मूल, सोंठ, काली मिर्च, चित्रकमूल छाल

प्रत्येक ४ तो० । सब को बारीक पीस लें । त्रिफला और गोमूत्र योग से बनी मण्डूर भस्म ६४ तो०, गोमूत्र ६ सेर । दोनों को एक लोहे की कड़ाही में डालकर दोनों को पाक करें । जब लेहवत हो जाय, अग्नि पर से उतार उपरोक्त चूर्ण इस में मिला दें ।

मात्रा—६ माशा भोजन के पूर्व, मध्य, और अन्तिम ग्रास के साथ सेवन करावें । यह भी परिणाम शूल की अव्यर्थ औषधि है ।

अन्नद्रव शूल के लिये सिद्ध योग

१. पुराना गुड़ ४ तो०, आंवला चूर्ण ४ तो०, गोमूत्र योग से बनी मण्डूर भस्म १२ तो० बारीक पीस कर इसमें अष्टांश घृत मिलावें, पश्चात् दो गुना मधु मिला कर अवलेह बना लें ।

मात्रा—६ माशा से १ तोला तक भोजन के प्रथम, मध्य, और अन्तिम ग्रास के साथ सेवन करने से अन्नद्रव शूल नष्ट हो जाता है ।

२. मुलहठी चूर्ण ४ तो०, गोमूत्र और त्रिफला योग से बनी मण्डूर भस्म ४तो० । दोनों को मिलाकर दो-गुने मधु में अवलेह बनावें ।

मात्रा—३ माशा से ६ माशा तक प्रातः सायं ।

अनुपान—गर्म जल के साथ सेवन करने से अन्नद्रव शूल का नाश हो जाता है ।

शूलरोग में पथ्य

छर्दिः स्वेदो लंघनं पायुवर्ती वास्तिर्निद्रा रेचनं पाचनं च ।
अब्दोत्पन्नाः शालयो वाद्यमंडस्तप्त क्षीरं जांगलानां रसाश्च ॥
पटोल सौभांजन कारवेल्ल वार्ता कुमाम्राणि पर्चोलमानि ।
द्राक्षा कुपित्थं रुचकं प्रियालं शालिश्च पत्राणि च वस्तुकानि ॥
सामुद्र सौवर्चल हिंगु विश्वं विडं शताह्वा लशुनं लवंगम् ।

एरण्ड तैलं सुरभी जलं च तप्ताम्बु जम्बीर रसोऽपि कुष्ठम् ॥
लघूनि च क्षार रसांसि चेति वर्गो हितः शूल गदार्दितेभ्यः ॥

वमन, स्वेदन, लङ्घन, वस्ति कर्म गुदा में वर्ति प्रयोग, विरेचन, पाचन द्रव्य, एक वर्ष के पुराने चावल, गाय का गर्म दूध, जङ्गली जीवों का मांसरस परवल, सुहांजने की फली, करेला, बैंगन, पका हुआ आम, दाख, कैथ, चिरौंजी, बथुआ, काला नमक, समुद्र खार, साम्भर नमक, हींग, वायविडङ्ग, सतावर, लहसन, अरण्ड तैल, गोमूत्र, गर्म जल, जम्बीरी निम्बु का रस, कुठ, हलके पदार्थ, और चार रस वाले पदार्थ, तथा खूब निद्रा करना । यह सब शूल रोग में पथ्य अर्थात् हितकारी हैं ।

शूल रोग में अपथ्य

विरुद्धान्यन्नपानानि जागरं विषमाशनम् ।
रूक्षतिक्त कषायाणि शीतलानि गुरूणि च ॥
व्यायामं मैथुनं मद्यं, लवणं कटु वैदलम् ।
वेगरोधं शुचं क्रोधः वर्जयेच्छूलवान्नरः ॥

विरुद्ध अन्न पान, जागरण, विषम भोजन, रूखे, तीखे, कसैले, शीतल और भारी पदार्थों का सेवन, अधिक व्यायाम मैथुन सब प्रकार की दाल, मल मूत्रादि वेगों का रोकना शोक और क्रोध । यह सब शूलरोगी के लिये अपथ्य अर्थात् अहितकर है ।

उदावर्त रोगाधिकार

सामान्य लक्षण

ऊर्द्ध वात विरामूत्रादिनाम् आवर्त्तो भ्रमणाम् यास्मिन् स उदावर्तः।

जिस रोग में अधो वायु की गति ऊपर की ओर चक्कर काटने लगती है। उस समय वात, विष्टा, मूत्रादि भी उस वायु के साथ अधोमार्ग के स्थान में ऊर्द्ध गामी हो जाते हैं। अर्थात् वायु तथा मल मूत्र गुदा द्वार से निकलने के स्थान में मुख द्वार से निकलते हैं। यह रोग १३प्रकार के वेगों को रोकने से उत्पन्न होता है और इसके १३ ही भेद कहे गये है। जैसा कि—

(१) अपान वायु के रोकने से उत्पन्न उदावर्त लक्षण

इसमें अपान वायु तथा मल मूत्र रुककर पेट फूल जाता है, श्रम और सारे शरीर में वायु की पीड़ा होती है।

(२) मल रोकने से उत्पन्न उदावर्त लक्षण

पेट में गुड़गुड़ाहट, आमाशय, पक्वाशय तथा सम्पूर्ण उदर में शूल गुदा में कांटे या कैंची से कतरने की सी पीड़ा, बद्धकोष्ठ; खट्टे डकार और कभी २ मुख द्वार से विष्टा का निकलना।

(३) मूत्र रोकने से उत्पन्न उदावर्त लक्षण

वस्ति तथा मूत्र नालीमें तीव्र वेदना, मूत्रकृच्छ्रता, पेडू में वेदना, शिरा-शूल तथा शूल के कारण सम्पूर्ण शरीर का जकड़ जाना।

(४) जम्भाई रोकने से उत्पन्न उदावर्त लक्षण

मन्यास्तम्भ अर्थात् गर्दन का जकड़ना, आंख नाक कानों में वेदना।

(५) आंसू रोकने से उत्पन्न उदावर्त लक्षण

अतीव हर्ष अथवा शोक के कारण निकलते हुए अश्रुओं को रोकने से, सिर में भारीपन, आंखों में पीड़ा और तीव्र प्रतिश्याय (जुकाम) हो जाता है।

(६) छींक रोकने से उत्पन्न उदावर्त लक्षण

मन्यास्तम्भ, शिराशूल, आधे सिर का दर्द, अर्दित [लकवा] ज्ञान, तथा कर्मेन्द्रियों की शिथिलता।

(७) डकार रोकने से उत्पन्न उदावर्त लक्षण

गले का रुकना, आमाशय और हृदय में सूई चुभाने की सी पीड़ा उदर में वायु का गूञ्जना।

(८) वमन रोकने से उत्पन्न उदावर्त लक्षण

शरीर पर खुजली, दाह, व धब्बों का होना, अरुचि, रक्तविकार से कोढ़, पाण्डु तथा ज्वर का होना।

(९) वीर्य रोकने से उत्पन्न उदावर्त लक्षण

पेड़ू, गुदा और अण्डकोष में तीव्र वेदना और शोथ, मूत्र रुकना, वीर्य की पत्थरी होना, वृक्कशूल होना।

(१०) भूख रोकने से उत्पन्न उदावर्त लक्षण

तन्द्रा, मूर्छा, अङ्गमर्द, श्रम, अरुचि और नेत्र ज्योति का कम होना।

(११) प्यास रोकने से उत्पन्न उदावर्त लक्षण

गला, तालू और मुख का सूखना, श्रवण शक्ति की मन्दता, हृदय और पसलियों में पीड़ा।

(१२) श्वास रोकने से उत्पन्न उदावर्त लक्षण

हृदय व पसलियोंमें पीड़ा, तन्द्रा, मोह, उदरमें वायुका गोला होना।

(१३) निद्रा रोकने से उत्पन्न उदावर्त लक्षण

अङ्गमर्द, जम्भाई आना, सारे शरीर और आंखों में बोझ, तन्द्रा और ऊंघ का आना ।

(१४) उदावर्त असाध्य लक्षण

यदि किसी उदावर्त रोगी में निम्न-लिखित लक्षण पैदा हो जांय, तो उसको असाध्य जानना —

लक्षण—अत्यन्त वमन, अत्यन्त शूल, अत्यन्त तृषा, मुख द्वार से विष्टा का निकलना आदि ।

उदावर्त रोग में चिकित्सक के स्मरण रखने योग्य बातें

१. प्रत्येक प्रकार के उदावर्त रोग की चिकित्सा करते समय वायु का विशेष ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि यह रोग वात विकार से ही उत्पन्न होता है ।

२, अपान वात के रुकने से होने वाले उदावर्त में घृत अथवा एरण्ड तैल से स्नेहकर्म करना, जल में पलाश पुष्प, बिनौला आकाश बेलादि पका कर स्वेद कर्म करना अथवा वस्तिकर्म [अनीमा] करना तथा कुठ, सेन्धा लवण, काली मिर्च, पिप्पल आदि तीव्र वस्तुओं की वत्ती बनाकर गुदा में चढ़ाना यह सब प्रयोग लाभकारी होते हैं ।

३. विष्टा रोकने से उत्पन्न उदावर्त में नाराच रस, नाराच चूर्ण, निसोत चूर्ण से विरेचन कराना, गर्म पानी या गर्म तैल के कड़ाहे व टब में बिठलाना, गुदा में ग्लेसरीन की वत्ती चढ़ाना या बस्तिकर्म आदि प्रयोग लाभकारी होते हैं ।

४. मूत्र रोकने से उत्पन्न उदावर्त रोग में मूत्र कृच्छ्र सुज़ाक और अश्मरी रोगाधिकारोक्त प्रयोगों के सेवन करने से लाभ होता है ।

५. जम्भाई रोकने से उत्पन्न उदावर्त रोग में घृत अथवा एरण्डतैल पिलाना, स्वेद कर्म कराना और वातनाशक औषधियों का सेवन कराना लाभकर होता है ।

६. अश्रु रोकने से उत्पन्न उदावर्त रोग में रोगी को विशेष रुदन कराना, सुख पूर्वक सुलाना और दिल को लुभाने वाली कथा कहानी सुनाने से विशेष लाभ होता है ।

७. छींक रोकने से उत्पन्न उदावर्त रोग में काली मिर्च, रीठा, राई, या अन्य तीव्र नसवार को सुंघा कर छींक करवाना, नाक में कपड़े की वत्ती चढ़ाना, सूर्य्य की ओर देखना यह सब लाभकर हैं ।

८. डकार रोकने से उत्पन्न उदावर्त रोग में धूम्रपान [हुक्का पिलाना] मदिरा में काला नमक घोलकर पिलाना अथवा मदिरा में निम्बू मिलाकर पिलाना आदि लाभ करता है ।

९. वमन रोकने से उत्पन्न उदावर्त रोग में मैनफल आदि वमन कारक वस्तुओं से वमन कराना, विरेचन कराना तथा लङ्घन कराना चाहिये ।

१०. वीर्य रोकने से उत्पन्न उदावर्त रोग में स्त्री प्रसंग, तैल मर्दन, जल के बड़े तालाब में स्नान, सुरापान, वस्ति कर्म तथा गोखरू, जौखार, ककड़ी बीज आदि मूत्रल पदार्थों का सेवन कराना ।

११. भूख रोकने से उत्पन्न उदावर्त रोग में स्निग्ध, उष्ण, स्वादु तथा मन को प्रसन्न करने वाले पदार्थ और औषधियें खाने को दें और उत्तम सुगन्ध युक्त इतर तैल अथवा पुष्प सुंघावें ।

१२. प्यास रोकने से उत्पन्न उदावर्त रोग में, शीत और स्निग्ध फ़ल तथा उत्तम पानक (शर्बत) कमल, खस, चन्दन, कपूर आदि शीतल वस्तु पानी के बर्तन में डाल कर वह पानी पिलाना या यव का सत्त पानी में मिला कर खिलाना ।

१३. सांस रोकने से उत्पन्न उदावर्त रोग में दूध, घृत पिलाना या जंगली जीवों का मांस रस पिलाना चाहिये।

१४ नींद रोकने से उत्पन्न उदावर्त में रोगी को सुन्दर पलंग पर नरम बिस्तर बिछा कर लिटाना और गाय का गर्म दूध मिश्री मिला कर पिलाना, मुठी चापी करना और सुन्दर कथा कहानियां सुनानी चाहिये।

उदावर्त रोग की विशेष चिकित्सा

मैनफल, पिप्पल, कूठ, वच, सरसोंसफैद प्रत्येक समान भाग लेकर बारीक पीस लें और इन सब के बराबर उसकी विधिवत् चासनी बनावें इस चासनी में पूर्वोक्त औषधियों का चूर्ण डाल कर कनिष्टका अंगुली के समान बत्ती बनावें। इन बत्तियों को एक ओर कुछ पतला होना चाहिये। अपान वायु रुकने के कारण होने वाले उदावर्त रोगो की गुदा में (   ) चढ़ावें। इससे अपान वायु के रुकने से उत्पन्न होने वाला उदावर्त शान्त होता है।

२. एरण्ड तैल ५ तो० गरम जल २० तो० दोनों को भली भांति मथ कर रुद्ध हुए अपान वायु के कारण उत्पन्न हुए उदावर्त रोगी को बस्ति (anima) कराने से उदावर्त शीघ्र शान्त होता है।

३ निशोथ २ तो० पिप्पल ४ तो०, हरड़ ५ तो०, गुड़ ११ तो० प्रथम कूटने वाली औषधियों को कूट कपड़ छान कर गुड़ में मिला दें।

मात्रा—६ माशे से १ तोला तक प्रयोग कराने से मल के रुकने से उत्पन्न हुआ उदावर्त रोग शान्त होता है।

४. हींग, सैंधा नमक दोनों को सम भाग लें और बारीक पीस कर इस में इतना मधु मिलावें कि बत्ती बन जावे। फिर इसकी कनिष्टका अंगुली प्रमाण की बत्ती बना कर गुदा में चढ़ाने से, भी मलरोध से होने वाला उदावर्त रोग शान्त होता है।

५. छोटी इलायची ११ दाने, गोखरू ४ मा०, ककड़ी बीज ४मा०,

पेठे का बीज ४ मा०, सब को कूट कर डेढ़ पाव पानी में पकावें। आधा भाग रहने पर मसल कर छान लें। इस में १ माशा यवक्षार मिला कर पिलाने से मूत्र के रुकने से उत्पन्न हुआ उदावर्त शान्त होता है।

६. वच का चूर्ण १॥ माशा से ३ माशा दूधकी लस्सीके साथ पिलाने से मूत्रावरोध से उत्पन्न हुआ उदावर्त रोग शान्त होता है।

७. जवांसा २ तो० विधिवत् क्वाथ बना कर सेवन कराने से मूत्रावरोध से उत्पन्न उदावर्त रोग शान्त होता है।

८. अर्जुन छाल २ तो०, डेढ़ पाव पानी में पका कर चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर पिलाने से मूत्रावरोध से उत्पन्न उदावर्त रोग शान्त होता है।

९. उत्तम सुरा ४ तो० में १ माशा काला नमक मिला कर पिलाने से मूत्रावरोध से उत्पन्न उदावर्त रोग शान्त होता है।

१० गिलोय, विदारी कन्द, असगन्ध, अनन्तमूल, शतावर प्रत्येक २ माशा, माषपर्णी, जीवन्ति, मुलट्ठी प्रत्येक १-१ माशा सब को बारीक पीस लें और इस में थोड़ा घी मिला कर सुलगते हुए कोयलों पर डाल कर उद्‌गार वेग रोकने से उत्पन्न होने वाले उदावर्त रोगी को मुख के रास्ते से धूम्र खिचवावें। इस से उद्‌गार के रोकने से उत्पन्न उदावर्त रोग शान्त होता है।

११ सञ्जीवनी सुरा ४ तो० काला नमक १ माशा मिलाकर पिलाने से उद्‌गारावरोध से उत्पन्न उदावर्त रोग शान्त होता है।

१२. यवक्षार ३ माशे, सेन्धा नमक ३ माशा। दोनों को बारीक पीसकर २ तो० गरम घी में मिलावें और वमनावरोध से उत्पन्न उदावर्त रोगी के सारे शरीर पर मालिश करने से वमनावरोध से उत्पन्न उदावर्त रोग शान्त होता है।

१३. मैनफल चूर्ण ६ माशे, आध सेर दूध में मिलाकर पिलाने से वमनावरोध से उत्पन्न उदावर्त रोग नष्ट होता है।

१४. दूब की जड़ १ तो० सरदाई की तरह घोंटकर इसमें १० तो० दूध और अढ़ाई सेर पानी मिलाकर छान लें। इसके सेवन कराने से वीर्य्य रोकने से उत्पन्न उदावर्त रोग शान्त हो जाता है।

——o:-o-:o——

उदावर्त रोग के लिये शास्त्र सिद्ध योग

नाराच चूर्ण

निसोथ चूर्ण १ तो०, पिप्पली २ तो०, मिश्री ४ तो० । इसमें से ६ मा० प्रमाण थोड़ा सा मधु मिलाकर गरम जल से सेवन कराने से मलावरोध से उत्पन्न उदावर्त रोग शान्त होता है।

गुड़ाष्टक.

सोंठ, काली मिर्च, पिप्पल, पिप्पलामूल, निसोथ, दन्तीमूल, चित्रकमूल, छाल। प्रत्येक समान भाग बारीक चूर्ण बनाकर सब के समान गुड़ मिला दें।

मात्रा—६ माशे से १ तोला तक।

अनुपान – गरम जल के साथ सेवन कराने से मलावरोध से उत्पन्न उदावर्त रोग शान्त हो जाता है।

शुष्क मूलादि घृत

सूखी मूली, सोंठ, पुनर्नवा, शालपर्णी, छोटी कण्टकारी, बड़ी कण्टकारी, गोखरू, गुद्दा अमलतास । प्रत्येक १५ तो० यवकुट करके ८ सेर पानी में पकावें। चतुर्थांश रहने पर मल कर छान लें। फिर इसमें आध सेर गो घृत मिला कर घृत पाक विधि से पकावें और घृत मात्र रहने पर छान कर रख लें।

मात्रा—१ तोला से २ तोला तक।

अनुपान—गाय के गरम दूध में मिला कर पिलाने से मल तथा मूत्रावरोध से उत्पन्न उदावर्त रोग शान्त हो जाता है।

स्थिराद्यं घृतम्

शालपर्णी, पृश्नपर्णी, कण्टकारी छोटी, कण्टकारी बड़ी, गोखरू, गुढ़ाअमलतास, करञ्जवा प्रत्येक १० तोला, सब को यवकुट कर के ३२ सेर पानी में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर मल कर छान लें। फिर इस में २सेर गो घृत मिला कर घृत पाक विधि से पकावें। घृत मात्र रहने पर नितार कर छान लें।

मात्रा—१ तोला से २ तोले तक।

अनुपान—गरम गो दुग्ध में मिला कर पिलाने से मल मूत्रावरोध से उत्पन्न उदावर्त रोग शान्त हो जाता है।

बृहत् इच्छा भेदी रस

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, भूना सुहागा १ तोला, काली मरिच १ तोला, निसोथ १ तोला, अतीस २ तोला, शुद्ध जमाल गोटा ६ तोला प्रथम पारा और गन्धक को खरल कर के कज्जली बना लें और शेष औषधियों का बारीक चूर्ण कर के इस में मिला दें। पश्चात् मदार के पत्तों के रस से खरल कर के एक २ रत्ती प्रमाण गोली बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली तक।

अनुपान—ठण्डे जल के साथ सेवन कराने से मलावरोध से उत्पन्न उदावर्त रोग दूर होता है।

त्रिवृतादि वटिका

त्रिवृत चूर्ण १ तो०, हरड़ चूर्ण १ तो०, थोहर के दूध के साथ तीन दिन खरल कर के एक २ रत्ती प्रमाण की गोलियां बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली तक।

अनुपान—गरम जल के साथ सेवन करने से मलावरोध से उत्पन्न उदावर्त रोग शान्त होता है।

उदावर्त रोग में पथ्य ।

उदावर्ते हितं सर्वं पाचनं लंघनं तथा ।
अनाहेऽपि यथायोग्यं सेवयेन्मतिमान्नरः ॥

अर्थात् उदावर्त रोग में पाचन द्रव्य तथा लंघन हितकर है । अनाह रोग में यथोचित अर्थात् पाचक, वातानुलोमक द्रव्यों का सेवन कराना चाहिये ।

विष्टम्भीनि विरुद्धानि कषायाणि गुरूणिच ।
उदावर्ते प्रयत्नेन वर्जयेन्मतिमान्नरः ॥

अर्थात् विष्टम्भी, विरुद्ध वीर्य, कसैले तथा गुरुद्रव्यों का सर्वथा परित्याग करना चाहिये ।

अनाहरोगाधिकार।

निदान

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयोविबद्धं विगुणानिलेन ।
प्रवर्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरन्ति ॥

जिस रोग में आम और विष्टा सञ्चित होकर विकृत वात से शुष्क हो जाता है और अपने मार्ग से नहीं निकलता। इस को वैद्य लोग अनाह रोग कहते हैं।

अनाह रोग के लक्षण।

आम से उत्पन्न हुए अनाहरोग में तृषा, प्रतिश्याय, मस्तिष्क में दाह, आमाशय में शूल, शरीर में भारीपन, हृदय में शूल, डकार न आना इत्यादि लक्षण होते हैं और यदि मल के समय से अनाह हुआ हो तो मल मूत्र का अवरोध, अङ्गों का टूटना, कटिशूल, विष्टा से मिली हुई वमन, श्वास, अफारा, मूर्च्छा इत्यादि लक्षण होते हैं।

अनाहरोग में चिकित्सक के लिये स्मरणीय बातें।

१. यदि अनाहरोगी को विष्टा की वमन आने लगे तो यश की इच्छा चाहने वाला वैद्य ऐसे रोगी को छोड़ दे।

२. अनाहरोग प्रायः आम दोष से होता है। अतः चिकित्सक को चाहिये कि यथा सम्भव दीपन और पाचन औषधियों से चिकित्सा करें।

३. वस्ति कर्म अनाह अवस्था में अत्योपयोगी सिद्ध हुआ है। इसलिए किसी अन्य औषधि के उपचार से पूर्व अरिण्ड तैल मिश्रित गरम जल से वस्ति करना लाभदायक है।

—:-०-:०—

चिकित्सा विधिः ।

हिंग्वादि चूर्ण

भूनी हींग १ तो., वच २ तो., विड़नमक ३ तो., सोंठ ४ तो., काला जीरा ५ तो., हरड़ ६ तो., पुष्करमूल ७ तो., कुठ ८ तो. । सब को बारीक पीस कर चूर्ण बना लें ।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक।

अनुपान—गरम जल से । इस के सेवन करने से आम जनित अनाह रोग शीघ्र शान्त हो जाता है ।

वचादि चूर्ण

वच, हरड़, चित्रकमूलछाल, यवक्षार, पिप्पल, अतीस, कूठ समान भाग ले कर चूर्ण बना लें ।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक ।

अनुपान—गरम जल के साथ सेवन करने से आम तथा वायु से उत्पन्न अनाह रोग शान्त हो जाता है ।

शूलगज केसरी

शुद्ध पारा एक भाग, गन्धक दो भाग, दोनों को एक पहर पर्य्यन्त खरल कर के कज्जली बना लेवें । शुद्ध ताम्र चूर्ण दोनों के बराबर इस में मिलाकर घीक्वार के रस से भावना देकर टिकियां बनाकर सुखा लें । पश्चात् एक इतनी बड़ी हांडी लें । जिस में दो सेर पिसा हुआ सैंधानमक आ सके । आधा नमक हाण्डी में भर कर उस पर टिकिया रख दें और शेष आधा नमक हाण्डी में भर कर ढकने से बन्द कर दें और हाण्डी पर कपरोटी कर के सुखा लें और गजपुट की आग में फूक दें । स्वांग शीतल होने पर निकाल कर खरल कर के रख लें ।

मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक।

अनुपान—गरम जल के साथ सेवन करने से आम से उत्पन्न हुआ अनाह तथा शूल वमन हो कर तत्काल शान्त हो जाता है ।

त्रिवृत्तादि वटिका

निसोत, हरड़, पीपल समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर के तीन दिन तक थोहर के दूध में खरल करें और दो रत्ती की गोलियां बना लें।

मात्रा—१ से २ गोली तक।

अनुपान—गो मूत्र के साथ सेवन करने से मलावरोध से उत्पन्न अनाह शीघ्र शान्त हो जाता है।

फलवर्ति

मैनफल पिप्पल, कूठ, वच, सफेदसरसों, प्रत्येक समान भाग बारीक चूर्ण बना कर यथोचित मात्रा में गुड़ मिला लेवें और वर्ती बना कर अनाह रोगी की गुदा में चढ़ावें। इस से भी मलावरोध से उत्पन्न हुआ अनाह रोग दूर होता है।

त्रिकुटाद्य वर्ति

त्रिकुटा, सैन्धानमक, सफेद सरसों, घर का धूआं, मैनफल, कूठ, समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बनावें। इस में यथोचित मात्रा में गुड़ मिला कर कनिष्ठिका अंगुली प्रमाण वर्ति बनाकर रोगी की गुदा में चढ़ावें। इस से भी मलावरोध से उत्पन्न हुआ रोग दूर होता है।

उदावर्त रोग में पथ्य

आनाहेऽपि प्रयुञ्जीत उदावर्तहरीं क्रियाम् ॥

अर्थात् उदावर्त रोग में जो चिकित्सा कही है। वह अनाह रोग में भी प्रयोग करनी चाहिये। जो द्रव्य और कर्म उदावर्त रोग में हितकारी हैं, वे सब तथा पाचन द्रव्य और लंघन यह सब अनाह रोग में बुद्धिमान वैद्य योजना करे और जो अपथ्य पदार्थ उदावर्त रोग में कह आये हैं, उन सब को अनाह रोग वाला परित्याग कर देवे।

गुल्मरोगाधिकार ।

गुल्म एक संस्कृत शब्द है, जिस का अर्थ गोला होता है । जिस रोग में आमाशय, हृदय तथा नाभी के बीच में वात के विकार से स्थिर तथा चल गोले की भान्ति व्याधि उत्पन्न हो जाती है, वैद्यक परिभाषा में उस को गुल्म कहते हैं ।

गुल्म के भेद

गुल्म रोग के पांच भेद हैं:—

१. वातगुल्म, २. पित्त गुल्म, ३. कफ गुल्म
४. त्रिदोषज गुल्म, ५. रुधिरजन्य गुल्म ।

वैद्यक शास्त्रों में गुल्म रोग के पूर्वोक्त पांच भेद वर्णन किये गये हैं; जिन में से वात पित्तादि दोषों के विकार से उत्पन्न होने वाला चार प्रकार का गुल्म स्त्री तथा पुरुष दोनों को हो सकता है । किन्तु पांचवीं प्रकार का रक्त गुल्म केवल स्त्रियों को ही होता है ।

गुल्म के स्थान

१. पसलियों के नीचे २. यकृत के निकट
३. आमाशय तथा नाभि के मध्य में ४. प्लीहा के निकट
५. वस्ति तथा पेडू में ।

ज्ञात रहे कि वस्ति तथा पेडू में प्रायः स्त्रियों को ही गुल्म होता है ।

चिकित्सकों को विशेष स्मरणीय बातें ।

१. गुल्म रोग की चिकित्सा करते समय वात शामक औषधियों को ही प्रयोग में लाना चाहिये क्योंकि इस रोग का प्रधान कारण विकृत वात ही है ।

२. जहां पर चिकित्सक को इस बात का निश्चय न हो कि गुल्म का प्रधान कारण कौन दोष है, वहां भी वात नाशक चिकित्सा ही करनी चाहिये ।

३. वातज गुल्म की चिकित्सा करते समय आरम्भ में स्निग्ध उष्ण

औषधियों से स्वेद कर्म कराना तथा एरण्ड तैल से विरेचन अथवा वस्ति कराना लाभदायक होता है।

४. पित्तज गुल्म के लिए हरड़, अथवा त्रिफला, निसोत आदि से विरेचन कराने से बहुत लाभ होता है। यदि पित्तज गुल्म के रोगी को शूल तथा दाह के कारण निद्रा न आती हो और हृदय में घबराहट और ज्वर हों, तथा गोले को छूने से वह बहुत गरम प्रतीत होता हो और गुल्म स्थान लाल वर्ण का हो गया हो तो समझ लेना चाहिये कि यह गुल्म पकने वाला है। ऐसी अवस्था में अलसी, पुनर्नवा, निर्विसी, एलुवा, सुहागा, आदि में से किसी उचित वस्तु की पुल्टिस बनाकर व्यवहार में लावें। जब गुल्म पक जावे तो अन्त्र विद्रधिः की भांति चिकित्सा करें।

५. कफज गुल्म की चिकित्सा करते समय प्रथम रोगी को वमन करावें। पश्चात् लंघन और स्वेद कर्म करें। कफज गुल्म रोगी को प्रायः वात गुल्मोक्त औषधियां ही लाभदायक होती हैं। तिल, एरण्डबीज, सरसों इन को गो मूत्र अथवा सिरके में पीसकर कफ गुल्म के स्थान पर लेप करने से लाभ होता है।

६. रक्तगुल्म की चिकित्सा दश मास व्यतीत होने पर करनी चाहिये और चिकित्सा करते समय प्रथम स्नेह तथा स्वेद कर्म कर के विरेचन करना चाहिये। तत्पश्चात् शस्त्र क्रिया की सहायता से चिकित्सा करनी चाहिये।

७. प्रश्न—रक्तगुल्म की चिकित्सा करते समय दश मास प्रतीक्षा की क्या आवश्यकता है?

उत्तर—इस के दो कारण हैं:-

(१) यह कि दश मास व्यतीत हो जाने पर इस बात का पूर्ण निश्चय हो जाता है कि रुग्णा को गुल्म है अथवा गर्भ। क्योंकि दश मास के पश्चात् प्रायः शिशु उत्पन्न हो जाता है। यदि स्त्री को गर्भ ही हो तो इस प्रतीक्षा का यह फल होगा कि चिकित्सक एक भयङ्कर भूल से बच जायगा।

(२) दूसरा कारण यह है कि रक्तगुल्म दश मास व्यतीत होने पर ही इस योग्य होता है कि इस पर शस्त्र क्रिया की जावे। यथा कहा है—

रक्त गुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम् ॥

अर्थात् रक्तगुल्म पुराना होने पर ही सुखसाध्य होता है।

८. रक्तगुल्म की चिकित्सा दश मास व्यतीत होने पर करने का एक यह भी अभिप्राय है कि यह गुल्म प्रायः शस्त्र चिकित्सा से ही शान्त होता है। अतः इस की चिकित्सा बिना पकने के नहीं करनी चाहिये। अनुभव द्वारा सिद्ध हो चुका है कि जिन स्त्रियों की चिकित्सा दश मास व्यतीत होने पर की गई, उन को पूर्ण लाभ हुआ। यदि कारण वश शस्त्र कर्म न करना हो तो निम्न लिखित उपायों से चिकित्सा करनी चाहिये।

(१) एक सेर ढाक के क्षार को १६ सेर जल में डाल कर २ सेर गोघृत में पकावें। घृत सिद्ध होने पर १ तो. से २ तो तक गरम गोदुग्ध में मिलाकर पिलाने से रक्त गुल्म स्वयं पक कर फूट जाता है।

(२) रीठे का छिलका १ सेर ८ सेर पानी में पकावें। जब पकते २ गाढ़ा हो जावे तो इसको मल कर छान लें और पुनः पकावें। जब लेहवत् हो जाय तो इस में से थोड़ा कपड़े की बत्ती को लगाकर स्त्री के गर्भाशय में पिचु धारण करायें। इस के कुछ दिन व्यवहार करने से रक्तगुल्म फट जाता है।

९. सर्व प्रकार के गुल्म रोगियों को प्रायः बद्धकोष्ठ और आध्मान रहता है। चिकित्सक को चाहिये कि वात नाशक उपचार करें। तथा वात वर्द्धक पदार्थों का सेवन और परिश्रम, रात्रि जागरण, और कामचेष्टा आदि व्यवहार का निषेध करें।

चिकित्सा विधिः

पूर्व कह आये हैं कि गुल्म रोग प्राय वात विकार से उत्पन्न होता है। इसलिए गुल्म की चिकित्सा करते समय निम्न लिखित ग्यारह कर्म रोगी का बल तथा अवस्थानुसार करें:—

(१) स्नेह (२) स्वेदन, (३) निरुहन, (४) अनुवासन, (५) विरेचन, (६) वमन, (७) लङ्घन, (८) बृंहण, (९) प्रशमन, (१०) रक्तावसेचन, (११) अग्निकर्म।

वातगुल्म के लिए सिद्ध योग

(१) सोंठ ४ तो., तिल १६ तो., पुराना गुड़ २ तो., तीनों वस्तुओं को पीस कर रखें।

मात्रा— ६ माशे से १ तो., तक।

अनुपान— गरम जल से सेवन कराने पर वात गुल्म शान्त होता है।

(२) सज्जीक्षार २ मा., कूठ २ माशा, अमलतास का क्षार ४ मा., इनको पीसकर १ से २ तो., एरण्ड तैल में मिला कर गरम जल के साथ सेवन कराने से वात गुल्म शान्त होता है।

(१) शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कण्टकारी, बड़ी कण्टकारी, अरणी प्रत्येक ६ माशे। आधा सेर जल में पकावें। चतुर्थांश रहने पर मल कर छान लें और इस में १ मा यवक्षार, १ मा. सज्जीक्षार; तथा १ तो एरण्ड, तैल मिलाकर पिलाने से थोड़े दिनों में ही वातगुल्म को शान्त करता है।

हिंगु सौवर्चलाद्यं घृतम्

गोघृत २ सेर, दही की छाछ ८ सेर कल्कार्थ हींग, सौंचर, नमक, जीरा, नौसादर, अनारदाना, अजवायन, पुष्करमूल, पिप्पली, काली मिरच सोंठ, धनियां, यवक्षार, चित्रक, कचूर, वच, अजमोद, इलायची, तुलसी पत्र, प्रत्येक २ तोला सब को पीस कर दही की छाछ मिला दें। और घृत पाक की विधि से पाक करें। जब घृत मात्र रह जाये। तो छान कर रखें।

मात्रा--१ तो० से २ तो० तक।

अनुपान--गाय के गरम दूध के साथ सेवन कराने से वात गुल्म से होने वाले शूल तथा अनाह आदि उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

हवुषाद्यं घृतम्

गो घृत २ सेर, बिजौरे निम्बु का रस २ सेर, दही की छाछ २ सेर, गो दुग्ध २ सेर, बेर का क्वाथ २ सेर (१ सेर बेरों को ८ सेर पानी में पका कर २ सेर शेष रहने पर व्यवहार में लावें); अनार का स्वरस २ सेर,

मूली का स्वरस २ सेर कल्कार्थ—हाऊबेर, कालीमिर्च, सोंठ, पिप्पली, हिंगपत्री, चव्य, चित्रकमूल छाल, सेन्धा नमक, काला जीरा, पिप्पलामूल, अजवाइन प्रत्येक ४ तो० पीसकर सब को मिला लें और यथा विधि घृत पाक करें, उत्तम पाक होने पर छान लें।

मात्रा—१ तो० से २ तो० तक।

अनुपान—गाय के गरम दूधके साथ सेवन कराने से वात गुल्म तथा वात गुल्म से पैदा होने वाले उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

कांक्वायन गुटिका

कचूर, पुष्करमूल, दन्तीमूल, अरहर मूल, सोंठ, वच, निसोत प्रत्येक ४ तो०, यवक्षार ८ तो० घृत में भुनी हींग १२ तो०, अम्लवेत ८ तो०; अजवायन २ तो०, काला जीरा २ तो०; धनियां २ तो० अजमोद ४ तो० सब को बारीक पीस कर जम्बीरी निम्बू के रस में तीन चार दिन खरल करके ४ रत्ती से १ माशा प्रमाण की गोली बनावें।

मात्रा—१ से २ गोली तक।

अनुपान—गरम जल के साथ सेवन कराने से वातगुल्म शीघ्र शांत हो जाता है।

हिंग्वादि चूर्ण

भूनी हींग, पुष्करमूल, धानियां, हरड़, निसोत, नौसादर, सेन्धा-नमक, यवक्षार, सोंठ प्रत्येक समभाग पीसकर घी में भून लें।

मात्रा—४ रत्ती से १ माशा तक।

अनुपान—गरम जल, अथवा १ तो० सुरा के साथ प्रयोग करने से वात गुल्म का नाश हो जाता है।

नोट—यदि कफ गुल्मोक्त, वज्रक्षार २ रत्ती से ४ रत्ती प्रति मात्रा हिंग्वादि में मिलाकर सेवन करावें, तो वातगुल्मको विशेष लाभ होता है।

पित्त गुल्म के लिये प्रसिद्ध योग

आरम्भ में पित्त गुल्मी को घृत से स्निग्ध करें। पश्चात् हरड़ चूर्ण ६ माशे से १तो० में समान भाग मिश्री मिलाकर गोदुग्ध से विरेचनार्थ सेवन करावें, अथवा गुद्दा अमलतास ४ तो०, पाव भर गुलाब जल में घोल कर ४ तो० यवासक शर्करा (तुरञ्जबीन) मिला कर विरेचनार्थ सेवन करावें अथवा निसोतचूर्ण ६ माशा., शुण्ठी चूर्ण ४ रत्ती, मिश्री ६ माशा दूध के साथ सेवन करावें। इससे भी पित्त गुल्मी को उत्तम विरेचन होता है। तत्पश्चात् निम्न-लिखित सिद्ध योगों में से कई एक योग प्रयोग करावें--

१. हरड़, बहेड़ा, आम्ला प्रत्येक ६ माशे ऽ॥ सेर पानी में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर रोगी को मिश्री २ तो० मिलाकर पिलावें। इसके थोड़े ही दिन व्यवहार करने से पित्त गुल्म का नाश होता है।

२. मुलट्टी, चन्दन सफैद, किशमिश समान भाग लेकर बारीक पीस लें।

मात्रा--३ माशे से ६ माशे तक।

अनुपान --गाय के दूध के साथ प्रयोग कराने से पित्तगुल्म शान्त होता है।

काथ त्रायमाणाद्यं घृतम्

गोदुग्ध २ पाव, क्काथार्थ त्रायमाण १६ तो०, जल २८ तो०, शेष आध सेर मल कर छान लें। आमले का रस आध सेर, गोदुग्ध आध सेर, कल्कार्थ—कुटकी; नागरमोथा, त्रायमाण, जवांसा, भूमि आमला, क्षीर काकोली, जीवन्ती, लाल चन्दन, नीला कमल प्रत्येक एक २ तो०, सब को पीसकर घृत पाक की विधि से पकावें। उत्तम पाक होने पर छान लें।

मात्रा--१ तो० से २ तो० तक।

अनुपान—गाय के गरम दूध के साथ सेवन कराने से पित्तगुल्म शान्त होता है।

द्राक्षाद्यं घृतम्

गोघृत २ सेर, आमले का स्वरस २ सेर, गन्ने का रस २ सेर, गो-दुग्ध २ सेर। क्वाथार्थ—द्राक्षा, मुलहठी; खजूर, विदारीकन्द, शतावर, फालसा; त्रिफला, प्रत्येक ४ तो०; जल ८ सेर। कल्कार्थ—हरड़ आध सेर पीसकर सब को मिलाकर यथाविधि पाक करें। उत्तम पाक होने पर छान लेवें। तत्पश्चात् खाण्ड १६ तो०, मधु १६ तो०, घृत में मिला दें।

मात्रा--१ तो० से २ तोला तक।

अनुपान--गो दुग्ध के साथ सेवन कराने से पित्तगुल्म शान्त होता है।

कफ गुल्म के लिये सिद्ध योग

कफगुल्म की चिकित्सा करते समय प्रथम रोगी को तीव्र विरेचन के अतिरिक्त स्वेदकर्म और लंघन करावें।

१. तिल काले, एरण्ड बीज, सरसों तीनों को बारीक पीस कर खूब गरम करके कपड़े की पोटली में बान्धकर गुल्म स्थान पर सेंक करें।

२, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, छोटी कण्टकारी; बड़ी कण्टकारी, अरणी प्रत्येक ६ माशा आध सेर जल में पकाएं, चतुर्थांश रहने पर छान लें। फिर इसमें ४ तो० सुरा मिला रोगी को पिलावें, इससे कफजगुल्म का नाश होता है।

३. सोंठ, काली मिरच, पिप्पली, हींग, सूनी हींग, प्रत्येक २ तोला

मदार के फूल का लौंग समस्त के बराबर, काला नमक मदार के फूल से आधा प्रमाण। सब को पीसकर एक२ माशा की गोलियां बना लें और रोगी को १ से २ गोली दिन में दो बार प्रयोग कराने से कफगुल्म का नाश होता है।

४. भूनी हींग २ तो०, काली मिर्च २ तो०, सोंठ २ तो०, पिप्पल २ तो० सबको बारीक पीसकर सुहांजने के रस में आठ दिन खरल करके ४ रत्ती प्रमाण की गोली बनावें और रोगी को सेवन करावें, इसके प्रयोग से कफगुल्म नाश होता है।

हिंग्वादि चूर्ण

भुनी हींग, सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, पाढ़, हाऊबेर, हरड़, कचूर, अजमोद, तुलसीपत्र, तिन्तड़ीक (ममाकदाना), अम्लवेत, अनारदाना, पुष्करमूल, धनियां, काला जीरा, चित्रकमूल, वच, यवक्षार, सज्जीक्षार पांचों नमक प्रत्येक समभाग चूर्ण बना लें।

मात्रा—१ माशा से ३ माशा तक।

अनुपान—इसमें ४ रत्ती से १ माशे वज्रक्षार मिला कर गरमजल अथवा उत्तम सुरा के साथ सेवन कराने से थोड़े ही दिनों में कफगुल्म का नाश हो जाता है।

वज्रक्षार

समुद्र नमक, सेंधा नमक, काला नमक, सांभर नमक, नौसादर; जौखार, शोरा; सुहागा; सज्जीक्षार सब को बारीक पीस कर तीन बार दिन में थोहरके दूधमें खरल करें और गोला बनाकर इस पर सब औषधियों का चतुर्थांश प्रमाण मदार के पत्ते लपेट कर हाण्डी में बन्द करके गजपुट की आंच में फूंक दें। स्वांग शीतल होने पर निकाल कर पीस कर रख लें।

मात्रा—४ रत्ती से १ माशा तक।

अनुपान—उपरोक्त हिंग्वादि चूर्ण में मिला कर प्रयोग करावें।

भल्लातकं घृतम्

शुद्ध भल्लातक १तो. शालपर्णी, पृष्टपर्णी, छोटी कंटकारी बड़ी कंटकारी

गोखरू प्रत्येक ४ तो०. विदारीकन्द ४ तो०, पाकाथ जल ८ सेर, शेष २ सेर, घृत २ सेर, कल्कार्थ पिप्पली, सोंठ, वच, वायविडङ्ग, सेन्धानमक, भूनीं हींग, यवक्षार, नवसादर, कचूर, चित्रकमूल, मुलठी, रास्ना, प्रत्येक १ तो० । सब को पीस कर मिला लें और घृत पाक की विधि से पाक करें, उत्तम पाक होने पर छान कर रख लें ।

मात्रा—१ तोले से २ तोला तक ।

अनुपान--गरम जल अथवा दशमूल क्वाथ के साथ प्रयोग करने से कफगुल्म का नाश होता है ।

नाराच घृतम्

घी ऽ॥ सेर, कल्कार्थ, चित्रकमूल छाल, हरड़, वहेड़ा, आमला, दन्तीमूल, निसोत, छोटी कटेरी, थोहर का दुग्ध, वायविडंग प्रत्येक एक २ तोला कल्क बना कर यथा विधि घृत पाक करें । उत्तम पाक होने पर छान कर रख लें ।

मात्रा—६ माशे से १ तोला तक ।

अनुपान--गरम जल के साथ सेवन करने से विरेचन हो कर कफ गुल्म शान्त होता है ।

वड़वानल रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, पारद और गन्धक द्वारा भस्म किया हुआ ताम्र, अर्क दुग्ध से भस्म किया हुआ अभ्रक, सुहागा, समुद्र नमक. यवक्षार, सज्जीक्षार, सैंधा नमक, सोंठ, अपामार्गक्षार, पलाशक्षार, मीठा तेलिया शुद्ध प्रत्येक समभाग । प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली करें । शेष वस्तुओं को बारीक पीस कर इस में मिलावें और चणकाम्ल, हस्तिशुण्डी, घी कुवार तथा अद्रक के रस में तीन दिन खरल कर के एक गोला बनावें और मिट्टी के सकोरे में बन्द करके लघु पुट दें । पश्चात् निकाल कर पीस कर रखें ।

मात्रा—२ रत्ती ।

अनुपान—गरम जल अथवा दशमूल क्वाथ के साथ सेवन कराने से वात तथा कफ गुल्म शान्त होता है ।

गुल्मशार्दूलो रसः

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, हिंगुल योग से बनी हुई लोह भस्म, शुद्ध गुग्गल, निशोत, सुगन्धबाला, सोंठ, कचूर, धनियां, काला जीरा प्रत्येक चार तोला, शुद्ध जयपाल २ तो. पारा गन्धक की कज्जली बनाकर शेष वस्तुओं को मिलाकर गोघृत से खरल करके २ रत्ती प्रमाण गोली बनावें।

मात्रा—१ गोली।

अनुपान—अद्रक का रस तथा गरम जल।

इस के सेवन करने से वात तथा कफ गुल्म नष्ट हो जाता है।

त्रिदोषज गुल्म के लिये सिद्ध योग

पूर्व कह आये हैं कि गुल्म मात्र वायु के प्रकोप से होते हैं। किन्तु फिर भी त्रिदोषज गुल्म में तीनों दोषों के संमिश्रण के साथ साथ कोई एक दोष अवश्य प्रधान होता है। अतः पूर्व कहे हुए योगों में से प्रधान दोष शमनार्थ त्रिदोषज गुल्म शान्त हो जाता है। चिकित्सक को चाहिये कि दोष, देश, बल, और अवस्था का विचार करते हुए किसी प्रयोग का व्यवहार करें यहां पर त्रिदोषज गुल्म के लिये कुच्छ अनुभूत योग भी दिये जाते हैं।

रसोनाद्यं घृतम्

घृत २ सेर, लशुन स्वरस २ सेर, बिल्व, श्योनाक, गम्भारी, पाढल, अरणी यह प्रत्येक ऽ॥ सेर, क्वाथार्थ जल ८ सेर, शेष २ सेर। सुरा, कांजी दही की छाछ, तिन्तड़ीक (समाग दाना) का क्वाथ प्रत्येक २ सेर। कल्कार्थ, सोंठ, मिरच, पिप्पल, अनारदाना, अजवायन, चव्य, तिन्तड़ीक, सैन्धा नमक, भूनी हींग, अम्लवेत, काला जीरा, अजमोद प्रत्येक ४ तोला यथा विधि घृत पाक करें। घृत सिद्ध होने पर छान कर रख लें।

मात्रा—१ तोला से २ तोला तक।

अनुपान—गरम जल तथा दशमूल क्वाथ के साथ सेवन कराने से वात प्रधान त्रिदोषज गुल्म शान्त होता है।

त्र्यूषणाद्यं घृतम्

गोघृत ४ सेर, दुग्ध १६ सेर, कल्कार्थ, सोंठ, मिरच, पिप्पल, हरड़, बहेड़ा, आमला, धनियां, वायविडंग, चव्य, चित्रक मूल छाल, प्रत्येक ८ तो० पीस कर यथा विधि घृत पाक करें। सिद्ध होने पर छान कर रख लें।

मात्रा—१ तोला से २ तोला तक।

अनुपान—गरम जल तथा दशमूल क्वाथ के साथ सेवन कराने से कफ प्रधान त्रिदोषज गुल्म शान्त होता है।

धात्रीषट पलकं घृतं

घृत २ सेर, आमले का स्वरस ८ सेर, कल्कार्थ पिप्पली; पिप्पला-मूल, चव्य, चित्रकमूलछाल, सोंठ; यवक्षार प्रत्येक ४ तो०। पाकार्थ—जल ८ सेर यथाविधि पाक करें। उत्तम पाक होने पर इसमें खांड २०तो०, सेन्धा नमक १० तो० मिलाकर रख लें।

मात्रा—१ तो० से २ तो० तक।

अनुपान—गाय के गरम दूध में मिलाकर पिलाने से पित्त प्रधान त्रिदोषज गुल्म शान्त होता है।

रसायनामृत लोहम्

२ सेर त्रिफला के क्वाथ में ६४ तो० खाण्ड और ६४ तो. जम्बीरी निम्बु का रस मिलाकर पाक करें। जब लेहवत् गाढ़ा हो जावे, तो इसमें सोंठ, मिरच, पिप्पल, हरड़, बहेड़ा; आमला, नागरमोथा; वायविडङ्ग; श्वेतजीरा; काला जीरा; अजवायन, अजमोद, चिरायता, निसोत; दन्तीमूल, नीमछाल, सन्धा नमक; अर्क दुग्ध से बनी हुई अभ्रक भस्म, त्रिफला योग से बनी हुई लोह भस्म प्रत्येक ८ तो. सब को बारीक पीस कर मिला दें। तत्पश्चात् इस में १६ तो० गो घृत मिलाकर रखें।

मात्रा—१ मा० से २ मा० तक।

अनुपान—वात प्रधान त्रिदोषज गुल्म में दशमूल क्वाथ के साथ, पित्त प्रधान त्रिदोषज गुल्म में गाय के गरम दूध के साथ; और कफ प्रधान त्रिदोषजगुल्म में गरम जल अथवा अद्रक रसके साथ सेवन करानेसे त्रिदोषज गुल्म का नाश होता है।

गुल्म कालानल रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; शुद्ध हरताल, सुहागा यवक्षार, पारद गन्धक, योगसे बनी हुई ताम्र भस्म प्रत्येक २तो० नागरमोथा, पिप्पली, सोंठ, काली मिरच, गज पीप्पल हरड़, वच, कुठ, प्रत्येक एक तोला । प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर शेष औषधियों को बारीक पीस कर मिलावें । और पित्त पापड़ा, नागरमोथा अद्रक, अपामार्ग, पाढ, इन के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ तीन २ दिन खरल करके दो रत्ती प्रमाण गोलियां बनावें ।

मात्रा—१ गोली से २ गोली तक ।

अनुपान - प्रातः सायं २ तो. हरड़ों के क्वाथ के साथ सेवन करने से वात प्रधान त्रिदोषज गुल्म का नाश हो जाता है

प्रवाल पंचामृत रसः

मुक्ता भस्म, शंख भस्म, शुक्ति भस्म प्रत्येक २ तोला । प्रवाल भस्म ४ तोला सब को मदार के दूध के साथ खरल करके टिकिया बना मिट्टी के सकोरे में बन्द कर के लघु पुट दें । स्वांग शीतल होने पर निकाल कर खरल करके रखें ।

मात्रा - २ रत्ती दिन में दो तीन वार ।

अनुपान—गाय के गरम दूध के साथ प्रयोग कराने से पित्त गुल्म शान्त होता है ।

प्राण वल्लभो रसः

हिंगुल योग से बनी हुई लोहभस्म, गन्धक पारद योग से बनी ताम्र भस्म, अर्क दुग्ध से बनी विराट (पीली कौड़ी) भस्म, शुद्ध तूतिया, हींग, त्रिफला, थोहर की जड़, यवक्षार, शुद्ध जयपाल, सुहागा, निसोत प्रत्येक सम भाग तीन दिन बकरी के दूध में खरल कर के आधी रत्ती से १ रत्ती तक की गोलियां बना लें ।

मात्रा—१ से २ गोली तक ।

अनुपान-शीतल जल के साथ प्रयोग करने से कफ प्रधान त्रिदोषज गुल्म शान्त हो जाता है ।

रक्तगुल्म के लिये सिद्ध योग

यद्यपि रक्तगुल्म शस्त्र क्रिया के बिना बहुत कम अच्छा होता देखा गया है, तथापि सकुमार रुग्णाओं के लिये कुछ अनुभूत योग दिये जाते हैं। बुद्धिमान चिकित्सक समयानुसार व्यवहार करें।

१. गुड़, सोंठ, मिरच, पिप्पल; हिंगुपत्री समान भाग लेकर पीस लें और २ से ४ तो० काले तिलों को आध सेर जल में पकाकर चतुर्थांश शेष रहने पर छान लें। इसके साथ पूर्वोक्त चूर्ण ६ माशे से १ तो० सेवन कराने से रक्तगुल्म तथा अतिवावरोध दूर होता है।

२. २-४ तो० उत्तम सुरा में समभाग सौंफ अथवा सोये का अर्क और ३ से ६ माशा तक यवक्षार मिलाकर पिलाने से रक्तगुल्म तथा रजावरोध दूर होता है।

पलाश क्षार घृतम्

पलाशक्षार १ सेर, जल १६ सेर, गोघृत ४ सेर यथाविधि पाक करें, उत्तम पाक होने पर छान लें।

मात्रा—१ तो० से २ तो० तक।

अनुपान—गोदूध के साथ प्रातःकाल सेवन कराने से रक्तगुल्म दूर होता है।

गुल्म वज्राग्नि वटिका

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक और पारद गंधकके योग से बनी ताम्रभस्म शुद्ध हड़ताल, सुहागा, पारद और गन्धक से बनी हुई कांस्यभस्म प्रत्येक समभाग। प्रथम पारा गन्धक की कज्जली करके सब को मिलाकर खरल करके रख लें।

मात्रा—१ रत्ती दिन में दो बार।

अनुपान—सोये बीज के क्वाथ में गुड़ मिलाकर पिलाने से रक्तगुल्म तथा रजावरोध दूर होता है।

नोट—रक्तगुल्म की चिकित्सा में शस्त्र क्रिया, अथवा औषधि, उपचार से यदि रक्त की अधिक प्रवृत्ति हो, जिससे रुग्ण के देहावसान का भय हो, तो चिकित्सक को चाहिये, कि रक्त प्रदरोक्त औषधियों का उपचार करे।

गुल्म रोग में पथ्य

स्नेहःस्वेदो विरेकश्च वस्तिवाहु शिराव्यधः ।
लंघनं वर्तिरभ्यङ्ग स्नेहः पक्वे तु पाटनम् ॥
संवत्सर समुत्पन्ना कलमा रक्तशालयः ।
खण्ड कुलत्थ यूषश्च धन्वमांसरसः सुरा ॥
गवामजायाश्च पयो मृद्धिका च परुषकम् ।
खर्जूरं दाड़िमं धात्री नारंगं चाम्लवेतसम् ॥
तक्रमेरण्ड तैलं च लशुनं बालमूलकम् ।
पत्तूरो वास्तुकं शिग्रु यवक्षारो हरीतकी ॥
रामठंमातुलुंगं च त्र्यूषणं सुरभी जलम् ।
यदन्नं स्निग्धमूष्णं च बृहणं लघु दीपनम् ॥
वातानुलोम्यं च पथ्यं गुल्मे नृणां भवेत् ।

अर्थ—स्नेह, स्वेद, विरेचन, वस्ति तथा रक्तमोक्षण, और लङ्घन तथा वर्ति प्रयोग रक्तगुल्म में शस्त्रक्रिया आदि कर्म हितकर हैं।

गुल्मरोगी को पुराने चावल, साठी चावल, कुलत्थी, खाण्ड, जङ्गली जीवों का मांस रस, सुरा, गो तथा बकरी का दूध, द्राक्षा, फालसा, खजूर, अनार, आमले, नारङ्गी, निम्बु, अम्लवेत, निम्बू गौदधिकी छाछ,एरण्ड, तैल, लशुन, मूली, बथुवा, सुहांजने की फली. यवक्षार, हरड़, हींग, बिजौरा निम्बू, त्रिकुटा, गोमूत्र, तथा स्निग्धोष्ण पदार्थ सर्व प्रकार के गुल्म रोगियों के लिये पथ्य तथा हितकर हैं।

गुल्म रोग में अपथ्य

माषादयः शमीधानं शूकधान्यं यवादयः ।
वातकारीणि सर्वाणि विरुद्धान्यशनानि च ॥
वल्लूरं मूलकं मत्स्यं मधुराणि फलानि च ।
शुष्क शाकं शमीधान्यं विष्टंभीनि गुरूणि च ॥
अधोवायु शकृन्मूत्र श्रमश्वासाश्रु धारणम् ।
वमनं लंघनं पानं गुल्मरोगे विवर्जयेत् ॥

अर्थात्—उड़दादि फली में उत्पन्न होने वाले धान्य, शमीधान्य, जौ आदि वात कारक सम्पूर्ण पदार्थ, विरुद्ध भोजन, शुष्क मांस, मछली, समस्त मीठे फल, सूखे पत्तों के शाक, स्तम्भकारी और भारी पदार्थ (उड़द की पीठी के पदार्थ) अधोवायु तथा मल मूत्रादि वेगों का रोकना वमन, अधिक लंघन, अधिक जलपान यह गुल्मरोगी को अपथ्यकारी हैं ।

समाप्त

* विषय सूची *